

UNIVERSITY OF TORONTO




3 1761 00092181 7

गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव !

गुरुदेव गुरुदेव

आचार्यगुरुदेव !

गुरुदेव गुरुदेवगुरुदेव (६) ।



Digitized by the Internet Archive
in 2010 with funding from
University of Toronto

<http://www.archive.org/details/acarenduh00trya>

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ५८

माटे इत्युपाह्वयम्बकविरचितः *Tsyambraka Narayan*
mate

आचारेन्दुः । *Acharenduh*

एतत्पुस्तकमागाशे इत्युपाह्वदत्तात्रेयशास्त्रिभिः संशोधितम् ।

तच्च

हरि नारायण आपटे

इत्येतैः

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८३०

ख्रिस्ताब्दाः १९०९

(अग्न्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः ।)

मूल्यं रूपकचतुष्टयम् (रु० ४)

BL

1215

P5T77

1909



1125232

आदर्शपुस्तकोलेखपत्रिका ।

अस्याऽऽचारेन्दोः पुस्तकानि यैः परहितैकपरतया संशोधनार्थं दत्तानि
तेषां नामादीनि संज्ञाश्च प्रदर्श्यन्ते ।

- (क.) इति संज्ञितम्—रत्नागिरिग्रामनिवासिनां कै० वे० रा० रा० गोपा-
ळदीक्षित पटवर्धन इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः
शके १८१०
(ख.) इति संज्ञितम्—रत्नागिरिसमीपस्थमावळंगेग्रामनिवासिनां वे० रा०
रा० गोविन्द भट्ट भट्ट इत्येतेषाम् । अस्य लेखन-
कालः शके १७७१
(ग.) इति संज्ञितम्—साताराग्रामनिवासिनां वे० शा० सं० रा० रा०
बाळाचार्य गजेन्द्रगडकर इत्येतेषाम् ।

समाप्तेयमादर्शपुस्तकोलेखपत्रिका ।

आचारेन्दोर्विषयानुक्रमः ।

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|--------------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| राजवर्णनश्लोकौ | १ | परिशिष्टशौनकगृह्यकारिका- | |
| ग्रन्थकारयितृवर्णनम् | " | णां परस्परविरोधे निर्णयः | ५ |
| ग्रन्थकर्तुः कुलनामादि | " | कर्मणि प्रशस्तो देशः | " |
| देवतानतिरूपं मङ्गलम् | " | ब्रह्मावर्तलक्षणम् | " |
| उपोद्घातप्रकरणम् | २ | मध्यदेशः | ६ |
| आचारप्रशंसा | " | आर्यावर्तलक्षणम् | " |
| आचारलक्षणम् | " | कर्मणि स्वगृहं प्रशस्तम् | " |
| शिष्टलक्षणम् | " | प्रवासादौ गृहपतेरनुज्ञा | " |
| लौकिकाचारावश्यकता | " | तीर्थादौ नानुमतिः | " |
| दयादीनां सर्वसाधारण्यम् | " | घट्टधर्मशालादावपि | " |
| दयाक्षमानसूयाशौचानाया- | | अन्तरालद्वीपे निषिद्धे | " |
| समङ्गलाकार्पण्यास्पृहत्व- | | एतयोर्लक्षणम् | ७ |
| लक्षणानि | २-३ | द्वीपापवादः | " |
| धर्ममूलम् | ३ | प्रातरुदुम्बरपुजा | " |
| श्रुतिस्मृत्यादिविरोधे निर्णयः | " | तत्र पादस्पर्शनिषेधः | " |
| श्रुतिस्मृत्यविरुद्धाचारः प्रमा- | | प्रातर्गोमयेन भूमिलेपनम् | " |
| णम् | " | तत्र स्वस्तिकमावश्यकम् | " |
| देवक्रष्यनुष्ठितं नानुष्ठेयम् | ४ | सूत्रोक्ताः परिभाषाः | " |
| श्रुत्यादिद्वैधे | " | कर्तुः प्राङ्मुखत्वम् | " |
| मनुस्मृतेः प्राबल्यम् | " | कर्मणां प्रागपवर्गता | " |
| कलौ पराशरस्मृतिः | " | अङ्गधारणा | " |
| कल्पसूत्रस्मृतिविरोधे कल्प- | | अनुक्ते यज्ञोपवीती | " |
| सूत्रं प्रबलम् | " | अशुचित्वसंपादिकर्मविहारा- | |
| कर्मणि सकलशास्त्रोपसंहारः | " | द्विहिः | " |
| तत्रापि स्वसूत्रावश्यकता | " | अनुक्ते दक्षिणाङ्गम् | " |
| यथाशक्त्युपसंहारः | ५ | जपादीनामुपांशुत्वम् | " |
| यद्वा स्वसूत्रोक्तमेव कर्तव्यम् | " | मन्त्रान्ते कर्मरम्भः | " |
| गृह्यपरिशिष्टं सूत्रसमम् | " | श्रौतपरिभाषाणां गृह्ये प्राप्तिः | " |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| गृह्ये कचिदुदङ्मुखताऽपि... | ८ | कर्मणि शस्तं जलम् ... | ११ |
| जप उपांशुत्वमनित्यम् ... | ११ | जाह्नवीजले स्पर्शादिदोषो न | ११ |
| अनियम उपवेशनम् ... | ११ | गङ्गा पञ्चधा ... | ११ |
| परिशिष्टपरिभाषाः... | ११ | प्रोक्षणे मन्त्रः ... | ११ |
| कर्माङ्गतया ज्ञानमावश्यकम् | ११ | पादप्रक्षालनादिशेषोदकनि- | |
| उपवीतशिखाबन्धनयोरावश्य- | | पेधः ... | ११ |
| कत्वम् ... | ११ | ऋष्यादिस्मरणम् ... | ११ |
| शिखाबन्धनप्रकारो मन्त्रश्च | ११ | केवलदेवतास्मरणं वा ... | ११ |
| शिखामानम् ... | ११ | मन्त्रोच्चारे विशेषः ... | ११ |
| सर्वं कर्म उपवसता कार्यम् | ११ | मन्त्रादौ प्रणवः ... | १२ |
| अत्र फलमूलादिभक्षणे दोषो | | कचित्तदपवादः ... | ११ |
| न... | ११ | शुद्धिसाधनानि शरीरादेः... | ११ |
| संकल्पावश्यकता तल्लक्षणं च | ९ | अग्न्यगारादौ पादुकानिषेधः | ११ |
| संकल्पे देशकालाद्युल्लेखः | ११ | कर्मणि वागलोपे ... | ११ |
| मुख्यकालालाभे गौणः ... | ११ | बहिर्जानुनिषेधः ... | ११ |
| तत्र प्रायश्चित्तम् ... | ११ | प्रौढपादनिषेधस्तल्लक्षणं च | १३ |
| गौणकाललक्षणम् ... | ११ | स्नानादि कर्माङ्गम् ... | ११ |
| अपकर्षेणापि कर्म ... | १० | संध्यायाः कर्माङ्गत्वम् ... | ११ |
| संध्ययोर्नापकर्षः ... | ११ | धौतवस्त्रं परिधाने ... | ११ |
| कर्म त्रिविधम् ... | ११ | अहतलक्षणम् ... | ११ |
| नित्यत्वसाधकानि ... | ११ | कुशासनं सर्वत्र ... | ११ |
| तदुदाहरणानि ... | ११ | आर्द्रवस्त्रनिषेधस्तदपवादश्च | ११ |
| नैमित्तिकलक्षणम् ... | ११ | एकवस्त्रनिषेधस्तल्लक्षणं च... | ११ |
| कामनाप्रवृत्तं काम्यम् । नित्यं | | कर्माङ्गं श्मश्रुकर्म आचमनं च | ११ |
| कर्माङ्गहीनमपि ... | ११ | प्राणायामो देवतानतिश्च ... | १४ |
| तथैव नैमित्तिकं प्रारब्धका- | | जपादौ परस्परस्पर्शं ... | ११ |
| म्यं च ... | ११ | शिखानाशे ... | ११ |
| अनारब्धकाम्यं सर्वाङ्गोपसं- | | तिलकयुक्तेन सर्वम् ... | ११ |
| हारकम् ... | ११ | दानादि साङ्गुठेन ... | ११ |
| श्रौताशक्तौ स्मार्तम् ... | ११ | पेषणपतितादिशब्दे कर्म न | ११ |
| स्मार्ताशक्तौ सदाचारः ... | ११ | स्वशास्त्रानुलङ्घनेन कर्म... | ११ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------------|-------------|------------------------------------|-------------|
| अङ्गलोपे तस्यैव करणम् ... | ॥ | प्रातःस्मरणम् ... | १७ |
| प्रधानलोपे सर्वस्य ... | ॥ | सूर्यादेः ... | १८ |
| नाभ्यधो वामकरस्पर्शः ... | ॥ | भूप्रार्थना ... | २२ |
| ऊर्ध्वं दक्षिणः ... | ॥ | मङ्गलदर्शनम् ... | ॥ |
| विना कर्म नाभ्यधः स्पर्शो न | ॥ | मातापितृगुरुनतिः ... | ॥ |
| रक्तपूयादिस्पर्शं स्नानम् ... | १५ | अदर्शनीयाः ... | ॥ |
| देवकर्म प्राक्संस्थमुदगपवर्गम् | ॥ | मूत्रपुरीषोत्सर्गविधिः ... | ॥ |
| उदक्संस्थं प्रागपवर्गं वा ... | ॥ | तत्रोपवीतधारणप्रकारः ... | २३ |
| दक्षिणापवर्गं प्रत्यक्संस्थं पि- | | ऋषितर्पणादौ निवीतम् ... | ॥ |
| त्रयम् ... | ॥ | सज्जलपात्रस्य मूत्राद्युत्सर्गे... | ॥ |
| अपः स्पर्शनिमित्तानि ... | ॥ | यज्ञोपवीत्यैव मूत्राद्युत्सर्गे | |
| देवतादौ यज्ञोपवीतितादि... | ॥ | तस्यागः ... | २४ |
| अविज्ञातस्वरमन्त्र ऐकश्रुत्यम् | ॥ | मूत्रपुरीषादौ पृथगुपानत् ... | ॥ |
| सौत्र ऋष्याद्यस्मरणम् ... | ॥ | आत्मविष्ठादर्शने ... | ॥ |
| अनुक्ते गौर्हेम वा दक्षिणा... | ॥ | वेगधारणनिषेधः ... | ॥ |
| देवकार्ये रजतं च ... | ॥ | अथ शौचविधिः ... | ॥ |
| पादस्पृष्टपात्रे प्रक्षालनम् ... | ॥ | केवलमूत्रोत्सर्गे ... | ॥ |
| तत्र विशेषः... | ॥ | अशक्तौ गन्धलेपक्षयमात्रम् | २५ |
| सर्वत्र पत्नी दक्षिणे क्वचिद्वामे | ॥ | शेषमृत्क्षालनम् ... | ॥ |
| शास्त्रान्तरपरिग्रहे फलविशेषः | १६ | अथ पादप्रक्षालनम् ... | ॥ |
| अपरिग्रहे न दोषः... | ॥ | तत्रोपवीतविचारः ... | ॥ |
| प्रमादात्कर्मप्रच्युतौ विष्णुस्म- | | पादशौचे क्रमः ... | ॥ |
| रणम् ... | ॥ | भावशुद्धिरावश्यकौ ... | २६ |
| इत्युपोद्घातः | | देशकालानुरोधेन शौचम् ... | ॥ |
| नित्यकर्मणा ऋणत्रयापकर- | | शौचस्य कर्माधिकारहेतुत्वम् | ॥ |
| णम् ... | ॥ | उक्तशौचाकरणे प्रायश्चित्तम् | ॥ |
| संध्यादिपट्कर्माणि ... | १६ | केवलविष्णुस्मरणं वा ... | ॥ |
| ब्राह्ममुहूर्तो द्विधा ... | ॥ | पुरीषोत्सर्गादौ गण्डूपसंख्या | ॥ |
| अत्रेष्टदेवतास्मरणादि ... | १७ | गण्डूपदेशः ... | ॥ |
| ब्राह्ममुहूर्तयोर्व्यवस्था ... | ॥ | मूत्रपुरीषोत्सर्गप्रयोगः ... | ॥ |
| अत्र स्वापे प्रायश्चित्तम् ... | ॥ | | |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------------|-------------|---------------------------------------|-------------|
| अथाऽऽचमनं तन्निविधं तेषां | | कुशाहरणविधिः | ३८ |
| विनियोगः | २७ | कुशप्रतिनिधयः | " |
| पौराणाचमनविधिः | " | हेमरजतताम्रपवित्राणि | " |
| आचमनसाधारणविधिः | २८ | त्रिधातुमुद्राप्रकारद्वयम् | ३९ |
| पौराणाचमनप्रयोगः | ३० | गोबालपवित्रम् | ४० |
| आचमनानुकल्पाः | " | स्नानविधिः | " |
| सकृदाचमननिमित्तानि | ३१ | मुख्यस्नानस्य पञ्च भेदाः | " |
| द्विराचमननिमित्तानि | " | नित्यस्नानलक्षणं तत्कालः | " |
| आचमनापवादः | ३२ | उदयोत्तरं वा स्नानम् | " |
| तत्र भोजनोत्तरं हस्तादौ | | तत्र संध्योत्कर्षविकल्पः | " |
| स्नेहशेषे | " | मध्याह्न एव स्नानं प्रातर्मध्या- | |
| दन्तवद्दन्तलग्नम् | " | ह्नयोर्विकल्पो वा | " |
| अथ दन्तधावनम् | ३३ | उपःकाललक्षणम् | ४१ |
| तत्र दन्तधावनकाष्ठम् | " | अरुणोदयोऽपि स्नानकालः | " |
| निषिद्धकालः | ३४ | प्रातःस्नानं दृष्टादृष्टकरम् | " |
| दन्तकाष्ठालाभे | " | सप्ताहंप्रातरस्नाने शूद्रत्वम् | " |
| निषिद्धदिने पर्णादिना | " | स्नानोदकानि | " |
| अङ्गुलिभस्मादिनिषेधः | " | त्रिरात्रफलदा नद्य इत्यादि | " |
| दन्तधावनप्रयोगः | " | गङ्गायाममन्त्रकं स्नानं प्राजा- | |
| केशप्रसाधनं तद्वन्धनम् | ३५ | पत्यसमम् | ४२ |
| तत्र मन्त्रः । ब्रह्मग्रन्थिः | " | गङ्गादर्शनपानमहिमा | " |
| भोजनादौ तन्निषेधः | " | सङ्गमे स्नानं दशगोदानसमम् | " |
| अथ कुशप्रकरणम् | " | सङ्गमस्नाने सङ्गमेशार्चा | " |
| ब्रह्मग्रन्थिनाऽऽचमनं न | ३६ | पट्कूलमध्ये स्नानम् | " |
| पवित्रदर्भसंख्या | " | नित्यनैमित्तिकस्नानमुष्णे- | |
| ब्रह्मवर्तुलग्रन्थ्योर्लक्षणम् | " | नापि | " |
| पवित्रधारणस्थानम् | " | पुण्याम्बुयोगाद्दुष्टं जलं | |
| धारणमन्त्रः | " | पावनम् | ४३ |
| कर्मान्ते तत्त्यागप्रकारः | ३७ | निषिद्धोदकानि | " |
| कुशग्रहणकालः | " | असंस्कृतनिषेधः | " |
| निषिद्धकुशाः | " | पारक्ये स्नाननिषेधः | " |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|--------------------------------|-------------|--------------------------------|-------------|
| असंभवे पञ्चापिण्डोद्धारणम् | ४३ | स्नानाङ्गतर्पणमञ्जलिनैव वा | ४६ |
| चातुर्वर्ण्यकृतजलाशये स्नानम् | " | यक्षमतर्पणम्... | " |
| अन्त्यजकृतकूपस्नाने प्राजा- | " | नदीक्षमापनम् ... | " |
| पत्यम् ... | " | शङ्खयोनिमुद्रालक्षणम् ... | " |
| आपत्तौ प्रायश्चित्तं न ... | " | स्नानविधौ परिशिष्टम् ... | " |
| अस्पृश्यस्पर्शं संक्रान्त्यादौ | " | स्नानप्रयोगः... | ४८ |
| चोष्णोदकनिषेधः ... | " | संक्षिप्तस्नानविधिस्तत्प्रयोगः | " |
| आतुरस्योष्णोदकं शस्तम्... | ४४ | गृहस्नानं मन्त्ररहितं केचित् | ४९ |
| तत्र शीतोदक उष्णोदकक्षेपः | " | अल्पमन्त्रयुक्तमिति सिद्धा- | " |
| केवलं शीतोदकं गृहे निषि- | " | न्तः ... | ५० |
| द्धम् ... | " | यज्ञोपवीतलक्षणादि ... | " |
| रविवारादावनिषिद्धम् ... | " | जलाभिमन्त्रणमन्त्राः ... | " |
| स्नानेति कर्तव्यता ... | " | मध्य आचमनवस्त्रपीडनादि- | " |
| अन्यवस्त्रादि न ... | " | निषेधः ... | " |
| अत्र वस्त्रद्वयधारणं... | " | गृहे गृहमुखं स्नानम्... | ५१ |
| एकं वा ... | " | श्रीपण्याद्यासनादि... | " |
| तत्र व्यवस्था ... | " | गृहस्नानप्रयोगः ... | " |
| तीरे मलक्षालनम् ... | " | पारिजातोक्तो गृहस्नानप्र- | " |
| दर्भधारणम्... | ४५ | योगः ... | " |
| स्नानसंकल्पः ... | " | धर्माधिसारोक्तः ... | ५२ |
| स्नानानन्तरं तत्र वर्तमानवा- | " | नैमित्तिकस्नानम् ... | " |
| राद्युल्लेखः ... | " | अशुचौ स्नानोत्तरं वैधस्नानम् | " |
| कृत्रिमजले नन्दिन्यादिस्मर- | " | नैमित्तिककाम्यस्नाने शीतो- | " |
| णम् ... | " | दकम् ... | ५२ |
| जाह्नवीं विनाऽन्यनदीस्मरणं | " | अस्पृश्यस्नानादौ तर्पणं न... | " |
| न... | " | श्मश्रादिस्नाननिमित्तानि ... | " |
| निमज्जने कर्णनासारोधनम् | " | शब्ददर्शनादौ स्नानम् ... | " |
| स्वपुरतः शिखां कृत्वा मज्जेत् | " | शिश्वादिविषयेऽभ्युक्षणादि | " |
| स्नानाङ्गतर्पणम् ... | ४६ | शिशुबालादिलक्षणम् ... | " |
| उद्धृतोदके निषिद्धम् ... | " | पुण्यादौ काम्यस्नानं नद्यामेव | " |
| वस्त्रपीडनोत्तरं संध्या ... | " | अमागुरुयोगेऽश्वत्थीयादके | ५३ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|------------------------------------|-------------|------------------------------------|-------------|
| तत्र प्रार्थनामन्त्रः | ५३ | अशक्तौ धौतवस्त्रेण मार्जनम् | ५७ |
| देवतार्चनजपक्रियाङ्गं स्नानम् | " | अथ वस्त्रधारणम् | " |
| अभ्यङ्गस्नानम् | " | ब्राह्मणस्य कार्पासम् | " |
| तत्र नन्दादिनिषेधः | " | अहतलक्षणम् | " |
| उपोषितस्य कृत्तकेशस्य चा- | | स्वयं धौतं प्रशस्तम् | " |
| भ्यङ्गनिषेधः | " | तद्भावेऽन्येन ब्राह्मणादिना | |
| तैलाभ्यङ्गनिषेधे तिलतैल- | | धौतम् | ५८ |
| निषेधः | " | अष्टहस्तं दशहस्तं वा | " |
| द्रव्यान्तरसंमिश्रमनिषिद्धम् | " | यन्त्रनिर्मुक्तमक्षालितमपि... | " |
| अभ्यङ्गनिषेधे सर्वनिषेधः | " | वस्त्रद्वयावश्यकता | " |
| अभ्यङ्गलक्षणम् | " | एकवस्त्रलक्षणम् | " |
| शिरोवशिष्टेन नाङ्गलेपनम् | " | उपवीतवत्प्रावरणवस्त्रम् ... | " |
| क्रियास्नानम्... .. | ५४ | अभ्युक्ष्य परिदध्यात् | " |
| नित्यनैमित्तिककाम्यस्नानसं- | | केशजलापकर्षणार्थं भिन्नव- | |
| निपाते | " | स्त्रम् | " |
| अशिरस्कस्नाननिमित्तानि... | " | दानादिपञ्चस्वेव वस्त्रद्वयम् | " |
| गौणस्नानानि | " | नववस्त्रस्य समन्त्रकधारणम् | " |
| कपिलास्नानम् | ५५ | आजानुमूलं त्रिकच्छं धार्यम् | " |
| गायत्रस्नानम् | " | त्रिकच्छपञ्चकच्छयोरलक्षणम् | " |
| सारस्वतस्नानम् | " | परिहिताद्रवस्त्रानिष्कासने वि- | |
| परिशिष्टोक्तमन्त्रस्नानम् ... | " | शेषः | ५९ |
| परिशिष्टोक्तमन्त्रस्नानप्रयोगः | " | निष्पीडितवस्त्रं स्कन्धे न धार्यम् | " |
| विष्णुस्मृत्युक्तमन्त्रस्नानम् ... | ५६ | चतुर्गुणीकृत्य निष्पीडयेत्... | " |
| गौणस्नानस्नातस्य संध्यादा- | | जले पीडननिषेधः | " |
| वधिकारः | " | पूर्वेद्युर्धौतं शुद्धम् | " |
| स्नानोत्तरकृत्यम् | " | पट्टवस्त्रकम्बलयोरष्टादिनशुद्धिः | " |
| स्नानोत्तरमाचमने विशेषः ... | ५७ | नग्नलक्षणम् | ६० |
| स्नानतर्पणादावाचमनोत्तरं | | कटिस्पृष्टादि दग्धादि च नि- | |
| दर्भत्यागः | " | षिद्धम् | " |
| केशबिन्दून्पुरतः स्त्रावयेत् ... | " | सति संभवे सर्वे निषेधाः ... | " |
| स्नानोत्तरमङ्गमाजनं न | " | शाणादयो वस्त्रानुकल्पाः... | " |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| आविक्रत्रसरयोः परिधानं न | ६१ | संध्येतिकर्तव्यता कुशैर्युक्तमा- | ७ |
| मललिते तु आविकं त्याज्यम् | ७ | सनम् | ६९ |
| उत्तरीयम् | ७ | अङ्गधारणया उपवेशनम् ... | ७ |
| तज्जीवत्पितुर्निषिद्धम् | ७ | संध्यात्रयेऽपि प्राङ्मुखतैव ... | ७० |
| उत्तरीयस्थानीयमुपवीतं नि- | | संध्याविधौ परिशिष्टोक्ताचम- | |
| षिद्धम् | ७ | नादि | ७ |
| द्वितीयवस्त्राभावे वस्त्रचीरम् | ७ | प्राणायामलक्षणम् | ७ |
| परिधानीयार्धनाऽऽच्छादनं वा | ७ | मात्रालक्षणम् | ७१ |
| धौतवस्त्राभावे | ७ | प्राणायामविधिः | ७ |
| नीलीवस्त्रनिषेधः | ६२ | प्राणायामाशक्तौ | ७२ |
| और्णादौ न दोषः | ७ | प्राणायामोत्तरमाचमनम् ... | ७ |
| शयनादौ भिन्नभिन्नवस्त्राणि | ७ | संकल्पप्रकारस्त्रिविधः ... | ७ |
| वस्त्रशोषणप्रकारः | ७ | नित्यकाम्ययोः संकल्पे विशेषः | ७ |
| अथ तिलकः | ७ | मार्जनं तत्र पात्राकृतिः ... | ७३ |
| तत्रोर्ध्वपुण्ड्रस्त्रिपुण्ड्रश्च ... | ७ | गङ्गादौ तदुत्थोदकैरेव मार्जनम् | ७४ |
| ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिः | ७ | मार्जनं देवतीर्थेन तल्लक्षणम् | ७ |
| ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणप्रयोगः ... | ६४ | मार्जने विशेषाः | ७ |
| पङ्क्तिधमस्मानि | ६५ | अथ मन्त्राचमनम् | ७ |
| भस्मधारणविधिः | ७ | मन्त्राचमनादिमन्त्राणामैक- | |
| भस्मगोपीचन्दनयोराचार नु- | | श्रुत्यम् | ७५ |
| सारेण व्यवस्था | ६६ | मन्त्राचमनोदकपरिमाणम् | ७ |
| अभ्यङ्गादौ गोपीचन्दननिषेधः | ६७ | द्वितीयमार्जनम् | ७ |
| अथ संध्योपासनम् | ७ | आत्मपरिषेकः | ७६ |
| संध्याया नित्यता | ७ | अथाद्यमर्पणम् | ७ |
| प्रातःसंध्यायाः सर्वासां वा | ७ | गोकर्णलक्षणम् | ७ |
| कर्माङ्गता | ७ | अथार्घ्यदानम् | ७ |
| अर्घ्यदानादौ प्रधानाप्रधान- | | अर्घ्योदके पुष्पमिश्रणम् ... | ७ |
| विचारः | ७ | जलसांनिध्ये जलेऽर्घ्यदानम् | ७ |
| संध्यादेशाः, तत्र साग्निकस्य | | जलाभावे शुचिभूमौ ... | ७७ |
| संध्याकालः | ६८ | त्रिकालं तिष्ठन्नेवार्घ्यदानम् | ७ |
| | | आश्वलायनस्मृत्युक्तो विशेषः | ७ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|-------------------------------|-------------|---------------------------------|-------------|
| तर्जन्यङ्गुष्ठयोगनिषेधः ... | ७८ | उपस्थानोत्तरकृत्यम् ... | ८६ |
| गोशृङ्गलक्षणमर्घ्यकालः ... | ,, | दशदिङ्गनमस्कारः ... | ,, |
| अर्घ्यात्तरं प्रदक्षिणादि ... | ,, | उपसंग्रहलक्षणम् ... | ८७ |
| अथ गायत्रीजपः । तत्रगृह्यम् | ७९ | अभिवादाने नाम्नि विशेषः... | ,, |
| जपे देशः । अभ्युक्षणलक्षणम् | ,, | संध्यान्ते प्रार्थनामन्त्रः ... | ,, |
| आसनप्रमाणमासनानि ... | ,, | स्वरादिलोप आभिर्गीर्भिर्जपः | ,, |
| निषिद्धासनानि ... | ८० | अन्ते सकृदेवाऽऽचमनम् | ,, |
| पुत्रवद्वहिणो मृगचर्मनिषेधः | ,, | कर्मेश्वरार्पणम् । समर्पणवा- | |
| उपवेशने मन्त्रः । पद्मासनल- | | क्यम्... .. | ८८ |
| क्षणम् | ,, | कुशत्यागकालः | ,, |
| न्यासमन्त्रेषु प्रणवः ... | ,, | पवित्रत्यागप्रकारः | ,, |
| देवताध्यानानि | ८१ | संध्यामन्त्राणामृष्यादयः ... | ,, |
| आवाहनमन्त्रः | ,, | उच्चारणक्रमे द्वैविध्यम् ... | ९० |
| जपमाला | ,, | संध्याकालातिक्रमप्रायश्चित्तम् | ,, |
| गोमुखी । मन्त्रार्थः ... | ८२ | प्रायश्चित्तार्घ्ये विशेषः ... | ९१ |
| नाभ्यादौ करधारणम् ... | ,, | प्रातःसंध्याप्रयोगः | ९२ |
| जपस्त्रिविध इत्यादि ... | ८३ | नित्योपासनविधिः | ९६ |
| जपे संख्याऽऽवश्यकी ... | ,, | तत्र दारकालो दायाद्यकालो- | |
| मालाखण्डनिषेधोऽन्येषाम् | ,, | षा... .. | ,, |
| प्रातस्तिष्ठन्नेव जपः... .. | ८४ | स्वयं होमो मुख्यस्तदभावे | |
| कन्यादानगोदाने तिष्ठन्नेव... | ,, | पत्न्यादयः | ९७ |
| आश्रमभेदेन जपसंख्या ... | ,, | अन्येनानुज्ञया होतव्यम्... | ,, |
| प्रदोषानध्यायादौ संख्या ... | ,, | अनुज्ञाप्रकारः | ,, |
| तत्र व्यवस्था | ,, | यजमानसंनिधावन्यकर्तृकहो- | |
| जपानन्तरं षडङ्गः | ८५ | मे त्यागे विशेषः | ,, |
| अथोपस्थानमुपस्थानं सूर्य- | | पर्वणि स्वयंहोमः पयसैव ... | ९८ |
| स्यैव | ,, | पर्वणि स्वयमहोमे प्रायश्चि- | |
| उपस्थानलक्षणम् | ८६ | त्तम् | ,, |
| अभिमन्त्रादिलक्षणम् ... | ,, | प्रादुष्करणकालः | ,, |
| प्रणतिमुद्रालक्षणम्... .. | ,, | प्रादुष्करणं कृतवैव संध्यारम्भः | ९९ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|--------------------------------------|-------------|--------------------------------|-------------|
| प्रादुष्करणकालात्यये प्राय- | | एकद्रव्यकर्तृकत्वं समुदायसं- | |
| श्चित्तम् | ९९ | कल्पे | " |
| होमासंभवे जपो वा ... | " | होमेऽधिकरणं स्थण्डिलमा- | |
| होमकालः | " | यतनं वा | " |
| दुहितृस्नुपयोरप्युद्धरणकर्तृ- | | स्थण्डिलायतनयोर्मानम् ... | " |
| त्वम् | " | स्थण्डिलोपलेपने कारणम् १०४ | |
| उद्धरणहोमयोरैककर्तृकत्वम् | " | तत्र रेखाकरणम् | " |
| होमकालः | " | उल्लेखनशकलनिरसनम् ... | " |
| तत्रोदितो मुख्यः | " | मेखलादौ च कुण्डचतुर्विंशा- | |
| मुख्यकाले प्रधानम् | " | ङ्गुलम् | " |
| उदितादिस्वरूपम् | " | आयतनेऽपि उपलेपनादि ... १०५ | |
| उदितस्योत्तरावधि | १०० | होमादौ द्विराचमनमन्ते | |
| अस्तमितस्वरूपम् | " | सकृत् | " |
| अनुदितोदितयोः संध्या ... | " | तच्चाग्निशालायां न | " |
| अनुकल्पकालः | " | होमे पत्न्या सांनिध्यम् | " |
| अनुकल्पकालातिक्रमे प्राय- | " | पत्न्युपवेशनस्थानम् | " |
| श्चित्तम् | " | संकल्पे विशेषः | " |
| आपदि प्रायश्चित्तं न | " | अन्यकर्तृकहोमे करिष्यामि | " |
| आसायमाप्रातश्च गौणः ... | " | अग्निध्यानम् | " |
| होमद्रव्याणि तन्मानं च | " | परिसमूहनादिदेशः | " |
| पर्वणि पयसैव | " | आयतनालंकरणम् १०६ | |
| होमे प्रकारः | १०१ | नित्यहोमपरिस्तरणात्यागः | " |
| होमस्याऽऽद्यन्तयोः समिदा- | | होमद्रव्यसंस्कारादि | " |
| धानम् | " | अग्न्यर्चनम् । प्रधानहोमः | " |
| समिलक्षणम् । तद्धोमे वि- | | द्वितीयाहुतौ परिमाणबाधः | " |
| शेषः | " | अनर्चिपि होमनिषेधः ... १०७ | |
| सुवधारणविशेषः । सुचोऽपि १०२ | | वेणुधमन्या प्रबोधनम् | " |
| सौम्यतीर्थलक्षणम् | " | धमने व्यजनस्य विकल्पः ... | " |
| सायंद्रव्येणैव प्रातर्होमः ... | " | उपस्थानमन्त्राः | " |
| कर्ता स एव | " | परिस्तरणविसर्गादिकालः | " |
| द्रव्यकर्तृविपर्यये व्याहृतिहोमः १०३ | | अग्निपूजनदेशः १०८ | |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|------------------------------|-------------|-----------------------------|-------------|
| अग्निपूजन आरक्तपुष्पं न... | ” | नैमित्तिकजपविधिस्तत्कालः | ” |
| विभूतिधारणम् ... | ” | सहस्रगायत्रीजपः ... | १२२ |
| विभूतिग्रहणस्थानम् ... | ” | रुद्रपञ्चाक्षरजपादि ... | ” |
| औपासनप्रयोगः ... | ” | जपे दिङ्नियमः ... | ” |
| केवलसूत्रोक्तौपासनप्रयोगः | ११० | विष्णुसक्तपुष्पसूक्तजपः ... | ” |
| सौरजपविधिः ... | ” | पुरश्चरणमावश्यकम् ... | ” |
| पत्नीकुमारीकर्तृकहोमः ... | ” | पुरश्चरणपञ्चाङ्गम् ... | ” |
| होमद्वयसमाप्तः ... | ” | अङ्गसंख्या ... | ” |
| पक्षहोमादयः ... | १११ | चतुरङ्गं त्र्यङ्गं वा ... | १२३ |
| गोशकृत्पिण्डेनाग्निसंरक्षणम् | ११२ | प्रत्यहं दशांशहोमो वा होमा- | |
| अनुगतप्रायश्चित्तम् ... | ” | शक्तौ ... | ” |
| होमप्रायश्चित्तानि ... | ” | जपलक्षणम् । जपदेशः ... | ” |
| अग्निबहिःपातप्रायश्चित्तम् | ” | आसनविधिभूतशुद्ध्यादी- | |
| अग्नेर्जलाद्युपघाते ... | ११४ | नामावश्यकत्वम् ... | ” |
| प्रयत्नं विना प्रज्वलने ... | ” | न्यासे करणविशेषः ... | १२४ |
| प्रधानाहुत्योः संसर्गं ... | ” | पङ्क्त्यन्यासमुद्राः ... | ” |
| इत्यौपासनम् ... | ” | ऋष्यादिन्यासमुद्राः ... | ” |
| अथ सूर्यार्चनम् ... | ” | जपमाला । कराक्षादिमाला | ” |
| सूर्यपूजाप्राशस्त्यम् ... | ” | मणिसंख्या ... | ” |
| तृचमन्त्रेणार्चनम् ... | ” | सहस्रादिजपे माला ... | १२५ |
| तृचाध्यपद्धतिः ... | ११५ | अष्टोत्तरशतसंख्योपयुक्ता | |
| आसनविधिः ... | ” | करमाला ... | १२६ |
| भूतशुद्ध्यादीनि संक्षिप्तानि | ” | जपस्याष्टोत्तरशते कारणम् | ” |
| एकदिने सकृत् ... | ११६ | शतसंख्यायां करमाला ... | ” |
| अर्धर्चपङ्क्तः ... | ” | अङ्गुलिवियोगादिनिषेधः... | ” |
| षोडशोपचारविधिः ... | ११७ | मालारचनप्रकारः ... | ” |
| करशुद्धिन्यासः ... | १२० | मालासूत्रम् ... | १२७ |
| अर्धपात्रमानम् । प्रक्षे- | | मालासंस्कारः सप्रयोगः ... | ” |
| पद्रव्याणि ... | ” | तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रमि- | |
| अर्घ्यप्रदानविधिः ... | ” | त्यादि ... | १२९ |
| इति सूर्यार्चनम् ... | १२१ | जपादौ मालापूजनादि ... | ” |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|-------------------------------|-------------|------------------------------|-------------|
| मानसोपचारे प्रकारद्वयम् ... | १३० | कांस्यपात्रस्थितघृत आत्म- | |
| नैवेद्यसमर्पणमात्रं वा वाङ्- | | निरीक्षणम् | " |
| नियमादि | " | सुवर्णं तद्दानं च | " |
| ब्राह्मणस्य भाषणे न दोषः | " | सर्वत्र दाता प्राङ्मुखोऽन्य | |
| योगक्षेमलक्षणम् | " | उदङ्मुखः | " |
| जपमध्ये मूत्रादौ षडङ्गमात्रम् | १३१ | सुवर्णकांस्यपात्रस्थाज्यदान- | |
| मालासंख्यानगुटिका ... | " | प्रयोगः | " |
| नवार्णविधिः । मन्त्रोद्धारः | " | गोदानसमानि | १४० |
| नवार्णे प्रणवावश्यकता । | | गृहादिदानानि । धर्मदानम् | " |
| षडङ्गे विशेषः | १३२ | अथ देवपूजा । तत्कालः ... | " |
| नवार्णजपप्रयोगः | " | पाकैक्येऽपि देवार्चादि पृथक् | १४१ |
| इति नवार्णविधिः | १३४ | देवसंख्याविशेषनिषेधः ... | " |
| चतुर्लक्षं पुरश्चरणम् ... | " | पञ्चायतनस्थापनप्रकारः ... | " |
| कालविशेषेण लक्षात्मकम् | " | प्राचीलक्षणम् । पूजाक्रमे | |
| शिवपञ्चाक्षरविधानम् ... | " | प्रकारद्वयम् | १४२ |
| सप्रणवो द्विजस्यान्येषामप्र- | | उपचाराः षड्विधाः | " |
| णवः | १३५ | दशोपचाराः पञ्चोपचाराः | १४३ |
| अस्य ऋष्यादि | " | गन्धपुष्पमात्रं वा | " |
| मध्याह्नावधि जपः पुरश्चरणे | १३६ | घण्टाशब्देन देवप्रबोधः ... | " |
| नित्यादावनियमः | " | गरुडादिवाहनयुतघण्टा ... | " |
| पञ्चाक्षरप्रयोगः | " | उदयात्पूर्वं निर्मात्यापसर- | |
| पुरश्चरणानुकल्पः | १३७ | णम् | " |
| तर्पणमार्जनमन्त्रे विशेषः ... | " | शङ्खलक्षणम् | " |
| इति नैमित्तिकजपप्रकरणम् | " | उपकरणलक्षणम् | १४४ |
| अथ पुराणश्रवणम् । तत्कालः | १३८ | सिंहासनम् । दीपिका । | |
| भागवतश्रवणावश्यकता ... | " | अभिषेकपात्रम् | " |
| पुराणश्रवणप्रयोगः | " | धूपदीपनैवेद्यनीराजनपात्राणि | " |
| नित्यदानम् । दातृमाहिमा | " | उपचारलक्षणम् । तत्राऽऽवा- | |
| पूगीफलादिकमपि देयम् ... | १३९ | हनम् | १४५ |
| नित्यदानकालः | " | आसनं सप्तविधम् | " |
| | | पाद्यद्वयाणि तत्पात्रं च ... | |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| पाद्यार्पणं पादोपर्येव । ... | १४७ | स्रपितदेवस्य वस्त्रेण मार्ज- | |
| अर्घ्यपदार्थाः ... | ॥ | नम् ... | ॥ |
| शिवसूर्यातिरिक्तेऽर्घ्यं शङ्खः | ॥ | वस्त्रद्वयार्पणम् ... | ॥ |
| आचमनपदार्थाः ... | ॥ | देवताभेदेन वस्त्रवर्णभेदः... | ॥ |
| आचमनं मुखे देयम् ... | ॥ | विचित्रवस्त्रे नीलीदोषो न | ॥ |
| पाद्यादिद्रव्यालाभेऽक्षतान् | ॥ | वितस्तिमात्रं वस्त्रम् ... | ॥ |
| दध्यादिपञ्चकं मधुपर्कः ... | ॥ | वस्त्रालंकारादि न पर्युपितम् | ॥ |
| दध्यादिमानम् । पदार्थद्वयं | | नीलीरञ्जितवस्त्रं न ... | ॥ |
| वा ... | १४८ | नववस्त्रमक्षालितं न | ॥ |
| इह कांस्यपात्रम् । मुखे | | ऊर्णापट्टवस्त्रयोर्नीलीदोषो न | १५१ |
| दानम् ... | ॥ | पट्टसूत्रादियज्ञोपवीतम् ... | ॥ |
| पञ्चामृतस्नाने क्रमः ... | ॥ | यज्ञोपवीतं पुंदेवे । अलंकाराः | ॥ |
| पञ्च द्रव्याणि समानि ... | ॥ | साधारणं गन्धाष्टकम् ... | ॥ |
| पञ्चद्रव्यालाभे क्षीरम् ... | ॥ | देवताभेदेन गन्धाष्टकानि... | १५२ |
| अभ्यङ्गः । उद्धर्तनपदार्थाः | ॥ | चतुःसमाख्यं गन्धम् ... | ॥ |
| पादपीठस्य बिल्वपत्रेण घर्ष- | | सर्वगन्धम् । यक्षकर्दमः ... | ॥ |
| णम् ... | ॥ | अशक्तावेकपदार्थोऽपि ... | ॥ |
| स्नानपदार्थाः । वस्त्रपूतं जलम् | ॥ | चन्दनागरुकुङ्कुमानि ... | |
| प्रतिमादौ पर्वणि स्नानम्... | ॥ | यथोत्तरं शस्तानि ... | १५३ |
| लेप्यादिमूर्तौ स्नाने विशेषः | १४९ | तुलसीकाष्ठचन्दनम् ... | ॥ |
| द्वादश्यां विष्णौ दिवास्नानं न | ॥ | तुलसीदललग्नचन्दनम् ... | ॥ |
| गन्धोदकेन शङ्खेनाभिषेकः | ॥ | चन्दने शङ्खपात्रम् । कनिष्ठि- | |
| शिवसूर्यार्चने शङ्खनिषेधः | ॥ | कया दानम् ... | ॥ |
| शङ्खपृष्ठलग्नजलनिषेधः ... | ॥ | ताम्रनिषेधः ... | ॥ |
| देवताभेदेनाभिषेकपात्रम् | ॥ | गन्धशब्दो बहुवचनान्तः... | ॥ |
| स्नानादौ ताम्रे गन्धं न दुष्टम् | ॥ | गन्धं घृतं च द्रवीभूतमश- | |
| स्नाने वादित्रनिनदः ... | १५० | स्तम् ... | ॥ |
| वादित्राभावे घण्टा सर्वत्र | ॥ | अथ पुष्पाणि ... | ॥ |
| अभिषेकमन्त्राः ... | ॥ | विष्णौ शस्तानि पुष्पपत्राणि | ॥ |
| स्नानकालेऽपरदाहः ... | ॥ | तुलसीप्राशस्त्यम् ... | १५५ |
| | | तुलसीमूलमृत्स्नाने शस्ता ... | ॥ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|------------------------------|-------------|
| निषिद्धानि पुष्पाणि ... | ॥ | अथ धूपः... .. | १६५ |
| करार्कपत्रानीतनिषेधः ... | १५६ | अमृताख्यो धूपः | ॥ |
| अक्षतानिषेधस्तल्लक्षणं च ... | ॥ | दशाङ्गः | ॥ |
| शिवे विहितपुष्पाणि ... | ॥ | घृतयुक्तो गुग्गुलुरेक एव वा | ॥ |
| बिल्वमहिमा | ॥ | धूपप्रदर्शनप्रकारः | ॥ |
| निषिद्धपुष्पाणि | १५८ | दीपवर्तिद्रव्याणि दीपवृक्षाः | ॥ |
| गणपतौ विहितपुष्पाणि (परिशिष्ट) | | घृतदीपतैलदीपयोर्देशः ... | १६६ |
| दूर्वाप्राशस्त्यं तन्मानं च ... | ॥ | कर्पूरदीपः | ॥ |
| तुलसी गणपतौ निषिद्धा ... | ॥ | दीपे दीपप्रज्वालननिषेधः... | ॥ |
| सूर्ये विहितपुष्पाणि पत्राणि च,, | | दीपार्पणप्रकारः | ॥ |
| विहितप्रतिषिद्धानि निषि- | | एकदीपो दक्षिणामुखः प्राङ्- | |
| द्धानि च | ॥ | मुखश्च न | ॥ |
| देव्यां विहितपुष्पाणि ... | १५९ | दीपप्रलोपनं पुरुषस्य निषि- | |
| अथ पुष्पावचयः ... | १६० | द्धम् | १६७ |
| शूद्रानीतादिनिषेधः ... | ॥ | धूपदीपवन्दनम् | ॥ |
| अस्वामिकादिप्राशस्त्यम् ... | ॥ | नैवेद्यम् । तद्भावे फलादि | ॥ |
| अस्वामिकापवादः ... | ॥ | परमान्नहरिद्राक्षादिलक्षणम् | ॥ |
| प्रातःस्नानोत्तरं तुलस्याद्याह- | | नैवेद्ये तुलसीमिश्रणम् ... | १६८ |
| रणम् | ॥ | अनिवेदितभक्षणनिषेधः ... | ॥ |
| पुष्पाद्याहरणविधिमन्त्राश्च | १६१ | प्राणादिमुद्राः | ॥ |
| तुलस्याहरणे बिल्वाहरणे च | ॥ | अर्पणप्रकारः | १६९ |
| मन्त्रा निषिद्धकालाश्च ... | ॥ | ताम्बूललक्षणम् | ॥ |
| पुष्पपत्रफलार्पणप्रकारः ... | १६२ | नमस्कारविधिः | ॥ |
| पुष्पपत्रादिपर्युषितविचारः | ॥ | अग्रे नमस्कारजपादिनिषेधः | १७० |
| तीर्थोदके पर्युषितविचारः... | १६४ | प्रदक्षिणालक्षणं तत्संख्या | ॥ |
| समित्पुष्पहस्तस्याभिवादनं न | ॥ | सोमसूत्रलक्षणम् | ॥ |
| अभिवादानापवादः ... | ॥ | फलार्पणम् | १७१ |
| जलेऽन्तःक्षालितादिपुष्पं ... | ॥ | दक्षिणा प्रतिदिनं नाऽऽव- | |
| निर्माल्यम् | ॥ | श्यकी | ॥ |
| पर्युषितापवादः | ॥ | देवार्पितदक्षिणाप्रतिपत्तिः | ॥ |
| मालायां पर्युषितत्वं नास्ति | ॥ | नीराजनप्रकारः | ॥ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|------------------------------------|-------------|-----------------------------------|-------------|
| पुष्पाञ्जलिस्तत्र नानामन्त्राः १७२ | | इतरत्र पात्रान्तरं वा ... | ॥ |
| निर्माल्यधारणम् ॥ | | न्यासावश्यकता ॥ | |
| शिवनिर्माल्यविचारः ॥ | | पूजामन्त्राः ॥ | |
| शङ्खोदकविचारः ॥ | | नाममन्त्रलक्षणम् १८१ | |
| तीर्थविधिः ॥ | | उपचारान्तर उदकक्षेपः ॥ | |
| प्राशनं पात्रेणैव १७३ | | पोडशोपचाराः ॥ | |
| प्राशने वैदिकमन्त्रः ॥ | | आवाहनाभावे तद्वृत्तिनिधोगः ॥ | |
| विप्रपादोदकानन्तरं विष्णु- | | वस्त्रोपवीतयोर्युगम् १८२ | |
| पादोदकप्राशनम् | | नैवेद्येऽन्नमेव ॥ | |
| एकादश्यादौ तीर्थप्राशनवि- | | असंपन्नं मनसा संपादयेत् ॥ | |
| चारः १७४ | | उपचारप्रतिनिध्यन्तरम् ॥ | |
| नैवेद्यमन्नं भोजनकाले भुञ्जीत ॥ | | पोडशत्वोपपत्तिः ॥ | |
| नैवेद्यभक्षणमन्त्राः ॥ | | गणपत्यादिपूजामन्त्राः ... १८३ | |
| मुखवाद्यकरतालकांस्यताल- | | देव्याः पूजनेऽपि पुरुषसूक्तम् ॥ | |
| शब्दः १७५ | | देवपूजनं गोदानसमम् ... १८४ | |
| देवायतने संमार्जनरङ्गमालिका ॥ | | काश्यत्वं नित्यत्वं चैकेनैव ... ॥ | |
| द्वात्रिंशदपराधाः ॥ | | देवार्चनं विना भोजने दोषः ॥ | |
| तदपवादश्च १७६ | | तत्र प्रायश्चित्तम् ॥ | |
| पूजाविधौ सव्याख्यानपरि- | | वेश्वदेवशेषेण पृथगन्नेन वा | |
| शिष्टम् ॥ | | नैवेद्यं तस्य प्राधान्यं च ... ॥ | |
| चैत्याः । पूज्याधिकरणानि १७७ | | पञ्चायतनपूजाप्रयोगः ... ॥ | |
| शालग्रामादावावाहननिषेधः १७८ | | शिवपूजा लिङ्गे प्रशस्ता ... १९१ | |
| शालग्रामे देवतान्तरपूजन | | लिङ्गं द्वित्रिधम् । पञ्चसूत्री ॥ | |
| आवाहनमावश्यकम् ... ॥ | | पार्थिवे पञ्चसूत्रं नाऽऽवश्य- | |
| पूज्यपूजकयोर्मुखनियमः ... १७९ | | कम् ॥ | |
| आरम्भे सकृदाचमनम् ... ॥ | | अखण्डसखण्डविचारः ... ॥ | |
| भूतोद्वासनादि ॥ | | बाणलिङ्गलक्षणम् १९२ | |
| कम्बलासननिषेधः १८० | | कलौ पार्थिवप्राशस्त्यम् ... ॥ | |
| दार्वासनं न ॥ | | भस्मरुद्राक्षधारणमावश्यकम् ॥ | |
| विष्णुपूजायां शङ्खप्राश- | | रुद्राक्षधारणविधिः ... ॥ | |
| स्त्यम् ॥ | | रुद्राक्षप्रतिष्ठापवादः ... १९२ | |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|---------------------------------|-------------|
| रुद्राक्षधारणसंख्या ... | ॥ | अयाचितयायावरशिलो- | |
| कदलीफलनिवेदनं शिवे ... | १९३ | ञ्छादि ... | ॥ |
| शिवपूजायामुदङ्मुखत्वम् | ॥ | राजप्रतिग्रहनिषेधः ... | ॥ |
| स्थिरलिङ्गे त्वनियमः ... | ॥ | धर्मिष्ठराजप्रतिग्रहो ज्यायान् | ॥ |
| पार्थिवलिङ्गपूजाप्रयोगः ... | ॥ | आपदि लुब्धराज्ञोऽपि ... | १९९ |
| शिवाटनामानि ... | १९४ | तिलादिघोरप्रतिग्रहः ... | ॥ |
| पूजानुकल्पाः ... | ॥ | अप्रत्याख्येयपदार्थाः ... | ॥ |
| पूजाधिकारिणः ... | ॥ | शाकादिक्रमयाचितं सर्वतो | |
| स्त्रीशूद्रयोर्विशेषः ... | ॥ | ग्राह्यम् ... | ॥ |
| भागवतादिपुराणपूजनम् ... | १९५ | क्षत्रियादिवृत्तयः ... | ॥ |
| गुरुपूजा । तुलसीपूजा ... | ॥ | आपद्वृत्तयः ... | ॥ |
| अथ मङ्गलदर्शनादि ... | ॥ | ब्राह्मणस्य विक्रेयाविक्रेयम् | २०० |
| स्पर्शार्हाणि । प्रदक्षिणार्हाणि | १९६ | द्रव्यविनिमयप्रकारः ... | ॥ |
| विष्णुक्रान्तादि धार्यपदार्थाः | ॥ | विगुणोऽपि स्वधर्मः श्रेयान् | २०१ |
| यतिदर्शनादिमहिमा ... | ॥ | धनार्थं प्रवासे तद्विधिः ... | ॥ |
| इति प्रथमभागकृत्यम् ... | ॥ | गृह्याग्निमतो मासद्वयं प्रवासः | ॥ |
| मध्ये मङ्गलार्थं रामनतिः... | ॥ | प्रवासे होमार्थमृत्तिकल्पः... | ॥ |
| वेदाभ्यासः पञ्चविधः ... | १९७ | तीर्थार्थं न प्रवासः । तत्र का- | ॥ |
| वेदार्थधर्मशास्त्रविचारः ... | ॥ | रणम् ... | ॥ |
| समित्पुष्पकुशाहरणम् ... | ॥ | अग्निं विना शतयोजनगमनं | |
| इति द्वितीयभागकृत्यम् ... | ॥ | न ... | ॥ |
| पोष्यवर्गार्थधनसंचयः ... | ॥ | प्रवासोपस्थानप्रयोगः ... | ॥ |
| पोष्यपरिगणनम् ... | ॥ | संक्षिप्तोपस्थानप्रयोगः ... | २०२ |
| धनार्थं राजादेर्दर्शनम् ... | ॥ | प्रवासोपस्थानं गृह्ये कृता- | |
| ब्राह्मणस्य याजनादिजीविका | १९८ | कृतम् ... | ॥ |
| अस्वयंकृतकृपिवाणिज्यम् | ॥ | अग्निसमारोपणविधिः ... | ॥ |
| कुसूलकुम्भीधान्यादिलक्ष- | | संकटे पत्न्या अपि प्रवासः | २०३ |
| णम् ... | ॥ | पुनराधाननिमित्तानि ... | ॥ |
| अश्वस्तनिकवृत्तिः कलौ | | अर्जितधनस्य त्रेधादिवि- | |
| वर्ज्या ... | ॥ | भागः ... | २३ |
| | | इति तृतीयभागकृत्यम् ... | २४ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|--------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| मध्याह्नस्नानार्थं मृदाहरणम् | ॥ | पूर्वमभिसंधाय जपः | ... |
| मध्याह्नस्नानविधौ पारिशि- | | ग्रामे मनसा जपः | ... २१३ |
| ष्टम् | ... | ऋष्यादिस्मरणे विकल्पः | ... |
| मृत्स्नाने निषिद्धकालः | ... २०६ | अनध्यायप्रतिप्रसवः | ... |
| यज्ञोपवीतक्षालनम् | ... | अनध्यायविशेषेऽल्पपाठः | ... |
| मलापकर्षणस्नानं तटे | ... | ब्रह्मयज्ञे द्वावेवानध्यायौ | ... |
| मध्याह्नस्नानप्रयोगः | ... | उपवेशनासंभवे तिष्ठन्नपि | ... |
| अशक्तौ प्रातर्वत्स्नानम् | ... २०७ | ब्रह्मयज्ञप्रशंसा | ... |
| अत्यशक्तौ मन्त्रस्नानम् | ... | जपोत्तरमञ्जलिदर्भत्यागः | ... २१४ |
| मध्याह्नस्नानमावश्यकम् | ... | तर्पणम् । तत्र कारिका | ... |
| ब्रह्मयज्ञकालः | ... | तर्पणमन्त्रेषु प्रणवो न | ... |
| रात्रावपि ब्रह्मयज्ञः | ... | तर्पणे सव्यान्वारम्भो न वा | ... २१५ |
| आश्वलायनानां ब्रह्मयज्ञोत्तरं | | तर्पणे प्राङ्मुखत्वेन | ... २१६ |
| मध्याह्नसंध्या | ... २०८ | तर्पणं जले स्थले वेति वि- | |
| आत्मप्रदक्षिणादि | ... | चारः | ... |
| श्रौतमाचमनं बहुविधम् | ... | भूमौ तर्पणे कुशास्तरणप्र- | |
| प्राणायामः । दर्भासनमाव- | | कारः | ... |
| श्यकम् | ... २०९ | करणाधिकरणपात्रे | ... २१७ |
| कम्बलासननिषेधः | ... | करे खड्गादिधारणम् | ... |
| ब्रह्मयज्ञं करिष्य इति संकल्पः | ... | तिलावश्यकता | ... |
| आद्यन्तयोरपस्पर्शः | ... | प्रागग्रैस्तर्पण्यद्देवानित्यादि | ... |
| ब्रह्मयज्ञविधौ गृह्यम् | ... २१० | देवादितर्पणे तण्डुलादि | ... २१८ |
| उपस्थासनमनेकविधम् | ... | देवादिषु वर्णभेदेन तिला वा | ... |
| शौनकोक्ताञ्जलिः स्वसूत्र- | | याचिततिलादिनिषेधः | ... |
| विरुद्धः | ... | तदपवादः | ... |
| गायत्र्यास्तृतीयावृत्तौ | ... २११ | तिलग्रहणे विशेषः | ... |
| ऋगादिदशकाध्ययनम् | ... | तिलतर्पणनिषेधकालः | ... |
| अध्ययने प्रकारद्वयम् | ... | मन्वादयः । युगादयः | ... २१९ |
| वेदादिपाठपक्षे विशेषः | ... | तिलतर्पणनिषेधप्रतिप्रसवः | ... |
| उपाकरण्यात्प्राग्विशेषः | ... २१२ | यज्ञोपवीतादर्लक्षणम् | ... २२० |
| अग्निमिले सूक्तं पुरुषसूक्तम् | ॥ | देवादौ यज्ञोपवीतादि | ... २२१ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| जीवात्पितृकस्यापसव्ये विशेषः २२१ | | निष्पीडनप्रकारः ... | " |
| अस्य कृष्णातिलनिषेधः ... | " | गृहस्नानादौ वस्त्रनिष्पी- | |
| दैवादिकर्मसु दाक्षिणादि ... | | डनं न ... | " |
| तर्पणेऽञ्जलिसंख्या ... | " | ततः सूर्यार्घ्यम् ... | " |
| जानुनिपातनम् ... | " | अन्ते सकृदाचमनम् ... | २२६ |
| संख्याविकल्पा आश्वलाय- | | ब्रह्मयज्ञप्रयोगः ... | " |
| नानाम् ... | २२२ | ग्रहणादिनिमित्ते तर्पणमात्रम् | २२८ |
| तर्पणीयपितरः ... | " | संक्षिप्ततर्पणप्रयोगः... | " |
| पितृभगिनीभित्त्यादौ पष्ठचलुक् | " | गृहेऽतीतेतिमन्त्रस्थतिलपद- | |
| सापत्नमातुलादीनामपि- | | विचारः ... | " |
| तर्पणम् ... | २२३ | मध्याह्नसंध्यावश्यकता ... | २२९ |
| बह्वृचानां नाम्नः प्राग्गोत्रम् | " | तत्कालो मुखो गौणश्च परि- | |
| नामसु शर्मान्तादि... | " | शिष्टे ... | " |
| नामोत्रे सकारान्तता वा ... | " | अत्राऽऽसीनेनैव जपः ... | २३० |
| अञ्जल्पावृत्तौ मन्त्रः सकृदेव | " | जपोत्तरं दिग्भिवादिनादि न | " |
| पितृवंशइत्यवसानाञ्जलिः | " | अर्घ्यमन्त्र विशेषः... | " |
| संक्षेपतर्पणे प्रकारद्वयम् ... | " | अर्घ्यजले पुष्पमिश्रणम् ... | " |
| पित्रादित्रयाणामेव वा तर्प- | | मध्याह्नसंध्याप्रयोगः ... | २३१ |
| णम् ... | " | संकट आश्वलायनानां नेयम् | " |
| भिक्षादिदाक्षिणा ब्रह्मयज्ञस्य | " | स्नानोत्तरं तीर्थजलाहरणम् | २३२ |
| सा च गृह एव ... | " | दिवाविहितकर्मणां रात्रौ- | |
| तर्पणाकरणे प्रत्यवायः ... | " | करणम् ... | " |
| द्विगुणीकृतदर्भत्यागे मन्त्रः | " | आशौचे कर्तव्याकर्तव्यम्... | २३३ |
| तिथिविशेषे यमतर्पणम् ... | " | नित्यस्नानं समन्त्रकमम- | |
| भीष्मतर्पणं माघशुक्लाष्ट- | | न्त्रकं वा ... | " |
| म्याम् ... | २२४ | ग्रहणस्नानादौ नाऽऽशौचम् | " |
| एतच्च ब्राह्मणस्य न भवति | २२५ | आशौचिनां संध्यावन्दनम् | " |
| आचमनोत्तरं पवित्रदर्भ- | | तत्प्रयोगः ... | २३४ |
| त्यागः... | " | आपत्कालकर्तव्यसंध्या ... | " |
| सतिलदर्भं वस्त्रनिष्पीडनम् | " | सूतके स्थालीपाकहोमादि- | |
| तच्च स्थल एव न जलादौ | " | विचारः... | २३५ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|------------------------------------|-------------|------------------------------------|-------------|
| समारूढेऽग्नावाशौचपाते ... | „ | प्रतियज्ञोपवीतं धारणमन्त्रा- | |
| आशौचेऽग्न्यनुगमनप्रायश्चि- | | वृत्तिः २४१ | |
| त्तम् | „ | यज्ञोपवीतमानम् | „ |
| शिवपूजायां नाऽऽशौचम्... | „ | यज्ञोपवीतं कार्पासमयम्... | „ |
| पुरश्चरणजपस्तोत्रपाठादौ... | „ | यज्ञोपवीतधारणसंख्या ... २४२ | |
| सूतकेऽन्तरितदानानि तदन्ते | „ | यज्ञोपवीतालाभे वस्त्रादिः | „ |
| सूतके पञ्चयज्ञनिषेधः ... | „ | यज्ञोपवीतस्य ऋदितादौ ... | „ |
| लवणमध्वादावाशौचं न ... २३६ | | प्रतियज्ञोपवीतं संकल्पादि | |
| संसर्गाद्याशौचं तदीयपदार्थं न | „ | भिन्नम् | „ |
| अनुगमनाद्याशौचे कर्मा- | | जीर्णयज्ञोपवीतादिप्रतिपत्तिः | „ |
| लोपः | „ | कर्मकाले, यज्ञोपवीताधारणे | |
| सूतके कर्मभिन्नकालेऽस्पृ- | | प्रायश्चित्तद्वयं तद्विधिः ... २४३ | |
| श्यत्वं न... .. | „ | यज्ञोपवीतस्य स्कन्धाद्यवरो- | |
| आशौचमुक्तिस्नानं प्रातः सं- | | हिते | „ |
| गवे वा | „ | यज्ञोपवीतं देहस्थमेव क्षाल्यम् | „ |
| एकादशाहे प्रातःसंध्यावि- | | शाखाविशेषेणोत्तारणमपि | „ |
| चारः | „ | यज्ञोपवीतधारणे प्रयोगत्रयम् | „ |
| अशौचापगमे पञ्चगव्याश- | | यज्ञोपवीतत्यागनिमित्तानि २४५ | |
| नम् | „ | चण्डालादिस्पर्शे यज्ञोपवी- | |
| पञ्चगव्याशनं संध्योत्तरं पूर्वं वा | „ | तत्यागः | „ |
| ब्रह्मकूर्चविधिः | „ | तत्र चण्डाललक्षणम् | „ |
| कपिलास्वरूपम् २३७ | | यज्ञोपवीतनाशे २४९ | |
| ब्रह्मकूर्चप्रयोगः | „ | इति चतुर्थभागकृत्यम् | „ |
| होमरहितोऽपि ब्रह्मकूर्चः ... २३९ | | पञ्च महायज्ञास्तलक्षणम्... २५० | |
| आशौचापगमे यज्ञोपवीत- | | पञ्च महायज्ञा नित्याः | „ |
| धारणम् | „ | पञ्चसूनालक्षणम् | „ |
| यज्ञोपवीतनिष्पत्तिप्रकारः... | „ | वैश्वदेवं यज्ञत्रयम् | „ |
| यज्ञोपवीतधारणे बौधायन- | | वैश्वदेवोत्तरं नैवेद्यः... .. | „ |
| सूत्रम् २४० | | वैश्वदेवस्याऽऽत्मसंस्कारतादि | |
| स्मृत्यर्थसारोक्तं प्रकारान्त- | | वैश्वदेवः सायं प्रातश्च ... २५१ | |
| रम् | „ | अशक्तौ प्रातरेव द्विवारम्... | „ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|--|-------------|---------------------------------------|-------------|
| होमद्रव्यं व्यञ्जनरहितम् ... | ॥ | वैश्वदेवबल्युद्धरणम् ... | ॥ |
| तत्रान्नाभावे फलमूलादि ... | ॥ | अनुद्धरणे प्रायश्चित्तम् ... | ॥ |
| हविष्यपदार्थाः ... | २५२ | बलिप्रतिपत्तिः ... | २६१ |
| औपासने लौकिके वा वैश्व- देवः ... | ॥ | द्विरावृत्तौ विशेषः ... | ॥ |
| तत्राग्न्यायतनप्रमाणम् ... | ॥ | सहत्वपक्षे विशेषः ... | ॥ |
| चुह्यादिनिषेधस्तदपवादश्च | २५३ | सायंभोजनाभावे न वा वैश्व- देवः ... | ॥ |
| वैश्वदेवदेशः । अधिकारिणश्च | ॥ | वैश्वदेवविस्मृतौ ... | ॥ |
| वैश्वदेवाभावे ग्रासक्षेपोऽग्नौ | २५५ | श्राद्धदिने वैश्वदेवनिर्णयः | २६२ |
| वैश्वदेवे पुत्रादिकर्त्तृन्तराणि | ॥ | दर्शं वैश्वदेवकालः... | ॥ |
| पुत्रादिभिः पित्राद्यनुज्ञया | ॥ | वायसादिबलिः ... | ॥ |
| होतव्यम्... | ॥ | वैश्वदेवप्रयोगः ... | २६३ |
| प्रवासविषये ... | ॥ | चक्राकारबलिहरणप्रयोगः | २६४ |
| सकृद्वैश्वदेवेन सर्वपाकसं- स्कारः ... | ॥ | वायसादिबलिप्रयोगः ... | २६५ |
| होममन्त्रास्तत्र सूत्रं परिशिष्टम् | ॥ | सहत्वपक्षे प्रकारान्तरम् ... | ॥ |
| शौनककारिका ... | २५६ | वैश्वदेवानुकल्पः ... | ॥ |
| अग्न्यलंकरणकालः ... | ॥ | विधुरवैश्वदेवप्रयोगः ... | २६६ |
| अग्नेन व्याहृतिहोमविकल्पः | २५७ | कैवलसूत्रोक्तवैश्वदेवप्रयोगः | ॥ |
| अवदानबल्योः प्रमाणम् ... | ॥ | अथ मनुष्ययज्ञः ... | ॥ |
| वैश्वदेवे कुशासनं प्राङ्मु- खत्वं च ... | ॥ | तत्रातिथिलक्षणम् ... | २६७ |
| आद्यन्तयोः सकृदाचमनम् | ॥ | हीनोत्तमातिथिसमवाये ... | २६८ |
| आदौ द्विर्वा... | ॥ | पङ्क्तिभेददोषस्तदपवादश्च | ॥ |
| अथ भूतयज्ञः ... | ॥ | पङ्क्तिभेदप्रायश्चित्तम् ... | ॥ |
| तत्र नराकारप्रकारः ... | ॥ | हीनवर्णातिथौ विशेषः ... | २६९ |
| आश्वलायनानां नराकारो मुख्यः ... | २५८ | बह्वतिथिप्राप्तौ ... | ॥ |
| शौनकोक्तप्रकारान्तराणि ... | ॥ | अतिथिभोजनाशक्तौ मि- क्षादि ... | ॥ |
| बलिहरणे त्यागविचारः ... | २६० | भिक्षादिलक्षणम् ... | ॥ |
| अथ पितृयज्ञः ... | ॥ | ग्रासपरिमाणम् ... | २७० |
| | | मनुष्ययज्ञविधिः ... | ॥ |
| | | अतिथिपूजाफलम्... | २७१ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| अपूजने प्रत्यवायः... .. | " | अष्टम्यादौ दिवाभोजनवि- | |
| मनुष्ययज्ञनित्यश्राद्धयोः पौ- | | चारः | " |
| र्वापर्यविचारः | " | अष्टम्यादौ भोजनकाले ... | |
| सायं मनुष्ययज्ञो नेति केचित् ... | " | तिथिर्निर्दिष्टा | २८३ |
| मनुष्ययज्ञप्रयोगः | २७२ | एकादश्यां तु व्रतदिने भोज- | |
| भिक्षादानविधिः | " | ननिषेधः | " |
| वैश्वदेवात्प्राग्भिक्षोरागमने ... | २७३ | भोजनशब्दार्थः | " |
| भिक्षुलक्षणम् | " | उपवासाशक्तौ नक्तादि ... | २८४ |
| भिक्षादानफलम् | २७४ | अन्नलक्षणम् | " |
| भिक्षाशनफलम् | " | एकादश्यां भक्षणीयपदार्थाः | " |
| माधुकर्यन्नमन्यस्यादेयम् | " | उपवासाशक्तावेकविप्रभो- | |
| पञ्चमहायज्ञप्रशंसा | " | जनम्... .. | २८५ |
| पञ्चमहायज्ञाकरणे प्रायश्चित्तम् | " | व्रते प्रतिनिधयः | " |
| अथ नित्यश्राद्धम् | " | एकादश्यादौ श्राद्धपाते ... | " |
| तदनुकल्पश्च | " | चतुर्थ्यादिरात्रिव्रतेषु ... | २८६ |
| दिवाऽसंभवे रात्रावपि वा... .. | २७६ | दशमीद्वादश्यां नियमाः ... | " |
| नित्यश्राद्धं मासे मासे वा... .. | " | नियमाः काम्यव्रत एव | |
| नित्यश्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् | " | नित्याः | " |
| दर्शादिषु प्रसङ्गसिद्धिः | " | द्वादश्यल्पत्वे पारणाविचारः | " |
| मनुष्ययज्ञनित्यश्राद्धयोस्त- | | द्वादश्यां द्वादशविप्रभोजनम् | " |
| न्त्रम् | २७७ | प्रदोषादौ जलपारणा ... | २८७ |
| नित्यश्राद्धप्रयोगः | " | रविवारादौ चतुर्थ्यादिव्रते... | " |
| अथ गोप्रासः स नित्यः | २७८ | भोजननिषेधकालः | " |
| अन्नदानफलम् | " | बालादीनग्रे भोजयेत् ... | " |
| पात्रापात्रविचारो वैधदाने | २८० | अभक्ष्यवर्जनमावश्यकम् ... | " |
| समीपस्थविप्रत्यागे दोषः | " | पञ्चविधमभक्ष्यं जात्यादिभे- | |
| अथ भोजनविधिः... .. | २८१ | देन | २८८ |
| तत्र भोजनकालः | " | जातिदुष्टलक्षणम् | " |
| द्विर्भोजनमवश्यं न वेति | २८२ | तिथिविशेषेण वर्ज्यपदार्थाः | २९२ |
| आर्द्रं धान्यं फलवत् | " | संधिन्यादिपयोनिषेधः ... | " |
| आहिताग्नौ विशेषः | " | अथ क्रियादुष्टानि | २९३ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------|-------------|--------------------------------|-------------|
| अथ कालदुष्टानि ... | २९४ | भोजनादौ द्विराचमनं सकृद्वा | ३१४ |
| तत्र पर्युषितलक्षणम् ... | २९५ | तत्र मन्त्रविशेषः ... | ॥ |
| पर्युषितापवादः ... | ॥ | आचमनात्पूर्वं पादक्षालनम् | ॥ |
| संसर्गदुष्टानि ... | २९६ | भोजनशालाया बहिराचम- | |
| सहलेखलक्षणम् ... | २९८ | नम् ... | ॥ |
| वाग्दुष्टलक्षणम् ... | ॥ | वर्तुलग्नन्थिमत्पवित्रधारणम् | ३१५ |
| भक्ष्यद्रव्याण्यपि शरीराहि- | | भोजने दिङ्मनियमः ... | ॥ |
| तकारीण्येव भोज्यानि ... | ॥ | उपवेशने विशेषः... | ॥ |
| तत्र ब्रीह्यादिजलान्तद्रव्याणां | | भोजनकाले नैवेद्यो गोघ्रासश्च | ॥ |
| गुणाः क्रमेण ... | २९९ | परिपेक ऐशानीमारभ्य कार्यः | ३१६ |
| भोजने निपिद्धस्थानानि... | ३०८ | अथ बलिनिवपनम्... | ॥ |
| विहितस्थानम् ... | ॥ | बल्युद्धरणप्रकारः ... | ॥ |
| पात्राधोमण्डलप्रकारः ... | ३०९ | अनुद्धरणे प्रायश्चित्तम् ... | ॥ |
| भोजनपात्राणि ... | ॥ | बलिदानाकरणप्रायश्चित्तम् | ३१७ |
| भोजने निपिद्धपत्राणि ... | ३१० | पायसादि बलौ निपिद्धम् | ॥ |
| निपिद्धपात्रभोजने प्रायश्चि- | | बलिदानोत्तरं हस्तक्षालनम् | ॥ |
| त्तम् । भोज्यपत्राणि । | | अथाऽऽपोशनं शृतमात्रे ... | ॥ |
| पत्रावलीप्रकारः ... | ३११ | गृहीतमौनत्याग आपोशना- | |
| निमन्त्रितविप्रेण पत्रावल्यो | | करणे च प्रायश्चित्तम् ... | ३१८ |
| न कार्याः ... | ॥ | पात्रधारणविचारः... | ॥ |
| अथ परिवेषणम् । पात्रोप- | | आपोशनं दक्षभाग एव ... | ॥ |
| स्तरणम् ... | ॥ | आपोशने पुनःपूरणनिषेधः | ॥ |
| परिवेषणक्रमस्तत्साधनं च | ३१२ | आपोशनमन्त्रे स्वाहान्तत्वं | |
| लवणादिहस्तदत्तनिषेधः ... | ॥ | न... | ३१९ |
| लवणादिहस्तेन दातुः प्राय- | | अथ प्राणाहुतिकल्पः ... | ॥ |
| श्चित्तम् ... | ॥ | भोजने मौनविचारः ... | ३२० |
| परिवेषणप्रकारः ... | ३१३ | जलपात्रं दक्षिणे ... | ॥ |
| भोजनपात्रस्य समन्ताल्लघु- | | प्राणाहुत्यूर्ध्वमासन्दीविचारः | ३२१ |
| पात्राणि... | ॥ | भोजनक्रमः ... | ॥ |
| परिवेषणकाल उच्छिष्टस्पर्शं | ॥ | अन्नजलयोर्मानम् ... | ॥ |
| भोजनविधौ गृह्यपरिशिष्टम् | ॥ | अत्यशननिषेधः । घ्राससंख्या | ॥ |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| अन्ये च नियमाः | ३२२ | ब्रह्मचारिणो बहिरेव हस्त- | |
| जलपानप्रकारः | " | क्षालनम् | " |
| यो वेष्टितशिरा भुङ्क्तु इत्यादयो | | सर्वेषां वा बहिः | " |
| निषेधाः... .. | ३२४ | भोजनस्थान एवाऽऽचमनम् | " |
| रात्रौ भोजने दीपनाशे | " | शतपदगमनादि | ३२९ |
| दिवाऽपि दीपसांनिध्ये फलम् | " | भोजनविधिप्रयोगः | " |
| भार्यासहभोजनादिनिषेधाः | " | भोजने परस्परं स्पर्शादौ | |
| क्वचित्तदपवादः | ३२५ | प्रायश्चित्तम् | ३३२ |
| दुष्कृतपङ्क्तौ भोजनदोषः | " | भोजने क्षुज्जृम्भणयोः | " |
| पङ्क्तिभेदप्रकारः | " | वमने स्नाननिर्णयः... .. | ३३३ |
| पङ्क्तौ प्रथमभोजनोत्थानयो- | | परान्नभोजननिषेधः | " |
| र्दोषः | " | परान्ननिषेधो निन्दितान्नवि- | " |
| कलौ दोषाभावो वोत्थाने... | " | षयः | " |
| भोजनकाल उलूखलादि- | | तत्र निन्द्याः कदर्यादयः... | " |
| शब्दे | ३२६ | अनाग्निगृहभोजननिषेधः ... | ३३४ |
| उच्छिष्टशेषविधानं घृतादि- | | शूद्रान्ननिषेधस्तदपवादश्च | " |
| व्यतिरिक्तम् | " | परान्नभोजनविधिः... .. | ३३६ |
| भोजनं रहसि कार्यम् | " | परान्नापवादः | " |
| भोजनान्ते कर्तव्यम् | " | तत्र गुरुलक्षणम् | ३३७ |
| भुक्तोच्छिष्टदानविधिः | " | निन्द्यान्नभोजनादौ प्रायश्चि- | |
| उत्तरापोशनप्रकारः | " | त्तम् | " |
| पवित्रत्यागप्रकारः... .. | ३२७ | इति पञ्चमभागकृत्यम् ... | ३३९ |
| उत्तरापोशनाकरणे स्नानम् | " | तत्र ताम्बूलविधिः... .. | ३४० |
| लवणशेषे जलेनाऽऽप्लवणम् | " | वामकुक्षिप्रकारः | ३४३ |
| भुक्तभाजनसमीपे करक्षालनं | | भोजनोत्तरमायासादिनिषेधः | " |
| न भुक्तभाजने | " | सुजनसंगतिः... .. | " |
| मुखहस्तशोधनप्रकारः | " | सुजनदुर्जनयोर्लक्षणम् ... | ३४४ |
| दन्तलग्नान्नविचारः... .. | ३२८ | इतिहासपुराणाद्यभ्यासः ... | " |
| हस्तक्षालनोत्तरं हस्तादौ स्नेह- | | दिवास्वापादिनिषेधः | " |
| शेषे दोषाभावः | " | इति षष्ठसप्तमभागकृत्यम् ... | " |
| | | सायंसंध्याकालः | " |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| सायं स्नानं गृहस्थभिन्नस्यैव | ३४५ | रात्रौ शुण्ठ्यादिभक्षणनि- | |
| अग्निहोत्रिणस्त्रिकालं स्नानम् | " | षेधः | " |
| सायंसंध्यायां प्राङ्मुखतैव... | " | रविवारादौ रात्रौ भोजनं न | ३५२ |
| सायंसंध्याविधिः | " | जीवत्पितृकस्यामायामेकम- | |
| सायं संध्या बहिर्जले | ३४७ | क्तनिषेधः | " |
| तत्र साग्निकस्य विचारः | " | रात्र्यादावाद्यन्तयामयोर्वेदा- | |
| सायंसंध्याप्रयोगः | " | भ्यासः | " |
| इति अष्टमभागकृत्यम् | ३४८ | अथ शयनविधिः | " |
| अग्निकार्यं सायंप्रातः | " | तत्र शय्यायां विशेषः | " |
| सायमेव वाऽग्निकार्यम् | " | शय्याप्रमाणादि | ३५३ |
| तत्राग्निनिर्णयः | " | प्रसङ्गात्पर्यङ्कप्रमाणम् | " |
| अग्निकार्योत्तरं वृद्धाभिवाद- | | परशय्यासनादिनिषेधः | " |
| नम् | ३४९ | एतदननुज्ञातविषयम् | " |
| तत्र श्राद्धादिकुर्वाणा नाभि- | | स्वीयशय्यालाभे कम्बलान्त- | |
| वाद्याः | " | र्धानम् | ३५४ |
| यज्ञशालादौ सकृन्नमस्कारः | " | शयनयोग्यदेशः | " |
| आग्निकार्यस्य गौणकालः | " | साग्निकस्य पर्वव्यग्नेः | " |
| अग्निकार्यानुकल्पः | " | पश्चाच्छयनम् | " |
| अग्निकार्यप्रयोगः | " | उपानदादीनि शयनसमीपे | " |
| दीपोद्बोधनकालः | ३५० | रात्रिसूक्तजपादि | " |
| तत्र दीपमुहविचारः | " | जानुतुल्यशय्या | " |
| सायं नीराजनमात्रं पूजा | " | शयनविधौ परिशिष्टम् | ३५५ |
| साय वैश्वदेवे विशेषः | " | शयने शिरोनियमः... .. | " |
| सायमतिथिपूजा | " | शयने वस्त्रदशाभागः | " |
| सायं द्वितीयभोजनम् | " | पाददेश नकार्यः | " |
| तत्संध्याकाले न कार्यम् | ३५१ | सार्धयामोत्तरमर्धरात्र्यनन्तरं | " |
| संध्याकालप्रमाणम् | " | वा स्त्रीसंभोगः | " |
| सायंभोजनस्योत्तरावधिः | " | तत्र ऋतुकालः | " |
| तत्र महानिशालक्षणम् | " | ऋतौ श्राद्धैकादश्यादावपि | " |
| सायंभोजनप्रशंसा | " | गमनं पाक्षिकम् | ३५६ |
| रात्रौ क्षीरप्राशस्त्यादि | " | ऋतावगमने प्रायश्चित्तम् | " |

| विषयः | पृष्ठाङ्काः | विषयः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| असांनिध्यादौ न दोषः ... | ॥ | अयं च दीपो भार्ययैव | |
| अजातपुत्रस्यैव क्रतुगमनम् | ३५७ | प्रज्वाल्यः ... | ॥ |
| क्रतौ भर्तुरतिक्रमे भार्याया | | संभोगे कुङ्कुमाद्यावश्यकम् | ॥ |
| दोषः ... | ॥ | रतौ स्त्रीकृत्यम् ... | ॥ |
| व्याध्यादौ न दोषः ... | ॥ | रतौ पुरुषकृत्यम् । ताम्बूलच- | |
| विरक्तस्य क्रतावगमने न | | र्वणादि ... | ३६४ |
| दोषः ... | ॥ | ताम्बूलचर्वणे विशेषः ... | ॥ |
| स्त्रीगमने निषिद्धतिथ्यादि | ३५८ | रतिसङ्गादौ निधीतम् ... | ॥ |
| वर्ज्यनक्षत्राणि ... | ३५९ | तत्र क्रतौ यज्ञोपवीतमेव ... | ॥ |
| पुत्रोत्पत्तौ शुक्राधिक्ययुग्म- | | संभोगे स्त्रियमकञ्चुकां कु- | |
| दिनादिविचारः ... | ॥ | र्यात् ... | ॥ |
| तात्कालिकमेव तिथ्यादि | | शिखामोचनादि ... | ३६५ |
| निषिद्धम् ... | ३६० | उपगमनप्रकारः ... | ॥ |
| पक्षेऽनृतावपि गमनम् ... | ॥ | संभोगोत्तरकृत्यम् ... | ॥ |
| नियमविध्यादिलक्षणम् ... | ३६१ | क्रतुगमने स्नानम् ... | ॥ |
| गमनेऽयोग्या स्त्री ... | ३६२ | अनृतौ लेपक्षालनादि ... | ॥ |
| गर्भिणीनिषेधः षणमासा- | | स्त्रीणां न स्नानादि... .. | ॥ |
| दूर्ध्वम् ... | ॥ | संभोगोत्तरं पृथक्शय्या ... | ॥ |
| प्रसवोत्तरं बालस्य दन्तोत्प- | | वर्ज्यकालमैथुने प्रायश्चित्तम् | ३६६ |
| त्तिपर्यन्तं गमननिषेधः... | ॥ | मथुने शौचात्पूर्वं मूत्रोत्सर्गे | ॥ |
| द्वादशवर्षोर्ध्वमृत्वभावेऽपि | | शयनविधिप्रयोगः ... | ॥ |
| गमनम् ... | ॥ | स्त्रीसंभोगमन्तरा रेतःस्कन्दे | ३६७ |
| पितृमरणोत्तरं वर्षपर्यन्तं | | आह्निककरणे श्रेयोऽकरणे... | |
| निषेधः ... | ३६३ | प्रत्यवायश्च ... | ३६८ |
| क्रतुविशेषेण संभोगनियमः | ॥ | नास्तिक्यात्कर्महानौ प्राय- | |
| रत्यर्थं भिन्नशय्या ... | ॥ | श्चित्तम् ... | ॥ |
| रतौ देशविशेषनिषेधः ... | ॥ | नित्यकृत्यप्रशंसा ... | ॥ |
| रतौ दीपसांनिध्यम् ... | ॥ | नित्यकर्माणि सर्वदोषपरिहा- | |
| असमर्थस्य दीपाभावोऽपि | ॥ | रार्थं विष्णुनामोच्चारः ... | ३६९ |
| | | सर्वं कर्मेश्वरे समर्पणीयम्... | ॥ |

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

माटे इत्युपाह्वयम्बकविरचितः

आचारेन्दुः ।

—:~::~~:—

श्रीशाहुजो विजयते बुधसात्कृतश्रीः
शाहाजिवर्मनृपतिर्नृहरिप्रधानः ।
यत्प्रापिताधिमुदमेक्ष्य निजाधिकां तां
पञ्चत्वमाप सुरभूरुडपि त्रपातः ॥ १ ॥
महाशैवः स श्रीशिवचरणपद्मभ्रमरित-
प्रचेतास्तन्निष्ठोऽर्चति गिरिशमञ्जादिकुसुमेः ।
यदर्चाद्रष्टाऽऽस्तद्युतल इव चाऽऽस्तेऽनिमिषतोऽ-
प्सरोगन्धर्वाढ्यः सपदि सुमनोमण्डलगतः ॥ २ ॥
तत्सेवाप्तमनोरथः प्रतिकृतित्वं प्रापितोऽपि स्वयं
नात्याक्षीन्नजपद्धतिं नरहरिः सेवैकबद्धादरः ।
तत्स्वान्स्वान्मनुते हितं च तनुते तेषां यथावैभवं
विद्वन्मण्डलमण्डनं च कुरुते प्रेष्ठं प्रयच्छन्सदा ॥ ३ ॥
इत्थं तद्धुरमुद्रहन्त्रपि सदाचारं व्यवस्थापयन्
कीर्त्याऽऽहूतमिवाधिसंघमचिरात्संमानयन्सादरम् ।
आचारं बुधशिष्टमाचिचरिषुर्नानार्थसंग्राहकान्
ग्रन्थान्वीक्ष्य पुरातनान्नवलघुग्रन्थक्रियोत्कस्त्वभूत् ॥ ४ ॥
स्वशास्त्रीयासन्नं विविधमतनिर्णायकममुं
कुरुध्वं ग्रन्थं चेत्यखिलगुरुविप्रानुमतितः ।
कुशाग्रेक्षावन्तं विमलकुलनारायणसुतं
समभ्यर्च्योचत्तनितुमनसं त्र्यम्बकमयम् ॥ ५ ॥
ततस्तं तद्भावं मनसि विनिधाय प्रथमतः
स्वकल्पं तद्वृत्तिं प्रतनपरिशिष्टादिपदशः ।
विमृश्याऽऽचार्याणां मतमनुसरन्शाण्डिलकुलो
गुरोस्तातोपाह्वादुपगतरहस्योऽत्र विदुषः ॥ ६ ॥
सतीर्थ्याद्वलालात्समधिगतसाहायकभरो
गणेशं विघ्नौघद्विषमवनिजाजानिमसकृत् ।

महालक्ष्मीं नत्वा गुरुजनपदे त्र्यम्बक इमं
तनोत्याचारेन्दुं विमलमतिहृक्तापहतये ॥ ७ ॥

तत्राऽऽदाबुपोद्धातप्रकरणम् । तत्राऽऽचारप्रशंसामाह पराशरः—
आचारमूलं श्रुतिशास्त्रतत्त्वमाचारशाखास्तु तदुक्तकृत्यम् ।
आचारपर्णानि च यज्ञयोगा आचारपुष्पाणि यशोधनानि ॥ १ ॥
आचारवृक्षस्य फलं हि नाकस्तस्मात्सुखस्वादुरसश्च मुक्तिः ।
तस्मादनन्तं फलवं तु तत्त्वमाचारमेवाथ श्रयेत्प्रयत्नात् ॥ २ ॥ इति ।

तत्राऽऽचारलक्षणमानुशासनिके पर्वणि—

आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चाऽऽचारलक्षणाः ।
साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ इति ।

हारीतोऽपि—साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु स सदाचार उच्यते ॥

सन्तः शिष्टास्तेषां स्वरूपमाह बौधायनः—शिष्टाः खलु गतमत्सरा
निरहंकाराः कुम्भीधान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहकोधविर्वजिताः ।
इति । लौकिकाचारस्याप्यावश्यकत्वमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

यद्यपि स्यात्स्वयं ब्रह्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ।
तथाऽपि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥ इति ।

तथा—सामयाचारिको धर्मो देशजातिकुलोद्भवः ।

ग्रामाचाराः परिग्राह्याः सर्वत्रैव यथोदितम् ॥ इति ।

आचारार्के बृहस्पतिः—

दया क्षमाऽनसूया च शौचानायासमङ्गलम् ।
अकार्पण्यमस्पृहत्वं सर्वसाधारणानि च ॥

सर्वेषां विप्रराजन्यविदूशूद्राणां धर्मलक्षणानीत्यर्थः । दयादीनां
लक्षणमाह स एव—

परे वा बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा ।
आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता ॥
बाह्ये वाऽऽभ्यन्तरे वाऽपि दुःख उत्पादिते परैः ।
न कुप्यति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥
गुणान्न गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि ।
नान्यदोषेषु रमते साऽनसूया प्रकीर्तिता ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ।
 स्वधर्मं च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥
 शरीरं पीड्यते येन सुशुभेनापि कर्मणा ।
 अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥
 प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ।
 एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
 स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना ।
 अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं हि तत्स्मृतम् ॥
 यथोत्पन्नेन संतोषः कर्तव्यो ह्यल्पवस्तुनि ।
 परस्याचिन्तयन्नर्थं साऽस्पृहा परिकीर्तिता ॥ इति ।

धर्ममूलमाह याज्ञवल्क्यः—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
 सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ इति ।

श्रुतिर्वेदः । स्मृतिर्मनुपराशराद्युक्तिः । सदाचारः सतां शिष्टानामा-
 चारोऽनुष्ठानम् । स्वस्य चाऽऽत्मनः प्रियं वैकल्पिके विषये । यथा गर्भा-
 ष्टमेऽष्टमे वाऽब्द इत्यादावात्मेच्छैव नियामिका । सम्यक्संकल्पाज्जातः
 कामः शास्त्राविरुद्धः । यथा मया भोजनव्यतिरेकेणोदकं न पातव्य-
 मिति । एते धर्मस्य मूलं प्रमाणम् । एतेषां विरोधे पूर्वपूर्वबलीयस्त्व-
 मिति । तथा च संग्रहे—

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विरुद्धेषु परस्परम् ।
 पूर्वं पूर्वं बलीयः स्यादिति न्यायविदो विदुः ॥ इति ।

स्मृत्याचारयोर्विरोधे स्मृतिरेव बलवती । यथा श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे
 श्रुतिः । इदानीं तनाचारेण स्मृतिः स्मृत्या च श्रुतिः कल्पनीयेत्याचारस्य
 द्यन्तरितप्रामाण्येन प्रत्यक्षानुमानयोर्विरोधेऽनुमानस्यैव बहिरङ्गत्वेन
 दुर्बलत्वात् । तदेतत्सकलमभिप्रेत्योक्तं मनुना—

यस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
 श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते ॥ इति ।

स्कान्देऽपि च—रागद्वेषविनिर्मुक्तैर्विद्वद्भिर्दनुष्ठितः ।

सदाचारः स विज्ञेयो धर्ममूलो मनीषिभिः ॥

अत्र रागद्वेपराहित्यविशेषणात्पराशरादिकृतकैवर्तकन्यागमनादेरना-
चरणीयत्वमुक्तम् । इदमेवाभिप्रेत्याऽऽह हारीतः—

अनुष्ठितं तु यद्वैर्मुनिभिर्यदनुष्ठितम् ।

नानुष्ठेयं मनुष्यैस्तत्तदुक्तं कर्म आचरेत् ॥ इति ।

श्रुत्याविद्वैधे मनुः—श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ।

स्मृतिद्वैधे तु विषयः कल्पनीयः पृथक् पृथक् ॥

मनुस्मृतेस्तु विशेषमाहाङ्गिराः—

मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा विनश्यति । इति ।

श्रुतिश्च—“यद्वै किं च मनुरवदत्तद्भेषजम् ” इति ।

स्मृत्यन्तरे—स्मृत्यन्तरविरोधे तु कलौ पाराशरस्मृतिः । इति ।

कल्पसूत्रस्मृत्योर्विरोधे तु कलौ प्रत्यक्षश्रुतिमूलत्वेन कल्पसूत्रं प्रबल-
मित्याह हेमाद्री संग्रहे पौलस्त्यः—

श्रौतानां कर्मणां कृप्तिः कल्पसूत्रं तदुच्यते ।

तथैव गृह्यकल्पानां स्मार्तानामुपसंग्रहः ॥

शाखानां विप्रकीर्णत्वात्पुरुषाणां प्रमादतः ।

नानाप्रकरणस्थत्वात्स्मृतेर्मूलं न लक्ष्यते ॥

अत्र सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्मेति न्यायेन सर्वशाखागृह्यसूत्रपरिशि-
ष्टस्मृतिपुराणेतिहासाचारावगतसकलपदार्थोपसंहारेणैव ज्ञानसंध्यादि-
धर्मानुष्ठानं सर्वसंमतम् । तत्र

यः स्वसूत्रमतिक्रम्य परसूत्रेण वर्तते ।

अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽप्यधर्मेण युज्यते ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वसूत्रं न च लङ्घयेत् ।

इति विष्णुधर्मोत्तरादिवचनैः स्वसूत्राविरोधिशस्त्रान्तरपरिग्रहः
कर्तव्यः । अत एव भविष्यत्पुराण उक्तम्—

यन्नाऽऽस्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि यत् ।

विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकं यथा ॥ इति ।

काष्णार्जिनिरप्याह—आत्मतन्त्रे तु यन्नोक्तं तत्कुर्यात्पारतन्त्रिकम् ।

विशेषाः खलु सामान्या वेदोक्ता वेदवादिभिः ॥ इति ।

ननु कृत्स्नसूत्रस्मृत्याद्युपसंहारस्य मानुषेण कर्तुमशक्यत्वात्कर्मण्यन-
धिकार एव सर्वेषामिति चेन्माधव आह—

विशेषादर्शनं यावत्तावत्सामान्यदर्शनम् ।
 मान्यमेवान्यथा ते स्यात्सर्वज्ञत्वेऽधिकारिता ॥
 गुणोपसंहृतिश्चैव यथादर्शनमिच्छताम् ।
 अदृष्टानुपसंहारे नाकिंचित्करता व्रते ॥
 यद्यावद्दृश्यते वाक्यं शक्तिश्चात्रास्य यावती ।
 तावत्कर्तुं न तूपेक्षा युक्ता वैगुण्यशङ्कया ॥ इति ।

यद्वा स्वसूत्रेति कर्तव्यतामात्रमेव कर्म कर्तव्यम् । तदुक्तं ब्रजवापा-
 यनेन—

बह्वलपं वा स्वशाखोक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम् ।
 तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥

लोगाक्षिणाऽपि—

ऊनो याऽप्यतिरिक्तो वा यः स्वशाखोदितो विधिः ।
 तेन संतनुयाद्यज्ञं न कुर्यात्पारतन्त्रिकम् ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टमपि स्वस्वसूत्रसमम् । गृह्यपरिशिष्टमिति समाख्याब-
 लात् । तथा हि—अथास्मिन्नाश्वलायनगृह्ये यानि कानिचिदन्यत्रो-
 क्तानि तानीहेच्छताऽऽचार्येणानुमितानि ज्ञापितानि यानि चोक्तप्र-
 दर्शितक्रियाणि तानि सर्वावबोधाय यथावदभिधास्याम इति आश्व-
 लायनगृह्यपरिशिष्टम् । अत एव जगद्गुरुभट्टैरपि ग्रहमखप्रकरण उक्तम्—
 आश्वलायनानां स्वगृह्यपरिशिष्टोक्तग्रहमखः । तस्य सूत्रसमत्वादिति ।
 अथ गृह्यपरिशिष्टशौनकगृह्यकारिकाणां विरोधे किमुचितमित्यपेक्षया
 पारिजात उक्तम्—कारिकागृह्यपरिशिष्टविरोधे परिशिष्टोक्तमेवानुसं-
 धेयमाचार्येणोक्तवचनत्वात् । तथैव लौकिकं वाक्यं स्मृतिबाधे परित्य-
 जेदिति वचनाच्चेति । गृह्यपरिशिष्टशौनकयोर्विरोधे परिशिष्टोक्तमेवानु-
 संधेयम् । आचार्येणोक्तवचनत्वादिति । आचारानुष्ठाने प्रशस्तं ब्रह्म-
 माह याज्ञवल्क्यः—

यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत ॥ इति ।

मनुरपि—सरस्वतीद्विपद्व्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।

वर्णानां सान्तरालानां सदाचारः स उच्यते ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पाञ्चालाः शूरसेनकाः ।

एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद्ग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि* ।

प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावतं विदुर्बुधाः ।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥

स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम् ॥ इति ।

स्वसत्ताकगृहएव सकलं कर्म कर्तव्यम् । तदुक्तं मुहूर्तमालायाम्—

गृहस्थस्याखिलं कर्म स्वसत्ताकं गृहं विना ।

न सिध्यति यतस्तस्माद्गृहप्रकरणं ब्रुवे ॥ इति ।

यत्र तु बहिः संध्या दशगुणेत्यादिविशेषवचनं तत्रास्य बाधः ।
यदि तु प्रवासादौ परगृहे कर्म करोति तदा तदनुमतिर्ग्राह्या । नाननु-
ज्ञातभूमिर्हि यज्ञस्य फलमश्नुत इति भारतात् । परकीयप्रदेशेषु कृतं
भवति निष्फलम् । इति वचनान्तरे दोषश्रवणाच्च । तीर्थादौ तु नानु-
मत्यपेक्षा ।

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ।

तत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन ॥

तत्र जप्तं हुतं दत्तं कोटिकोटिगुणं भवेत् । इति ब्रह्माण्डवचनात् ।

अटवी पर्वताः पुण्या नदीतीराणि यानि च ।

सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ॥

वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्यायतनानि च ।

देवखाताश्च गर्ताश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते ॥

इत्यादिपुराणाच्च । एवं सर्वसत्त्वोद्देशोत्सृष्टघट्टधर्मशालादौ नानुम-
त्यपेक्षा परकीयत्वाभावादिति ।

भृगुः—नैकवासा न च द्वीपे नान्तराले कदाचन ।

श्रुतिसमृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥

* ख. पुस्तके समासे—विनशनं कुरुक्षेत्रम् ।

अन्तरालद्वीपयोर्लक्षणं संग्रहे—

परितो वेष्टितो देशोऽद्भिर्यः स द्वीप उच्यते ।

अनावृतस्तु यो देशः सोऽन्तरालं प्रकीर्तितम् ॥ इति ।

अस्यापवाद आचारचन्द्रोदये—

वृषभैकशतं यत्र गवां तिष्ठत्यसंवृतम् ।

न तद्धर्महतं द्वीपमेवं वेदविदो विदुः ॥

मार्कण्डेयपुराणे—उदुम्बरे वसेन्नित्यं भवानी सर्वदेवता ।

ततः सा प्रत्यहं पूज्या गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥

पादस्य स्पर्शनं तत्र असंपूज्य च लङ्घनम् ।

कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

प्रातःकाले स्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम् ।

अकृतस्वस्तिकां या तु क्रामेल्लितां च मेदिनीम् ॥

तस्यास्त्रीणि विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा ।

अथाऽऽश्वलायनसूत्रोक्ताः परिभाषास्तत्र यस्तीर्थेन कर्म कर्तुं विहारं प्रपन्नस्तस्य प्राङ्निष्क्रमणान्मनोवाक्काययन्त्रणादयो नित्याः स्युरिति सर्वत्र वेदितव्यम् । कर्तुः प्राङ्मुखत्वं चेष्टानां च प्रागपवर्गता तत्साधनानां च प्रागग्रता वेदितव्या । अङ्गधारणा च नित्या वेदितव्या । सर्वदा यज्ञोपवीती स्यात् । यत्र निवीतप्राचीनावीते विधीयेते तत्रैव ते भवतो न मानुषं पैतृकं वा कर्म वृद्धेति । क्रत्वर्थमप्यशुचित्वसंपादि यत्कर्म तद्विहारान्निष्क्रम्य बहिः कर्तव्यम् । पृष्ठचार्या यत्राऽऽसनं भवति तत्र मध्येरेखायाः किञ्चिदुत्तरत उपविशेत् । सव्यदक्षिणभेदेन द्वित्वयोगि यदङ्गं हस्तादि तस्य द्वित्वेन विना वचने दक्षिणं प्रतीयात् । अनादेशे च दक्षिणं प्रतीयात् । जपानुमन्त्रणाप्यायनोपस्थानान्युपांशुमन्त्राश्च कर्मकरणाः । अयमर्थः—अनुमन्त्रणग्रहणेनाभिमन्त्रणमपि गृह्यते । जपः । अनुमन्त्रणम् । अभिमन्त्रणम् । आप्यायनम् । उपस्थानम् । मन्त्रसंज्ञका मन्त्राः । कर्मकरणमन्त्राश्च सर्वत्रोपांशुप्रयोक्तव्याः । उपांशुत्वं नाम करणवदशब्दमनःप्रयोग उपांश्विति । तेषां लक्षणानि वृत्तिकारेणोक्तानि ज्ञातव्यानि । सर्वत्र मन्त्रान्ते कर्मरम्भः । अनुमन्त्रणाप्यायनोपस्थानानां तु मन्त्रोच्चारणसमकालमेव क्रियेति । आसां श्रौतपरिभाषाणां गृह्ये प्राप्तिस्तूक्तानि वैतानिकानीति-

सूत्रवृत्तौ स्पष्टमेव साधिता । तत्र ब्रह्मयज्ञातिरिक्ते कर्मणि कचिदुदङ्ग-
 खताऽपि तस्य नित्याः प्राञ्चश्चेष्टा इत्यनया परिभाषया सर्वत्र प्राङ्ग-
 खत्वे सिद्धेऽपि ब्रह्मयज्ञप्रकरणे पुनः प्राङ्गमुख उपविश्येति सूत्रं
 ब्रह्मयज्ञातिरिक्तकर्मसु कचिदुदङ्गमुखत्वस्यापि प्राप्त्यर्थमिति वृत्तौ
 भाष्ये चोक्तत्वात् । जपतीति चोदनायां गृह्यकर्मण्यनित्यमुपांशुत्व-
 मिति वृत्तौ साधितम् । आसीनाद्यनियम आसीनेनैव कर्म कर्तव्यमिति
 तिष्ठन्समिधमादध्यादिति सूत्रे वृत्तौ स्पष्टम् । आश्वलायनगृह्यपरिशि-
 ष्टे—कर्ता स्नातो धौतानार्द्रवासा यज्ञोपवीत्याचान्तः प्राङ्गमुख आसीनो
 दक्षिणाङ्गकारी समाहितो मन्त्रान्ते कर्म कुर्वीत प्रत्युचोक्तिप्लवगन्तेष्वना-
 देश आज्यं द्रव्यं सुवःकरणमवदानवत्सु दर्वीपाणिः कठिनेषु कर्मावृत्तौ
 मन्त्रोऽप्यावर्तते कर्मान्त आचमनं चेति सामान्यमिति । सर्वकर्माङ्गतया
 ज्ञानमावश्यकम् । ज्ञात्वा कर्माणि कुर्वीतेत्युक्तेः । छान्दोग्योपनिषद्यपि—य-
 देव विद्यया करोति भङ्ग्या तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति । छन्दोगपरिशिष्टे—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।

विशिखोऽप्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

अत्र सदेत्यनेनोपवीतधारणादेः पुरुषार्थत्वं प्रतिपादितम् । विशिख
 इत्यादिना कर्माङ्गत्वं च । तत्र विशेषमाह कुशुभिः—

शिखिवच्छिखया भाव्यं वामावर्तनिबद्धया ।

प्रदक्षिणं द्विरावर्त्य पाशान्तःसंप्रवेशनात् ॥

प्रथमं द्विगुणीकृत्य ब्रह्मावर्तमितीरितम् ।

गायत्रीं प्रजपन्कुर्याच्छिखायाश्च निबन्धनम् ॥ इति ।

संध्यारत्ने—विप्रादिकानां खलु मुष्टिमेय—

केशाः शिखा स्यादधिका ततो न ।

द्विधा त्रिधा वाऽपि विभज्य बन्धो

ह्यल्पा ततोऽल्पाऽपि न लम्बिताऽपि ॥

वराहपुराणे—स्नानपूजातर्पणादिजपहोमसुरार्चनम् ।

उपवासवता कार्यं सायंसंध्याहुतीर्विना ॥

अत्रापवादश्चतुर्विंशतिमते—

इक्षूनपः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम् ।

भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥

सर्वं कर्म संकल्प्य कार्यं तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—

संकल्प्य च तथा कुर्यात्स्नानदानव्रतादिकम् ।

अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति च ॥

पुण्येत्युक्तेः शौचभोजनादौ दृष्टार्थे न संकल्पः । संकल्पलक्षणं संध्या-
रत्ने—

संकल्पो वै मनसि मननं प्रोक्तरीत्याऽथ वाचा

व्याहर्तव्यं तदनु च करेणाम्बुसेकास्त्रिधेति ।

षाड्मात्रेण त्वरितकरणे केचिदिच्छन्ति चाम्बु-

क्षेपस्थानेऽञ्जलिकृतिमुशन्त्यन्य एष्विष्ट आद्यः ॥

तत्र देशकालाद्युल्लेखः कार्यस्तदुक्तं संग्रहे—

मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः ।

उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभागभवेत् ॥ इति ।

अत्र केचिद्ग्रहणादिनिमित्तस्य मासपक्षतिथीनां प्रयागादेश्व देश-
विशेषमात्रस्योल्लेखः कार्यो न तु व्यापकानामयनमध्यदेशादीनामि-
त्याहुः । अन्ये तु व्याप्यानां व्यापकानां च सर्वेषामुल्लेखः कार्य इत्याहुः ।
तत्र संकल्पे चान्द्रसंवत्सरस्यैवोल्लेखः । स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संव-
त्सरं सदेति वचनात् । ऋतुरपि चान्द्र एवेति धर्माब्धिसारे । तिथिस्त्वौ-
दयिकी । यां तिथिं समनुप्राप्येत्यादिवचनादिति केचित् । कर्मणो यस्य
यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तया कर्माणि कुर्वीतेति वचनाद्वर्त-
मानतिथेरुल्लेख इत्यन्ये । इदमेव युक्तं शिष्टसमाचारात् । एवमेव नक्षत्र-
योगादेरपि निर्णयस्तुल्यन्यायात् ।

मण्डनः—मुख्यकाले यदाऽवश्यं कर्म कर्तुं न शक्यते ।

गौणकालेऽपि कर्तव्यं गौणोऽप्यत्रेदृशो भवेत् ॥

ईदृशो मुख्यसमः । अत्र विशेषस्तेनैवोक्तः—

गौणेष्वेतेषु कालेषु कर्म चोदितमाचरन् ।

प्रायश्चित्तप्रकरणप्रोक्तां निष्कृतिमाचरेत् ॥

प्रायश्चित्तमकृत्वा वा गौणकाले समाचरेत् ॥ इति ।

अत्र गौणकाले प्रायश्चित्तकरणाकरणयोर्व्यवस्था समर्थासमर्थभेदेन ।
समर्थत्वं तु द्रव्यसामर्थ्यं शारीरसामर्थ्यं चेत्याद्यनेकविधम् । गौणकालं
तु स एवाऽऽह—

अभ्यासार्थं द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थं तु मध्यमाम् ।

शिष्याणामुपदेशार्थं कुर्याद्वृत्तिं विलम्बिताम् ॥

सर्वत्र मन्त्रादौ प्रणव उच्चार्यः । मन्त्रादौ प्रणवं कुर्यादिति वचनात् ।

अत्रापवादः संग्रहे—

नच स्मरेदृषिं छन्दः श्राद्धे वैतानिके मन्त्रे ।

ब्रह्मयज्ञे च वै तद्वत्तथोक्तारं विवर्जयेत् ॥

ब्राह्मे—श्रौतं स्मार्तं तथा कर्म कर्तव्यमधिकारिणा ।

शुचिना साधनैः शुद्धैः सम्यक्श्रद्धान्विते नच ॥

अधिकारिणः शुद्धिसाधनान्याह बृहस्पतिः—

गात्रं मृदुश्मसा शुध्येद्वित्तं भूतविशासनात् ।

विद्यया तपसा देहो मतिज्ञानेन शुध्यति ॥

स्वाध्यायेनानुतापेन होमेन तपसैव च ।

ध्यानेन क्षेत्रवासेन दानेनाद्यपरिक्षयः ॥

तथा—परापवादाश्रवणं परस्त्रीणामदर्शनम् ।

एतच्छौचं श्रोत्रदृशोर्जिह्वाशुद्धिरपैशुनम् ॥

अप्राणिवधमस्तेयं शुचित्वं पादहस्तयोः ।

असंश्लेषः परस्त्रीणां शारीरं शौचमिष्यते ॥

याज्ञवल्क्यः—कालोऽग्निः कर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपो जलम् ।

पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः ॥

शुद्धिर्नामानर्हतापादकदोषनिवर्तकः संस्कारविशेषः ।

आपस्तम्बः—अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसंनिधौ ॥

आहारे जपकाले च पादुके परिवर्जयेत् ।

कर्मणि वाग्यमलोपे योगीश्वरः—

यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथंचन ।

व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥

वैष्णवं मन्त्रमतो देवा इदं विष्णुरिति वा । अतो देवा अवन्तु न इति जपेऽपि वाऽन्यां वैष्णवीमित्याश्वलायनोक्तः ।

बौधायनः—भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः ।

बहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ॥

अत्र केषांचिदुपादानमन्येषामुपलक्षणार्थम् ।

सांख्यायनः—पाद्यमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥

प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ।

आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाऽथ जङ्घयोः ॥

* कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते ।

वाराहे—सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसंध्यादिकक्रियः ।

जितेन्द्रियः सत्यवादी सर्वकर्मसु शस्यते ॥

दक्षः—संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥

तथा—अधौते कारुधौते च परिदध्यान्न वाससी ।

अहतं तु परीदध्यात्सर्वकर्मणि संयतः ॥

कात्यायनः—ईषद्भौतं नवं श्वेतं सदृशं यन्न धारितम् ।

अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥

अन्यत्र तु—अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा ।

शस्तं तन्माङ्गलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा ॥ इत्युक्तम् ।

तथा—कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना ।

सर्वं कर्म प्रकर्तव्यमन्यथा विफलं भवेत् ॥

आपस्तम्बः—आर्द्रवासास्तु यः कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहान् ।

सर्वं तद्राक्षसं विद्याद्वाहिर्जानु च यत्कृतम् ॥

अत्रापवादः । हारीतः—

आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ।

शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ॥

विष्णुपुराणे—होमे देवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।

नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विज(जो?) वाचनिके जपे ॥

शातातपः—सव्यादंसात्परिभ्रटकटिदेशधृताम्बरः ।

एकवस्त्रं तु तं विद्याद्देवे पित्र्ये च वर्जयेत् ॥

मार्कण्डेयः—शिरःस्नातस्तु कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा ।

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥

देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ।

कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः ॥ इति ।

* ख. पुस्तके समासे—वस्त्रादिना कृतकटिजानुवेष्टन इति पुरु. वि. ।

बृद्धमनुः-प्राणानायम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः ।

वामनपुराणे-सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं धरेण्यं वरदं विभुम् ।

नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥

अथाभियुक्तोक्ताः काश्चित्कारिका लिख्यन्ते-

श्रद्धया कर्म कुर्वीत धौतवस्त्रधरो भवेत् ।

अव्यग्रोऽलंकृतो मौनी दम्भासूयादिवर्जितः ॥

आपद्युक्तोऽपि शुद्धः सन्नेव कर्म समाचरेत् ।

जपहोमादिषु नरमन्यं नाकारणात्स्पृशेत् ॥

अबुद्धिपूर्वसंस्पर्शश्चेत्तदा वार्युपस्पृशेत् ।

बुद्धिपूर्वकसंस्पर्शं प्राणायामत्रयं चरेत् ॥

संस्पर्शं प्रतिलोमानां स्नानमेव विधीयते ।

खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत् ॥

कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ।

कार्येयं सप्तभिर्दर्भैर्धार्या श्रोत्रे तु दक्षिणे ॥

कुर्यात्तिलकवान्कर्म वस्त्रद्वययुतस्तथा ।

दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च ॥

साङ्गुष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत् ।

त्रिमात्रः प्रणवो वाच्यः कर्मारम्भे च सर्वदा ॥

उपोषितः कर्म कुर्याद्विध्यनुज्ञे विना सदा ।

पेषणादिकयन्त्रेषु शब्दो यावत्प्रवर्तते ॥

पतितान्त्यजचाण्डालादीनां यावच्च शब्दकः ।

तावत्कर्म न कर्तव्यं तथा संध्याद्वयेऽपि च ॥

अनुलङ्घ्य स्वशास्त्रोक्तविधिं कर्म समाचरेत् ।

कर्मन्यथा कृतं ज्ञात्वा तावदेव पुनश्चरेत् ॥

प्रधानस्याक्रियायां तु साङ्गं तत्पुनराचरेत् ॥

तदङ्गाकरणे प्रायश्चित्तमेव न कर्म तत् ।

कदङ्गस्पर्शने वामो हस्तोऽन्यस्पर्शनेऽन्यकः ॥

नाभ्यधोङ्गान्यसन्ति स्युर्नाभ्यूर्ध्वं स्युस्तु सन्ति वै ।

नाभौ त्वन्यतरो हस्त इति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥

कररोगो यदि तदोभयत्रोभावपि स्मृतौ ।

अवैधं नाभ्यधः स्पर्शं कर्मकाले न चाऽऽचरेत् ॥

रक्तपूयरेतआदिस्पर्शे स्नानं प्रकीर्तितम् ।
 प्राक्संस्थं कर्म देवानामुदग्दिगपवर्गकम् ॥
 उदग्दिक्संस्थमथ वा प्राचीदिगपवर्गकम् ।
 दक्षिणाशापवर्गं तु प्रत्याग्दिक्संस्थमेव हि ॥
 पित्र्यं कर्म प्रकर्तव्यं स्पष्टं यदि वचो भवेत् ।
 अङ्गोपस्पर्शने वस्त्रदशासंस्पर्शने तथा ॥
 छेदने भेदने चैव निरासे खनने तथा ।
 पि(पै)तुके राक्षसे रौद्रे नैर्ऋते चाऽऽभिचारिके ॥
 एतेषु वै निमित्तेषु जलोपस्पर्शनं भवेत् ।
 अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतमापणे ॥
 मार्जारमूपकस्पर्श आक्रन्दे क्रोधसंभवे ।
 निमित्तेष्वेपु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥
 निवीतिता मानुषे स्याद्वैव यज्ञोपवीतिता ।
 प्राचीनावीतिता तु स्यात्पित्र्ये स्पष्टं वचो यदि ॥
 विहारः पृष्ठतो नैव प्रकर्तव्यः कदाचन ।
 पात्राण्याज्यं हविर्वह्निरेतेष्वन्तः क्रमात्परम् ॥
 कर्तारस्तु बहिर्भूता एवैष्वन्तस्तु होमकृत् ।
 बहिर्भूतस्ततो ब्रह्माऽन्येभ्योऽन्तर्भूत ईरितः ॥
 सर्वेष्वेतेषु पत्न्यन्तस्ततोऽप्यन्तः पतिर्भवेत् ।
 एतत्सर्वत्र विज्ञेयं विशेषविधिना विना ॥
 अविज्ञातस्वरा मन्त्राः प्रयोक्तव्याः प्रयोक्तृभिः ।
 एकश्रुत्यैव सर्वत्र जयन्तस्वामिभाषणात् ॥
 सौत्रेण्वृष्यादिविज्ञानं नेत्युक्तं पारिजातके ।
 कर्मशिष्टोदकं कर्मसमाप्तौ तु परित्यजेत् ॥
 अनादेशे दक्षिणा गौर्हम वा पूर्णपात्रकम् ।
 देवकार्ये नैव देयं रजतं त्वश्रुजं हि तत् ॥
 पात्रं पदोपसंस्पृष्टं प्रक्षाल्यं सर्वथा बुधैः ।
 हुतं यन्मांसधौतेन तन्न भुङ्क्ते हि देवता ॥
 पात्राणां शोधनं नातः कार्यं केवलहस्ततः ।
 किं तु दर्भैस्तृणैर्वाऽपि पर्णैर्वा वाससाऽपि वा ॥
 सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतो भवेत् ।
 अभिषेके विप्रपादक्षालने वामतः स्मृता ॥

यन्नाऽऽन्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि यत् ।

आकाङ्क्षितं शेषभूतमनुष्ठेयं विचक्षणैः ॥

तत्कृतौ फलवैशिष्ट्यं न दोषस्त्वकृतौ भवेत् ॥ इति ।

यदा तु प्रमादात्कर्मप्रच्युतिस्तदा प्रजापतिराह—

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

आश्वलायनोऽपि—कर्मकालेऽपि सर्वत्र स्मरोद्विष्णुं हविर्भुजम् ।

तेन स्यात्कर्म संपूर्णं तस्मै सर्वं निवेदयेत् ॥ इति ।

इति शाण्डिल्यकुलसंभवनारायणात्मजत्रयम्बकविरचित

आचारेन्दाबुपोद्धातप्रकरणम् ।

— — —

धीरामं योगिहृदयारामं सौमित्रिसंयुतम् ।

अभीष्टफलसिद्ध्यर्थं सीताछायाङ्कुमाश्रये ॥

आश्वलायनः—अथोच्यते गृहस्थस्य नित्यकर्म यथाविधि ।

यत्कृत्वाऽऽनृण्यमाप्नोति दैवात्पित्र्याञ्च मानुषात् ॥

पराशरः—संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ।

आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने ॥

*संध्यास्नानमित्यत्र यवागूपाकन्यायेन स्नानस्य प्राथम्यं व्याख्येयम् ।

अथात्र ब्राह्ममुहूर्तभारभ्याऽऽस्वापान्तं कर्माण्युच्यन्ते । ब्राह्ममुहूर्तश्च

द्विधा—अन्त्ययामात्मको रात्रेरुपान्त्यमुहूर्तश्च । तत्राऽऽद्यः पितामहे-

नोक्तः—

रात्रेस्तु पश्चिमो यामो मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते ।

द्वितीयस्तु विष्णुपुराणे—

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः ।

स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधनः ॥ इति ।

अत्र कर्तव्यमाह मनुः—

* ख. पुस्तके समाप्ते—स्नानं संध्येत्यपि पाठः । तत्र तु न कश्चिद्दोषः ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत् ।

कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥

वेदतत्त्वार्थः परमात्मा ।

आगमे—ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद्रघुनन्दनम् ।

श्रीपूर्वं जयमध्यस्थं द्विजयान्तं विचक्षणः ॥

अङ्गिराः—उत्थाय पश्चिमे यामे रात्रिवासः परित्यजेत् ।

प्रक्षाल्य हस्तपादास्यान्युपस्पृश्य हरिं स्मरेत् ॥

विष्णुः—उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम् ।

दत्तं वा दापितं वाऽपि वाक्सत्या चापि भाषिता ॥

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम् ।

मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ॥ इति ।

परिशिष्टे—प्रभात इष्टदेवतां मनसा नत्वा तदहःकृत्यं स्मृत्वा धर्मशा-
स्त्रोक्तविधिना मूत्रपुरीषोत्सर्गादि कुर्यादिति । प्रातःस्मरणं च पिताम-
होक्तब्राह्ममुहूर्तमारभ्य कार्यमिति केचित् । अन्ये तु द्वितीयब्राह्ममुहूर्त-
मारभ्य प्रातःस्मरणं कार्यं पितामहोक्तस्तु वेदाभ्यासार्थमित्याहुः । युक्तं
चेतत् । रात्रेरन्तिमयामे तु द्विजो वेदं विचिन्तयेदिति कात्यायनोक्तेः ।
अत्र स्वापे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।

तां करोति तु यो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुध्यति ॥

इदं च प्रायश्चित्तं व्याधिरहितानामेवेत्याचाररत्ने । सूर्यास्तोदयकाल-
स्वापे त्वाश्वलायनः—अव्याधितं चेत्स्वपन्तमादित्योऽभ्यस्तमियाद्वाग्य-
तोऽनुपविशन्नात्रिशेषं भूत्वा येन सूर्यज्योतिषा बाधसे तम इति पञ्च-
भिरादित्यमुपतिष्ठेताभ्युदियाच्चेदकर्मश्रान्तमनभिरूपेण कर्मणा वाग्यत
इति समानमुत्तराभिश्चतसृभिरुपस्थानमिति । अव्याधितं स्वपन्तमा-
दित्य उदयं प्राप्नोत्यस्तमितो वा भवति । यदा रागतः प्राप्तनृत्यादिक-
र्मणा श्रान्त एव निद्रा तदेदं प्रायश्चित्तं विहितकर्मश्रान्ते तु नेत्यर्थः ।

अथ प्रातःस्मरणम् । तत्र ऋग्विधाने—प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रम० ऋक्
६ । प्रातर्यावाणाप्रथ० ऋ० ५ प्राता रथो नवो० ऋ० ७ पुनः पुनर्जाय०
ऋ० १ । वामनपुराणे—

ब्राह्मे मुहूर्ते प्रथमं विबुध्येदनुस्मरेद्देववरान्मुनींश्च । इति ।
 देववराः पश्चाद्यतनदेवतादयः । पश्चाद्यतनदेवताक्रमस्तु पद्मपुराणे—
 आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं यथाक्रमम् ।
 नारायणं विशुद्धाख्यमन्ते च कुलदेवताम् ॥

तत्र तावच्छ्रीसूर्यादेः स्मरणमुक्तं धर्मचिन्तामणौ—

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
 रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
 सप्तमानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
 ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च ।
 वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥
 प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
 तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥

श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेत्तु यः ।
 स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परमं सुखमाप्नुयात् ॥

अथ धीगणेशस्य तत्रैव—

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं
 सिन्दूरपूर्णपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।
 उद्गण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-
 माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥ १ ॥
 प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमान-
 मिच्छानुकूलमखिलं च वरं दधानम् ।
 तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं
 *देवं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥ २ ॥
 प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-
 दावानलं सुरवरं वरकुञ्जरास्यम् ।
 अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाह-
 मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥ ३ ॥

* शिवयोरित्यनुगुणतया पुत्रमिति पठितुं युक्तम् ।

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।

प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥

अथ पार्वतीश्वरयोः—प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां

सद्गलवस्त्रकरकुण्डलहारभूपाम् ।

दिव्यायुधोजितसुनीलसहस्रहस्तां

रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशीम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि महिपासुरचण्डमुण्ड-

शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललोलां

चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं

धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।

संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां

मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठेन्नरः ।

सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं

गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।

खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं

संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं

सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।

विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं

संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं

वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।

नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं

संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ३ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य

श्लोकत्रयं चेऽनुदिनं पठन्ति ।

ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं
हित्वा पदं यान्ति तदैव शंभोः ॥ ४ ॥

अथ श्रीविष्णोः स्कान्दे—

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडघाहनमब्जनाभम् ।
ग्राह्याभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशमकरोद्धृतशङ्खचक्रः ॥ ३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥

अथ श्रीरामावतारस्यान्यत्र—

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलगण्डशोभं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं
रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्वाजसंसदि विभज्य महेशचापं
सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं
पद्माङ्कुशादिशुभरेखि शुभावहं मे ।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं
शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥ ३ ॥
प्रातः श्रये श्रुतिमितां रघुनाथमूर्तिं

नीलाम्बुजेक्षणसितेतररत्ननीलाम् ।
 आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां
 ध्येयां समस्तमुनिभिर्हृदयार्तिहन्त्रीम् ॥ ४ ॥
 प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम
 वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति ।
 यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा
 प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥ ५ ॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं नियतः पठेत्
 नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
 श्रीरामकिंकरजनेषु स एव मुख्यो
 भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥ ६ ॥

वामनपुराणे—ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
 गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ १ ॥

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाऽऽपः स्पर्शी च वायुर्ज्वलनं च तेजः ।
 नभः सशब्दं महता सहैव कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २ ॥
 सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त ।
 भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ ३ ॥
 इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या ।
 दुःस्वप्नाशोऽनघ सुप्रभातं भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥ ४ ॥
 धैर्यं पृथुं हैहयमर्जुनं च शाकुन्तलेयं भरतं नलं च ।
 रामत्रयं यः स्मरति प्रभाते तस्यार्थलाभो विजयश्च सिद्धिः ॥ ५ ॥

व्यासः—महर्षिर्भगवान्व्यासः कृत्वेमां संहितां पुरा ।

श्लोकैश्चतुर्भिर्धर्मात्मा पुत्रमध्यापयच्छुक्रम् ॥ १ ॥
 मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
 संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ २ ॥
 हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
 दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ २ ॥
 ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
 धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ३ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभान्द्रुमं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥४॥

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।

स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५ ॥

तथा—पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।

पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥ १ ॥

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः ।

कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥ २ ॥

सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।

जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ ३ ॥

अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा ।

पञ्चकं न्या (ना) स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥

ततो भूप्रार्थना पारिजाते—समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

अथ मङ्गलदर्शनम् । कात्यायनः—

श्रोत्रियं सुभगं गां च अग्निमग्निचितं तथा ।

प्रातरुत्थाय यः पश्येदापञ्चः स प्रमुच्यते ॥

रोचनं चन्दनं गन्धान्मृदङ्गं दर्पणं मणिम् ।

गुरुमग्निं रविं पश्येन्नमस्येत्प्रातरेव हि ॥

पारिजाते—अवलोक्यो न चाऽऽदर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ।

तथा—आदर्शदर्शी दर्शं चेद्भानुवारे विशेषतः ॥

सप्तजन्म भवेदन्धो दरिद्रः सोऽपि जायते ।

ब्राह्मे—उत्थाय मातापितरौ पूर्वमेवाभिवादयेत् ॥

आचार्यश्च ततो नित्यमभिवाद्यो विजानता ।

अथादर्शनीयाः । कात्यायनः—

पापिष्ठं दुर्भगं चान्धं नग्नमुत्कृत्तनासिकम् ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येत्तत्कलेरुपलक्षणम् ।

क्वचिदन्धमित्यस्य स्थाने मत्तमिति पाठः । बालव्यतिरिक्तोऽत्र नम्रो
षिषक्षित इति पारिजाते । इति प्रबोधविधिः ।

अथ मूत्रपुरीषोत्सर्गविधिः । तत्र पराशरः—

ततः प्रातः समुत्थाय कुर्याद्विण्मूत्रमेव च ।

नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥

मनुः—न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ।

न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥

बृहन्नारदीये—पथि गोष्ठे नदीतीरे तडागे कूपसंनिधौ ।

तथा च वृक्षच्छायायां कान्तारे वह्निसंनिधौ ॥

देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे ।

ब्राह्मणानां समीपे तु तथा गोगुरुयोपिताम् ॥

तुपाङ्गारकपालेषु जलमध्ये तथैव च ।

एवमादिषु देशेषु मलमूत्रं न कारयेत् ॥

स्मृत्यन्तरे—दशहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् ।

शतहस्तं पुरीषं च तीर्थं नद्याश्चतुर्गुणम् ॥

अङ्गिराः—उत्थाय पश्चिमे यामे तत आचम्य चोदकम् ।

अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥

वाचं नियम्य यत्नेन धीवनोच्छ्वासवर्जितः ।

कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुची देशे समाहितः ॥

याज्ञवल्क्यः—दिवा संध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।

कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेदक्षिणामुखः ॥

कर्णश्चात्र दक्षिणः । पवित्रं दक्षिणे कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत् ।

इति लिङ्गपुराणोक्तेः । पवित्रमुपवीतमिति महेशादयः । अङ्गिरास्तु

विकल्पेन स्थानान्तरमाह—

कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् ।

विण्मूत्रं तु गृही कुर्याद्यद्वा कर्णे समाहितः ॥

तत्र कर्णे निधानमेकवस्त्रविषयम् । तथा च सांख्यायनः—यद्येक-

वस्त्रो यज्ञोपवीतं कर्णे कृत्वा मूत्रपुरीषोत्सर्गौ कुर्यादिति । कर्णे निधानं

पृष्ठतः कण्ठलम्बितं वा निवीतिनैव कार्यम् । तदुक्तमात्रिणा—

ऋषितर्पणचाण्डालभाषणे शववाहने ।

विण्मूत्रोत्सर्जने स्त्रीणां रतिसङ्गे निवीतयः ॥

सायणीये—गृहीत्वा जलपात्रं तु विण्मूत्रं कुरुते यदि ।

तज्जलं मूत्रसदृशं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

मलमूत्रं समुत्सृज्य विस्मृत्यैवोपवीतधृत् ।

उपवीतं तदुत्सृज्य दध्यादन्यन्नवं तदा ॥

आपस्तम्बः—न च सोपानत्को मूत्रपुरीषे कुर्यादिति । इदं च यात्राद्युप-
युक्तोपानत्परम् । सोपानत्कः सोदपात्र इति यात्राप्रकरण आचारच-
न्द्रिकायामुक्तेः । सोपानत्सकमण्डलुरिति ग्रन्थान्तराच्च ।

यमोऽपि—प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् ।

दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत गामग्निं ब्राह्मणं तथा ॥

मलमूत्रयोर्धेगं न धारयेत् । नोपरुद्धः क्रियां कुर्यादिति वचनात् ।
इति मूत्रपुरीषोत्सर्गविधिः ।

अथ शौचविधिः । याज्ञवल्क्यः—

गृहीतशिश्रश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धतेर्जलेः ।

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥ इति ।

दिङ्नियममाह ब्रह्माण्डे—

उद्धतोदकमादाय मृत्तिकां चैव वाग्यतः ।

उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेदक्षिणामुखः ॥

सुसंख्यामाह शातातपः—

एका लिङ्गे करे सव्ये तिस्रो द्वे हस्तयोर्द्वयोः ।

मूत्रशौचं समाख्यातं शकृति त्रिगुणं भवेत् ॥

माधवीये तु—एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।

उभयोः सप्त दातव्या सृदः शुद्धिमभीप्सता ॥ इति ।

एवं च संख्याविशेषेऽधिकसंख्या मुख्यकल्पः । अल्पसंख्या त्वनुकल्प
इति विवेक्तव्यमिति भट्टोजीये । शक्ताशक्तभेदेन व्यवस्थेत्यन्ये । उक्त-
संख्यया गन्धलेपानपगमे देवलः—

यावत्तु शुद्धिं मन्येत तावच्छौचं विधीयते ।

प्रमाणं शौचसंख्यायां न विप्रैरुपदिश्यते ॥

केवलमूत्रोत्सर्गे दक्षः—एका लिङ्गे तु सव्ये त्रिरुभयोर्मुदद्वयं स्मृतम् ।

मूत्रशौचं समाख्यातं मैथुने द्विगुणं स्मृतम् ॥

बृहन्नारदीये—तिस्रस्तिस्रः प्रदातव्याः पादयोर्मृत्तिकाः पृथक् ।

आश्वलायनः—लिङ्गशौचं पुरा कृत्वा गुदशौचं ततः परम् ।

मनुः—एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥

त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां स्याच्चतुर्गुणम् ॥ इति ।

देवलः—धर्म्यं वै दक्षिणं हस्तमधःशौचे न योजयेत् ।

तथा च वामहस्तेन नाभेरूर्ध्वं न शोधयेत् ॥

ऋष्यशृङ्गः—धाराशौचं न कर्तव्यं शौचसिद्धिमभीप्सुना ।

चुलुकेनैव कर्तव्यं हस्तशुद्धिविधानतः ॥

आदित्यपुराणे—स्त्रीशूद्रयोरर्धमानं प्रोक्तं शौचं मनीषिभिः ।

दिवा शौचस्य निश्चयं पथि पादं विधीयते ॥

आर्तः कुर्याद्यथाशक्ति शक्तः कुर्याद्यथोदितम् ।

तथा—स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां चोपवीतितः ॥

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यान्न संख्यया ।

एकैकया मृदा पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥

विवस्वान्—देशान्तरगतो विप्रः क्षालयेत्तच्च भूतलम् ।

शौचशेषां मृदं तोयैर्न हि प्रक्षालयेद्यदि ॥

अशेषास्तस्य पितरस्तामश्नन्ति न संशयः ।

देशान्तरगतो देशान्तरस्थः सन् । अथ पादप्रक्षालनं स्मृतिदीपिकायाम्—

प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः ।

न हसन्नैव संजल्पन्नाऽऽत्मानमवलोकयन् ॥

इत्येवं मृद्धिराजानु प्रक्षाल्य चरणां पृथक् ।

हस्तावामणिवन्धाच्च कुर्यादाचमनं ततः ॥

पारिजात आचार्यः—पाण्योः कूर्परयोरद्भिर्मृद्धिः प्रक्षाल्य चाम्बुभिः ।

आपस्तम्बस्तु—प्रत्यक्पादावनेजनमित्याह । हस्तशौचोत्तरमुपवीती भूत्वा पादशौचं कुर्यादिति पारिजात आचाररत्ने च । आचारार्के तु—पादशौचगण्डूषकरणोत्तरमुपवीती भूत्वा द्विराचामेदित्युक्तम् । पादशौचे क्रमः ।

स्मृत्यन्तरे—शौचाहृते वामपादे पूर्वं न क्षालनं भवेत् ।

शौचे तु वामपूर्वं स्यादन्यत्र दक्षिणं सदा ॥ इति ।

आश्वलायनस्तु—स्वपादं पाणिना विप्रो वामेन क्षालयेत्सदा ।

शौचे दक्षिणपादं तु पश्चात्सर्व्वं करावुभौ ॥

शौचं विना सदाऽन्यत्र सर्व्वं प्रक्षाल्य दक्षिणम् ॥ इत्याह ।

आश्वलायनैस्त्वयमेव पक्षः स्वीकार्यः । एवमुक्तशौचकरणेऽपि यस्य भावशुद्धिर्नास्ति न तस्य शुद्धिरित्याह व्याघ्रपादः—

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथाऽऽन्तरम् ॥

गङ्गातोयेन कृत्स्नेन मृद्गैश्च नगोपमैः ।

आ मृत्योश्चाऽऽचरञ्छौचं भावदुष्टो न शुध्यति ॥ इति ।

बौधायनः—देशं कालं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।

उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥

शौचस्य द्विविधस्यापि सर्वकर्माधिकारहेतुत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यां दृक्षो दर्शयति—

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।

शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥

उक्तशौचाकरणे प्रायश्चित्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

गायत्र्यष्टशतं चैव प्राणायामत्रयं तथा ॥ इति ।

केचित्तु—विष्णुस्मरणमेवात्र सर्वदोषनिवर्हणम्—

इति वचनाद्विष्णुस्मरणं वा कार्यमित्याहुः ।

व्यासोऽपि—अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।

यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

गण्डूपाणाहाऽऽश्वलायनः—

कुर्याद्वादश गण्डूपान्पूरीपोत्सर्जने द्विजः ।

मूत्रे चत्वार एव स्युर्भोजनान्ते तु षोडश ॥

भक्ष्यभोज्यावसाने च गण्डूपाष्टकमाचरेत् ।

गण्डूपदेशः पारिजाते—पुरतः सर्वदेवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा ।

ऋषयः पृष्ठतः सर्वे वामे गण्डूपमाचरेत् ॥

अथ प्रयोगः । पूर्वोक्ते ब्राह्ममुहूर्ते उत्थाय वस्त्रान्तरं धृत्वा हस्तपाद-
मुखानि प्रक्षाल्याऽऽचम्येष्टदेवतां नमस्कृत्य प्रातः स्मरणीयं विधाय
ग्रामाद्वहिर्नैर्कृत्यामिषुक्षेपात्यये शुद्धमृत्तिकां ससिकतां जलपात्रं चाऽऽ-
दाय कीटादिरहितस्थलं गत्वा मृज्जलपात्रे निधाय तृणाद्यन्तर्हितभूमौ
प्रावृतशिरा निवीती पृष्ठतः कण्ठलम्बितयज्ञोपवीतो यद्येकवस्त्रश्चेद्(स्रो-
द)क्षिणकर्णे निहितनिवीतयज्ञोपवीतो मौनी घ्राणास्ये पिधाय दिवा

संध्यासूदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखो मूत्रपुरीषे उत्सृज्य लोष्टादिना गुदं प्रसृज्य गृहीतशिश्रु उत्थाय पूर्वगृहीतमृज्जलपात्रे गृहीत्वाऽऽर्द्रामलकमात्रमृज्जलैर्द्विवारं लिङ्गशौचं कृत्वा मृज्जलैस्त्रिवारमपानं संशोध्य पुनर्जलैरेव लिङ्गगुदे प्रक्षाल्य शुद्धमृत्तिकयैकवारं हस्तं प्रक्षाल्य शुद्धभूमिमागत्यान्यमृज्जलैर्दशवारं वामकरं प्रक्षाल्य ततः करद्वयं सप्तवारं मृज्जलैः प्रक्षाल्य दक्षिणवामपादौ प्रत्येकं त्रिः प्रक्षाल्यान्यजलेन द्वादश गण्डूषान्वामभागे कृत्वा जलपात्रं त्रिः प्रक्षाल्योपवीती द्विराचामेत् । मूत्रमात्रोत्सर्गे तु पूर्ववदेकवारं लिङ्गं प्रक्षाल्य वामकरं त्रिः प्रक्षाल्य करद्वयं द्विः प्रक्षाल्यैकैकया मृदा पादौ प्रक्षाल्य गण्डूषचतुष्टयं विधायाऽऽचामेत् । इति शौचप्रकरणम् ।

अथाऽऽचमनम् । वृद्धपराशरः—

कृत्वाऽथ शौचं प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च मृज्जलैः ।

निबद्धशिखकच्छस्तु द्विज आचमनं चरेत् ॥

आचमनं तावन्निविधम्—श्रौतं स्मार्तं पौराणं चेति । तत्र प्रत्यक्षश्रुतिचोदितं श्रौतम् । सूत्रपरिशिष्टस्मृतिषूक्तं स्मार्तम् । केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वेत्याद्यगस्त्यसंहिताद्युक्तं पौराणम् । अथैतेषां विनियोगः स्मृतौ—

संध्यायां कर्मकाले च स्मृतेराचमनं भवेत् ।

ब्रह्मयज्ञे च वै कुर्याच्छ्रुतेराचमनं द्विजः ॥

तथा—शौचाचारे तथा पाने स्पृष्टास्पृष्टे च सर्पणे ।

पुराणाचमनं कुर्यान्नामभिः केशवादिभिः ॥

कमलाकराह्निके—संध्यादौ ब्रह्मयज्ञे च होमे देवार्चने तथा ।

श्रौतमाचमनं प्रोक्तं स्मार्तं स्मार्तं तथा स्मृतम् ।

पौराणमथवा कार्यं संध्यायां श्राद्धकर्मणि ।

विधानपारिजाते—संध्यादौ ब्रह्मयज्ञे च होमे देवार्चने तथा ॥

श्रौतमेव द्विजैः कार्यमिति बौधायनोऽब्रवीत् ।

पौराणमथ वा स्मार्तं श्रौतमाचमनं तथा ॥

तत्तत्कर्मणि कुर्वीत यथेष्टं वा विधीयते ।

तत्र श्रौतमाचमनं तैत्तिरीयारण्यकस्थं ब्रह्मयज्ञाङ्गं तत्प्रकरणे वक्ष्यामः । परिशिष्टोक्तं स्मार्ताचमनं तु संध्याप्रयोगे वक्ष्यामः । पौराणं तु अगस्त्यस्य संहितायाम्—

केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करी ।
 द्वाभ्यामोष्ठौ तु संमृज्य द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा ॥
 एकेन हस्तं प्रक्षाल्य पादावपि तथैकतः ।
 संप्रोक्ष्यैकेन मूर्धानं ततः संकर्षणादिभिः ॥
 आस्यं नासाक्षिकर्णौ च नाभिहृत्कं भुजौ स्पृशेत् ।
 एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत् ॥

शङ्खः—तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ॥
 कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयं च तलेन वै ।
 सर्वाभिस्तु ततः शीर्षं बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥

आचमनसाधारणविधिमाह योगी—

अन्तर्जानु शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः ।
 प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥
 कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च ।
 प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥

आचमनीयमुदकं विशिनष्टि शङ्खः—

अद्भिः समुद्धृताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।
 वह्निना न च तप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥

याज्ञवल्क्योऽपि—अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः
 हृत्कण्ठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः ॥
 शुध्येरन्ध्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ।

तृतीयार्थं तसिः । अन्तेन तालुना स्पृष्टाभिरित्यर्थः ॥

अपः करनखस्पृष्टाः समाचामति यो द्विजः ।

सुरां पिबति सुव्यक्तां यमस्य वचनं यथा ॥

संध्याभाष्ये—नाऽऽचामेदासनस्थाङ्घ्रिर्न बद्धासन एव वा ।

पवित्रकर आचामेदिति । पवित्रं हिरण्यम् । “पवित्रं वै हिरण्यम् ।”

इति श्रुतेः । अस्यापवादमाह यमः—

मधुपर्के भोजनान्ते संध्यादौ नित्यकर्मणि ।

आसनस्थोऽपि चाऽऽचामेदन्यत्र कुक्कुटासनः ॥

विष्णुः—जान्वोरुद्धं जले तिष्ठन्नाचान्तः शुचितामियात् ।

अधस्ताच्छतकृत्वोऽपि समाचान्तो न शुध्यति ॥

अधस्ताज्जान्वोः । यत्र जलस्याल्पता तत्रोपविश्याऽऽचामेत् । इति ।
तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—

उपविष्टः समाचामेज्जानुमात्रादधो जले ।

प्रचेताः—अनुष्णाभिरफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा ॥

हृद्गताभिरशब्दाभिस्त्रिश्चतुर्वाऽद्भिराचमेत् ॥ इति ।

अत्रापवादमाह यमः—रात्राववीक्षितेनापि शुद्धिरुक्ता मनीषिणाम् ।

उदकेनाऽऽतुराणां च तथोष्णेनोष्णपायिनाम् ॥

उदकस्य ग्रहणप्रकारं परिमाणं चाऽऽह भरद्वाजः—

आयतं पूर्वतः कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्करम् ।

संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः ॥

मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाऽऽचमनं चरेत् ।

मापमज्जनमात्रास्तु संगृह्य त्रिः पिबेदपः ॥ इति ।

अत्र मापः सुवर्णस्य तदुक्तमाचारप्रकाश उशनसा—मापसुवर्णमज्ज-
नमात्रा हृदयंगमा इति । अन्वारम्भमाह यमः—

तावन्नोपस्पृशेद्विद्वान्यावद्वामेन न स्पृशेत् ।

दक्षिणं करमिति शेषः । आचारप्रदीपे—

दक्षिणे संस्थितं तोयं तर्जन्या सव्यपाणिना ।

ततोयं स्पृशते यस्तु सोमपानफलं भवेत् ॥

केचित्त्विदं निर्मूलमित्याहुरिति द्योते(?) स्मृत्यर्थसारे—सौवर्णरौप्यपा-
त्रैस्तु वेणुबिल्वाश्मचर्मभिः । वामेनोद्धृत्य चाऽऽचामेदिति । पारिजाते
संग्रहे—

करकालाबुपात्रेण ताम्रपात्रपुटेन च ।

गृहीत्वा स्वयमाचामेद्भूमिलग्रेन नान्यथा ॥

अत्र भूमिलग्रेत्वे मानं चिन्त्यम् । वामेनोद्धृत्येति स्मृत्यर्थसारविरो-
धादित्याचाररत्ने । कमलाकरे मनुः—

कांस्येनाऽऽयसपात्रेण त्रपुसीसकपित्तलैः ।

आचान्तः शतकृत्वोऽपि न कदाचन शुध्यति ॥

शौनकः—ताम्रपात्रस्थितैर्वाऽपि तथा तोयाशयस्थितैः ।

कुर्वन्नाचमनं विप्रो नित्यं खानि समालभेत् ॥

पौराणाचमनप्रयोगः । शुचौ देशे भूमिष्ठपादोऽन्तर्जानुहस्तः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वोपविश्य संहताङ्गुलिना शुद्धजलं गृहीत्वा मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठिकेन वामान्वारब्धेन पाणिना ब्रह्मतीर्थेन ॐ केशवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ माधवाय नमः । इति त्रिभिर्नामभिस्त्रिः पिवेत् । प्रणवाद्यता नमोऽन्तता च सर्वत्र । ॐ गोविन्दाय० ॐ विष्णवे० इति द्वाभ्यां करौ प्रक्षाल्य ॐ मधुसूदनाय० ॐ त्रिविक्रमाय० इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठमूलेनौष्ठौ संस्पृज्य ॐ वामनाय० ॐ श्रीधराय० इति द्वाभ्यां तथैव मुखमुन्मार्ज्य ॐ हृषीकेशाय० इति वामकरं प्रोक्ष्य ॐ पद्मनाभाय० इति पादौ संप्रोक्ष्य ॐ दामोदराय० इति मूर्धानं संप्रोक्ष्य ॐ संकर्षणाय० इति संहतमध्यमाङ्गुलित्रयेणाऽऽस्यं संस्पृश्य ॐ वासुदेवाय० ॐ प्रद्युम्नाय० इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटे संस्पृश्य ॐ अनिरुद्धाय० ॐ पुरुषोत्तमाय० इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य ॐ अधोक्षजाय० ॐ नारसिंहाय० इति द्वाभ्यां तथैव श्रोत्रे संस्पृश्य ॐ अच्युताय० इति कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य ॐ जनार्दनाय० इति पाणितलेन हृदयं संस्पृश्य ॐ उपेन्द्राय० इति सर्वाङ्गुल्यग्रैः शिरः संस्पृश्य ॐ हरये० ॐ कृष्णाय० इति द्वाभ्यां तथैव दक्षिणवामबाहुमूले स्पृशेत् । एतत्प्रत्यङ्गमद्भिः संस्पृशन्नाचामेत् । इमानि नामानि प्रथमैकवचनान्तानि संबुध्यन्तानि षोडश्याणीत्याह्निकचन्द्रिकायाम् ।

अथाऽऽचमनानुकल्पाः । तत्र स्मृत्यर्थसारे—

त्रिः पीत्वा हस्तं प्रक्षाल्य दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।

मार्कण्डेये—कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥

कुर्वीताऽऽलम्भनं वाऽपि दक्षिणश्रवणस्य तु ।

यथाविभवतो ह्येतत्पूर्वालाभे ततः परम् ॥

न विद्यमाने पूर्वत्र उत्तरप्राप्तिरिष्यते ।

अत्राऽऽचमनशब्देन जलस्पर्शमात्रम् । अर्केति चन्द्रस्याप्युपलक्षणमिति यतिधर्मप्रकाशे ।

याज्ञवल्क्यः—गङ्गा च दक्षिणश्रोत्रे नासिकायां हुताशनः ।

उभयोः स्पर्शने चैव तत्क्षणादेव शुध्यति ॥

बौधायनः—नीवीं विस्रस्य परिधायोपस्पृशेदार्द्रतृणं भूमिं गोमयं वा संस्पृशेदिति । इत्याचमनानुकल्पाः ।

अथ सकृदाचमननिमित्तानि ।

मनुः—प्राणस्याऽऽयमनं कृत्वा आचामेत्प्रयतोऽपि सन् ।

आन्तरं खिद्यते यस्मात्तस्मादाचमनं स्मृतम् ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ।

वेदमध्येप्यमाणश्चाप्यन्नमश्रुश्च सर्वदा ॥

कौर्मै—चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभोजने ।

उच्छिष्टपुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ॥

आचामेदश्रुपाते च लोहितस्य तथैव च ।

यमः—उत्तीर्योदकमाचामेदवतीर्य तथैव च ॥

मार्कण्डेय—देवार्चनादिकर्माणि तथा गुर्वभिवादनम् ।

कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदेव भुजिक्रियाम् ॥

क्षुते निष्ठीवने सुप्ते परिधानेऽश्रुपातने ।

पञ्चस्वेतेषु चाऽऽचामेच्छ्रोत्रं वा दक्षिणं स्पृशेत् ॥

कौर्मै—अग्नेर्गवामथाऽऽलम्भे स्पृष्ट्वाऽप्रयतमेव वा ।

स्त्रीणामप्यात्मनः स्पर्शं नीवीं वा परिधाय च ॥

केशानामात्मनः स्पर्शं वाससोऽक्षालितस्य च ।

छन्दोगपरिशिष्टे—पित्र्यमन्त्रानुद्ववणे आत्मात्मनेऽधमेक्षणे ॥

बृहस्पतिः—अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ।

मार्जारमूषकस्पर्शं आकुटे क्रोधसंभवे ॥

निमित्तेष्वेपु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नुपस्पृशेत् ।

मार्जारमूषकस्पर्शोऽत्र मार्जार[मूषक]कर्तृकः । पुरुषकर्तृकस्पर्शं तु

अभोज्यसूतिकाण्डमार्जाराखूंश्च कुक्कुटानित्यादिना मार्कण्डेये स्नान-

विधानात् । एतत्स्नानमुच्छिष्टसमये वेदितव्यं समाचारादिति । आपस्त-

म्बः—स्वप्ने क्षवथौ सिङ्घाणिकाश्चाऽऽलम्भ इत्यादि । सिङ्घाणिका

नासामलम् । अश्रु नेत्रजलम् । इति सकृदाचमननिमित्तानि ।

अथ द्विराचमननिमित्तानि । याज्ञवल्क्यः—

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ।

आचान्तः पुनराचामेद्वासो विपरिधाय च ॥

पैठीनसिः—रथ्यामाक्रम्य कृतमूत्रपुरीषः पञ्चनखास्थ्यस्नेहं स्पृष्ट्वाऽऽ-

चान्तः पुनराचामेच्चण्डालम्लेच्छसंभाषणे च । कौर्मै—

ओष्ठी विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ।
 रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गे शुक्तभाषणे ॥
 ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ।
 चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः ॥
 संधयोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ।

शुक्तभाषणमनृतवाक्यम् ।

व्यासः—दाने भोजनकाले च संधयोरुभयोरपि ।

आचान्तः पुनराचामेज्जपहोमार्चनादिषु ॥

बौधायनः—भोजने हवने दान उपहारे प्रतिग्रहे ।

हविर्भक्षणकाले च तद्विराचमनं स्पृष्टम् ॥

इति द्विराचमननिमित्तानि । अथाऽऽचमनापवादः ।

दन्तलग्ने फले मूले भुक्तस्नेहे तथैव च ।

ताम्बूले चक्षुदण्डे च नोच्छिष्टो भवति द्विजः ॥

उच्छिष्टस्याऽऽचमनविधानात्तद्वताप्रायत्याभावोक्त्याऽऽचमनमपोद्यते ।
 स्नेहोऽत्र कृताचमनस्यापि यो हस्तादिलग्नो भोजनस्नेहः[स]इति हेमाद्रिः ।

याज्ञवल्क्यः—मुखजा विप्रुषो मेध्यास्तथाऽऽचमनचिन्दवः ।

श्मश्रु चाऽऽस्यगतं दन्तसक्तं त्यक्त्वा ततः शुचिः ॥

मुखजाताः श्लेष्मविप्रुषोऽङ्गेष्वादिपतिता मेध्याः ।

स्मृत्यर्थसारे—वेदाभ्यासे मुखजजाताः शुद्धा एव तु सर्वतः ॥

स्मृत्यन्तरे—द्राक्षादीनि कलानीक्षून्पयो मूलं फलं दधि ।

ताम्बूलमौषधं पत्रं हविर्भुक्त्वाऽपि नाऽऽचमेत् ॥

पट्टत्रिंशन्मते—त्वग्भिः पत्रैर्मूलफलैस्तृणकाष्ठमयैस्तथा ।

सुगन्धिभिस्तथा द्रव्यैर्नोच्छिष्टस्तु भवेद्द्विजः ॥

यमः—प्रयान्त्याचामतो याश्च शरीरे विप्रुषो नृणाम् ।

उच्छिष्टदोषो नास्त्यत्र भूमितुल्यास्तु ताः स्मृताः ॥

बौधायनः—दन्तवदन्तलग्नेषु यच्चाप्यन्तर्मुखे भवेत् ।

आचान्तस्यावशिष्टं तु निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥

एतच्च निगिरणं याज्ञवल्क्योक्तत्यागेन विकल्पते । न चैवकारवैयर्थ्यम् ।

चर्वणे त्वाचमेन्नित्यं मुक्त्वा ताम्बूलभक्षणम् ॥

इति विष्णूक्ताचमननिषेधार्थत्वात् । दन्तवदिति बौधायनवचनं रसानुपलभ्ये ज्ञेयम् । दन्तवदन्तलग्नेषु रसवर्जमन्यत्र जिह्वाभिमर्शनादिति शङ्खोक्तेः ।

वसिष्ठः—प्राणाहुतिषु सोमे च मधुपर्के तथैव च ।

आस्यहोमेषु सर्वेषु नोच्छिष्टो भवति द्विजः ॥

आस्यहोमा दृष्टावशिष्टभक्ष्याः । इत्याचमनापवादः । इत्याचारेन्दावाचमनप्रकरणम् ।

अथ दन्तधावनम् । भारते—

प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च मुखं च सुसमाहितः ।

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य कृत्वा जान्वन्तरे ततः ॥

प्राङ्मुखश्चोपविष्टस्तु भक्षयेद्वाग्यतो नरः ।

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्योपवीती भूत्वेत्यर्थ इति दत्तमहेशादयः । अत्र दन्तधावनस्य दन्तसंबन्धमात्रेण भक्षणशब्दप्रयोगः ।

आश्वलायनः—एवमाचम्य दन्तानां काष्ठेन न (नि)मृजेन्मलम् ।

प्राग्वोदङ्मुख आसीनः प्राङ्मुख एव वा ॥

वितस्तिमात्रमुद्दिष्टं दन्तकाष्ठं द्विजन्मनाम् ।

कनिष्ठाङ्गुलिवत्स्थूलं तदग्रकृतकूर्चकम् ॥ इति ।

अङ्गिराः—आयुरित्यादिमन्त्रोऽयमुक्तः शाखाभिमन्त्रणे ।

उपरितनदन्तानारभ्य निमृजेत् । तत ऊर्ध्वक्रमेणैव धावयेच्छाखया तथेत्यङ्गिरःस्मरणात् । ततः काष्ठं प्रक्षाल्य नैर्ऋत्यां त्यजेत् । राक्षस्यामुत्सृजेत्काष्ठमित्याश्वलायनस्मरणात् । सूर्योदयोत्तरं दन्तकाष्ठेन दन्तधावननिषेधमाहाऽऽश्वलायनाचार्यः—

पुरोदयाद्भवेस्त्वद्याज्ञोदितेऽस्तमिते रवौ ।

अथ ग्राह्याणि दन्तकाष्ठानि नारसिंहे—

खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा ।

तिन्तिडी वेणुपृष्ठं च आम्रनिम्बौ तथैव च ॥

अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चौडुम्बरस्तथा ।

वदरीतिन्दुकास्त्वेते प्रशस्ता दन्तधावने ॥

आश्वलायनः—सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च विशेषतः ।

भक्तिचन्द्रोदये—दन्तकाष्ठं प्रकुर्वीत जिह्वोलेखनिकां तथा ॥

एकेनैवोभयं कुर्वन्दुःखदारिद्र्यमाप्नुयात् ।

निषिद्धकालेऽपि जिह्वोलेखः कार्य एव । तथा च व्यासः—

प्रतिपद्दर्शपष्ठीषु नवभ्यां दन्तधावनम् ।

पर्णैरन्यत्र काष्ठैस्तु जिह्वोलेखः सदैव हि ॥ इति ।

दन्तधावने निषिद्धकाल आचाररत्ने—

नन्दास्वष्टमिरन्ध्रयोर्व्रतदिने दर्शे रवौ भूमिजे

श्राद्धे जन्मदिने चतुर्दशियुगे क्रान्तौ व्यतीपातके ।

द्वादश्यां निजजन्मभे परतरे तत्पूर्वभे पौर्णमा-

स्यां माङ्गल्यदिनोपवासदिनयोश्छायासुते वा भृगौ ॥

अथ दन्तकाष्ठालाभे निषिद्धकाले च कथं कर्तव्यमिति चेदाह व्यासः—

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा ।

अपां द्वादशगण्डूपैर्विदध्यादन्तधावनम् ॥

स्मृत्यर्थसारे तु—तृणपर्णैर्मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्वा निषिद्धाहेऽपि कुर्यु-
रिति स्थितम् ।

पैठीनसिरपि तृणपर्णोदकेनाङ्गुल्या वा दन्तान्धावयेत्पदेशिनीवर्ज-
मिति । आचारप्रकाश आश्वलायनस्तु—

नाङ्गुलीभिश्च मृद्धिश्च पर्णैर्लोष्ठैश्च भस्मना ।

नाऽऽयसैश्च तथा लोहैः सर्वैर्दन्तान्मृजेद्विजः ॥ इत्याह ।

तत्रैव वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

इष्टकालोष्ठपापाणैर्नखैरङ्गुलिभिस्तथा ।

मुक्त्वा त्वनामिकाङ्गुष्ठौ वर्जयेदन्तधावनम् ॥

अङ्गारवालुकापर्णतृणवस्त्रनखादिभिः ।

न दन्तधावनं कुर्याच्छ्रीकामी दूषिते दिने ॥

अत्र सर्ववचनैकवाक्यतया निष्कर्षस्तु—तृणपर्णयोर्विहितप्रतिषिद्ध-
त्वाद्विकल्पः । अनामाङ्गुष्ठावुत्तमौ । मध्यमायाः कनिष्ठिकायाश्च विहि-
तप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पः । तर्जनी तु सर्वमते निन्द्या । अथ प्रयोगः ।
निषिद्धदिनातिरिक्तेषु दिनेषु प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा द्वादशाङ्गुलप्र-
माणं कनिष्ठाङ्गुलिवत्स्थूलं चूर्णीकृताग्रमपामार्गोदुम्बरादिविहितं काष्ठं
प्रक्षालितं गृहीत्वा—

ॐ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।

ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

इत्यभिमन्त्र्योपरितनदन्तक्रमेण प्रादक्षिण्येन सर्वाञ्छोधयित्वा तत् काष्ठं नैर्ऋत्यां निरस्याप उपस्पृश्य पुनस्तादृशेनैव जिह्वोल्लेखनेन जिह्वां संशोध्य द्वादश गण्डूपान्कृत्वाऽऽचामेत् । निषिद्धदिने तु जम्बूपृष्ठाभ्र-
पर्णैर्मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्द्वादशगण्डूपैर्वा दन्ताञ्छोधयेत् । इति दन्त-
धावनप्रकरणम् ।

अथ केशप्रसाधनं बन्धनं च । विष्णुपुराणे —

स्वाचान्तस्तु पुरः कुर्यात्पुमान्केशप्रसाधनम् ।

मार्कण्डेये—दक्षिणाभिमुखो यस्तु विदिक्स्संमुख एव च ॥

केशान्संस्क्रुते मर्त्यो धननाशं स विन्दति ।

शौनकः—स्मृत्योक्तं च गायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां ततः ॥

ततो दन्तधावनानन्तरमित्यर्थ इत्याचारप्रकाशे । तच्च बन्धनं दक्षि-
णभागे । तदुक्तं सुमन्तुना—

गायत्र्या तु शिखां बद्ध्वा नैर्ऋत्यां ब्रह्मरन्ध्रतः ।

पश्चात्तु जुष्टिकां बद्ध्वा सर्वकर्म समारभेत् ॥

शिखाया ब्रह्मग्रन्थिः कार्यः ।

तर्जनीं रौप्यसंयुक्तां ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ॥

भोजने मैथुने मूत्रे कुर्वन्कृच्छ्रेण शुध्यति ।

इति रत्नमालाधृतसंग्रहवचनेन भोजनादित्रिष्वेव तस्य प्रतिषेधात् ।
इति केशप्रसाधनबन्धने । अथ कुशप्रकरणम् ।

कुशहस्तेन यज्जप्तं दानं चैव कुशैः सह ।

कुशहस्तैश्च यत्स्नानं तस्य संख्या न विद्यते ॥

कुशपूतं भवेत्स्थानं कुशेनोपस्पृशेद्विजः ।

कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानेन संमितम् ॥

उपस्पृशेदाचामेत् । स्मृत्यन्तरे—

स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि ।

करौ सदभौ कुर्वीत तथा संध्याभिवादाने ॥

कात्यायनः—सपवित्रः सदभौ वा कर्माङ्गे पितृकर्मणि ।

अशून्यं तु करं कृत्वा सर्वत्राऽऽचमनं चरेत् ॥

नोत्सृज्यं तत्पवित्रं तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ।

मार्कण्डेयेऽपि—सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् ।

नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥

यत्तु—ग्रन्थीकृतपवित्रेण न भुञ्जीयान्न चाऽऽचमेत् ।

इत्याश्वलायनवचनं तद्ब्रह्मग्रन्थविषयम् । न ब्रह्मग्रन्थिनाऽऽचामे-
दिति स्मृतिसारात् । पवित्रदर्भसंख्यामाह मार्कण्डेयः—

चतुर्भिर्दर्भपिञ्जलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम् ।

एकैकन्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥

सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं ग्रथितं न वा ।

त्रिभिश्च शान्तिकं कार्यं पौष्टिकं पञ्चभिस्तथा ॥

अत्रिः—उभाभ्यामपि पाणिभ्यां विप्रैर्दर्भपवित्रके ।

धारणीये प्रयत्नेन ब्रह्मग्रन्थिसमन्विते ॥

ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मग्रन्थिर्विधीयते ।

भोजने वर्तुलः प्रोक्त एवं धर्मो न हीयते ॥

ब्रह्मग्रन्थिवर्तुलग्रन्थ्योर्लक्षणं हेमाद्रिणोक्तम्—यथा द्विगुणीकृतानां
दर्भशिखानां पाशः प्रदक्षिणमर्धावेष्टनं विधाय पश्चाद्भागेन यदा प्रवे-
श्यते तदा वर्तुलो ग्रन्थिः । स एव यदा प्रादक्षिण्येन सर्वावेष्टनं विधाय
पुरोभागेन प्रवेश्यते तदा ब्रह्मग्रन्थिरिति ।

पवित्रधारणस्थानमुक्तं स्कान्दे—

अनामिकाधृता दर्भा ह्येकानामिकयाऽपि वा ।

उभाभ्यामनामिकाभ्यां धार्ये दर्भपवित्रके ॥

रत्नावल्याम्—द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद्बुधः ।

प्रथमं लङ्घयेत्पर्व द्वितीयं तु न लङ्घयेत् ॥

अग्रपर्वस्थितो दर्भस्तपोवृद्धिकरो हि सः ।

मध्ये चैव प्रजाकामो मूले सर्वार्थसाधकः ॥

चन्द्रिकायाम्—अङ्गुलीमूलदेशे तु पवित्रं धारयेद्विजः ।

राज्ञां द्विपर्वके चैव विशामग्रे करस्य तु ॥

ब्राह्मे—मन्त्रं विना धृतं यत्तत्पवित्रमफलं भवेत् ।

तस्मात्पवित्रे मन्त्राभ्यां धारयेदभिमन्त्र्य च ॥

पवित्रवन्त इत्यादि मन्त्रद्वितयमस्य च ।

प्रणवस्त्वस्य मन्त्रः स्यात्समस्ता व्याहृतीस्तु वा ॥

पवित्रत्यागे विशेष उक्तः स्मृत्यन्तरे—

नित्ये नैमित्तिके वाऽपि कर्मोपक्रमणे द्विजः ।
धृतं पवित्रं कर्मान्ते ग्रन्थि मुवत्वैव तस्यजेत् ॥

अत्रापवादमाह भरद्वाजः—

कर्मान्ते पुनरादाय पवित्रद्वितयं द्विजः ।
शुचौ देशे विनिक्षिप्य दध्यादेतत्पुनः पुनः ॥
यद्युच्छिष्टाद्युपहतं पवित्रं वै यदा भवेत् ।
तदैव ग्रन्थिमुत्सृज्य त्यजेदितरथा न हि ॥

ग्रन्थिमत्पवित्रासंभव आश्वलायनः—

अथवाऽनःमिकाभ्यां तु गन्धिहीनं कुशादिकम् ।
हेमादीन्वाऽथ विभृयात्सर्वकर्मस्वपि द्विजः ॥

अथ कुशग्रहणकालमाहाङ्गिराः—

अहन्यहनि कर्मार्थं कुशच्छेदः प्रशस्यते ।
कुशा धृता ये पूर्वत्र योग्याः स्युर्नोत्तरत्र ते ॥ इति ।

पूर्वकर्मणि धृता ये कुशास्ते नोत्तरत्रानन्तरं क्रियमाणेषु कर्मसु योग्या
इत्यर्थः । कालान्तरमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

मासि मास्याहता दर्भास्तत्तन्मास्येव चोदिताः ॥ इति ।

अस्याप्यसंभवे विष्णुः—

दर्शे श्रावणमासस्य समन्त्रोत्पादिताः कुशाः ।
अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याः स्युः पुनः पुनः ॥

अयातयामा अपर्युपिताः । नियोज्या उपयुक्ता अप्यनिषेधेऽन्यत्र
प्रयोज्या इत्यर्थः ।

शङ्खोऽपि—दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्नयः ।

अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः ॥

भाद्रामायामपि कुशग्रहणमुक्तं मदनरत्ने । अथ निषिद्धकुशानाह
हारीतः—

पथि दर्भाश्रितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।
प्रस्तरासनपिण्डेषु पदकुशान्परिवर्जयेत् ॥
ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे ।
हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥
अपूता गर्भिता दर्भा ये च दर्भा नखैः क्षताः ।
कथिता अग्निदग्धाश्च कुशान्यत्नेन वर्जयेत् ।

कुशग्रहणविधिमाह शौनकः—

शुचौ देशे शुचिर्भूत्वा स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः ।
 ओंकारेणैव मन्त्रेण कुशान्सृष्ट्वा द्विजोत्तमः ॥
 विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ।
 नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव ॥
 इमं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः ।
 हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत् ॥

अथ प्रयोगः । कुशसमीपे गत्वा स्नातः शुकुवस्त्रधरः प्राङ्मुख उद्-
 ङ्मुखो वा स्थित्वा प्रणवेन दर्भान्सृष्ट्वा ॐ विरिञ्चिना ० भवेदिति (वेति)
 मन्त्रमुच्चार्य प्राङ्मुख उद्ङ्मुखो वोपविश्य ॐ हुं फडिति सकृच्छित्त्वाऽ-
 च्छिन्नाग्राञ्शुभान्पवित्रान्कुशान्समुद्धरेत् । इति कुशग्रहणविधिः ।

अथ कुशाभावे तत्प्रतिनिधिमाहात्रिः—

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दराः ।
 गोधूमा व्रीहयो मुञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः ॥

कुन्दरः कन्दनाम्ना प्रसिद्धः । बल्वजो दक्षिणदेशे मोल इत्याचारप्र-
 काशे । बल्वजं शुच्यार्द्रतृणमित्याचारार्के । गोधूमादिशब्दास्तत्तृण-
 पराः । इति कुशप्रकरणम् ।

अथ हेमादिपवित्रप्रकरणम् । तत्र स्कान्दे—

अतो हेममयं कुर्यादङ्गुलीयकसंज्ञकम् ।
 पवित्रं परमं ह्येतदनामाङ्गुलसंज्ञकम् ॥
 अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च ।
 हेमात्मकपवित्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

पारिजाते—पवित्रोक्तप्रकारेण हेम्ना कुर्यात्पवित्रकम् ।

हैमेन सर्वदा सर्वं कुर्यादेवाविचारयन् ॥

आश्वलायनः—अन्यैर्धृतं न गृह्णीयात्पवित्रं तृणसंभवम् ।

हेमादयस्तु संग्राह्याः सम्यङ्निर्दिष्ट्य वह्निना ॥

अथ रजतपवित्रं वाराहे—

तर्जन्या रजतं धृत्वा पितृभ्यो यत्प्रदीयते ।

अन्तोऽस्ति परमाणूनां तस्यान्तो नैव विद्यते ॥

नारदीयेऽपि—रूप्यहस्तेन दातव्यं यत्किञ्चित्पितृवल्लभम् ।

तेन स्युः पितरस्तृप्ता यावदाभूतसंप्लवम् ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रौप्यमेव च ।

कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥

तर्जन्यां रौप्यधारणं जीवत्पितृकस्य जीवज्ज्येष्ठभ्रातृकस्य च निषि-
द्धम् । तदुक्तं संग्रहे—

पादुके चोत्तरीयं च तर्जन्यां रौप्यधारणम् ।

न जीवत्पितृकः कुर्याज्ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति ॥

अथ ताम्रपवित्रं देवीपुराणे—

दाभं पवित्रं ताम्रं वा राजतं हैममेव वा ।

विभृयाद्दक्षिणे पाणौ पवित्रं चोत्तरोत्तरम् ॥

वर्णभेदेन व्यवस्था स्मृतिसारे—

दर्भैः पवित्रं विज्ञेयं ब्राह्मणस्य विशेषतः ।

हैमराजतताम्राणि क्षत्रविद्रुद्रजातिषु ॥

त्रिधातुमुद्रामाहाऽऽश्वलायनः—

अग्रन्थिकं च हैमं च तथा लोहत्रयोद्धवम् ।

गायत्र्यक्षरवर्णेन गृह्णीयात्ताम्रमुत्तमम् ॥

अनुष्टुभस्तथा रौप्यं त्रिष्टुभः कनकोत्तमम् ।

गायत्र्यक्षराणि चतुर्विंशतिः । अनुष्टुभो द्वात्रिंशत् । त्रिष्टुभश्चतुश्च-
त्वारिंशत् ।

शलाकां कारयित्वाऽतोऽभिसृजेदङ्गुलीयकम् ।

एवं लोहत्रयेणैव कृतं रक्षोघ्नमुत्तमम् ॥

शुद्धैर्धार्यं दिवारात्रं त्रयं सममथापि वा ।

अभिसृजेत्कुर्यात् । शलाकात्रयं नैरन्तर्येण संयोजयेत् । न तु वेणी ।
अग्रन्थिकानुपपत्तेः । शारदातिलके तु—

तारताम्रसुवर्णानामर्कषोडशखेन्दुभिः ।

कृता त्रिशक्तिमुद्रेयं तीव्रदारिद्र्यनाशिनी ॥

अत्र ग्रहणे वेष्टिता मुद्रेत्येवं तृतीयचरणः क्वचित्पठ्यते । तारं रूप्यम् ।
अर्का द्वादश खेन्दवो दश हैमरूप्यताम्राणां क्रमेण दशद्वादशषोडशभा-
गैर्मुद्रा कार्येत्यर्थः । नवरत्नमुद्रा तु आचारमयूखे ज्ञेया । इति हेमादि-
पवित्रप्रकरणम् ।

कौशिकः—गवां बालपवित्रेण संध्योपासितं करोति यः ।

स वै द्वादश वर्षाणि कृतसंध्यो भवेन्नरः ॥

मरद्वाजः—रोम्णां पवित्रकरणे नियमो न कुशेष्विव ॥ इति ।

इति गोबालपवित्रम् । अथ स्नानविधिः—गौतमः—

कृतशौचविधिः सम्यक्स्वाचान्तो दन्तधावनम् ।

विधायोपसि कुर्वीत स्नानं च विधिपूर्वकम् ॥

अथ स्नानभेदानाह शङ्खः—

स्नानं तु द्विविधं प्रोक्तं गौणमुख्यप्रभेदतः ।

तयोस्तु वारुणं मुख्यं तत्पुनः षड्विधं भवेत् ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।

क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥

तत्र नित्यस्नानलक्षणमाह स एव—

अस्नातस्तु पुमान्नाहो जपाग्निहवनादिषु ।

प्रातःस्नानं तदर्थं तु नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥

कौर्मे—नित्यमभ्युदयात्पूर्वं स्नातव्यं शुद्धिमिच्छता ।

एष साधारणो धर्मश्चतुर्वर्णस्य कीर्तितः ॥

स्त्रीभिः शूद्रैश्च कर्तव्यं मन्त्रवर्जं विगाहनम् ।

चतुर्विंशतिमते-उपस्युपसि यत्स्नानं संध्यायामुदितेऽपि वा ।

प्राजापत्येन तत्तुल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

उदितेऽपि वेति मुख्यकालासंभवे गौणकालपरम् । अस्मिन्पक्षे
संध्याप्युत्कृष्यत इति भट्टोजीये । चन्द्रिकायां तु-न च प्रातःस्नानोत्कर्षे
संध्योत्कर्षः शङ्क्यः । कर्मणां स्वस्वकाल एव यथाकथंचित्कर्तव्यत्वात् ।

प्रातःसंध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम् ।

इति याज्ञवल्क्यवचनाच्चेत्युक्तम् । इदमेव युक्तम् ।

नित्यमेव तु मध्याह्ने प्रातश्च क्व च कस्यचित् ।

इति स्मृत्यर्थसारात् । मध्याह्न एव नित्यं स्नानमित्याचारादर्शोक्तेः ।
अथ स्नानविधिस्तत्प्रातर्मध्याह्नयोगृहस्थः कुर्यादेकतरत्र वेत्याश्वला-
यनपरिशिष्टे गृहस्थस्य प्रातःस्नानवैकल्पिकत्वोक्तेश्च । उपःकालं तु
विष्णुराह—

नाडिकाः षट्पञ्चाशत्प्रातस्त्वेकाधिकोऽरुणः ।

उपःकालोऽष्टपञ्चाशच्छेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥ इति ।

संग्रहे तु षष्ठपञ्च उपःकाल इत्युक्तम् । श्राद्धचन्द्रिकायां तु देवी-
पुराणेऽरुणोदयोऽपि स्नान उक्तः—

चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते ।

यतीनां स्नानकालस्तु गङ्गास्युसदृशः स्मृतः ॥

यतयो नियताः । योगयाज्ञवल्क्यः—

लालास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ।

स्विद्यन्ति हि सुषुप्तस्य इन्द्रियाणि स्रवन्ति च ॥

अङ्गानि समतां यान्ति चोत्तमान्यधमैः सह ।

अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ॥

स्रवत्येव दिवा रात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ।

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् ॥

सर्वमर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ।

गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम् ।

आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा ॥

बौधायनः—सप्ताहं प्रातरस्नायी संध्याहीनस्त्रिभिर्दिनेः ।

द्वादशाहमग्निः स्याद्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥

तद्दोषपरिहारार्थं भानुवारेऽपि शस्यते ।

भानुवारे त्ववश्यं प्रातःस्नानं कार्यमित्यर्थ इत्याचारोक्तं ।

अथ स्नानोदकानि योगी—

नद्यां स्नानानि पुण्यानि तडागे मध्यमानि च ।

वापीकूपे जघन्यानि गृहे प्रत्यवराणि च ॥

याज्ञवल्क्यः—भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रसवणोदकम् ।

ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥

तीर्थतोयं ततः पुण्यं ततो गाङ्गं तु सर्वतः ।

योगयाज्ञवल्क्यः—त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः ॥

समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ।

त्रिरात्रफलदास्त्रिरात्रव्रतफलदाः । एवं मासपक्षयोरपि ।

मविष्योत्तरे—गङ्गायां मौसलं स्नानं प्राजापत्यसमं विदुः ॥ इति ।

महाभारते—चान्द्रायणसहस्रं तु यश्चरेत्कायशोधने ।

पिवेद्यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ ॥

भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा ताक्ष्यस्य दर्शनात् ।

गङ्गाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

नायमर्थवादः । तदुक्तं कौर्मे—

स्नानमात्रेण गङ्गायाः पापं ब्रह्मवधोद्भवम् ।

दुराधर्षं कथं याति चिन्तयेद्यो वदेदपि ॥

तस्याहं प्रददे पापं कोटिब्रह्मवधोद्भवम् ।

स्तुतिवादमिमं मत्वा कुम्भीपाकेषु जायते ॥

आकल्पनरकं भुक्त्वा ततो जायेत गर्दभः ॥ इति ।

संगमे स्नानं दशगोदानफलदम् । तदुक्तं ब्राह्मे—

नद्यां प्रत्येकशः स्नानं भवेद्गोदानजं फलम् ।

गोप्रदानैश्च दशभिः स्नाने पुण्यं तु संगमे ॥

अत्र विशेषः प्रयागमाहात्म्ये—

कर्तर्या न निमज्जेत पृथिव्यां संगमान्तरे ।

प्रयागे न निषेधोऽस्ति तत्र तत्रैव तच्चरेत् ॥

कृष्णामाहात्म्ये—स्नानं कृत्वा संगमे तु संगमेशं प्रपूज्य च ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो गतिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥

संगमादुत्तरे कूले प्रमाणं धनुषो द्वयम् ।

पश्चिमे धनुषैकेन संगमं पापनाशनम् ॥

पट्कूलमध्ये यदि वा कृतं च

स्नानं सदा साधुभिर्मन्त्रवित्तमैः ॥

संतर्प्य देवांश्च यवैर्ऋषीन्मुदा

पितृंस्तिलैर्मन्त्रपूतैः कुशाग्रैः ॥

यमः—नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥

परोदकैः शीतोदकैः । [*गङ्गादिपुण्यजलमिच्छणेन कूपवाप्याद्युद-
कमपि पवित्रं भवति तदुक्तं] मत्स्यपुराणे—

पुण्याम्भसा समायोगाद्दुष्टमप्यम्बु पावनम् ।
 भारते—अपवित्रमपि प्राप्य गङ्गां याति पवित्रताम् ॥
 अथ निषिद्धोदकानि जलाशयोत्सर्गपद्धतौ—

सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम् ।
 कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्पृष्टव्यमसंस्कृतम् ॥
 मनुः—परकीयनिपानेषु स्नायान्नैव कदाचन ।
 निपानकर्तुः स्नात्वा हि दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥
 यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ।
 अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥ इति ।

तत्र पारक्यशब्देन यदनुत्सृष्टमप्रतिष्ठितं तदेव गृह्यते । सर्वोद्देशेनोत्सृ-
 ष्टस्य परकीयत्वाभावादिति विज्ञानेश्वरमेधातिथिप्रभृतयः । उत्सृष्टज-
 लालामे तु व्यासः—

पञ्च पिण्डान्सगुञ्जत्य पारक्ये स्नानमाचरेत् ।

स्मृत्यन्तरोक्ताः पिण्डगताधिकन्यूनसंख्यास्तु यथासामर्थ्यं व्यव-
 स्थिता इत्याचारादर्शे । कूपादौ पिण्डोद्धरणसंभवे बौधायनः—

निरुद्धासु तु त्रीन्पिण्डान्कूपाग्निर्वा घटास्तथा ॥ इति ।

परकीयेऽपि विशेष उत्सर्गपद्धतौ—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैवान्यजातयः ।

एभिर्ये कारिताः कूपाः स्नानं तेषु तु कारयेत् ॥

अन्यजातयो मूर्धावसिक्ताद्या आनुलोमाः ।

आपस्तम्बः—अन्त्यजैः खानिताः कूपास्तडागं वाप्य एव च ।

एषु स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्येन शुध्यति ॥

अत्रापवादः शातातपः—

अन्त्यैरपि कृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा ।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

इदमत्यन्तापद्विषयमिति शूलपाणिः ।

योगयाज्ञवल्क्यः—वृथा उष्णोदकस्नानं वृथा जप्यमवैदिकम् ।

वृद्धमनुः—मृते जन्मानि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

संक्रात्यां भानुवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने ।

आरोग्यपुत्रमित्रार्थी न स्नायादुष्णवारिणा ॥

अथ स्नानाङ्गतर्पणम् । ब्रह्माण्डपुराणे—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ।

तर्पणं तु भवेत्तस्य ह्यङ्गत्वेन प्रकीर्तितम् ॥

ब्रह्मवैवर्ते—नाभिमात्रजले स्थित्वा कुर्यात्स्नानाङ्गतर्पणम् ।

देवानृषीन्पितृगणान्स्वपितृंश्चापि तर्पयेत् ॥

उद्धृतेरुदकैः स्नातो न कुर्यादन्यदा पुनः ।

स्नानाङ्गं तर्पणं विद्वान्कदाचिन्नैव हापयेत् ॥

चतुर्विंशतिमते—स्नानादनन्तरं यावत्तर्पयेत्पितृदेवताः ।

उत्तीर्य पीडयेद्वस्त्रं संध्याकर्म ततः परम् ॥ इति ।

उशना—द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम् ।

गोगृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥

अस्य सूत्रोक्तत्वाभावादञ्जलिनैव दानं यद्वह्नयज्ञाङ्गं स्वपित्रादेस्तर्पणं तद्वक्षिणेनैव । सूत्रेऽञ्जलिचोदनाभावेनानादेशे दक्षिणं प्रतीयादिति सूत्रकारोक्तेरिति कमलाकरः । अन्ये त्वस्य सूत्रोक्तत्वाभावेऽपि सूत्रसमपरिशिष्टोक्तत्वात्तत्र च दक्षिणाङ्गकारीति परिभाषायामुक्तेर्दक्षिणहस्तेनैव सव्यान्वारब्धेन तर्पणं नाञ्जलिनेत्याहुः ।

भगवान्—स्नानाङ्गं तर्पणं कृत्वा यक्षमणे जलमाहरेत् ।

तत्र मन्त्रं प्रयोगे वक्ष्यामः । नदीक्षमापनं कौर्म—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।

तत्क्षमस्वाखिलं देवि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

स्नानोपयोगिन्योः शङ्खयोनिमुद्रयोर्लक्षणमागमे—

वामाङ्गुष्ठं तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।

कृत्वोत्तानं ततो मुष्टिमङ्गुष्ठं तु प्रसारयेत् ॥

वामाङ्गुल्यस्तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः सुप्रसारिताः ।

दक्षिणाङ्गुष्ठसंयुक्ताः शङ्खमुद्रेयमीरिता ॥

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।

अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरधः ॥

अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्योनिमुद्रेयमीरिता ।

अथ स्नानविधावाचाररत्नमयूखादिधृतपरिशिष्टम्—

अथ स्नानविधिस्तत्प्रातर्मध्याह्ने च गृहस्थः कुर्यादेकतरत्र वा प्रातरेव ब्रह्मचारी यतिस्त्रिषु सवनेषु द्विस्त्रिर्वा वानप्रस्थस्तत्प्रातः सह गोमयेन

कुर्यान्मृदा मध्यंदिने सायं शुद्धाभिरद्भिर्न प्रातःस्नानात्पाक्संध्यामुपासीत प्रातरुत्सृष्टं गोमयमन्तरिक्षस्थं संगृह्य भूमिष्ठं चोपर्यधश्च संत्यज्य तीर्थमेत्य धौतपाणिपादमुख आचम्य संधयोक्तवदात्माभ्युक्षणादि कृत्वा द्विराचम्य संयतप्राणः कर्म संकल्प्य गोमयं वीक्षितमादाय सव्ये पाणौ कृत्वा व्याहृतिभिस्त्रिधा विभज्य दक्षिणभागं प्रणवेन दिक्षु निक्षिप्योत्तरभागं तीर्थे क्षिप्त्वा मध्यमं मा नस्तोक इत्यृचाऽभिमन्त्र्य गन्धद्वारामित्यृचा मूर्धादिसर्वाङ्गमालिप्य प्राञ्जलिर्वरुणं हिरण्यशृङ्गमिति द्वाभ्यामव ते हेळ इति द्वाभ्यां प्रसन्नाजे बृहदर्चति सूक्तेन च संप्रार्थ्य—

हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः ।

यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥

यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् ।

तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः ॥

इत्यथ याः प्रवत इत्येतया तीर्थमभिमृश्यावगाह्य स्नातो द्विराचम्य मार्जयेदम्बयो यन्त्यध्वभिरित्यष्टाभिरापो हि ष्ठा मयोभुव इति नवभिरथ तीर्थमङ्गुष्ठेनेमं मे गङ्गा इत्यृचा त्रिः प्रदक्षिणमालोड्य प्रकाशपृष्ठमग्नोऽवमर्षणसूक्तं त्रिरावृत्य निमज्ज्योन्मज्ज्याऽऽदित्यमालोक्य द्वादशकृत्व आप्लुत्य पाणिभ्यां शङ्खमुद्रया वोदकमादाय मूर्ध्नि मुखे बाह्वोरुरसि चाऽऽत्मानं गायत्र्याऽभिषिञ्चस्त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वानिति द्वाभ्यां तरत्समन्दी धावतीति सूक्तेन पुनः स्नायान्मूर्ध्नि चाभिषिञ्चेत्तद्विष्णोः परमं पदमग्ने रक्षा णो अंहसो यत्किंचेदं वरुण देव्ये जन इत्येता जपेत्स्रोतसोऽभिमुखं सरित्सु स्नायादन्यत्राऽऽदित्याभिमुखोऽथ साक्षताभिरद्भिः प्राङ्मुख उपवीता देवतीर्थेन व्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ताभिर्ब्रह्मादिदेवताः सकृत्सकृत्तर्पयित्वाऽथोदङ्मुखो निवीती सयवाभिरद्भिः प्राजापत्येन तीर्थेन कृष्णद्वैपायनादीनृपीन्व्यस्तसमस्ताभिर्व्याहृतिभिर्द्विर्द्विस्तर्पयित्वाऽथ दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पितृतीर्थेन सतिलाभिरद्भिर्व्याहृतिभिरेव सोमः पितृमान्यमोऽङ्गिरस्वानग्निष्वात्ता अग्निः कव्यवाहन इत्यादींस्त्रिस्तर्पयेत्तत्स्नानाङ्गतर्पणमथ तीरमेत्य दक्षिणामुखः प्राचीनावीती

ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

इति वस्त्रं निष्पीडयोपवीत्यप उपस्पृश्य परिधानीयमभ्युक्ष्य परिधाय द्वितीयं चोत्तरीयं पर्युक्षितं प्रावृत्य द्विराचामेदथोक्तवत्संध्यामुपासीतेदं प्रातःस्नानविधानमिति ।

अथ प्रयोगः । अन्तरिक्षस्थं गोमयं भूमिष्ठं चेदुपर्यधश्च संत्यक्तं गृहीत्वा तिलयवकुशान्भस्मगोपीचन्दनादिकं च गृहीत्वा तीर्थादिजलसमीपं गत्वोद्धृतजलैर्वह्निरेव हस्तौ पादौ मुखं च प्रक्षाल्य निवीतं यज्ञोपवीतं कृत्वा प्रक्षाल्य यज्ञोपवीती बद्धकच्छशिख आचम्य ॐ भूर्भुवः स्वरित्यात्मानमभ्युक्ष्य द्विराचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मम कायवाङ्मनःकृतकर्मदोषपरिहारपूर्वकं सर्वकर्मसु शुद्ध्यर्थं नित्यविधिरूपं प्रातःस्नानं करिष्य इति संकल्प्य वीक्षितं गोमयमादाय सध्ये पाणौ निधाय ॐ भूर्भुवः स्वरिति त्रेधा विभज्य दक्षिणभागमोमिति मन्त्रावृत्या प्राच्यादिदशदिक्षु क्षिप्तोत्तरभागं तूष्णीं तीर्थे क्षिप्त्वा मध्यमभागं गृहीत्वा मा नस्तोकेति कुत्सो रुद्रो जगती गोमयाभिमन्त्रणे वि० ॐ मा नस्तोके० तनये माः क्र० १ इत्यभिमन्त्र्य ॐ गन्धद्वारां दुरा० क्र. १ इति मूर्धादिसर्वाङ्गमालिष्य प्राञ्जलिर्वरुणं प्रार्थयेत् । तत्र मन्त्राः । ॐ हिरण्यशृङ्गं वरुणं० क्र. २ अव ते हेळ इति द्वयोराजीर्गतिः शुनःशेषो वरुणस्त्रिष्टुप् । वरुणप्रार्थने विनि० ॐ अव ते हेळो वरुण न० क्र. २ प्रसम्राज इत्यष्टर्चस्य सूक्तस्य भौमोऽग्निर्ऋषिः । वरुणो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । वरुणप्रार्थने वि० ॐ प्रसम्राजे बृहदर्चा गभीरं० क्र. ८ । याः प्रवत इत्यस्य वसिष्ठो नद्योऽतिजगती । तीर्थाभिमर्शने वि० । ॐ याः प्रवतो निवत० क्र. १ ततो बद्धशिखां स्वपुरतः कृत्वा नाभिमात्रजले गत्वा प्रवहजले प्रवाहाभिमुखोऽन्यत्रार्काभिमुखस्त्रिवारमवगाह्य शरीरं प्रक्षाल्य द्विराचम्य मार्जयेत् । अम्बयो यन्त्यध्वभिरित्यष्टर्चस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । आद्यानां सप्तानामापो देवताः । अष्टम्या आपोऽग्निश्च देवते । आद्यानां तिसृणां गायत्री छन्दः । चतुर्थी पुर-उष्णिक् । पञ्चम्यनुष्टुप् । षष्ठी प्रतिष्ठा । अन्त्ये द्वे अनुष्टुभौ । मार्जने विनियोगः । ॐ अम्बयो यन्त्यध्व० क्र. ८ । आपोहिष्ठेति नवर्चनं मार्जनं कृत्वा ततोऽङ्गुष्ठमूलेन जलं त्रिः प्रदक्षिणमालोडयेत् । इमं मे गङ्गा इत्यस्य प्रैयमेधः सिन्धुक्षिन्नद्यो जगती । जलालोडने वि० । ॐ इमं मे गङ्गे० क्र. १ ततोऽङ्गुष्ठाभ्यां श्रोत्रे तर्जनीमध्यमाभिर्नेत्रे, अनामिकाभ्यां नासाविले संपीडय कनिष्ठिकाभ्यां मुखं च संमील्य प्रकाशपृष्ठमग्न ऋतं चेत्ययमर्पणं सूक्तं त्रिरावर्त्य निमज्ज्योन्मज्ज्याऽऽदित्यमवलोक्य द्वाद-शकृत्व आप्लुत्य पाणिभ्यां शङ्खमुद्रया योनिमुद्रया वोदकमादाय मूर्ध्नि

मुखे बाह्वोरुरसि चाऽऽत्मानं गायत्र्याऽभिषिच्य ॐ त्वं नो अग्ने
वरुणस्य वि० ऋ. २ ॐ तरत्समन्दी धा० ऋ. ४ पुनः स्नायान्मूर्ध्नि
चाभिषिञ्चेत् । ॐ तद्विष्णोः परमं० ऋ. २ ॐ अग्ने रक्षा णो अंह०
ऋ. १ ॐ यत्किं चेदं वरुण० ऋ. १ इति जपेत् । अथ नाभिमात्रे
जले तिष्ठन्स्नानाङ्गतर्पणं कुर्यात् । साक्षताभिरद्भिः प्राङ्मुख उपवीती
देवतीर्थेन ब्रह्मादयो ये देवास्तान्देवांस्तर्पयामि । भूर्देवांस्त० । भुवर्दे-
वांस्त० । स्वर्देवांस्त० । भूर्भुवः स्वर्देवांस्त० । ततो निवीती उदङ्मुखः
प्राजापत्यतीर्थेन सयवाभिरद्भिः कृष्णद्वैपायनादयो य ऋषयस्तानृ-
षीस्त० भूर्ऋषीस्त० । भुवर्ऋ० । स्वर्ऋ० । भूर्भुवः स्वर्ऋ० । ततः प्राचीना-
वीती दक्षिणामुखः पितृतीर्थेन सतिलाभिरद्भिः सोमः पितृमान्यमोऽङ्गि-
रस्वानग्निष्वात्ता अग्निः कव्यवाहन इत्यादयो ये पितरस्तान्पितॄंस्त० ।
भूः पितॄंस्त० । भुवः पितॄंस्त० । स्वः पितॄं० । भूर्भुवः स्वः पितॄं० । इति
तर्पयित्वा तीरमेत्य दक्षिणामुखः प्राचीनावीती ये के चास्म० दकम् ।
इति स्नानवस्त्रं निष्पीड्योपवीती

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंभवात् ।

तद्दोषपरिहारार्थं यक्षमाणं तर्पयाम्यहम् ॥

इत्यञ्जलिना यक्षमतर्पणं विधाय नदीं प्रार्थयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतोवाऽपि यन्मे दुश्चरितं कृतम् ।

तत्क्षमस्वाखिलं देवि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

अथैतत्करणाशक्तौ साग्निकस्य वा संक्षिप्तस्नानविधिरुच्यते ।
कात्यायनः—

अल्पत्वान्द्रोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ।

प्रातः संक्षेपतः स्नानं होमलोपो विगर्हितः ॥

दक्षोऽपि—प्रातर्न तनूयात्स्नानं होमलोपो विगर्हितः ।

अतो मध्याह्नकाले तु स्नानं विस्तरतश्चरेत् ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—योऽसौ विस्तरतः प्रोक्तः स्नानस्य विधिरुत्तमः ।

असामर्थ्यान्न कुर्याच्चैतन्नायं विधिरुच्यते ॥

स्नानमन्तर्जले चैव मार्जनाचमने तथा ।

जलाभिमन्त्रणं चैव तीर्थस्य परिकल्पनम् ॥

अघमर्पणसूक्तेन त्रिरावृत्तेन नित्यशः ।

स्नानाचरणमित्येतद्वपदिष्टं महात्मभिः ॥

अथ प्रयोगः । नद्यादौ गत्वा शिखां बद्ध्वा जानूर्ध्वजले तिष्ठन्नन्यथा तूपविश्याऽऽम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मम कायिकवाचिक-मानसिकदोषपरिहारपूर्वकसर्वकर्मसु शुद्ध्यर्थं नित्यविधिरूपं प्रातःस्नानं करिष्ये इति संकल्प्य प्रवाहाभिमुखस्त्रिरवगाह्याङ्गानि निमृज्य स्नात्वा द्विराचम्याऽऽपो हि षेति मार्जनं कृत्वेमं मे गङ्गा इति जलमालोड्याघम-र्पणं त्रिरावृत्तेन ऋतं चेति सूक्तेन जलनिमग्नतया कृत्वाऽऽप्लुत्याऽऽचम्य जलतर्पणं कुर्यान्न वा । पारिजाते—गृहस्थस्य प्रवाहोदके मज्जनरूपं स्नानम् । वापीकूपतडागाद्यप्रवाहेषु हस्ताभ्यां शिरासेचनरूपम् । यति-वनस्थब्रह्मचारिणां सर्वत्र निमज्जनरूपं स्नानमिति । इति संक्षिप्तस्नान-विधिः । अथ गृहस्नानविधिः । व्यासः—

शीतास्वप्सु निपिच्योष्णा मन्त्रसंभारसंभृताः ।

गृहेऽपि शस्यते स्नानं न फलं स्यात्तदन्यथा ॥

कात्यायनः—यथाऽहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादतन्द्रितः ।

दन्तान्प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ॥

अमन्त्रवदिति नञोऽल्पत्वमर्थः । यत्तु मन्त्रशून्यत्वमेवार्थ इति केचित् । तन्न ।

गृहेऽपि हि द्विजातीनां मन्त्रवत्स्नानभिष्यते ।

इति जैमिनिवचोविरोधात् । गृहस्नानविधौ प्रातिस्विकाल्पमन्त्रपा-ठाच्च । यमः—

पादौ प्रक्षालयेत्पूर्वं मुखं यज्ञोपवीतकम् ।

द्विराचम्य कराभ्यां च दर्भान्धृत्वा शिखां स्पृशेत् ॥

प्राणायामं ततः कुर्यात्कालज्ञानं यथोदितम् ।

आपो हि षेति मन्त्रेण इमं मे गङ्गा इत्यथ ॥

अतो देवेति सूक्तेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।

शीतोदके तु दर्भैश्च पश्चादुष्णोदकं क्षिपेत् ॥

आश्वलायनः—स्नानमध्ये त्वाचमनं तर्पणं वस्त्रपीडनम् ।

करपात्रगतं तोयं गृहे चैतानि वर्जयेत् ॥ इति ।

बौधायनः—गृहस्नाने न तु प्रोक्तं मार्जने तर्पणादिकम् ।

नान्तराऽऽचमनं कुर्यात्पश्चादाचम्य शुध्यति ॥

संग्रहेऽपि—स्नानमध्ये नाऽऽचमनं मार्जनं तर्पणं न च ।

वस्त्रस्य पीडनं नैव संकल्परहितं तथा ॥

संकल्परहितं स्नानमध्ये संकल्परहितं न तु सर्वथा संकल्परहित-
मित्यर्थः ।

गृहे गृहमुखं स्नानं मध्ये संकल्पवर्जितम् ।

इति बृहद्यमोक्तेः । यत्वाचारचन्द्रोदये—

वापीकूपगृहस्नाने सूतके मृतके तथा ।

मासोच्चारं न कुर्वीत तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥

इति वचस्तत्र मूलं मृग्यमित्याचारप्रकाशे । आश्वलायनः—

आसनै रहितं स्नानं पापाणे ऊर्ध्वतः स्थितैः ।

गृह एतानि वर्ज्यानि सर्वदा द्विजसत्तमैः ॥ इति ।

आसने विशेषमाह मनुः—

श्रीपर्णी च शमी शली कदम्बो वारुणस्तथा ।

पश्चासनोपविष्टस्तु स्नानहोमादिकं चरेत् ॥ इति ।

अथ प्रयोगः । हस्तौ पादौ मुखं यज्ञोपवीतं च प्रक्षाल्य गृहाभि-
मुखो द्विराचम्य कराभ्यां दर्भान्धृत्वा शिखां बध्ना प्राणानायम्य देश-
कालौ संकीर्त्य भ्रम कायवाङ्मनःकृतदोषपरिहारपूर्वकं सर्वकर्मसु
शुद्ध्यर्थं नित्यविधिरूपं प्रातःस्नानं करिष्य इति संकल्प्य स्नानपर्या-
प्तमुष्णोदकं पात्र आदाय ॐ आपो हि ष्ठा० क्र. ९ ॐ इमं भे गङ्गेः०
क्र. ९ ॐ अतो देवा अ० क्र. ६ ॐ तत्सवि० क्र. १ इत्यभिमन्त्र्य शीतो-
दकपात्रे निषिच्य गङ्गादितीर्थानि प्रयागराजं च संस्मरन्स्नात्वाऽऽचा-
मेत् । मार्जनान्तराचमनतर्पणाघमर्पणवस्त्रनिष्पीडनादि वर्जयेत् । यद्वा
स्नानोत्तरं शुचौ देशे गृहाद्वहिरुपविश्य मार्जनादि सर्वं कुर्यात् ।
बहिर्वा शुचौ देशे सर्वं पश्चात्कुर्यादिति परिशिष्टोक्तेः । पारिजाते
तु—ॐ शं नो देवीरभि० क्र. १ आपः पुनन्तु० क्र. १

द्रुपदादिवेन्मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।

पूतं पवित्रेणैवाऽऽज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥

क्र० १ कृतं च सत्यं० क्र० १ आपो हि० क्र० १ इति पञ्चभिर्मन्त्रै-
रुष्णोदकमभिमन्त्र्य तत्र

नन्दिनी नलिनी सीता मालती च महापगा ।

विष्णुपादाब्जसंभूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥

भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी ।

अथ क्रियास्नानम् । शङ्खः—

सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।

क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र क्रिया मता ॥

तथा—यत्तु तीर्थादिषु स्नानं क्रियास्नानं प्रकीर्तितम् ।

स्नानमेव फलं यत्तु क्रियास्नानं प्रकीर्तितम् ॥

इति क्रियास्नानान्ताः पण्मुख्यस्नानभेदाः । अनेकेषां स्नानानामेककालसंनिपाते नित्यनैमित्तिककाम्यानामुत्तरोत्तरेण पूर्वपूर्वस्य प्रसङ्गसिद्धिः । अन्येषां तन्त्रता । नैककाले द्वयं स्नानमिति व्याघ्रपादस्मृतेः । तत्र संक्रान्तिनिमित्तनित्यस्नानयोः संनिपाते संक्रान्तिनिमित्तं स्नानं करिष्य इति संकल्प्य स्नानं कार्यम् । तेन नित्यस्नानस्यापि सिद्धिः । इयं प्रसङ्गसिद्धिः । मध्याह्नस्नानदर्शश्चान्द्राङ्गस्नानसंनिपाते मध्याह्नस्नानं दर्शश्चान्द्राङ्गस्नानं च तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्य स्नायात् । तेन स्नानद्वयसिद्धिः । इदं तन्त्रोदाहरणम् । अथाशक्तावशिरस्कस्नानमाह जाबालिः—

अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् ।

स्मृतिसारे—चक्षुरोगी शिरोरोगी कर्णरोगी कफाधिकः ॥

कण्ठस्नानं प्रकुर्वीत शिरःस्नानसमं हि तत् ।

तथा—शिरोरोगी जटी चैव स्नायादशिरसं तथा ।

आपो हि ष्ठादिभिर्मन्त्रैर्मार्जयेन्मूर्ध्नि वै जलम् ॥

इत्याशिरस्कस्नानम् ।

अथ गौणस्नानानि । योगयाज्ञवल्क्यः—

असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ।

मन्त्रस्नानादितः सप्त केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥

मान्त्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।

वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥

आपो हि ष्ठादिभिर्मन्त्रं मृदालम्भश्च पार्थिवम् ।

आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥

यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्विव्यमुच्यते ।

अवगाहो वारुणं स्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम् ॥

अथ कापिलस्नानम् । बृहस्पतिः—

आर्द्रेण कर्पटेनाङ्गशोधनं कापिलं स्मृतम् ।

अथ गायत्रम् । गायत्र्या जलमादाय दशकृत्वोऽभिमन्त्र्य च ॥

शिरश्चाङ्गानि सर्वाणि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ।

स्नानं गायत्रकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥

अशक्तानां तु जन्तूनां गुरोः पादोदकं शुभम् ।

विप्रपादाद्विष्णुपादात्तुलस्याः संभृतं जलम् ॥

अथ सारस्वतम् । व्यासः—

विद्वत्सरस्वतीप्राप्तं स्नानं सारस्वतं विदुः ।

अथाऽऽचारार्कादिधृतपरिशिष्टम् । अथाशक्तस्य मन्त्रस्नानम्—शुची देशे शुचिराचान्तः प्राणानायम्य दर्भपाणिः सर्वे पाणावपः कृत्वा तिसृभिरापोहिष्ठीयाभिः पच्छस्त्रिभिः प्रणवपूर्वं दर्भोदकैर्मार्जयेत् । पादयोर्मूर्ध्नि हृदये मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथार्धर्चशो मूर्ध्नि हृदये पादयोर्हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथर्क्षो हृदये पादयोर्मूर्ध्नि चाथ तृचेन मूर्ध्निमार्जयित्वा गायत्र्या दशधाऽभिमन्त्रिता अपः प्रणवेन पीत्वा द्विराचामेदित्येतन्मन्त्रस्नानमिति ।

अथ प्रयोगः । प्रक्षालितपाणिपादमुखयज्ञोपवीतो धौतवस्त्रधर आसन उपविश्य पवित्रे धृत्वाऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य वारुणस्नानाशक्तोऽहमनुकल्परूपं मन्त्रस्नानं करिष्ये इति संकल्प्य सव्ये पाणावुदकं गृहीत्वाऽऽपो हि षेति तृचस्याऽऽम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री मार्जने विनियोगः । दर्भैर्वामहस्तस्थोदकैर्मार्जयेत् । ॐ आपो हि० इति पादयोः । ॐ ता न ऊ० इति मूर्ध्नि । ॐ महे र० इति हृदये । ॐ यो वः शि० मूर्ध्नि । ॐ तस्य भा० इति हृदये । ॐ उशती० इति पादयोः । ॐ तस्मा अ० इति हृदये । ॐ यस्य० इति पादयोः । ॐ आपो ज० इति मूर्ध्नि । इति पच्छः । अथार्धर्चशः । ॐ आपो हि० इति मूर्ध्नि । ॐ महे र० इति हृदये । ॐ यो वः शि० इति पादयोः । ॐ उशती० इति हृदये । ॐ तस्मा० इति पादयोः । ॐ आपो ज० इति मूर्ध्नि । अथ ऋक्शः । ॐ आपो हि० ऋ. १ इति हृदये । ॐ यो वः शि० ऋ. १ इति पादयोः । ॐ तस्मा अ० ऋ. १

इति मूर्ध्नि । अथ तृचेन ॐ आपो हि० क्र. ३ इति मूर्ध्नि मार्जयित्वा दक्षिणहस्ते जलं गृहीत्वा गायत्र्या गाभिनो विश्वामित्रः सविता गायत्री । जलाभिमन्त्रणे वि० ॐ तत्सवितु० इति दशावृत्त्याऽभिमन्त्र्य प्रणवस्य परब्रह्मपरमात्मा दैवी गायत्री अप्प्राशने वि० ॐ ॐ इति पीत्वा द्विराचामेत् । इति परिशिष्टोक्तमन्त्रस्नानविधिः । यद्वा विष्णुस्मृतौ—

तृचाभिमन्त्रितैस्तोयैः प्राक्षिपेन्मूर्ध्नि सर्वतः ।

अनुकल्पमिदं स्नानं सर्वपापापहं नृणाम् ॥

संकल्पान्तं पूर्ववत्कृत्वा दक्षिणपाणितले जलं गृहीत्वा ॐ आपो हि षा० इति तृचेनाभिमन्त्र्य तेन मूर्धादिसर्वाङ्गं प्रोक्ष्याऽऽचामेत् । एतानि च गौणस्नानानि जपसंध्यावन्दनवेदाध्ययनेष्वेव शुचित्वकारीणि । तदाहाऽऽचार्यः—

प्रातः स्नातुमशक्तस्य रोगाद्यैर्वा भयाच्च वा ।

पूर्ववत्त्रं परित्यज्य गौणस्नानेन शुद्धता ॥

स च कर्मस्वनर्हः स्याच्छ्राद्धदेवार्चनादिषु ।

जपेत्संध्यां तथा वेदान्सोऽधीयीत यथाविधि ॥

इति केचित् । अन्ये तु अत्र संध्यादीनां केषांचिदुपादानमौपासन-होमब्रह्मयज्ञादिसकलनित्यकर्मणामुपलक्षणार्थम् । अन्यथा प्रातःस्नातस्य वैकल्पिकत्वात्प्रातर्वारुणेनास्नातस्य मध्याह्नपर्यन्तं सकलकर्मसु नित्यमनधिकारापत्तिः । तथा श्राद्धनिषेधः सगतिकमहालयकाम्यश्राद्धादिपरः । न तु दर्शादिपरः । तस्य कालान्तरासत्त्वात् । अकरणे प्रायश्चित्तश्रवणाच्च । देवार्चननिषेधोऽपि नैमित्तिककाम्यदेवार्चनपरः । न तु नित्यदेवार्चनपरः ।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाऽपि कर्तनम् ।

न त्वसंपूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥

सूतके मृतके चैव न दोषः परिकीर्तितः ।

इत्यादिलैङ्गादिवचनैराशौचेऽपि तस्य कर्तव्यत्वाभिधानात्कैमुत्यन्यायेनात्रापि तत्प्राप्तेरित्याहुः । इति गौणस्नानानि । इत्याचारेन्दौ स्नानप्रकरणम् ।

अथ स्नानोत्तरकृत्यम् । कार्णार्जिनिः—

स्नानवस्त्रं ततः पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।

तत्र विशेषमाह हारीतः—

तस्मादेकं जलस्यान्तः पादमेकं जले तथा ।

कृत्वाऽऽचामन्विधानज्ञः पूतो भवति नान्यथा ॥

ततो दर्भास्त्यजेत् । तथा च स्मृतिः—

विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि ।

आचान्तः सन्प्रकुर्वीत दर्भसंत्यजनं बुधः ॥

हारीतः—स्नात्वा न गात्रमवमृज्यान्न शिरो विधुनुयान्नोत्तरीयविपर्यासं कुर्यादिति । विष्णुपुराणे तु—

स्नातोऽङ्गानि न मृज्याच्च स्नानशाठ्या न पाणिना ।

इति पाणिस्नानशाटीनिषेध इत्युक्तं तत्र समर्थस्य मार्जनाभावः । असमर्थस्य पाणिस्नानशाटीमार्जनाभाव इति व्यवस्थेति हरिहरः । केशबिन्दूपुरतः स्रावयेत्तदुक्तं संग्रहे—

सुराबिन्दुसमा ज्ञेयाः पृष्ठतः केशबिन्दवः ।

त एव पुरतो ज्ञेयाः सर्वतीर्थोपमा बुधैः ॥

मार्जनपक्षे धौतवस्त्रेणाङ्गमार्जनं कार्यं तदुक्तं देवलेन—

अङ्गानि शक्तौ वस्त्रेण पाणिना न च मार्जयेत् ।

धाताम्बरेण वा प्रोञ्छय विभृयाच्छुष्कवाससी ॥

[* शुष्कवस्त्राभावे तु चतुर्विंशतिमते—

वस्त्रं द्वितीयं निष्पीड्य सप्तवाताहतं कृतम् ।

स्थापयित्वा तु शिरसि द्वादशाक्षरमन्त्रतः ॥

प्रोक्षयेदुपविश्यैव सर्वाङ्गं शोधयेत्ततः ।]

अथ वस्त्रधारणं मनुः—

स्नात्वं वाससी धौते अक्लिप्ते परिधाय च ।

वासो विशिनष्टि वसिष्ठः—शुक्लमहतं वासो ब्राह्मणस्य कार्पासं मास्त्रिष्ठं क्षौमं क्षत्रियस्येति । अहतलक्षणमाह प्रचेताः—

ईषद्भौतं नवं श्वेतं सदृशं यन्न धारितम् ।

अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥

ईषद्भौतमकारुधौतम् । तथा च देवलः—

स्वयंधौतेन कर्तव्या क्रिया धर्म्या विपश्चिता ।

न तु नेजकधौतेन नाहतेन न कुत्रचित् ॥

अनुपहतमपरिहतम् । शुष्कवस्त्राभावे स्मृतिरत्नावल्याम्—
सप्तवाताहतं चाऽऽर्द्रं शुष्कवत्प्रतिपादयेत् ।

नीलीवस्त्रनिषेधो भविष्ये—

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं विप्रस्त्वङ्गेषु धारयेत् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥

अयं च नीलीनिषेधः कार्पास एव ।

ऊर्णायां पट्टवस्त्रे वा नीलीरागो न दुष्यति ।

इति तत्रैवोक्तेः । भृगुः—

स्त्रीधृता शयने नीली ब्राह्मणस्य न दुष्यति ।

भारते-अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नराधिप ॥

अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चयामन्यदेव हि ।

अन्यच्च लोकयात्रायामन्यदीश्वरदर्शने ॥

सुमन्तुः—अन्यत्स्नाने तथा पाने भोजने चान्यदेव हि ।

वस्त्रशोषणप्रकारमाह शातातपः—

प्रागग्रमुदग्रं वा धौतं वस्त्रं प्रसारयेत् ।

पश्चिमाग्रं दक्षिणाग्रं पुनः प्रक्षालनाच्छुचि ॥

इत्याचारेन्दौ स्नानोत्तरकृत्यम् । अथ तिलकः । स च द्विविधः—
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्त्रिपुण्ड्रश्चेति । तत्रोर्ध्वपुण्ड्र उक्तो विष्णुस्मृतौ—

यागो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

भस्मी भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥

यागादि सर्वकर्मोपलक्षणार्थं न परिसंख्यार्थमुत्तरार्धं सर्वपदश्रुतेः ।
त्रिपुण्ड्र उक्तो भविष्यत्पुराणे—

सितेन भस्मना कुर्याच्चिसंध्यं च त्रिपुण्ड्रकम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते ॥

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिसेवनम् ।

तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत् ॥

ब्राह्मे-ऊर्ध्वं पुण्ड्रं मृदा कुर्याच्चिपुण्ड्रं भस्मना सदा ।

तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन यदृच्छया ॥

कात्यायनोऽपि-ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद्भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम् ।

उभयं चन्दनेनैव अभ्यङ्गोत्सवरात्रिषु ॥

पारिजाते-स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्बधुत्वा चैव तु भस्मना ।

देवानभ्यर्च्य गन्धेन जलमध्ये जलेन तु ॥

आचारतिलके-ब्राह्मणानां नृणाणां च भस्ममिश्रं च चन्दनम् ।

अथोर्ध्वपुण्ड्रविधिः । तत्र मृदः, भारते-

जाह्नवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः ।

बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ॥

ब्रह्मपुराणे-द्वारवत्युद्भवाद्गोपीचन्दनादूर्ध्वपुण्ड्रकम् ।

कारयेन्नित्यमेवं हि हन्ति पापं दिने दिने ॥

पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषतः ।

तिन्धुतीरे च वल्मीके तुलसीमूल आश्रिताः ॥

मृद एतास्तु संपाद्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ।

अद्भुतः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ॥

अनामिकाऽन्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ।

एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् ॥

चन्द्रिकायां ब्रह्मपुराणे-ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे ।

माधवं हृदि विन्यस्य गोविन्दं कण्ठमूलके ॥

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते ।

तत्पार्श्वे बाहुमध्ये तु विन्यसेन्मधुसूदनम् ॥

त्रिविक्रमं कण्ठदेशे वामकुक्षौ तु वामनम् ।

श्रीधरं वामके बाहौ हृषीकेशं तु कर्णके ॥

पृष्ठदेशे पद्मनाभं ककुद्दामोदरं न्यसेत् ।

द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ॥

संकर्षणादिभिः कृष्णे शुक्ले चेत्केशवादिभिः ।

शौनकः-ऊर्ध्वपुण्ड्रं शिवस्यैवं कुर्युर्विष्णोश्च वा बुधाः ॥

मूर्ध्नि मूलेन मन्त्रेण शेषं द्वादशनामभिः ।

स्थानेष्वेव द्विजः स्नात्वा नमोनैः प्रणवेन च ॥ इति ।

ॐ केशवाय नम इत्यादिमन्त्रैरित्यर्थः । स्थानविशेषेणाऽऽकृति-
विशेषः स्मर्यते-

निटिले बाहुवच्चैव दण्डवत्कर्णपल्लवे ।

हृदये कमलाकारमुदरे दीपवलिखेत् ॥

वेणुपत्रसमाकारं बाह्वोर्मध्ये लिखेत्सुधीः ।

अधः पृष्ठे कण्ठदेशे लिखेजम्बूपलाकृति ॥

नितिले भाले ।

दशाङ्गुलप्रमाणं तु ह्युत्तमोत्तममुच्यते ।

नवाङ्गुलं मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम् ॥

सप्तपट्पञ्चभिः पुण्ड्रमधमं त्रिविधं स्मृतम् ।

चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रमृजुं सौम्यं कनिष्ठाङ्गुलिवत्स्मृतम् ।

नासादिकेशपर्यन्तं प्रयत्नाद्धारयेद्विजः ॥

पारिजाते संग्रहे—ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा मध्ये शून्यं प्रधारयेत् ।

शृणु पण्मुख तन्मध्ये उमयाऽहं श्रिया हरिः ॥

स्मृतिसारसमुच्चये—गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो यं यं पश्यति चक्षुषा ।

तं तं शुद्धं विजानीन्नात्र कार्या विचारणा ॥

अशुचिर्वाऽप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् ।

शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः ॥

व्यासः—वामहस्ते जलं कृत्वा सावित्र्या चाभिमन्त्रितम् ।

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण मर्दयेन्मृत्तिकां ततः ॥

अतो देवेति सूक्तेन तिलकं कारयेत्सदा ॥ इत्याह ।

अथ प्रयोगः । वामहस्ते जलं गृहीत्वा, ॐ तत्सवि० क्र० १ इत्यभि-
मन्त्र्य ॐ इदं विष्णुर्वि० क्र० १ इति मृदं मर्दयित्वा कनिष्ठिकारहित-
चतुरङ्गुलीनामन्यतमेन, ॐ केशवाय नम इति ललाटे वेणुपत्राकारं
दशाङ्गुलं नवाङ्गुलं वा । ॐ नाराय० इत्युदरे दीपवत् । ॐ माधवाय०
इति हृदये कमलाकारम् । ॐ गोविन्दाय० इति कण्ठे जम्बूपत्राकारम् ।
ॐ विष्णवे० इति उदरदक्षिणपार्श्वे दीपाकारम् । ॐ मधुसूदनाय०
इति दक्षिणबाहुमध्ये वेणुपत्राकारम् । ॐ त्रिविक्रमाय० इति दक्षिण-
कर्णमूले दण्डाकारम् । ॐ वामनाय० इति उदरवामपार्श्वे दीपाकारम् ।
ॐ श्रीधराय० इति वामबाहुमध्ये वेणुपत्राकारम् । ॐ हृषीकेशाय०
इति वामकर्णमूले दण्डाकारम् । ॐ पद्मनाभाय० इति अधःपृष्ठदेशे
जम्बूपत्राकारम् । ॐ दामोदराय० इति ककुदि जम्बूपत्राकारम् । ॐ
नमो भगवते वासुदेवायेति शिरसि । एवं पुण्ड्राणि कुर्यात् । कृष्ण-
पक्ष एवमेव संकर्षणादिद्वादशनामभिर्द्वादश पुण्ड्राणि कृत्वा, ॐ नमो
भगवते वासुदेवायेति शिरसि च कुर्यात् । यद्वा पादौ—

ललाटे हृदि बाह्वोश्च चतुष्पुण्ड्राणि धारयेत् ।

तत्र चतुर्षु संकर्षणवासुदेवप्रद्युम्नानिरुद्धेति चत्वारो मन्त्रा इत्याह्निकरत्नमालायाम् । इत्यूर्ध्वपुण्ड्रविधिः । अथ भस्मत्रिपुण्ड्रविधिः । पुरुषार्थप्रबोधे—

श्रौतं भस्म द्विजा मुख्यं स्मार्तं गौणं प्रकीर्तितम् ।

अगस्तिसंहितायाम्—अग्निहोत्राग्निजं भस्म अग्निकार्योद्भवं तथा ॥

औपासनात्समुद्भूतं लक्षहोमोद्भवं तथा ।

महारुद्राग्निजं भस्म रुद्रस्नानोद्भवं तथा ॥

भस्मानि षड्विधान्याहुः सर्वपापहराणि च ।

त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥

अग्निकार्यात्समुद्भूतं तद्धार्यं ब्रह्मचारिणा ।

आवसथ्याग्निसंभूतं गृहस्थैरेव धार्यते ॥

शेषं भस्मत्रयं चैव सर्वैः सर्वत्र धारयेत् ।

देवर्षिकृतं होमस्थं धार्यं यत्नेन सर्वदा ॥

यद्यपि अग्निहोत्रजं सर्वं भस्म प्रशस्तं तथाऽपि गार्हपत्यायतनस्थं प्रशस्ततरम् ।

नर्यभस्म परब्रह्म द्वयं संसारतारकम् ।

तयोरन्यतरत्सेव्यं संसारभयभीरुभिः ॥

इत्यादिवचनात् । श्रौताग्निजं भस्म तदभावे स्वौपासनजं वा बिम्ब्यादित्याह्निकचन्द्रिकायाम् । पुलस्त्यः—

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः शुद्धं भस्माभिमन्त्रितम् ।

शिवमन्त्रेण तद्धार्यं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वा ॥

गायत्र्या वाऽथ देवर्षे मन्त्रेण प्रणवेन वा ।

क्रियासारे—वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाऽऽच्छाद्यान्यपाणिना ॥

अग्निरित्यादिमन्त्रेण स्पृशन्मन्त्र्यभिमन्त्र्य च ।

अग्निरित्यादिमन्त्राश्चाथर्वणशाखायां प्रदर्शिताः । ते च षट् ।

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैस्तथा ॥

इति क्रियासारवचनात् । सप्त वा ।

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्जाबालोपनिषद्भूतैः ।

सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च ॥

इति सूतसंहितायामुक्तत्वात् । स्मृतिसंग्रहे—

धार्यं भस्म त्रिसंध्यं तु गृहिणा जलसंयुतम् ।
सार्वकालं भवेत्स्त्रीणां यतीनां जलवर्जितम् ॥
वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा ।
मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥
मध्याह्नलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य च ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विद्वान्सर्वकर्मसु सर्वदा ॥
पङ्कजलप्रमाणं तु ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम् ।
नृपाणां चतुरङ्गुल्यं वैश्यानां द्वाङ्गुलं तथा ॥
शूद्राणामथ सर्वेषामेकाङ्गुल्यं त्रिपुण्ड्रकम् ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः ।

अतिस्वल्पमनायुष्यमतिदीर्घं तपोहरम् ॥
नेत्रयुग्मप्रमाणेन त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विजः ।
ललाटे हृदये नाभौ गलां(लेऽ)से बाहुसंधिषु ॥
पृष्ठदेशे शिरस्येवं स्थानेष्वेतेषु धारयेत् ।

अथ प्रयोगः। गार्हपत्यायतनादिस्थं स्वौपासनजं वा भस्म वामपाणी कृत्वा दक्षिणेनाऽऽच्छाद्य भस्माभिमन्त्रणमन्त्रस्य पिप्पलादक्लृपिः । रुद्रो देवता । गायत्री छन्दः । भस्माभिमन्त्रणे वि० । ॐ अग्निरिति भस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । द्योमेति भस्म । सर्वं ह वा इदं भस्म । मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि । इति सप्तभिरन्तिमरहितैः षड्भिर्वा मन्त्रैरभिमन्त्र्य जलेन मिश्रयित्वा मध्याह्नलित्रयेण तिर्यगक्षिपर्यन्तं ललाटहृन्नाभिकण्ठांसदक्षिणबाहुमूलमध्यमणिबन्धवामबाहुमूलमध्यमणिबन्धपृष्ठशिरःस्थानेषु ॐ नमः शिवायेति मन्त्रावृत्त्या विभृयात् । इति भस्मत्रिपुण्ड्रविधिः । एवमुक्तयोर्गोपीचन्दनभस्मधारणयोर्यथास्वकुलसंप्रदायमित्यूङ्मन्त्रे व्यवस्था श्रूयते—

ॐ श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाऽऽभृतम् ।

आनिष्ठुचः शक्रुदेको अपाभरत्किंस्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपाऽऽवतुः ।

अत्र प्रथमः पादो गोपीचन्दनादेस्तिलकम् । द्वितीयस्तु गोरोचनायाः । तृतीयो भस्मधारणं च । चतुर्थः स्वकुलसंप्रदायानुरोधं चैषां धारणे प्रतिपादयतीति ।

विष्णुरपि—शाखां शिखां च पुण्ड्रं च समयाचारमेव च ।

पूर्वेराचरितं कुर्यादन्यथा पतितो भवेत् ॥ इति ।

यद्वा—मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं विना तु तत् ।

यत्कर्म क्रियते नित्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

इति वचसि मद्भक्त इति विष्णूक्तेः । तथोर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वेति वचन उभयाऽहं श्रिया हरिरिति शिवोक्तेश्च शिवभक्तस्य त्रिपुण्ड्रं वैष्णवस्योर्ध्वपुण्ड्रमावश्यकमितरेषां तु विकल्पः । क्वचिद्गोपीचन्दनादेर्निषेधमाह ज्योतिर्निबन्धे—

अभ्यङ्गे सूतके चैव* विवाहे पुत्रजन्मनि ।

माह्मगल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम् ॥

एतच्च विवाहादिमाङ्गल्ये मासपर्यन्तम् ।

विवाहादौ मासमेकं न धार्यं गोपिचन्दनम् ।

इति तेनैवोक्तत्वात् । संस्कारदर्पणे स्मृतिसंग्रहे—

मृतपुण्ड्रं भस्मपुण्ड्रं च स्नानं शीतोदकेन च ।

नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥

इत्याचारेन्दौ तिलकप्रकरणम् । अथ संध्योपासनविधिः । तस्य च नित्यतामाह मरीचिः—

संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता ।

जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥

शुचित्वसंपादनेन कर्माङ्गतामाह दक्षः—

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभागभवेत् ॥

अङ्गता च प्रातःसंध्याया एवेति केचित् । युक्तं तु वचनान्तरप्राप्त-तत्तत्संध्याकालोत्तरभाषिततत्कर्माङ्गता संध्यात्रयस्यापि अविशेषात् ।

अत्रिः—संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनाऽऽत्मविदा सदा ।

अत्र संध्यापदस्य संधिरूपकालयोगाद्दर्शपूर्णमासादिपदवत्कर्मनाम-धेयत्वमभिमतम् । तत्रार्घ्यप्रक्षेपणं गायत्रीजपः सूर्योपस्थानं चेति त्रितयं संध्याकर्मणि प्रधानं मार्जनाचमनादीनां समस्तानामङ्गत्वम् । त्रितयेऽप्यर्घ्यप्रक्षेपणं बलवद्गायत्र्याऽभिमन्त्रिता अप ऊर्ध्वं विक्षिप-

न्तीति श्रुतौ तावन्मात्रस्यैव प्रधानत्वेन विधानात् । गायत्रीजपोपस्थानप्रतिषेधपूर्वकमाशौचादावप्यर्घ्यप्रक्षेपणमात्रविधानाच्चेति केचित् । अन्ये तूद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन्कुर्वन्ब्राह्मणो विद्वान्सकलं भद्रमश्नुतेऽसावादित्यो ब्रह्मेति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति य एवं वेदेति श्रुतौ ध्यानमात्रोक्तेः

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ॥

संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ।

इति भारते रणे साङ्गानुष्ठानासमर्थैरर्जुनादिभिः सूर्योपासनशब्दवाच्यसूर्यध्यानमात्रस्यानुष्ठितत्वाच्च गायत्रीजपरूपध्यानस्यैव प्राधान्यं मन्यन्ते । आश्वलायनगृह्ये—संध्यामुपासीतेत्यनुक्रम्य जपमात्रस्यैव विधानादाश्वलायनानां त्विदमेव युक्तम् । अथ संध्यादेशः । शातातपः—

गृहे तु प्राकृती संध्या गोष्ठे दशगुणा भवेत् ।

नदीषु शतसाहस्रा अनन्ता शिवसंनिधौ ।

प्राकृती एकगुणा । शिवसंनिधाविति विष्णवादीनामुपलक्षणम् । अनन्ता विष्णुसंनिधावित्यादिवचनात् ।

व्यासः—बहिः संध्या दशगुणा गर्तप्रस्रवणेषु च ।

स्नाते तीर्थे शतगुणा ह्यनन्ता जाह्नवीजले ॥

शातातपः—अनृतं मद्यगन्धं च दिवा मैथुनमेव च ।

पुनाति वृषलस्यान्नं बहिःसंध्या ह्युपासिता ॥

यत्त्वत्रिवचनम्—संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनाऽऽत्मविदा सदा ।

उभे संध्ये तु कर्तव्ये ब्राह्मणैस्तु गृहेष्वपि ॥

तस्याऽऽशयः—यद्यपि संध्यात्रयं बहिरेव प्रशस्तं तथाऽपि यदा विहरणाद्यङ्गलोपप्रसक्तिस्तदा श्रौतस्य विहरणस्य प्राबल्यात्तदनुरोधेन द्वे संध्ये गृहेऽनुष्ठेये इति । यदि विहरणमन्यकर्तृकं तदा बहिरेवेति कमलाकरः । अथ कालः । परिशिष्टम्—यावहोरात्रयोः संधी यश्च पूर्वाह्णापराह्णयोस्तत्कालमवा देवता संध्या तामुपासीतेति ।

शातातपः—प्रातःसंध्या सनक्षत्रा मध्याह्ना मध्यगे रवौ ।

पश्चिमा तु समारव्याता रविनक्षत्रवर्जिता ॥

धर्मसारे—उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।

अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ।

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा ॥

अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ।

संध्याकर्मणः प्रारम्भकालोऽग्निस्मृतौ—

संध्याकालः प्रागुदयाद्विप्रस्य द्विमुहूर्तकः ।

एतद्वह्नाह्निककर्तृपरमिति महेशादयः ।

वृक्षः—रात्र्यन्त्ययामनाडी द्वे संध्यादेः काल उच्यते ।

दर्शनाद्विलेखायास्तदन्तो मुनिभिः स्मृतः ॥ इति ।

गौणकालावधिरुक्तः स्मृत्यन्तरे—

उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम् ।

तावत्संध्यामुपासीत प्रायश्चित्तमतः परम् ॥

माधवीये—आसंगवं प्रातःसंध्याया गौणैः कालः । आप्रदोषावसानं च सायंसंध्यायाः । तदाह वृद्धमनुः—

न प्रातर्न प्रदोषश्च संध्याकालोऽतिपद्यते ।

मुख्यकालोऽनुकल्पश्च सर्वस्मिन्कर्मणि स्मृतः ॥

तत्र षट्घटिकात्मकः कालः प्रातःशब्दार्थः । मुहूर्तत्रितयं प्रातरिति वचनात् । प्रदोषकालोऽप्येतावानेव त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्भानावस्तंगते सतीतिवचनात् । गौणकालेऽप्यतिक्रान्त आसायं प्रातःसंध्यां कुर्यात् । तावत्पर्यन्तं सूर्यस्य रक्षसां च युद्धप्रवृत्तेः । सूर्यस्य तद्युद्धबाधानिवृत्त्यर्थत्वात्संध्योपासनस्य तस्मादुत्तिष्ठन्त* ह वा तानि रक्षा*स्यादित्यं बोधयन्ति यावदस्तमन्वगादिति श्रुतेः । कालातीतप्रायश्चित्तं त्वग्रे वक्ष्यामः । अथ संध्येतिकर्तव्यता । तत्र संवर्तः—

अथाऽऽचम्य कुशैर्युक्त आसने समुपस्थितः ।

करसंपुटकं कृत्वा संध्यां नित्यं समारभेत् ॥

अर्धदानोत्तरं समन्त्रासनविधेरुक्तत्वात्तावत्पर्यन्तं तूष्णीमेव प्रागग्र-
दर्भयुक्तआसन उपवेशनम् । तच्चोपस्थप्रकारेण । अङ्गधारणं चेति
आचार्येण परिभाषायामुक्तेः । अङ्गधारणा, उपस्थापरपर्यायः । तल्लक्ष-
णमाहाऽऽश्वलायनः—

दक्षिणं चोपविश्योरुं वामगुल्फोपरि न्यसेत् ।

वामोरौ दक्षिणं गुल्फं तच्चोपस्थमुदीरितम् ॥ इति ।

अङ्गुष्ठेन पुटं ग्राह्यं नासाया दक्षिणं पुनः ।
कनिष्ठानामिकाभ्यां तु वामं प्राणस्य संग्रहे ॥

यत्तु—पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रपीडनं प्रणवाभिधा ।
मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासाग्रस्य च पीडनम् ।
ॐकारमुद्रा सा प्रोक्ता यतेश्च ब्रह्मचारिणः ॥

इतिव्यवस्थापकं स्मृतिसंग्रहवचनं तद्वद्वृचभिन्नपरम् । बह्वृचानां
शौनकोक्तस्याभ्यर्हितत्वात् । उक्तप्राणायामाशक्तौ वैद्यनाथदीक्षितकृ-
ताह्निके भरद्वाजः—

अशक्तिः स्याद्यदि प्रोक्ते प्राणायामे द्विजन्मनः ।
बालस्य चेतरेपां च दशकृत्वो जपः स्मृतः ॥

अत्यन्ताशक्तौ स एव—

सप्तैव व्याहृतीरेताः केवला वा द्विजो जपेत् ।
जपकामोऽयमेव स्यात्सर्वपापप्रणाशनः ॥

ततः प्राणायामनिमित्तमाचमनम् । तदुक्तं मनुना—

प्राणस्याऽऽयमनं कृत्वा आचामेत्प्रयतोऽपि सन् ।
आन्तरं खिद्यते यस्मात्तस्मादाचमनं स्मृतम् ॥ इति ।

यद्वाऽऽचमनानुकल्पत्वेन दक्षिणश्रवणं स्पृशेत् ।

कुर्वीताऽऽलम्भनं वाऽपि दक्षिणश्रवणस्य तु ।

इति मार्कण्डेयात् । शिष्टाचारोऽप्येवम् । ततः संकल्पः । तत्र परि-
शिष्टम्—अथ कर्म संकल्पयेति ।

शौनकः—प्राणानायम्य विधिवद्वाग्यतः संयतेन्द्रियः ।

अथ संध्यामुपासिष्य इति संकल्प्य मार्जयेत् ॥

तत्र संकल्पप्रकारो मतभेदेन त्रिविधः । कौमारिलमते तावत्संध्या-
वन्दनादिषु नित्येषु कर्मस्वधिकारवाक्यचोदितफलाभावेऽपि मन्त्रालिङ्गा-
र्थवादादिबहुवाक्यपर्यालोचनयोपात्तदुरितक्षय एव फलत्वेन परिकल्पित
इति तदनुरोधादुपात्तदुरितक्षयार्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्ये ज्योतिष्टोमेन
यक्ष्य इत्यादिरीत्या सर्वेषु नित्यकर्मसु संकल्पः । गुरुमते तु विधिसि-
द्धिरेव विधेः फलमिति चोदितफलाभावेऽपि विधिसिद्ध्यर्थं प्रातःसंध्या-
मुपासिष्ये ज्योतिष्टोमेन यक्ष्य इत्यादिरीत्या नित्येषु संकल्पः । शारी-

रकभाष्ये तु ब्रह्मार्पणबुद्धयैव कर्माणि कर्तव्यानीत्युक्तम् । एतन्मते श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्ये ज्योतिष्टोमेन यक्ष्य इत्यादिरीत्या संकल्पः । भट्टसोमेश्वरस्तु सर्वोपात्त[दुरित]क्षयेऽन्यानर्थक्यात्कस्यचित्क्षये विनिगमकाभावान्नित्यकर्मणां प्रत्यवायपरिहारार्थत्वमाह । एतन्मते प्रत्यवायपरिहारार्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्य इत्यादिरीत्या संकल्पः । संध्यायामेव विशेषः (पं) संवर्त आह—

नत्वाऽथ पुण्डरीकाक्षमुपात्ताघप्रशान्तये ।

ब्रह्मवर्चसकामार्थं प्रातःसंध्यामुपास्महे ॥ इति ।

सांप्रदायिकास्तु ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्य इति संकल्पमाहुः । नैमित्तिकेऽपि यत्र जातेष्टयादौ फलश्रवणं तत्र निमित्तफलसमुच्चिताधिकारात्पुत्रजन्मनिमित्तं पुत्रगतपूतत्वादिक्रामो जातेष्ट्या यक्ष्य इत्यादिसंकल्पः । यत्र तूपरागे स्नायादित्यादौ निमित्तमात्रश्रवणं तत्रोपरागनिमित्तं स्नानं करिष्य इति संकल्पः । संकल्पे देशकालाद्युल्लेखः कार्य इत्युक्तं प्राक् । अथ मार्जनम् । परिशिष्टम्—शुचौ पात्रे सव्यपाणौ वाऽप आधाय स्थिरे तूदकाशये यावत्कर्म कुर्वीत तावत्तदुदकस्य विभागं कल्पयित्वा तीर्थानि तत्राऽऽवाह्यापः सदर्भेण पाणिनाऽऽदायोत्तानं शिरसि मार्जयेदोर्ध्वं पच्छ आपो हि षेति तिसृभिरिति । शुचिपात्रमाह ब्रह्मा—

नद्यां तीर्थे हृदे तत्र भाजने मृन्मये गृहे ।

औदुम्बरे च सौवर्णे राजते दारुसंभवे ॥

कृत्वा तु वामहस्ते वा संध्योपासितं समाचरेत् ।

औदुम्बरं ताम्रम् । औदुम्बरं स्मृतं ताम्रमिति विश्वकोशात् । कृत्वेत्यनन्तरमुदकमिति शेषः । पात्राकृतिमाह मरीचिः—

गोकर्णाकृतिवत्पात्रं ताम्रं रौप्यं च हाटकम् ॥

जलं तत्र विनिक्षिप्य संध्योपासनमाचरेत् ॥

सव्यपाणौ वेति उक्तपात्राभावे बोध्यम् । न तु पात्रसत्त्वेऽपि ।

वामहस्ते जलं कृत्वा ये तु संध्यामुपासते ।

सा संध्या वृषली ज्ञेया असुरास्तैस्तु तर्पिताः ॥

इति स्मरणात् । अयं च विकल्पो गृहसंध्याविषयः । न तु नद्यादिसंनिधिकर्तव्यसंध्याविषयः । तथा च संवर्तः—

इत्थं कृत्वा तु संकल्पं कुशानादाय पाणिना ।

नद्यां नद्युद्धृतैस्तोयैर्गृहे वामकरस्थितैः ॥

मार्जनं कुर्यादिति शेषः । आपस्तम्बोऽपि—

गङ्गायां वापिकायां वा तडागे च तथैव च ।

वामहस्ते जलं गृह्णन्न कुर्यान्मार्जनं क्वचित् ॥

गृहे पात्रसद्भावेऽपि तन्मार्जनपात्रं वामहस्ते धार्यम् । गृहे वामकर-
स्थितैरिति पूर्वोक्तवचनात् । अत एव गृहे वामकरधृतपात्रस्थोदकैर्मार्ज-
येदिति कमलाकरोऽवदत् । शिष्टाचारोऽप्येवम् । मार्जनं च देवतीर्थेन
कार्यं मार्जनार्चनबलिकर्मभोजनानि देवतीर्थेन कुर्यादिति हारीतोक्तेः ।
देवतीर्थं तु—अङ्गुल्यग्रे तीर्थं दैवमित्यमरसिंहोक्तं ज्ञेयम् । तत्रापि
विशेषः स्मृत्यन्तरे—

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः क्षेपणं तु कुशोदकैः ।

पारिजाते-तर्जनीमध्यमाभ्यां वा तृचेनाद्दैवतेन तु ।

मार्जनकुशानां बहुत्वं पूर्वोक्तसंवर्तवचने स्पष्टम् ।

शौनकः—पादे पादे क्षिपेन्मूर्ध्नि प्रतिप्रणवसंयुतम् ।

अष्टाक्षरं नवपादं पादान्ते वारि चोत्सृजेत् ॥

अपादान्ते तु यद्धारि तत्तोयं रुधिरं भवेत् ।

यत्तु—आपो हि ष्ठादिभिः पादैः शिरस्यंसे च विप्रुषः ।

यस्य क्षयायेत्यधस्तात्क्षिप्त्वाऽद्भिः परिषेचयेत् ॥

इति ब्राह्मवचनं

सप्तत्रयमाकाशे वरवत्रयमस्तके ।

भूम्यां प्रोक्तं नत्रयं तु एतन्मार्जनलक्षणम् ॥

इति संग्रहवचनं च तदाश्वलायनभिन्नपरं परिशिष्टशौनकादिवि-
रोधात् ।

अथ मन्त्राचमनम् । तत्र मयूखादिधृतपरिशिष्टम्—अथाऽऽचमनोद-
कमादाय सूर्यश्चेति पिबेत्सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः
पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्वाऽत्रा पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्या-
मुदरेण शिश्रा रात्रिस्तदवलुम्पतु । यत्किं च दुरितं मयि । इदमहं माममृ-
तयोमौ सूर्यं ज्योतिषि जुहोमि स्वाहेत्येतत्समन्त्राचमनमिति । अत्र

यद्यपि सूर्यश्चेत्यादयो मन्त्राचमनमन्त्रास्तैत्तिरीयोपनिषद्यप्याम्नातास्तथाऽप्याश्वलायनैः परिशिष्टोक्ता एव ग्राह्याः । स्वसूत्रत्यागे प्रत्यवायश्रवणात् । तेऽप्येकश्रुत्यैव पठनीयाः ।

अविज्ञातस्वरो मन्त्रः सौत्र एकश्रुतिर्भवेत् ।

इति कारिकोक्तेः । अत एव जगद्गुरुनारायणभट्टैरपीध्माधानादिसौत्रमन्त्रा एकश्रुत्यैव पठनीया इत्युक्तम् । अत्र यद्यप्युदकपरिमाणं नोक्तं तथाऽपि

माषमज्जनमात्रास्तु संगृह्य त्रिः पिबेदपः ।

इत्याचमनप्रकरणोक्तं ग्राह्यम् । आचमनत्वस्यात्राप्यविशेषात् । आकाङ्क्षासत्त्वाच्च । अथ द्वितीयमार्जनम् । तत्र भट्टोजीये गृह्यपरिशिष्टम्—अथ पुनराचम्य मार्जयेत्प्रणवव्याहृतिसावित्रीभिर्ऋक्श आपो हि षेति-सूक्तेन गायत्रीशिरसा चाम्भसाऽऽत्मानं परिपिश्वेदेतन्मार्जनमिति । इदं च सकृदाचमनमत्र विशेषानुक्तत्वात् ।

आदावन्ते च संध्यायां द्विर्द्विराचमनं भवेत् ।

तथैवार्घ्यप्रदानान्ते मध्ये मध्ये सकृत्सकृत् ॥

इति वचनाच्च द्विराचमनमिति नागदेवीये । भगवान्—

प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ।

आपो हि षेति सूक्तेन चतुर्थमिति मार्जनम् ॥

प्रणवाद्ययेत्ययमनुवादो मन्त्रादौ सर्वत्र पारिभाषिकप्रणवस्य प्राप्तत्वात् । अन्यथाऽऽपो हि षेत्यादौ प्रणवो न स्यात् । प्रणवादिशिरोमन्त्रान्तानि त्रयोदश मार्जनानि ।

ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः ।

अर्धर्चान्तेऽथ वा कुर्याच्छिष्टानां मतमीदृशम् ॥

इति प्रजापत्युक्तप्रकारत्रये प्रथमप्रकारो द्वितीयमार्जनानुगुण ऋक्श इत्युक्तत्वात् । द्वितीयः प्रकारः प्रथममार्जनानुगुणः पच्छ इत्युक्तत्वात् । तृतीयप्रकारः शाखान्तरपरः । आचारार्के तु अर्धर्चान्ते द्वितीयमार्जनमुक्तं तच्च परिशिष्टविरोधाद्विचारणीयम् । इमान्यपि मार्जनानि शिरस्येव ।

शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकविन्दुभिः ।

प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्येति कमाश्रयम् ॥

अर्धर्चान्ते मार्जनं कुर्यात् चतुर्थमिति मार्जनम् ।

स्थानादावाधारमण्डपे स्थितं ज्योतिर्नासारन्ध्रेणाऽऽधारमण्डपादन्त-
रञ्जल्यागतं मन्देहाख्यराक्षसनाशाय येन सह क्षिप्तं गायत्रीशिरसा नासा-
धामरन्ध्रेण पुनराधारमण्डपे स्थापयामीति भावयेदिति सर्थतात्पर्यार्थः ।
इदं मान्त्रिकसंध्याविषयं न तु वैदिकसंध्याविषयं प्रत्यक्षवेदे तथाऽनुक्त-
त्वादिति केचित् । आश्वलायनस्मृतावुक्तत्वादाश्वलायनानामावश्यकम-
न्येषां कृताकृतमित्यन्ये । अर्ध्याञ्जली तर्जन्यङ्गुष्ठयोगो न कार्यः । तदुक्तं
स्मृत्यन्तरे—

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन राक्षसी मुद्रिका भवेत् ।

यो ददाति तया चार्ध्यं तत्तोयं रुधिरं भवेत् ॥

आश्वलायनः—गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य राविं वीक्ष्य जलाञ्जलिम् ।

द्वौ पादौ च समौ कृत्वा पाष्णीं उद्धृत्य निक्षिपेत् ॥ इति ।

गोशृङ्गं तु द्वादशाङ्गुलमष्टाङ्गुलं वेति बोध्यमिति चन्द्रिकायाम् ।
अर्धकालः काशीखण्डे—

अर्धोदयास्तसमये तस्मादर्धोदकं क्षिपेत् ।

आश्वलायनैस्तु अर्धास्ते सायमर्धनक्षत्रास्ते प्रातर्यथा जपारम्भो भवे-
त्तथाऽऽचमनादिगायत्र्यावाहनान्तं कर्म कर्तव्यं तथैव तत्सूत्रसिद्धान्तात् ।

शौनकः—असावादित्यमन्त्रेण प्रदक्षिणमतः परम् ॥

अपः स्पृष्ट्वा दक्षिणेन त्विति ।

श्रुतिरपि—यत्प्रदक्षिणं प्रक्रामन्ति तेन पाप्मानमवधू(?)न्वन्तीति ।
असावादित्येति मन्त्रे दीर्घमाकारं केचित्पठन्ति तद्भाष्यविरुद्धत्वाद्धे-
यम् । अप उपस्पृशेदिति केवलजलस्पर्श एव न त्वाचमनम् ।

सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥

दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्ट्वा विशुध्यति ।

इति चन्द्रोदये नारसिंहात् । संध्याभाष्ये तु—

मन्देहानां विनाशाय निक्षिपेत्तु जलाञ्जलीन् ।

प्रायश्चित्तार्थमाचम्य मुच्यते दैत्यहृत्यया ॥

इति संग्रहवचनेनाऽऽचमनमुक्तम् । जलस्पर्शाचमनयोः समुच्चय इति
केचित् । उभयोरेककार्यत्वान्न समुच्चय इत्यन्ये । इदं च द्विराचमन-
मिति केचित् । तथैवाध्यप्रदानान्त इति पूर्वोक्तवचनात् । अथ गाय-

त्रीजपः । तत्र गृह्यम्—यज्ञोपवीती नित्योदकः संध्यामुपासीत वाग्यतः
 सायमुत्तरापरामिमुखोऽन्वष्टमदेशं सावित्रीं जपेद्धर्मास्तमिते मण्डल
 आनक्षत्रदर्शनादेवं प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनादिति । परि-
 शिष्टम्—शुचौ देशे दर्भान्भस्मोक्षिते दर्भान्संस्तीर्य व्याहृतिभिरभ्युक्ष्य सावित्र्या ऋषिदेवत-
 प्राणायामत्रयं कृत्वाऽऽत्मानं व्याहृतिभिरभ्युक्ष्य सावित्र्या ऋषिदेवत-
 च्छन्दांस्यनुस्मृत्य तामेतां चतुरक्षरशो विभक्तामन्तयोजितां पृष्ठमिश्वा-
 ङ्गमन्त्रैर्यथाङ्गमात्मानि विन्यस्याऽऽत्मानं तद्रूपं भावयेत् । तद्यथा—ॐ
 तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धियो नो ज्ञानेव ब्रह्म विष्णुर्मातृतामसः ॥
 ॐ वरेण्यं शिरसे स्वाहेति शिरसि । ॐ भर्गो देवस्य शिखायै वषडिति शिखायाम् । ॐ धीमहि कवचाय
 हुमित्युरसि । ॐ धियो यो नो नेत्रत्रयाय वीषडिति नेत्रललाटदेशेषु
 विन्यस्याथ प्रचोदयादध्नाय फडिति करतलेनास्त्रं प्राच्यादिदशसु दिक्षु
 न्यसेदेषोऽङ्गन्यास एतमप्येके नेच्छन्ति स हि विधिरवैदिक इत्यथ मन्त्र-
 देवतां ध्यात्वाऽऽगच्छ वरदे देवीत्यावाह्य तिष्ठन्नर्धनष्टेषु नक्षत्रेष्वामण्ड-
 लदर्शनान्मन्त्रार्थमनुसंधानः प्रणवव्याहृतिपूर्विकां सावित्रीं जपेदिति ।
 शुचिदेशमाह शङ्खः—

गृहे त्वेकगुणं जाप्यं नद्यां तु द्विगुणं स्मृतम् ।

गवां गोष्ठे दशगुणमग्न्यागारे शताधिकम् ॥

सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतानां च संनिधौ ।

सहस्रशतकोटीनामनन्तं विष्णुसंनिधौ ॥ इति ।

अभ्युक्षणलक्षणं तु—मुष्टी करोति यत्तोयमभ्युक्षणमिति स्मृतम् ।
 इति ज्ञेयम् । दर्भास्तरणं प्रागग्रतया ।

प्राङ्मुखेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः ।

इति कूर्मपुराणात् । अथाऽऽसनान्तराणि आचारप्रकाशे मन्त्रखण्डे—
 यथोक्तासनमारूढो जपमन्त्रान्तसमाचरेत् ।

कुशाजिनाम्बरैर्युक्तैश्चतुरङ्गुलमूर्ध्वतः ॥

चतुरस्रं द्विहस्तं च सुवृढं मृदु निर्मलम् ।

तत्र विशेषमाह व्यासः—

कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च ।

दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेत् ॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्भोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।

वैशाजिने व्याधिनाशः कम्बले दुःखमोचनम् ॥

अभिचारे नीलवर्णं रक्तं वश्यादिकर्मणि ।

शान्तिके कम्बलः प्रोक्तः सर्वेष्टं चित्रकम्बले ॥

शारदातिलके—वस्त्रासने रोगनाशं चित्रकं विष्टरं श्रिये ।

महोदधौ—अनन्तं विमलं पद्मं डेन्तासननमोन्वितम् ॥

जपन्निदध्याद्भस्त्रीन्कुशचर्माम्बरासने ।

शङ्खः—कुशचर्मसमासीनः कुशोत्तरायां वा कुशपवित्रपाणिः सूर्या-
भिमुखो देवतां ध्यायञ्चपं कुर्यादिति । निषिद्धान्याह प्रचेताः—

गोशकृन्मृन्मयं भिन्नं तथा पालाशपिप्पलम् ।

लोहबद्धं सदैवाऽऽकं वर्जयेदासनं बुधः ॥

व्यासः—वंशासनेषु दारिद्र्यं पापाणे व्याधिजं भयम् ।

धरण्यां दुःखसंभूतिर्दीर्घायं छिद्रदारुजे ॥

तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।

स्मृत्यन्तरे—मृगचर्मं प्रयत्नेन वर्जयेत्पुत्रवान्गृही ॥

उपवेशनमन्त्रस्तु परिशिष्टमते व्याहृतिः । गायत्रीकल्पे तु मन्त्रान्तर-
मुक्तम्—पृथिव त्वया धृता लोका इत्यादि । अनयोः समुच्चय इति
प्रायोगिकाः । उभयोरैककार्यत्वान्न समुच्चय इत्यन्ये । आचारार्के तु
व्याहृतिभिरुपवेशनोत्तरं पृथिव त्वयेति मन्त्रपाठ उक्तः स किमूलक
इति न विद्मः । उपवेशनं तूपस्थासनेनेति पूर्वमुक्तम् । वायुपूराणे तु—

पद्ममर्धासनं वाऽपि तथा स्वास्तिकमासनम् ।

एषां लक्षणानि कौर्म—

ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्र कृत्वा पादतले उभे ।

समासीताऽऽत्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम् ॥

एकं पादमथैकस्मिन्विन्यस्योरुणि सत्तम ।

आसीनोऽर्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम् ॥

उभे कृत्वा पादतले जानूध्वोरन्तरेण हि ।

समासीताऽऽत्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम् ॥ इति ।

पङ्कजन्यासमन्त्रेषु प्रतिमन्त्रमादौ पारिभाषिकः प्रणव उच्चार्यः ।

पारिजातेऽप्येवम् । शक्तेः पङ्कजमुद्रा महोदधौ—

हृद्यङ्गुलीत्रयं न्यस्येत्तर्जन्यादिद्वये तु के ।

शिखाप्रदेशेऽथाङ्गुष्ठं दशाङ्गुल्यस्तु वर्मणि ॥

हृद्वन्नेत्रं पूर्वमर्धं शक्तेरङ्गस्य मुद्रिकाः ।

पूर्वमस्त्रं विष्णोरस्त्रतुल्यं तच्च तत्रैव—

प्रसारिताभ्यां हस्ताभ्यां कृत्वा तालत्रयं सुधीः ।

तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे स्फालयन्बन्धयेद्दिशः ॥ इति ।

मन्त्रदेवतां ध्यात्वेत्युक्तं तद्भयानमुक्तं परिशिष्ट एव—अथ देवताध्यानम्—या संध्योक्ता सैव मन्त्रदेवता खलूपास्यते तां सर्वदैकरूपां ध्यायेदनुसंधयमन्यान्यरूपां वा । यदैकरूपायुग्यजुःसामत्रिपदां तिर्यगूर्ध्वाधरदिक्पट्कुक्षि पञ्चशीर्षाग्निमुखां ब्रह्माशिरसं विष्णुहृदयां रुद्रशिखां पृथिवीयोनिं दण्डकमण्डलवक्षसूत्राभयकरां चतुर्भुजां शुभ्रवर्णां शुभ्राम्बरानुलेपनस्रगाभरणां शरच्चन्द्रसहस्रप्रभां सर्वदेवमयीमिमां देवीं गायत्रीमेकामेव तिसृषु संध्यासु ध्यायेदर्थं यदि भिन्नरूपां तां प्रातर्बालां बालादित्यमण्डलमध्यस्थां रक्तवर्णां रक्ताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां चतुर्वक्त्रामष्टनेत्रां दण्डकमण्डलवक्षसूत्राभयाङ्गुचतुर्भुजां हंसासनारूढां ब्रह्मदैवत्यायुग्वेदमुदाहरन्तीं भूर्लोकाधिष्ठात्रीं गायत्रीं नामदेवताम् । अथ मध्यंदिने तां युवतीं युवादित्यमण्डलमध्यस्थां श्वेतवर्णां श्वेताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां पञ्चवक्त्रां प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखरां त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गुडमर्वङ्गुचतुर्भुजां वृषभासनारूढां रुद्रदैवत्यां यजुर्वेदमुदाहरन्तीं भुवर्लोकाधिष्ठात्रीं सावित्रीं नामदेवताम् । अथ सायं तां वृद्धां वृद्धादित्यमण्डलमध्यस्थां श्यामवर्णां श्यामाम्बरानुलेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रां द्विनेत्रां शङ्खचक्रगदापद्माङ्गुचतुर्भुजां गरुडासनारूढां विष्णुदैवत्यां सामवेदमुदाहरन्तीं स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं सरस्वतीं नाम देवतां ध्यात्वाऽऽवाह्य जपित्वेति । संध्यादेवता वसिष्ठेन स्पष्टीकृता—

या संध्या सा जगत्स्फूर्तिर्मायातीता हि निष्कला ।

ईश्वरी केवला शक्तिर्वेदत्रयसमुद्भवा ॥

ध्यात्वाऽर्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपेद्बुधः ।

अनेनार्कविम्बाभिव्यक्तमादित्यशब्दवाच्यपरब्रह्मरूपचिच्छक्तिरेव संध्यादेवतेत्युक्तं भवति । आवाहनमन्त्रः परिशिष्टे—

आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे संनिधौ भव ।

गायन्तं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृता ॥

व्यासः—आवाहयेत गायत्रीं सर्वपापप्रणाशनीम् ।

मुख्यतया प्रतिपाद्यत्वात् । तेन गौणकाले संध्यानुष्ठानेऽपि जपस्याऽऽवश्यकत्वात् । सायमुपविश्यैव प्रातस्तिष्ठन्नेव जपेदिति गम्यते । प्रातस्तिष्ठतो जपे कारणमपि श्रूयत ऐतरेयब्राह्मणे प्रत्युत्थेया वा आपः प्रति वै श्रेयांसमायन्तमुत्तिष्ठन्तीति । श्रेयांसं श्रेष्ठतममायन्तमागच्छन्तं प्रत्यभिमुखास्तिष्ठन्ति लोके परत्र गुर्वादौ श्रेष्ठ आगच्छति सति भृत्यादय उत्तिष्ठन्तीति । सूर्ये विश्वेश्वर उदित आगच्छति केनापि स्थातुं नोचितमतः कारणात्प्रातस्तिष्ठन्नेव जपेत् । इतरकालयोरुपविश्य जपः सूर्यस्याभिमुखागमनाभावात् । वृषाकपिरपि—

कन्यादानं च गोदानमुत्तराचारमेव च ।

प्रातःसंध्याजपं चैव तिष्ठन्नेव समाचरेत् ॥

योगयाज्ञवल्क्यः—ब्रह्मचार्याहिताग्निश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ।

वानप्रस्थो यतिश्चैव सहस्रादधिकं जपेत् ॥

अत्राऽऽहिताग्निशब्देन परिशेषाद्गृहस्थ उच्यत इति पारिजाते ।

स्मृत्यन्तरे—सायं प्रातश्च मध्याह्ने सावित्रीं वाग्यतो जपेत् ।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥

व्यासः—अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरेव वा ।

विधिना दशकं वाऽपि त्रिकालेषु जपेद्बुधः ॥

आपद्यष्टसंख्येति स्मृत्यर्थसारे ।

नारदः—सर्वत्रैव प्रदोषेषु गायत्रीमष्टसंख्यया ।

अष्टाविंशत्यनध्याये जपेन्नाष्टोत्तरं शतम् ॥

सुमन्तुः—अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नित्यादर्धं जपेत्सुधीः ।

प्रतिपत्सु तुरीयांशं पर्वण्यल्पतरं जपेत् ॥

चन्द्रिकायाम्—श्राद्धे प्रदोषे दर्शे च गायत्री दशसंख्यया ।

अष्टाविंशत्यनध्याये त्रयोदश्यां तु मानसम् ॥

अत्रोक्तवचनानां व्यवस्था । सूर्योदयनक्षत्रावधिर्जपः काम्यः । कामनाभावेऽष्टोत्तरशतादिसंख्याग्रह इत्याचारादर्शः । तन्न । कामनाश्रुतेः । अंतोऽष्टोत्तरशतादिसंख्याप्रतिपादकानि योगयाज्ञवल्क्यादिवचनानि गौणसंध्यावन्दनपराणि येषां गृह्ये जपावधिर्नोक्तस्तत्पराणि चेति युक्तं वक्तुम् । अशक्तौ दशाष्टादिसंख्या सर्वैरपि ग्राह्या नित्यकर्मणां

यथाकथंचित्कर्तव्यत्वात् । प्रदोषादिनिमित्तवशेन न्यूनसंख्याप्रतिपाद-
कानि नारदसुमन्त्वादिवचनान्यपि गौणकालसंध्यावन्दनपराणि शाखा-
न्तरपराणि चेति केचित् । युक्तं तु यथाऽऽशौचनिमित्तेनोक्ता दशसंख्याऽ-
विशेषेण सर्वैर्गृह्यते तथा प्रदोषादिनिमित्तेनोक्ताष्टादिसंख्या सर्वैरपि
ग्राह्येति । अत्र जपमालामणिसंख्या तत्संस्कारजपनियमादिकं च सर्वं
नैमित्तिकजपप्रकरणे वक्ष्यामः । जपान्त उपविश्य पूर्ववत्पङ्क्तं कुर्यात् ।
अयं षडङ्गो यद्यपि परिशिष्टे नोक्तस्तथाऽपि तान्त्रिकपरिभाषया पारि-
जातादिभिर्लेखनाच्छिष्टसमाचाराच्च कार्यः । अथोपस्थानं परिशिष्टे—
अथ जातवेदसे सुनवाम सोमं० तच्छंयोरावृणीमहे० नमो ब्रह्मणे नमो
अस्त्वग्नये इत्येताभिरुपस्थायेति ।

शौनकोऽपि—सायं प्रातरुपस्थानं कुर्यान्मन्त्रैर्यथाक्रमम् ।

जातवेदस इत्येका तच्छंयोरावृणीमहे ॥

नमो ब्रह्मणे इत्येतैरुपतिष्ठेद्विशं प्रति ।

मगवान्—त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण नमो ब्रह्मणे इत्यथ ।

इमं मे वरुण तत्त्वेति सायंकाले विशेषतः ।

मित्रस्य चर्पणी द्वाभ्यां प्रातःकाले विशेषतः ॥

आश्वलायनस्मृतौ तु—ऋग्भिश्चतसृभिर्मन्त्रैर्गायत्रैरेव बहवृचः ।

इत्युक्तम् । अत्र स्मृत्यन्तरोक्तोपस्थानमन्त्राणां परिशिष्टोक्तोपस्था-
नानन्तरं संनिवेशः । आगन्तूनामन्ते संनिवेश इति न्यायात् । अत एव
पारिजातादिप्रयोगे तथैवोक्तम् । आचारार्के तु जातवेदस इत्यनन्तरं
स्मृत्युक्तमन्त्राणां संनिवेशः कृतः स न समीचीन इति भाति । यथाक्र-
ममिति शौनकोक्त्या मध्ये संनिवेशस्यात्यन्तानुचितत्वात् । उपस्थानं
चाऽऽदित्यस्यैव । तदुक्तमाश्वलायनस्मृतौ—

अथोपतिष्ठेद्वादित्यमुदयं सुसमाहितः ।

भारतेऽपि—

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।

संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥

केचित्संध्योपस्थानमाहुः । तत्रापि संध्याशब्द आदित्यशब्दवाच्यपर
इति भट्टोजीय उक्तत्वादविरोधः । अत्र यद्यपि जातवेदस इमं मे वरुण
इत्यादिभिर्लेखनाच्छिष्टसमाचाराच्च कार्यः तथाऽपि श्रुतेः प्राचल्या-

दाने प्रतिग्रहे होमे संध्यात्रितयवन्दने ।

बलिकर्मणि चाऽऽचामेदादौ द्विर्नान्ततो द्विजः ॥

अन्ते द्विराचमनविधायकं पूर्वोक्तवचनं शाखान्तरपरम् । ततः संध्यो-
पासनकर्म विष्णवे समर्पणीयम् । तदुक्तं बृहन्नारदीये—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ॥

विष्णोः समर्पितं सर्वं सात्त्विकं सफलं भवेत् ।

गीतायामपि—यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ इति ।

केचन कर्मान्ताचमनात्पूर्वं कर्मेश्वरार्पणं कुर्वन्ति तन्न समञ्जसम् ।
आचमनस्य कर्माङ्गत्वात्साङ्गकर्मण ईश्वरे समर्पणीयस्योचितत्वात् ।
समर्पणवाक्यं तु—अनेन संध्योपासनाख्येन कर्मणा परमेश्वरः प्रीय-
तामिति बहवः । युक्तं तु इदं यत्कृतं प्रातःसंध्योपासनाख्यं कर्म तत्परमे-
श्वराय समर्पयामीति । विष्णोः समर्पितं सर्वमित्याद्युक्तवाक्यानुरोधात् ।
कुशत्यागकालमाह धर्मप्रवृत्तौ शौनको मन्त्राचमनान्ते—

विसृज्य दर्भानाचम्य कुशपाणिश्च मार्जयेत् ।

आपो हि छेति नवाभिर्ऋग्भिर्मार्जनमाचरेत् ॥

ऋतं चेति तृचं वाऽपि द्रुपदां वा जपेद्वचम् ।

दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत् ॥

तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत् ।

आचम्य दर्भान्विसृजेच्छ्रुत्वा दर्भान्तः परम् ॥

पाणिभ्यां जलमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।

आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं संध्ययोः क्षिपेत् ॥ इति ।

असावादित्यमन्त्रेण प्रदक्षिणमतः परम् ।

अपः स्पृष्ट्वा दक्षिणे तु पश्चाद्दर्भान्विसर्जयेत् ॥

प्रयोगपारिजातेऽप्येवम् । पवित्रस्य तु कर्मसमर्पणोत्तरं ग्रन्थिं
विस्रस्य शुचिदेशे क्षेपः ।

धृतं पवित्रं कर्मान्ते ग्रन्थिं मुक्त्वैव तत्त्यजेत् ।

इति वचनात् । अथ संध्यामन्त्राणामृषिदैवतच्छन्दोविषये परिशि-
ष्टम्—अथास्य मन्त्राणामृषिदैवतच्छन्दांसि प्रणवस्य ब्रह्माऽग्निर्देवी

गायत्री । व्याहृतीनां सप्तानां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिव-
सिष्ठकश्यपाः प्रजापतिर्वा सर्वासामग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्र-
विश्वे देवा गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यस्तिसृणामाद्यानां तु
समस्तानां प्रजापतिः प्रजापतिर्बृहती । सावित्र्या विश्वामित्रः सविता
गायत्री । शिरसः प्रजापतिर्ब्रह्माग्निवाय्वादित्या यजुश्छन्दः । आपो
हि नव त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाऽम्बरीष आपं गायत्रं धनुष्टुवन्तं
पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा । सूर्यश्च ब्रह्मा सूर्यमन्युर्मन्युपतिः
प्रकृतिः । आपः पुनन्तु विष्णुरापोऽष्टी । अग्निश्च रुद्रोऽग्निमन्युमन्युप-
तयश्च प्रकृतिः । ऋतं तृचं माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तमानुष्टुभम् ।
जातवेदसे कश्यपो जातवेदा अग्निस्त्रिष्टप् । तच्छंयोः शंयुर्विश्वे देवाः
शक्ती । नमो ब्रह्मणे प्रजापतिर्विश्वे देवा जगती । आकृष्णेन हिरण्य-
स्तूपः सविता त्रिष्टप् । हंसः शुचिषद्दामदेवः सूर्यो जगती । उदुत्यं
प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्रमन्याश्चतस्रस्त्रिष्टुभः । चित्रं देवानां कुत्सः सूर्य-
स्त्रिष्टप् । तच्चक्षुर्वसिष्ठः सूर्यः पुरउष्णिक् । देवतास्मरणमेव वा कुर्या-
देवमन्यत्र व्याख्यातमिति । प्रणवस्य ब्रह्माऽग्निर्देवी गायत्री । व्यासोऽपि—

प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द एव च ।

देवोऽग्निः सर्वकर्मादौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥

वचनान्तरे तु परमात्मा देवतोक्ता परं तु गायत्रीहृदय उक्तपरिशिष्टे
चाग्निदेवतोक्तेराश्वलायनैराग्निदेवतैवोच्चार्या । कमलाकरवृत्तिहावप्येवमू-
चतुः । सप्तव्याहृतिऋष्यादिविषये वचनान्तरं—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।

ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च कश्यपश्च यथाक्रमात् ॥ इति ।

अत्र व्याहृतीनां सप्तानां विश्वामित्रभृगुभरद्वाजवसिष्ठगौतमकश्य-
पाङ्गिरसा इति ऋचित्पाठः परिशिष्टपुस्तकान्तरे दृश्यते परं तु वचना-
न्तरैकवाक्यतयाऽऽचाराकार्कादिबहुग्रन्थानुरोधाच्च पूर्वपाठ एव समीचीनः ।
सूर्यश्चेत्यस्य ब्रह्मा ऋषिः प्रकृतिश्छन्द आपो देवतति पृथ्वीचन्द्रोदयः ।
अग्निर्ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यमन्युमन्युपतिरात्रयो देवता इति चन्द्रिका-
मदनपारिजातौ । आपः पुनन्त्वित्यस्याग्निश्चेत्यस्य चर्ष्यादयः परिशिष्टानु-
रूपा एव चन्द्रिकायां रत्नमालायां चोक्ताः । सूर्यश्चेत्यस्य याज्ञिक्युपनि-

पद ऋपिः सूर्यमन्युमन्युपतयो रात्रयश्च देवता गायत्रीपङ्क्तिविराज-
श्छन्दांसीत्यादिप्रकारान्तरमाश्वलायनैर्नाऽऽदत्तं स्वगृह्यपरिशिष्टविरो-
धात् । ऋष्याद्युच्चारणे क्रमो बृहद्देवतानुक्रमणिकायां—

नियमोऽयं जपे होमे ऋपिश्छन्दोऽथ दैवतम् ।

अन्यथा चेत्प्रयुञ्जानस्तत्फलं चात्र ह्रीयते ॥

अर्थेऽस्यः खल्वृषयश्छन्दोभिर्देवताः पुरा ।

अभ्यधावन्निति च्छन्दो मध्ये त्वाहुर्महर्षयः ॥

ऋपिं तु प्रथमं ब्रूयाच्छन्दस्तु तदनन्तरम् ।

दैवतामथ मन्त्राणां कर्मस्वेवामिति श्रुतिः ॥

तथा रामवाजपेय्यां गृह्यकारोऽपि—

ऋषिमादौ प्रयुञ्जीत च्छन्दो मध्ये नियोजयेत् ।

दैवतामवसाने च मन्त्रज्ञो मन्त्रसिद्धये ॥

सर्वानुक्रमणायामपि—ब्राह्मणार्पेयच्छन्दोदैवतविद्याजनाध्यापनाभ्यां
भेयोऽधिगच्छतीति । प्राचीनास्तु ऋषिदैवतच्छन्दांस्यनुक्रमिष्याम इति
सर्वानुक्रमवाक्यमथास्य मन्त्राणामृषिदैवतच्छन्दांसीति परिशिष्टवाक्यं
च क्रमबोधकं मन्यमानाः प्रथममृषिस्ततो देवता ततश्छन्द एवं क्रमेणो-
च्चारणमाहुः । अथ संध्याकालातिक्रमप्रायश्चित्तम् । तत्र स्कान्दे—

उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम् ।

तावत्संध्यामुपासीत प्रायश्चित्तमतः परम् ॥

इदं च श्रान्तपरम् । अन्यथा

प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां नोपास्ते यः प्रमादतः ।

गायत्र्यष्टशतं तस्य प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥

इति कर्मप्रदीपवचो विरोधापत्तेः । प्रातःसंध्यां सनक्षत्रामिति सायं-
संध्या(ध्यां)तु सादित्यामित्येतदुपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रः । तत्र यमः—

प्राणायामत्रयं प्रातर्द्विगुणं संगवे स्मृतम् ।

मध्याह्ने त्रिगुणं प्रोक्तमपराह्णे चतुर्गुणम् ॥

सायाह्ने पञ्चगुणकं संध्यातिक्रमणे भवेत् ।

यत्तु जामदग्न्यवचनं—

संध्याकाले त्वतिक्रान्ते स्नात्वाऽऽचम्य यथाविधि ।

जपेद्दशतं देवीं ततः संध्यां समाचरेत् ॥

इति तत्प्राणायामाशक्तपरम् । एवं कर्मप्रदीपवचनमपि । यत्तु

यः संध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि ।

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥

इति तद्बुद्ध्या सकृलोपविष्यम् । यत्तु वसिष्ठवचनं

कालातिक्रमणे चैव त्रिसंध्यमपि सर्वदा ।

चतुर्थार्ध्यं प्रकुर्वीत भानोर्व्याहृतिसंपुटम् ॥ इति

तदल्पकालातिक्रमविषयम् । एकाहाद्यतिक्रमे जमदग्निः—

एकाहं समतिक्रम्य संध्यावन्दनकर्म तत् ।

अहोरात्रोपितो भूत्वा गायत्र्या अयुतं जपेत् ॥

द्विरात्रे द्विगुणं प्रोक्तं त्रिरात्रे त्रिगुणं स्मृतम् ।

त्रिरात्रात्परतश्चेत्स्याच्छूद्र एव न संशयः ॥

अथ प्रायश्चित्तार्थं विशेषस्तत्र प्रायश्चित्तार्थं प्रधानार्धप्रदानात्पूर्वं
दद्यात् । तदाह व्यासः—

प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं शिरसा सह ।

उच्चार्य दत्त्वाऽर्ध्यमादौ संध्याकर्म समाचरेत् ॥

तथा—चतुरर्ध्यं तु गायत्र्या दत्त्वा संध्यां समाचरेत् ।

*कालातीतविशुद्ध्यर्थं संध्यासु सुसमाहितः ॥ इति ।

ननूक्तवचनद्वये प्रायश्चित्तार्थं दत्त्वा संध्याकर्म समाचरेदिति स्पष्ट-
मुक्तेः संध्यारम्भात्पूर्वमेव प्रायश्चित्तार्थं दत्त्वा संध्यारम्भं कुर्यादिति चेन्न ।
संध्याभाष्ये यदा कालातीपाणि संध्यावन्दनं क्रियते तदा प्रायश्चित्तार्थं
दत्त्वा ततस्त्रीणि प्रधानार्धाणि दद्यादित्युक्तत्वात् । इदं प्रायश्चित्तं
संध्यात्रयेऽपि समानम् ।

चतुरर्ध्यं तु गायत्र्या शिरोव्याहृतिसंपुटम् ।

कालातीतविशुद्ध्यर्थं त्रिसंध्यासु समाचरेत् ॥

इति संध्याभाष्यधृतवचनात् । अथ प्रयोगः । अधमर्धणोत्तरकर्तव्याचम-
नानन्तरं ममामुकसंध्योपासनस्य मुख्यकालातिक्रमदोषपरिहारार्थमर्ध्य-
प्रक्षेपणात्मकं प्रायश्चित्तं करिष्ये इति संकल्प्यासंकल्प्य वा प्रणवस्य
ब्रह्मा ऋषिरग्निर्देवता देवी गायत्री छन्दः । व्याहृतीनां प्रजापतिः प्रजा-

पतिवृहती । गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री । शिरसः प्रजापति-
ऋषिः । ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवता यजुश्छन्दः । प्रायश्चित्तार्थप्रदाने
विनियोगः । ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं १ ॐ आपो ज्योतीरसोऽ-
मृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुव(स्व)रोम् । श्रीसूर्यायेदमर्घ्यं समर्पयामीतिमन्त्रेणैकं
प्रायश्चित्तार्घ्यं दत्त्वाऽक्तवत्प्रधानार्घ्यत्रयं दद्यात् । यद्वा

चतुर्थं तु गायत्र्या दद्याद्वाहृतिसंयुतम् ॥

इति वचनान्तरात्प्रधानार्घ्यवदेव प्रायश्चित्तार्घ्यमन्त्रः । धर्माधिसारे
तु प्रधानार्घ्यत्रयोत्तरं प्रायश्चित्तार्थं चतुर्थमुक्तम् ।

अथाऽऽश्वलायनसूत्रपरिशिष्टाविरोधि किञ्चिदावश्यकशास्त्रान्तरपरि-
ग्रहेण प्रातःसंन्योपासनप्रयोगः । बहिर्ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वेश्यानां वा
दिश्यनल्पनुदकाशयमेत्येव स्वगृहे वा देवद्विजगोष्ठतुलस्यादिशुचिस्थले
कुशाद्यासने शुचिर्भूतः प्राङ्मुखस्तूष्णीं दक्षिणोत्तरिणोपस्थेनोपविश्य
प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिरग्निर्देवता देवी गायत्री छन्दः पवित्रधारणे वि० ॐ
ॐ इति अनामिकयोर्मूलपर्वणोः पवित्रं धृत्वाऽऽचमेत् । भूमिष्ठपादोऽ-
फेनबुद्बुदं प्रकृतिस्थमीक्षितमुदकं गोकर्णाकृतिना दक्षिणेन पाणिनाऽऽ-
दाय कानिष्ठाङ्गुष्ठौ वितत्य तिस्रोऽङ्गुलीः संहतोर्ध्वाः कृत्वा ब्राह्मेण
तीर्थेन हृदयप्रापि त्रिः पीत्वा हस्तं प्रक्षाल्य स्पृष्टोदकेनाङ्गुष्ठमूलेनाऽऽ-
कुञ्चितोष्ठं मुखं द्विः परिशृज्य संहतमध्यमाङ्गुलीभिः पुनर्मुखं प्रमृज्य
हस्तं प्रक्षाल्य सव्यहस्तं पादौ शिरश्चाभ्युक्ष्य स्पृष्टोदकेन मध्यमाङ्गुलि-
त्रयाग्रेण मुखमुपस्पृश्याङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासाविलम्ब्यमङ्गुष्ठानामिकाभ्यां
चक्षुषी कर्णौ चाङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां नाभिं करतलेन हृदयं सर्वाङ्गुलीभिः
शिरः सर्वाङ्गुल्यग्रैरसौ चाप उपस्पृशेत् । एवं द्विराचम्य प्राणायामं
कुर्यात् । यथा पञ्चाङ्गुलीभिरङ्गुष्ठेन दक्षिणं पुटं कनिष्ठानामिकाभ्यां वामं
पुटमित्येवं वा नासां धृत्वा वामरन्ध्रेण वायुमापूर्य पञ्चदशमात्रकालं
कुम्भकं कृत्वा दक्षिणरन्ध्रेण विसृजेत् । एवं वारत्रयं कृत्वा वामरन्ध्रेण
वायुमापूर्य निरोधेन कुम्भके कृते प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिरग्निर्देवता देवी
गायत्री छन्दः । सप्तानां व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगोत-
मात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयः । अग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा
देवताः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुबृहतीपङ्क्तित्रिष्टुजगत्यश्छन्दांसि । गायत्र्या

गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । गायत्री-
शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवता यजुश्छन्दः । प्राणा-
यामे वि० ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ
सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरे० क्र० १ ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म
भूर्भुवः स्वरोम् । एवं त्रिरुक्त्वा दक्षिणरन्ध्रेण वायुं शनैर्विसृजेत् । एवं
प्राणायामं कृत्वा देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमे-
श्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्य इति संकल्प्य, आपो हि षेति तृच-
स्थाऽऽम्बरीषः सिन्धुद्वीप ऋषिरापो देवता गायत्री छन्दः । मार्जने वि०
ॐ आपो हि षा मयोभुवः । ॐ ता न ऊर्जे दधातन । ॐ महे रणाय
चक्षसे । ॐ यो वः शिवतमो रसः । ॐ तस्य भाजयतेह नः । ॐ उशती-
रिव मातरः । ॐ तस्मा अरं गमाम वः । ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
ॐ आपो जनयथा च नः । इति प्रतिपादं प्रणवयुतैर्नवभिः पादैर्नद्यादौ
तदुत्थैर्गृहादौ सुवर्णादिशुचिपात्रस्थैर्वामिक्कग्धृतपात्रस्थैर्वामहस्तस्थैर्वा
जलैर्दक्षिणैर्देवतीर्थेन मध्यमातर्जनीभ्यां पोतानं शिरसि मार्जयेत् । स्थिर
उदकाशये तु तदुदकविभागं कल्पयित्वा

ॐ गङ्गे च यमुने च । गोदावरि सरस्वती(ति) ।

नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥

इति तत्र तीर्थान्यावाह्य मार्जनादि कुर्यात् । ततो गोकर्णाकृतिहस्तेन
जलं गृहीत्वा सूर्यश्चेत्यस्य ब्रह्मा ऋषिः । सूर्यमन्युमन्युपतयो देवताः ।
प्रकृतिश्छन्दः । मन्त्राचमने वि० ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च
मन्युकृतेभ्यः । पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्वात्र्या पापमकार्षम् । मनसा
वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्रा । रात्रिस्तदवलुम्पतु । यत्किं च
दुरितं मयि । इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।
इति मन्त्रमुच्चार्य हस्तस्थं जलं पिबेत् । इति मन्त्राचमनं कृत्वा पुनरा-
चम्य प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः । अग्निर्देवता । दैवी गायत्री छन्दः । सम-
स्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिः प्रजापतिर्देवता बृहती छन्दः । गायत्र्या
गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । आपो
हि षेति नवर्चस्य सूक्तस्याऽऽम्बरीषः सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता ।
गायत्री छन्दः । पञ्चमी वर्धमाना । सप्तमी प्रतिष्ठा । अन्त्ये द्वे अनुष्टुभौ ।
गायत्रीशिरसः प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवताः । यजु-
श्छन्दः । मार्जने वि० ॐ ॐ इति प्रथमम् । ॐ भूर्भुवः स्व इति

द्वितीयम् । ॐ तत्सवि० क्र. १ इति तृतीयम् । ॐ आपो हि ष्ठा०
 क्र. १ ॐ यो वः शिव० क्र. १ ॐ तस्मा अ० क्र. १ ॐ शं नो देवी०
 क्र. १ ॐ ईशाना वा० क्र. १ ॐ अप्सु मे सोमो० क्र. १ ॐ आपः
 पृणीत० क्र. १ ॐ इदमापः० क्र. १ ॐ आपो अ० क्र. १ इति प्रणवयुते-
 नवभिर्ऋग्भिरिति नव । ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्व-
 (स्व)रोम् । इत्येकमेवं त्रयोदश मार्जनानि शिरसि कृत्वा हस्तेनोदक-
 मादाय स्वदेहपरिषेकं कृत्वा गोकर्णाकारहस्तेन जलमादाय नासिकाग्रे
 धारयन्कृष्णपुरुषाकारं पापपुरुषमन्तर्व्याप्य स्थितं विचिन्त्य संयतप्राण०
 क्रतं चेति तृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्पण ऋषिः । भाववृत्तो देवता ।
 अनुष्टुप्छन्दः । अघमर्पणे वि० । ॐ क्रतं च सत्यं चाभी० क्र. ३ इति
 पठित्वा दक्षिणनासापुटेन शनैः प्राणं रेचयंस्तं पापपुरुषं पाणिस्थोदके
 पतितं ध्यात्वा तदुदकमनवेक्ष्य(क्ष)माणः स्ववामभागे भूमौ तीव्रघातेन
 क्षिप्त्वा तं पापपुरुषं वज्रहतं सहस्रधा दलितं भावयेत् । तत आचम्य
 दर्भास्त्यक्त्वा नूतनदर्भान्प्रागग्रानञ्जलौ निधायोदकपूर्णाञ्जलिं कृत्वाऽऽ-
 दित्याभिमुखस्तिष्ठन्द्वा पादौ समौ कृत्वाऽञ्जलौ दक्षिणनासापुटेनाऽऽधा-
 रमण्डलस्थं तेजः समागतं विभाव्य प्रणवस्य ब्रह्मा० समस्तव्याहृतीनां
 प्र० गायत्र्या गा० सूर्यार्घ्यप्रदाने वि० । ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवि० क्र. १
 श्रीसूर्यायेदमर्घ्यं समर्पयामीति पाष्णीं उद्धृत्याञ्जलिं गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य
 जले तदभावे प्रोक्षितभूमौ क्षिपेत् । तेन सार्धकोटित्रयसंख्याकमन्देह-
 संज्ञकराक्षसबधो भवत्विति मनसा संचिन्तयेत् । ॐ आपो ज्योतीति
 शिरोमन्त्रेण तत्तेजो वामनासापुटेनाऽऽकृष्य स्वस्थान आगतं विभावयेत् ।
 एवं त्रीण्यर्घ्याणि दत्त्वा कालात्ययश्चेच्चतुर्थार्घ्यं प्रधानार्घ्यात्पूर्वमुत्तरं वा
 दद्यात् । ततः सजलहस्तः, ॐ असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं परी(रि)
 यन्परिषिच्योपविश्याप उपस्पृश्य दर्भान्दक्षिणभागे विसृजेत् । ततः
 शुचिदेशे दर्भोदकेनाभ्युक्ष्य तत्र प्रागग्रान्दर्भान्नास्तीर्य समस्तव्याहृतीनां
 प्र० आसनोपवेशने वि० ॐ भूर्भुवः स्व इति दक्षिणोत्तरिणोपस्थेनो-
 पविश्य प्राणायामत्रयं कृत्वा समस्तव्याहृतीनां प्रजा० आत्माभ्युक्षणे
 वि० ॐ भूर्भुवः स्व इत्यात्मानमभ्युक्ष्य प्रणवस्य ब्र० समस्तव्याहृतीनां
 प्र० गायत्र्या गा० [न्यासे] जपे [च] विनियोगः । ॐ तत्सवितुर्हृदयाय

नम इति मध्यमाङ्गुलित्रयेण हृदयं स्पृशेत् । ॐ वरेण्यं शिरसे स्वाहेति तर्जनीमध्यमाभ्यां शिरसि । ॐ भर्गो देवस्य शिखायै वषडिति अङ्गुष्ठेन शिखायाम् । ॐ धीमहि कवचाय हुमिति दशाङ्गुलीभिः स्कन्धावारभ्योरःपर्यन्तम् । ॐ धियो यो नो नेत्रत्रयाय वषडिति मध्याङ्गुलित्रयेण नेत्रललाटेषु । ॐ प्रचोदयादस्त्राय फडिति करतलास्फोटनेनास्त्रं प्राच्यादिदशसु दिक्षु न्यसेत् । ततो मन्त्रदेवतां ध्यायेत् । यथा बालां बालादित्यमण्डलमध्यस्थां रक्तवर्णां रक्ताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां चतुर्वक्त्रामष्टनेत्रां दण्डकमण्डलवक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजां हंसासनारूढां ब्रह्मदैवत्यामृग्वेदमुदाहरन्तीं भूर्लोकधिष्ठार्त्रीं गायत्रीं नाम देवतां ध्यायामीति ध्यात्वा

ॐ आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे संनिधौ भव ।

गायन्तं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृता ॥

इत्यावाह्य प्राङ्मुखस्तिष्ठन्त्यः सविता नोऽस्माकं धियो धर्मादिविषयबुद्धीः प्रचोदयात्प्रेरयेत्तद्वरेण्यं वरणीयं देवस्य सवितुर्भर्गः पापमञ्जनं तेजोमयं रूपं वयं धीमहि ध्यायेमहीति (येमेति) मन्त्रार्थानुसंधानपूर्वकमर्धनष्टेषु नक्षत्रेषु मण्डलदर्शनपर्यन्तं नाभिसमकरधृतया वस्त्राच्छादितरुद्राक्षादिमालया जपं गणयन्प्रणवव्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं जपेत् । यद्वाऽनामिकामध्यपर्वाऽऽरभ्य प्रदक्षिणं दशभिरङ्गुलिपर्वभिर्गणयेत् । गौणकालसंध्यावन्दने त्वष्टोत्तरशताष्टाविंशतिदशान्यतमा संख्या जपान्त उपविश्य पूर्ववत्पङ्क्तं न्यासं कृत्वा तिष्ठन्कृताञ्जलिरादित्यमुपतिष्ठेत् । जातवेदस इत्यस्य मारीचः कश्यपो जातवेदा अग्निस्त्रिष्टुप् । आदित्योपस्थाने वि० । ॐ जातवेदसे० क्र. १ तच्छंयोः शंयुर्विश्वे देवाः शक्ररी । आदित्योपस्था० । ॐ तच्छंयोरामृणीमहे० क्र. १ नमो ब्रह्मण इत्यस्य प्रजापतिर्विश्वे देवा जगती । आदित्यो० । ॐ नमो ब्रह्मणे० क्र. १ मित्रस्येति चतसृणां गाथिनो विश्वामित्रो गायत्री । आदित्यो० । ॐ मित्रस्य चर्पणी० । क्र. ४ त्र्यम्बकमित्यस्य मैत्रावरुणिर्वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् । आदित्योपस्थाने० । ॐ त्र्यम्बकं य० क्र. १ ततो दक्षिणावृत्त्याधिषा दिशो नमेत् । यथा० ॐ सेन्द्रायै प्राच्यै दिशे नमः । ॐ साग्निकाया आग्नेय्यै दिशे नमः । ॐ सयमायै

दक्षिणस्यै दिशे नमः । ॐ सनिर्ऋतये नैर्ऋत्यै दिशे नमः । ॐ सवरु-
णायै पश्चिमायै दिशे नमः । ॐ सवायुकायै वायव्यै दिशे नमः । ॐ
ससोमाया उदीच्यै दिशे नमः । ॐ सेशानाया ऐशान्यै दिशे नमः ।
ॐ सब्रह्मकाया ऊर्ध्वायै दिशे नमः । ॐ सानन्ताया अधरस्यै दिशे
नमः । ॐ संध्यायै० ॐ गायत्र्यै० ॐ सावित्र्यै० ॐ सरस्वत्यै० ॐ
सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः । इति नमस्कृत्योत्तम इत्यस्य वामदेव ऋषि-
गायत्री देवताऽनुष्टुप्छन्दः । संध्याविसर्जने वि० ।

ॐ उत्तमे शिखरे जाते भूभ्यां पर्वतमूर्धनि ।

ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥

इति संध्यां विसृज्य भद्रं न इत्यस्य विमद ऋषिः परमात्मा देवता
विराट्छन्दः । पठने वि० । ॐ भद्रं नो अपि वातय मनः । ॐ
शान्तिः शान्तिः शान्तिः । इत्युच्चार्य प्रदक्षिणं परिक्रामन् ॐ आस-
त्यलोकादापातालादालोकालोकपर्वताद्ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो
नित्यं नमो नम इति नमस्कृत्य तत उपविश्यामुकप्रवरान्वितामुकगो-
त्रोऽमुकशर्माऽहं भो अभिवादय इत्युक्त्वा दक्षिणोत्तरकर्णौ वामदक्षिण-
पाणिभ्यां स्तुत्वा तथैव स्वस्तिकाकारहरताभ्यां भूमिं संगृह्य शिरोऽव-
नमेत् । इति गुह्यनृद्धांश्चोपसंगृह्य

ॐ यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि ॥

इति संप्राथम्यं सकृदेवाऽऽचम्य विष्णुं स्मृत्वाऽनेन कृतेन प्रातःसंध्यो-
पासनेन श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् । ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु

इति कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा पवित्रग्रन्थं विस्रस्य शुचिदेशे क्षिपेदिति ।
इति प्रातःसंध्याप्रयोगः ।

अथ नित्यौपासनविधिः । तत्र गृह्यम्-पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरे-
त्स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः कुमार्यन्तेवासी वेति^१ । गोतमस्तु-भार्यादिरग्निर्दा-
यादिवेति कालद्वयमुक्तवान् । अस्यार्थः-भार्याशब्देन विवाहो लक्ष्यते ।
यस्मिन्नग्नौ भार्यादुह्यते तमाग्निमारभ्य वा यस्मिन्नहनि पितृभ्रात्रादिभि-
र्दायविभागः क्रियते तद्दहरारभ्य वा सायमुपक्रममग्निं परिचरेत् । दाय-
विभागात्पूर्वमपि पितुर्ज्येष्ठभ्रातुर्वा कर्माण्युपजीवतो न प्रत्यवायः ।
गार्ग्योऽपि—

पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः ।

ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥ इति ।

न च पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेदित्याश्वलायनसूत्रादाश्वलायनानां दारकाल एवाग्निपरिचरणं न दायद्यकाल इति वाच्यम् । यदि वैवाह्यो न गृहीतो दायविभागकाले गृह्यते तत उक्तक्रियया पश्चाद्गृहीतो भवति । तथा विवाहाग्निमुपसमाधायेति सूत्रे विवाहाग्निग्रहणमन्याग्निनिवृत्त्यर्थं कथं पुनरन्याग्निप्राप्तिशङ्का । उच्यते—दायविभागकालेऽग्निः परिगृह्यते चेत्तदाऽन्योऽप्यग्निः प्रसज्येत तन्निवृत्त्यर्थमिदमिति वृत्तावेव स्पष्टमुक्तेः ।

दक्षः—संध्याकर्मावसाने तु स्वयंहोमो विधीयते ।

स्वयंहोमे फलं यत्स्यात्तदन्येन न लभ्यते ॥

मगवान्—पत्नी कुमारी पुत्रो वा शिष्यो वाऽपि यथाक्रमम् ।

पूर्वपूर्वस्याभावे तु विदध्यादुत्तरोत्तरः ॥

दक्षः—ऋत्विक्पुत्रो गुरुभ्राता भागिनियोऽथ विट्पतिः ।

एतैरेव हुतं यच्च तद्धुतं स्वयमेव तु ॥

विट्पतिर्जामाता । एतैश्च यजमानानुज्ञया प(तत्प)त्न्यनुज्ञया वा होतव्यम् । तदुक्तं कौर्मै—

ऋत्विक्पुत्रोऽथ वा पत्नी शिष्यो वाऽपि सहोदरः ।

प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाच्च यथाविधि ॥ इति ।

विशेषेणेतिवचनं ममाऽऽवश्यकं कार्यं किञ्चिदास्ति मम काचिदापदास्ति वा त्वया होमः कार्य इति विशेषतोऽनुज्ञापेक्षार्थम् । अन्येन होमो दंपत्योः संनिधानेऽन्यतरसंनिधाने वा कार्यः । उभयोरसमक्षं तु अहु-
तमेव तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—

असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिभिः ।

द्वयोरप्यसमक्षं चेद्भवेद्धुतमनर्थकम् ॥

त्यागस्तु स्वयं पत्न्या वा कार्यः । पत्न्या रजस्वलात्वादिनाऽनधिकारे होमकर्तृव । तदुक्तं स्मृत्यन्तरे—

संनिधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः ।

तदभावे तु पत्नी स्यादुद्देशत्यागकारिणी ॥

असंनिधौ तु पत्न्याः स्यादध्वर्युस्तदनुज्ञया ।

उन्मादे प्रसवे चर्तौ कुर्वीतानुज्ञया विना ॥

कार्यव्यासक्तावपि पर्वणि तु सायं होमः प्रतिपत्प्रातर्होमश्च स्वयमेव पयसैव कार्यो नत्विगादिना नान्यद्व्येण । यवाग्वा पयसा वा स्वयं पर्वणि जुहुयादृत्विजामेक इतरं कालमिति सूत्रात् । यदि त्वशक्तिरसांनिध्यं वा तदाऽन्यो जुहुयादेव । न तु सर्वथा लोपो नित्यत्वात् । आचारार्कप्रयोगचिन्तामणिसंस्काररत्नमालास्वप्येवम् । शक्तौ सानिध्ये च पर्वणि स्वयमजुह्वतः प्रायश्चित्तं बृहस्पतिराह—

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।

ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपि कृच्छ्रार्धमाचरेत् ॥

अत्रोपस्थानग्रहणं होमोपलक्षणम् । अत्र यद्यपि आहिताग्निग्रहणं कृतं तथाऽपि

य आहिताग्नेर्धर्मः स्यात्स औपासनिकस्य तु ।

इतिवचनात्स्मार्ताग्निमतोऽप्यस्य प्राप्तिः । अथ प्रादुष्करणम् । तत्र प्रादुष्करणं नामाग्नेः प्रज्वलनमिति प्रयोगरत्ने । तत्कालः श्रौतसूत्रे—उत्सर्गेऽपराह्णे गार्हपत्यं प्रज्वल्येति । अत्रापराह्णशब्देनाह्णश्चतुर्थो भागो गृह्यत इति वृत्तिः । कारिकायामपि—

ज्वलयेदपराह्णेऽग्निमस्तं याते दिवाकरे ।

अत्रापराह्णशब्दोऽस्तमयात्पूर्वकालीनदिनशेषवाचक इति भाष्यम् । प्रयोगपारिजाते परिशिष्टेऽपि—अस्तमित आदित्ये सायमग्नेः प्रादुष्करणमुद्धिते प्रातरिति । अस्तमितेऽस्तं गच्छतीत्युद्धित उदयं गच्छतीति व्याख्यातं तेनैव । अत्र यद्यपि सूत्रवृत्त्याशयाद्यामत्रयोर्ध्वमस्तमपर्यन्तं यदा कदा वा सायं प्रादुष्करणं कर्तव्यमिति प्रतीयते तथाऽप्युक्तकारिकाभाष्यपरिशिष्टैकवाक्यतया सायमस्तात्पूर्वं प्रातरुदयात्पूर्वमेव प्रादुष्करणम् । न च श्रौतोक्तप्रादुष्करणकालस्य कथमत्र प्राप्तिरिति शङ्क्यम् । तस्याग्निहोत्रेण प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्यातावित्याचार्येणैवातिदेशस्य कृतत्वात् । प्रातः प्रादुष्करणकालमाचार्यः स्वयमेवाऽऽह—एवं प्रातर्व्युष्टायामिति । व्युष्टायामुपस्युक्षितायामादित्योदयात्प्रागित्यर्थः । उदयात्पूर्वघटिकाद्वयादिलक्षणो रात्रिशेषो व्युष्टाशब्दवाच्य इति कारिकाभाष्ये । कात्यायनः—

सूर्यस्तशैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्विरिहाङ्गुलैः ।

प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासामदर्शने ॥

भासामदर्शन इत्येतत्प्रादुष्करणस्य गौणकालपरमुद्देशं कारिकाभाष्यविरोधात् । अतः सायं प्रातश्च प्रादुष्करणं कृत्वैव संध्यारम्भः । कमलाकरस्तु भासामदर्शन इत्येतत्प्रादुष्करणस्य मुख्यकालपरत्वं मन्यमानः प्रातरर्घ्यान्तां संध्यां विधाय प्रादुष्करणं कृत्वा जपादिसंध्यां समाप्य ततो होम इत्याह । एतत्प्रादुष्करणकालात्यये समस्तव्याहृतिभिरेकाऽऽज्याहुतिः कार्येति भट्टाः । होमासंभवे जपो वा । अनाज्यवति कर्मणि जप आज्यवति होम इति रत्नमालायामुक्तेः । उद्धरणे दुहितृस्तुपयोरपि कर्तृत्वमुक्तं कात्यायनेन—

दुहित्रा स्तुपया वाऽग्निविहारो न विरुध्यते ।

विहारो विहरणं प्रादुष्करणमिति यावत् । एतच्च होमकर्तुरुद्धरणासंभवे ज्ञेयमिति रत्नमालायाम् । कुतूहले तु—अस्य चोद्धरणस्य यः कर्ता स एव होमस्यान्यत्र यजमानादित्युक्तम् । इदं च श्रौतहोमविषयं तत्र समन्त्रकोद्धरणस्य विहितत्वादिति केचित् । अथ होमकालः । आश्वलायनः—अस्तमिते होमः । एवं प्रातरुपोदयं व्युपित उदिते वा । उपोदयमादित्योदयसमीपमित्यर्थः । व्युपित उपस्युदित इत्यर्थः । अनुदित इति यावत् । उदित आदित्यमण्डले कृत्स्नोदित इत्यर्थः । एते त्रयः प्रातर्होमप्रधानकालाः । अत्र यद्यपि श्रुतादुदिते जुहोति अनुदिते जुहोतीति पक्षद्वयस्य साम्यतोक्ता । सूत्रेऽपि कालत्रयस्य साम्यमुक्तम् । तथाऽपि बह्वृचब्राह्मणे प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति पुरोदयाज्जुह्वति येऽग्निहोत्रमित्याद्यनुदितहोमनिन्दापूर्वकं तस्मादुदिते होतव्यमिति सिद्धान्तितत्वात् । बह्वृचानामुदितहोमो मुख्यः । विधानपारिजात आह्निकप्रकाशे चैवम् । प्रधानं यथा मुख्यकाले संपद्यते तथाऽङ्गानामप्युत्कर्षोऽपकर्षो द्रष्टव्य इति वृत्तौ । उदितादिस्वरूपमुक्तं कात्यायनेन—

रेखामात्रस्तु दृश्येत रश्मिभिस्तु दिवाकरः ।

उदितं तं विजानीयात्तत्र होमं प्रकल्पयेत् ॥

रात्रेः षोडशके भागे ग्रहनक्षत्रभूषिते ।

कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा तत्र होमं समाचरेत् ॥

तथा प्रभातसमये नष्टे नक्षत्रमण्डले ।

रविर्यावन्न दृश्येत समयाध्युपितः स तु ॥ इति ।

मूलतः कर्मनाशः स्यान्मध्यतः पुत्रनाशनम् ।

अग्रेण मुञ्चतो व्याधिरैकपाणेर्धनक्षय ॥

मूलमध्यममध्येन समिद्धोमस्य लक्षणम् । इति ।

मूलतो मूलेन । मध्यतो मध्येन । मूलतो मध्यत इत्युभयत्रापि मुञ्चत इत्येतस्यान्वयः । मूलमध्यमप्रदेशयोर्मध्यभागे धृत्वा समिधो होतव्याः । एतदेव समिद्धोमस्य समिदभ्याधानस्य लक्षणं ज्ञेयमिति । अत्रैकपाणिना समिद्धोमनिषेधेन सव्यपाण्यन्वारब्धदक्षिणपाणिना होमविधिर्गम्यत इति प्रयोगपारिजाते । सुवधारणे विशेषो विधानमालायाम्—

अग्रे धृतो विनाशाय धृतो मध्ये प्रजाक्षयी ।

मूले धृतस्तु होतुस्तु मृतिं दद्यात्सुवो ध्रुवम् ॥

अग्रान्मध्याच्च मध्ये तु मध्यान्मूलाच्च मध्यतः ।

सुवः प्रधानो विद्वद्भिः सर्वकामार्थसिद्धये ॥ इति ।

अयमर्थः—दण्डस्य पञ्च भागान्कृत्वा द्वितीयभागे चतुर्थभागे वा सुवधारणं कार्यमिति । प्रयोगार्णवे—

कठिनद्रव्यहोमे तु मुष्टिना धारणं सुचः ।

द्रवद्रव्यस्य होमे तु उत्तानाङ्गुलिभिः स्मृतम् ॥

सुवस्याप्युत्तानाङ्गुलिभिरेव धारणम् । एतच्च सुवस्य धारणं सौम्यतीर्थेन कार्यम् । सुवस्य ग्रहणं दैविकं सौम्येनेति बौधायनोक्तेः । अत्र दैविकमिति विशेषणात्पित्र्यं सुवधारणं पितृतीर्थेनैव । सुवग्रहणं सुगुपलक्षणम् । सौम्यतीर्थलक्षणं बौधायेनैवोक्तम्—अङ्गुलिमूले सौम्यमिति । सायंहोममध्येणैव प्रातर्होम इति पूर्वं परिशिष्ट उक्तम् । मण्डनोऽपि—

सायं होमे तु यद्व्यं तदेव प्रातरिष्यते ।

एवं कर्तुंनियमोऽपि । तथा च गदाधरभाष्ये—

श्रौताग्निमथ वा स्मार्तं सायं प्रातर्हुनेद्विजः ॥

एक एवेति बहवो जुहुयुर्लौकिको भवेत् ॥

मदनरत्ने—एक एव हुनेदग्निं सायं प्रातर्द्विजोत्तमः ।

सायमन्यः प्रातरन्यो जुहुयाल्लौकिको भवेत् ॥

स्मृतिसारे—सायं प्रातश्च जुहुयादेक एव हुताशनम् ।

यदन्यो जुहुयात्प्रातः स वृथाऽग्निर्भवेद्ध्रुवम् ॥

सायं प्रातश्च जुहुयादाहुतीनां चतुष्टयम् ।
एक एवाग्निहोत्रं च स्मार्ताग्निं च विशेषतः ॥

आचारप्रकाशे परिशिष्टे—

सायमादिप्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते ।
पौर्णमास्यादिदर्शान्तमेकं कर्म जगुर्बुधाः ॥

गदाधरभाष्ये—यजमानं विना नान्यो जुहुयात्प्रातराहुतिम् । इति ।

एतदतिक्रमे कुतूहले—

कपालनाशने चैव ऋत्विग्द्रव्यविपर्यये ।
पवित्रनाशने चैव यत्किञ्चित्पात्रभेदने ॥
आज्याहुतिस्तु होतव्या व्याहृत्या प्रणवेन वा ॥ इति ।

अयं च द्रव्यकर्तृनियमः समुदायसंकल्पपक्ष एवेति प्रयोगार्णवे । प्रात-
होमे यजमानकर्तारि नायं नियम इति केचित् । अयं च होमः स्थण्डिले
कार्यः । अथ खलु यत्र क्व च होप्यन्स्यादिषुमात्रावरं सर्वतः स्थण्डि-
लमित्याचार्येण तस्यैवोक्तत्वात् । शानकेन तु आधतनमुक्तम्—

अरत्निमात्रं विज्ञेयमग्नेरायतनं शुभम् ।
श्रौते चौपासने वाऽपि स्वातयोनिविवर्जितम् ॥
मेखलाद्वितयं कार्यं रेखालग्नं तु बाह्यतः ।
बाह्या द्यङ्गुलविस्ताराऽऽभ्यन्तरा चतुरङ्गुला ॥
बाह्या षडङ्गुलोत्सेधाऽऽभ्यन्तरा द्वादशाङ्गुला । इति ।

शक्तौ स्वाविरुद्धमन्यतो ग्राह्यमिति न्यायादनयोः समुच्चयः । अशक्तौ
स्थण्डिलमेव नाऽऽयतनम् । सूत्रे तस्यैव विहितत्वात् । भट्टप्रभृतयस्तु
स्थण्डिलायतनयोः समविकल्पमाहुः । तत्स्मृत्यपेक्षया कल्पसूत्रस्य प्रबल-
त्वादबाधेन गतौ सत्यां बाधस्यायुक्तत्वाच्च सुधीर्भिर्बिचारणीयम् । स्थ-
ण्डिलं चेष्टुमात्रावरमित्युक्तम् । इषुस्तु त्र्यरत्निरिषुः स्मृत इत्युक्तलक्षणः ।
अरत्निस्तु कलांशरहितो हस्तः । तस्मिन्पक्ष एकैकस्यां दिशि किञ्चिन्न्यून-
सप्तदशाङ्गुलप्रमाणो भुजः । यदा त्वापस्तम्बमताच्चतुर्विंशत्यङ्गुलोऽर-
त्निस्तदैकैकस्यां दिश्यष्टादशाङ्गुलप्रमाणो भुजः । शारदातिलके—

हस्तमात्रेण तत्कुर्याद्वालुकाभिः सुशोभनम् ।
अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥ इति ।

अङ्गुलोत्सेधमित्येकाङ्गुलोच्चमिति केचित् । अङ्गुष्ठं हित्वा यानि चतुरङ्गुलानि तावदुच्चमित्यन्ये । कुण्डमार्तण्डे—

कनकरुचिरकान्त्या सन्मुदा स्थण्डिलं वा

करमितचतुरस्रं कूर्मपृष्ठोन्नतं च ।

बुधगुरुकृततुल्यैरङ्गुलैरुन्नतं वाऽ-

ङ्गुलमितमपि रम्यं स्वल्पहोमे मुदा त्वम् ॥

एवं स्थण्डिलं कृत्वोपलेपनादि कुर्यात् । तदुक्तं गृह्ये—उपलिप्योल्लिख्य षड्लेखा उदगायतां पश्चात्प्रागायते नानाऽन्तयोस्तिस्रो मध्ये तदभ्युक्षयेति । उपलेपने कारणमुक्तं स्मृतिरत्नाकरे पुराणे—

सर्वत्र वसुधा मेध्या सशैलवनकानना ।

अथ विष्णुपदाक्रान्तोपलेपनमिदं कुतः ॥

पुरा शक्रो हि वज्रेण वृत्रं जग्ने महासुरम् ।

तन्मेदसां हि निर्लिप्ता तदर्थमुपलेपनम् ॥

तत्रैका प्रादेशमात्रा, उदगायता । प्रागायते दक्षिणोत्तरयोर्द्वे असंसृष्टे मध्ये तिस्रः । षडग्रहणं षट्स्वपि लेखास्वग्नेः प्रतिष्ठापनं यथा स्यादित्येवमर्थम् । ताश्च लेखा दक्षिणेऽष्टावङ्गुलान्युदीच्यां द्वे प्रतीच्यां चत्वारि प्राच्यामर्धमित्यङ्गुलानि त्यक्त्वा कुर्यादिति भट्टाः । अत्राङ्गुलं स्थण्डिलव्यासचतुर्विंशोऽंश इति प्रयोगचिन्तामणौ । एतेन प्रादेशमात्रोदगायतरेखाया अनुपपत्तिं वदन्तो निरस्ताः । प्रादेशमात्रां न्यूनां वेति वृत्तौ । उल्लेखनानन्तरं कृत्यमाह कारिकाकारः—

लिखिता येन शकलं यज्ञियं तन्निधाय च ।

अद्भिरभ्युक्ष्य शकलं निरस्याप उपस्पृशेत् ॥

शौनकः—निधाय शकलं तस्मिन्नभ्युक्ष्य स्थण्डिलं जलैः ।

निरस्य शकलं प्राच्यां पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतः ॥ इति ।

गृह्यपरिशिष्टे तु—यज्ञियशकलमूलेन स्थण्डिलमुल्लिख्य तत्र प्रागग्रं निधाय प्रोक्ष्याऽऽग्नेय्यां दिशि निरस्येदित्युक्तम् । इदमेवाऽऽश्वलायनैः स्वीकार्यम् । शौनकपरिशिष्टविरोधे परिशिष्टमेव प्रबलमिति पूर्वमेव सिद्धान्तितत्वात् । मेखलानामप्यङ्गुलमानमायतनभुजचतुर्विंशांशरूपं बोध्यम् ।

कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोऽङ्गुलसंज्ञकः ।

विभज्यानेन कर्तव्या मेखलाकण्ठनाभयः ॥

इति सोमशंभूक्तेः । आयतनेऽप्युपलेपनादिविधिमाह परशुरामः—

तस्मिन्कुण्डे तु गृह्योक्ता कर्तव्या कुशकुण्डिका ।

लौकिकाग्निं समानीय कुण्डमध्ये ततो न्यसेत् ॥ इति ।

आयतने भुजमानान्तराणि ग्रन्थान्तराज्ज्ञेयानि विस्तरभयान्नेहो-
च्यते(न्ते) । अथ प्रयोगक्रमः । तत्राऽऽदौ द्विराचमनमन्ते सकृदेव ।
संध्याप्रकरणोक्तदेवीपुराणवचनात् । परिशिष्टमते तु आदावपि सकृदेव ।
तच्च बहिः कृत्वा विहारं प्रविशेत् । नाग्निशालायामाचामेदिति निषे-
धात् । अत एव भट्टैरौपासनप्रयोग आचमनं नोक्तमिति केचित् ।
अन्ये तु निषेधः ह्युध्वार्थाचमनपरः । कर्माङ्गाचमनमग्निशालायामपि
भवत्येवेत्याहुः । इदमेव युक्तम् । आहिताग्नेर्गार्हपत्यस्य पश्चात्प्रातरा-
जेन सायं संध्यावन्दनस्योक्तत्वात् । ततः प्राणायामः । होमे पत्न्या
अपि सांनिध्यमपेक्षितम् । पत्युर्नो यज्ञसंयोग इति पाणिनिस्तुत्या
पत्नीशब्दस्य यज्ञसंयोग एवोत्पन्नत्वात् ।

असमक्षं तु होतव्यं वृषत्योर्नृत्विगादिभिः ॥

इति वचनाच्च । सा च दक्षिणभागे ।

सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः सदा ।

विप्रपादक्षालने तु अभिषेके च वामतः ॥

इति वचनात् । ततः संकल्पः । अग्निरूपपरमेश्वरप्रीत्यर्थमौपासनं
करिष्य इति भट्टाः । समोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमौपा-
सनं करिष्य इति दिवाकरः । सायमौपासनं पयसा होष्यामीति रत्न-
माला । न्यायविदस्तु गृह्यं परिचरेदित्याचार्यणोक्तत्वात्प्रातरग्निं परि-
चरिष्य इत्याहुः । ऋत्विगाद्यन्यकर्तृके होमे तु ममेत्यत्र यजमानस्येति
वाच्यम् । करिष्य इत्यत्र करिष्यामीति सर्वत्र कर्तृगामिद्विधाफलाभा-
वात् । ततोऽग्निध्यानं पारिजाते—

होष्यन्नग्नेर्विजानीयात्स्वरूपं श्रुतिचोदितम् ।

आश्वलायनः—ध्यात्वा समिद्धमभ्यर्च्य स्वस्थानस्थं हुताशनम् ।

ततः परिसमूहनादि । तद्देशनियममाह कश्यपः—

अष्टाङ्गुलमिते देशे परिषेचनमाचरेत् ।

नवाङ्गुलिप्रमाणे तु विधिना परिधीन्यसेत् ॥

स्मृत्यर्थसारे चैवम् । उत्तरपरिपेकोत्तरमग्न्यर्चनं विश्वानि न इत्यादिभिः
केचित्कुर्वन्ति । ततो वह्निपूजनमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

गन्धपुष्पादिभिर्वह्निं होमान्ते परिपूजयेत् ।

घहिरग्निमुलक्षीकृत्य पूजयेत् । तच्चाऽऽयतनादेकादशाङ्गुलं पङ्क-
ङ्गुलं वा स्थण्डिलं विहाय तत्र कुर्यात् । वायव्यां दिशीति संप्रदायः ।
अग्निपूजन आरक्तगन्धपुष्पाक्षतान्वर्जयेत् । आरक्तपुष्पेषु जपापुष्पमेव
वा विवर्जयेदिति प्रायश्चित्तप्रदीपे । विभूतिधारणमाहाऽऽश्वलायनः—

अभिवाद्य जपेद्देवीं विभूतिं चैव धारयेत् ।

विभूतिधारणे मानस्तोकेऽयं मन्त्र उच्यते ॥

बृहत्सामेति वा होमे नैत्यके च महासखे ।

वसिष्ठः—ऐशान्या आहरेद्ध्रस्व सुखा वाऽथ लुपेण वा ॥

बन्धनं कारयेत्तेन शिरःकण्ठांसकेषु च ।

कश्यपस्येतिमन्त्रेण यथानुक्रमयोगतः ॥ इति ।

शाङ्खायनसूत्रे—अथायुषं पञ्चभिर्भक्ष्यैः प्रतिमन्त्रं ललाटके ।

हृदये दक्षिणस्कन्धे वामे च भस्मना त्रिपुण्ड्रं करोतीति । ततो न्यूना-
तिरिक्ताच्छिद्वार्थं विष्णुं स्मरेत् । अन्ते सकृदेवाऽऽचमनमित्युक्तम् ।
अथोपासनहोमप्रयोगः । प्रादुष्कृतस्याग्नेः पश्चात्सपत्नीकः प्राङ्मुख
उपविश्याऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य समोपात्तदुरितक्षय-
द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायमौपासनं पयसा होष्यामि । चत्वारि
शृङ्गा गौतमो वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् । अग्निवृत्तिध्याने वि० ॐ चत्वारि
शृङ्गा० क्र. १ सप्तहस्त० सोदकेन पाणिनैशानीमारभ्य प्रदक्षिणं पुनः-
पुनरुदकमादाय त्रिः परिसमुह्य परिरतीर्थं पर्युक्ष्याऽऽयतनादुत्तरतः शरा-
वादावङ्गारानपोह्य तेषु पयोऽधिश्रित्य ज्वलता दर्भोलमुकेनावज्वल्य
दोहनपात्रक्षालनोदकं सुवसानीय तेन प्रतिपिञ्चेत् । ततोऽवज्वलनो-
लमुकेनैव त्रिः पर्यग्निकृत्योलमुकं पश्चिमायां निरस्याप उपस्पृश्य दुग्धं
फेनोद्गमपर्यन्तं श्रपयित्वा कर्पस्त्रिवोदगुह्यास्य किञ्चित्कालमाकाशे धृत्वाऽ-
ग्रेरुदग्भूमौ निधाराङ्गारानायतने विसृज्याग्नेः पश्चिमतं आस्तीर्णकुशेषु
समिधा सह हविर्निधाय विश्वानि न इति तुचस्याऽऽग्नेयो वसुश्रुतोऽ-
ग्निस्त्रिष्टुप् । * द्वाभ्यामर्चनंऽन्त्ययोपस्थाने वि० । ॐ विश्वानि नो० ।

* ख. पु. त. ह. माते—द्वयोरर्चनेऽन्त्याया उपस्थाने—इति वर्तते तदेव युक्तमिति भाति ।

ॐ सिन्धुं न० । ॐ अग्ने अ० । ॐ अस्माकं० । ॐ यस्त्वा हृदा० ।
 ॐ अमर्त्यं० । ॐ जातये० । ॐ प्रजाभि० । इत्यायतनमैशानीप्रभृत्य-
 ष्टदिक्षु क्रमेण गन्धपुष्पाक्षतैरलंकृत्य, ॐ यस्मै त्वं सु० क्र. १ इत्युप-
 स्थायोपस्थाविरोधेन दक्षिणजानु संपात्य तूष्णीं समिधमग्नौ प्रागायतां
 प्रक्षिप्याप उपस्पृश्य समिधि प्रदीप्तायां मूलतो ह्यङ्गुलप्रदेशे जान्वाच्यैव
 सव्यपाणिमूर्ध्वाङ्गुलिं हृदि निधाय ॐ अग्नये स्वाहा । अग्नय इ०
 जान्वाच्यैव पूर्वाहुतेरैशान्यामुत्तरतो वा भूयसीम् । ॐ प्रजापतय इत्यु-
 पांशु ध्यात्वा स्वाहेत्युक्त्वा प्रजापतय इदं न मम ततोऽग्नेर्वायव्यदेशे
 प्रह्वीभूतः स्थित्वा कृताञ्जलिरग्निमीक्षमाणः—अग्न आयूंपीति तिसृणां
 शतं वैखानसा ऋषयः । अग्निः पवमानो देवता । गायत्री छन्दः । अग्न्यु-
 पस्थाने वि० । ॐ अग्न आयूंपि० क्र. ३ । अग्ने त्वं न इति चतसृणां
 गौपायनां लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण
 ऋषयः । अग्निर्देवता । द्विपदा विराम्छन्दः । अग्न्युपस्थाने वि० । ॐ अग्ने
 त्वं नो० क्र. ४ । प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् । प्रजापत्युपस्थाने
 वि० । ॐ प्रजापते० क्र. १ तन्तुं तन्वन्देवाः प्रजापतिर्जगती । प्रजापत्यु०
 ॐ तन्तुं तन्वन्न० क्र. १ हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रि-
 ष्टुप् । प्रजापत्युप० । ॐ हिरण्यगर्भः स० क्र. १ ॐ ॐ च मे स्वर०
 इत्युपस्थायोपविश्य परित्तरणान्युतरे विसृज्य परित्समुह्य पर्युक्ष्य विश्वानि
 न इत्यर्चयित्वा वायव्यदेशे ॐ अग्नये नम इति गन्धपुष्पधूपदीपनैवे-
 द्यानि समर्प्य दक्षिणीकृत्योपविश्य मा नस्तोक इति विभृतिं धृत्वा
 श्रद्धां मेधामिति संप्राश्य नमस्कृत्य मन्त्रहीनं क्रि० १ । प्रसादात्कुर्व० १ ।
 इति विष्णुं संस्मृत्य सकृदाचर्यानेन सायमौपासनेन श्रीपरमेश्वरः
 प्रीयतामिति कर्मेश्वराय समर्पयेत् । इति सायं होमः । अथ प्रातर्होमे
 विशेषः । प्रातरौपासनं पयसा होष्यामि । अग्निध्यानादि समित्यक्षे-
 पान्तं कृत्वा, ॐ सूर्याय स्वाहा । सूर्यायेदं न ममेति प्रथमाहुतिं सायं-
 कालद्वितीयाहुतिर्वा द्वितीयाहुतिं च हुत्वोपस्थानं कुर्यात् । सूर्यो नो दिव-
 स्पात्वित्यस्य सौर्यश्चक्षुः सूर्यो गायत्री । सूर्योपस्था० । ॐ सूर्यो नो दि०
 क्र. १ उदुत्यं काण्वः प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री । सूर्योप० । ॐ उदुत्यं जा० ।
 क्र. १ चित्रं देवानामाङ्गिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप् । सूर्योप० । ॐ चित्रं
 देवा० क्र. १ नमो मित्रस्येति सौर्योऽभितपाः सूर्यो जगती । सूर्योप० ।

कृच्छ्रेणापि विनिवर्त्य तत्र होमान्दिने दिने ।

पक्षान्तरे पुनः कामं पक्षहोमादिकं चरेत् ॥

पक्षहोमादिप्रयोगस्तु गृह्याभिसागरप्रयोगरत्नादाववगन्तव्यः । अग्नि-
संरक्षणं गोशकृत्पिण्डेन कार्यम् । तदुक्तं पारिजाते—

बुसैश्च गोशकृत्पिण्डैरग्निसंरक्षणं स्मृतम् ।

अथ प्रसङ्गार्थं किञ्चिद्गृह्याग्निविषये प्रोच्यते । तत्राऽऽदावनुगतप्रायश्चित्तम् । नित्यो धार्योऽग्निर्यद्यनुगच्छेदायतनमध्ये यद्युष्माऽस्ति तदा तैलादि-
यत्नेन प्रत्यक्षं कुर्यात् । यदि नोष्मा तदा भस्मापोह्याऽऽयतनं गोमयेनोप-
लिप्यानुगतं गृह्याग्निमुत्पादयिष्यामीति संकल्प्योलिख्य श्रोत्रियागारात्स्व-
गृहाद्वाऽग्निमाहृत्य प्रतिष्ठाप्य परिसमूहनादि कृत्वा पवित्रोत्पत्तिपूर्वक-
माज्यं संस्कृत्यायाश्चेति सुवाहुतिं सर्वप्रायश्चित्ताहुतिं च हुत्वा परिसमू-
हनादि कुर्यात् । द्वादशरात्रपर्यन्तमिदमेव प्रायश्चित्तम् । तदूर्ध्वं पुनःसं-
धानम् । इत्यनुगतप्रायश्चित्तम् । अथ होमप्रायश्चित्तानि । तत्र पयोहोम
इदानींतनशिष्टैः सिद्धदुग्धस्वीकाराद्बोहनकाले गवामुपवेशनादिप्रायश्चित्त-
तानामप्रसङ्गात्तानि न लिख्यन्ते । अधिश्रितं पयः स्थालीमूलेन यदि
स्रवति तदा

गर्भं स्रवन्तमगदमकर्माग्निर्होता पृथिव्यन्तरिक्षम् ।

यतश्चुत्तदग्नावेव तन्नाभिप्राप्नोति निर्ऋतिं परस्तात् ॥

इत्यनेनाभिमन्त्र्य दुग्धमप्सु प्रक्षिप्य सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा शेषेण
जुहुयात् । अशेषे पुनर्दुग्धमानीय जुहुयात् । अथाधिश्रयणमारभ्याऽऽहो-
मपर्यन्तं सर्वाविस्थायां पयसि स्कन्ने

यद्यद्य दुग्धं पृथिवीमसृप्त यदोषधीरत्यसृपद्यदापः ।

पयो गृहेषु पयो अघ्न्यायां पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयि ।

इति स्कन्नं दक्षिणेन पाणिनाऽभिमुशञ्जयेत् । यावत्स्कन्नं तावज्जले
प्रक्षिप्य स्थाल्यां होमद्रव्यस्यापर्याप्तावपि मात्रापचारेण तेनैव होमः ।
सर्वस्कन्न आज्यं संस्कृत्य तेन होमः । मात्रापचारहोम आज्यहोम इति
पक्षद्वये यां काञ्चिद्धारुणीं जपित्वा यया कयाचिद्धारुण्या होमः ।
प्राकृतहोममन्त्रयोरपवादो वारुण्यन्यस्मान्द्रोमकालाद्यजमानस्यानशनम् ।
गाणगारिमते पुनर्होमं च तत्करणपक्षे शेषहोमतन्त्रं समाप्य पुनर्हो-

मारम्भं कुर्यात् । अथाग्निहोत्रमधिश्रितं यदि शब्दयेत्तदा समोपा पाप्मानमित्यभिमन्त्रयेत् । ततः सर्वप्रायश्चित्तमिति केचित् । अथाधिश्रिते पयआदिद्रव्यं विष्यन्दनेनाग्निं भूमिं वा प्राप्यते तदा शान्त्यै शान्तिर्वा आप इति तदुपर्युदकं प्रसिच्य दक्षिणेन पाणिनाऽभिमुख्य दिवं तृतीयं देवान्यज्ञोऽगात्ततो मा द्रविणमाष्टान्तरिक्षं तृतीयं पितृन्यज्ञोऽगात्ततो मा द्रविणमाष्ट पृथिवीं तृतीयं मनुष्यान्यज्ञोऽगात्ततो मा द्रविणमाष्ट ययोरोजसा स्कमिता रजांसि वीर्येभिर्वीरितमा शविष्ठा यापत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूताविति जपेत् । उद्वासित उद्वास्यमाने वा पयो विष्यन्दनेनाग्निं भूमिं वा प्राप्यते तदा मही द्यौरित्यनेनाऽऽहवनीयस्य भस्मान्ते निनयेत् । ततोऽन्यद्द्रव्यमानीय संस्कृत्य होमः शेषेणेति केचित् । यदि विष्यन्दनेन स्थाल्यां बहिर्गमनमात्रेणाग्निं भूमिं वा न प्राप्यते तदा न प्रायश्चित्तम् । अवज्वलनप्रभृत्याहोमपर्यन्तं तण्डुलादिद्रव्ये स्कन्ने

समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमपिगच्छत ।

अरिष्टा अस्माकं वीरा मयि गावः सन्तु गोपतौ ॥

इत्यभिमन्त्र्य जले प्रक्षिप्य शेषेण जुहुयात् । सर्वस्कन्ने पुनर्द्रव्यमुत्पाद्य होमः । यदि केशनखकीटादिनाऽन्यैर्वा बीभत्सैर्दुष्टं प्रजापते न त्वदित्यृचा बल्मीकद्वारेऽप्सु वा तूष्णीं प्रक्षिप्यान्यद्द्रव्यं संस्कृत्य होमः । अस्यापवादमाह गोपालः—

पिपीलिकामक्षिकाभिः क्षुद्रकीटैर्न दुष्यति ।

तानुद्धृत्याद्भिरभ्युक्ष्य तद्वदुत्पूय हूयताम् ॥

स्कन्नापवादः कुतूहले—सर्वमिदं प्रायश्चित्तमाहुतिपरिमाणद्रव्यस्कन्दन एव न न्यूनस्य । आहुतिपरिमाणं तु प्रागुक्तम् । चन्द्रिकायां त्वाहुतिपरिमाणाद्न्यूनस्कन्दने स्कन्नानुमन्त्रणं कृत्वा सर्वप्रायश्चित्तमित्युक्तम् । प्रायश्चित्तप्रदीपे—

भस्मन्यग्रौ हविर्धानि वेद्यां स्तीर्णे च बर्हिषि ।

कूर्चे विप्रस्य पाणौ च स्कन्नदोषो न विद्यते ॥ इति ।

यद्यायतनाद्बहिः पट्टत्रिंशद्भृगुलादर्वाग्निः समस्त एकदेशो वा बहिः पतेत्स च प्रायश्चित्तसमाप्तिपर्यन्तं स्थितियोग्यस्तदा—ॐ इदं त एकं०

ऋ० १ इतिमन्त्रेणाऽऽयतने प्रक्षिपेत् । तत आज्यं संस्कृत्य समस्तव्याहृ-
तिभिः सर्वप्रायश्चित्तं जुहुयात् । षट्त्रिंशद्गुलातिक्रमे पथिकृच्चरुः
पूर्णाहुतिर्वा । अग्नेर्जलादिनोपहतौ

यदि क्षुद्रोपघातः स्यादग्नीनां तत्र तत्र तु ।

पुनस्त्वेति समिन्धानं पुनस्त्वेति सुवाहुतिः ॥

पर्यन्तं विनैवाग्नौ प्रज्वलित उद्दीप्यस्व मा नो हिंसीतिद्वाभ्यां समि-
ह्वयमग्नावाध्यात् । नात्र स्वाहाकारः । प्रधानाहुत्योः संसर्गे सर्वप्राय-
श्चित्तं विशेषानभिधानात् । अनाज्यहोमे सर्वत्र प्रायश्चित्तमन्त्रजपो वेति
पूर्वमुक्तम् । इति होमप्रायश्चित्तानि ।

इति शाण्डिल्यकुलसंभवमाटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्रयम्बकवि-
रचित आचारेन्दौ नित्यौपासनाविधिः ।

अथ सूर्यार्चनम् । तदुक्तं पारिजाते—

प्रातःसंध्यावसाने तु नित्यं सूर्यं समर्चयेत् ॥ इति ।

अत्र यद्यपि प्रातःसंध्यावसान इत्युक्तं तथाऽपि होमोत्तरमेव सूर्या-
र्चनम् ।

प्रातःसंध्यावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ।

इति दक्षवचसा होमस्यापि संध्यावसाने कर्तव्यत्वात्तदतिक्रमे प्राय-
श्चित्तविधानाच्च । यस्य तु नाग्निपरिग्रहस्तेन संध्यावसान एव सूर्यार्चनं
कर्तव्यम् । सूर्यपूजाप्राशस्त्यं भविष्यत्पुराणे—

प्रदद्याद्वै गवां लक्षं दोग्धीणां वेदपारगे ।

एकाहमर्चयेद्भानुं तस्य पुण्यं ततोऽधिकम् ॥

तथां च—यः सूर्यं पूजयेन्नित्यं प्रणमेद्वाऽपि भक्तितः ।

तस्य योगं च मोक्षं च ब्रध्नस्तुष्टः प्रयच्छति ॥

विशेषतश्चाऽऽरोग्यफलकं सूर्यार्चनम् । आरोग्यं भास्करादिच्छेदिति
वचनात् । तत्र तृचमन्त्रेणाऽऽराधनमुक्तं भविष्योत्तरपुराणेऽर्जुनं प्रति
भगवता कृष्णेन—

उद्यन्नद्येतिमन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः ।

रोगघ्नश्च द्विपघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥

कण्वेन च पुरा दृष्टो गुह्याद्गुह्यतरो महान् ।

पुत्रस्य रोगनाशाय सर्वलोकहिताय च ॥

तेन चाऽऽराधितो देवस्तृचमन्त्रेण भास्करः ॥ इति ।

अथ श्रीभास्कररायोन्नीततृचभास्करानुसारिणी संक्षेपेण तृचार्यप-
द्धतिर्लिख्यते । शुच्यासन उपविश्याऽऽचम्य गायत्र्या त्रिः प्राणानायम्य
देशकालौ संकीर्त्य ममामुकरोगनिरासद्वाराऽऽरोग्यसिद्ध्यर्थं श्रीसूर्यप्री-
त्यर्थं वोद्यन्नद्येति सूर्यदैवत्येन तृचेनामुकसंख्याकाभिरावृत्तिभिरर्घ्यप्रदानं
करिष्य इति संकल्प्य

उत्तिष्ठन्त्वह भूतानि भूमौ तिष्ठति भूपतिः ।

सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥

इति भूतानि प्रार्थ्य

ॐ पृथिव त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।

त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चाऽऽसनम् ॥

इत्यासनं प्रसार्य ॐ भूर्भुवः स्वरोमित्युपविश्य तं तपःसत्या-
त्मनेऽस्त्राय फडितिमन्त्रेण तर्जन्यङ्गुष्ठजन्यदशच्छोटिकाभिर्दश दिशो
बद्ध्वा

ॐ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।

भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति क्षेत्रपालानुज्ञां प्रार्थयेत् ।

ब्रह्मरन्ध्रगते चन्द्रमण्डलेऽमृतवर्षिणीम् ।

भवानीं भूमिशुद्ध्यर्थं भावयेदमृतेश्वरीम् ॥

ततस्तन्मौलिनिप्यन्दसुधाकल्लोलवृष्टिभिः ।

चिन्तयेन्मग्नमात्मानं भूमिशुद्धिरियं भवेत् ॥

इत्यान्तरभूशुद्धिः । ततो लं वं रं यं हं इति पञ्च भूतबीजानि कुम्भके
सकृदावर्तयेत् । इति रहस्यभूतशुद्धिः । ततो हृदि हस्तं धृत्वा आं
सोऽहमिति त्रिः पठेत् । इति प्राणप्रतिष्ठा । ततोऽञ्जलिं बद्ध्वा अं
आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं
जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं
सं हं ळं क्षं इति मातृकाः पठन्नञ्जल्यन्तर्गता विभाव्य मूर्धादिव्यापकं

त्रिन्यसेत् । इति मातृकान्यासः । अस्य च भूतशुद्ध्यादिमातृकान्यासान्तस्यैकदिनक्रियमाणकर्माणि प्रति तन्त्रेणोपकारकत्वमतः कर्मान्तरारम्भे कृतावेतदारम्भे(?) न पुनः करणमिति । अथार्धर्चषडङ्गः ॐ श्रीं उद्य-
न्नद्य० वम् । मित्ररविभ्यां नमः । अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ श्रीं हृद्गो०
नाशय । सूर्यभानुभ्यां नमः । तर्जनीभ्यां ० । ॐ श्रूं शुकेषु० दध्मसि ।
खगपूषभ्यां० । मध्यमाभ्यां० । ॐ श्रें अथो हारि० ध्मसि । हिरण्यगर्म-
मरीचिभ्यां० । अनामिकाभ्यां० । ॐ श्रीं उदगादय० सह । आदि-
त्यसवितृभ्यां० । कनिष्ठिकाभ्यां० । ॐ श्रः द्विपन्तं मह्यं० रधम् ।
अर्कमास्कराभ्यां० । करतलकरपृष्ठाभ्यां० । एवं हृदयादिन्यासः । इत्यर्ध-
र्चषडङ्गन्यासः । अथ पूजा । गुं गुरुभ्यो नमः । गं गणपतये नमः । श्रीं
श्रीसूर्याय नमः । इति नत्वा तृचमष्टाविंशतिवारं यथाशक्ति वा जपित्वा
स्वाग्रे स्वनाभिसंमितं देवतापीठं संस्थाप्य स्ववामभागे क्षालितमाधारं
निधाय तत्र क्षालितां वर्धनीं स्थूलां निक्षिप्य तां शुद्धोदकैः कर्पूरवा-
सितैरापूर्य क्षालितेन विधानेनाऽपिद्ध्यात् । ततः स्वस्य देवतायाश्च
मध्यगामिन्यां तिर्यग्वीथ्यां गोमयोपलिप्तायां वामभागे कलशं संस्थाप्य
शुद्धजलेन गायत्र्याऽऽपूर्याक्षतान्निक्षिप्य ॐ उदकुम्भाय नम इति गन्धा-
दिभिः संपूज्य कलशस्य मुखे विष्णुरित्यभिमन्त्र्य घण्टायै नम इति घण्टां
संपूज्याऽऽगमार्थं तु देवानामिति तां वादयित्वा कलशोदकेनाऽऽपो-
हि षेति त्रिभिरात्मानं पूजासंभारान्देवगृहं च संप्रोक्ष्य पूर्वस्थापितपीठे
महापात्रे सूर्यप्रतिमां सूर्यकान्तं द्वादशदलेनाऽऽवृतमष्टदलं सर्वाणिकं
यन्त्रं वा निक्षिपेत् । जलसान्निध्ये जल एव वा यन्त्रं चिन्तनं कलशो-
दकेन मूलेन प्रोक्षेत् । ततः ॐ आं आधाराय नमः । ॐ कूं कूर्माय० ।
ॐ शैं शेषाय० । ॐ वं वराहाय० । ॐ पृं पृथिव्यै न० । ॐ कं
कन्दाय० । ॐ नां नालाय० । ॐ पं पद्माय नमः । ॐ पं पत्रेभ्यो० ।
ॐ कं कर्णिकाकेसरेभ्यो० । इति दश देवता यन्त्रस्योत्तरतः पूजयेत् ।
अत्र पूजनं नाम गन्धपुष्पाक्षतानां केवलाक्षतानां वा देवताध्यानपुरः-
सरं तत्तत्स्थाने प्रक्षेपः ।

ततः—अरुणाग्रेसरं हेमद्युतिकुण्डलभूषितम् ।

तेजोराशिं श्रिया युक्तं तप्तकाञ्चनसंनिभम् ॥

किरीटिनं पद्मनेत्रं पद्मरागविभूषितम् ।
 सिन्दूरारुणमीशानं वामार्धदयितं रविम् ॥
 पाशाङ्कुशधरं देवं साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।
 प्रसन्नवदनं शान्तं कमलासनसंस्थितम् ॥
 सप्ताश्वेनैकचक्रेण रथेन च विराजितम् ।
 चन्द्रादिभिर्ग्रहैर्युक्तं केयूरादिविभूषितम् ॥
 नानाविधैरावरणदैवतैरभितो वृतम् ।
 ततोऽपि दूरे तद्रश्मिदग्धदेहं निजामयम् ॥
 रोगानन्यानपि मुहुः कम्पमानान्कृताञ्जलीन् ।
 ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमिति ध्यायेद्दिवाकरम् ॥ ६ ॥

एवं हृदि यन्त्रे च चिन्तयेत् । इति ध्यानम् । गन्धपुष्पाक्षतयुतम-
 ञ्जलिं प्रसृतं हृदि कृत्वा

ॐ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।

अनुकम्पय मां भक्त्या प्रसीद परमेश्वर ॥

इति त्रिरुच्चार्य ॐ उद्यन्नद्य० क्र. ३ । ॐ भगवन्नागच्छाऽऽगच्छ
 ॐ आवाहयामीत्युक्त्वा हृदि ध्यातां मूर्तिं तेजोरूपां श्वासमार्गेण पुष्पा-
 ञ्जलौ समानीय पुरःकल्पितमूर्तेर्ब्रह्मरन्ध्रे पुष्पाञ्जलिना सह तत्तेजः
 प्रक्षिप्य तद्वारा प्रवेश्य सर्वावयवभावेन परिणमयेत् ।

ॐ आदित्यं च सहस्रांशुं प्रमातीतसमुद्भवम् ।

लोकनाथं जगच्चक्षुः सूर्यमावाहयाम्यहम् ॥

श्रीसूर्यायाऽऽवाहनं समर्पयामि नम इत्यक्षतान्निक्षिपेत् । इत्यावाह-
 नम् ॥ १ ॥

ॐ कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः ।

यस्मादग्निस्वरूपस्त्वं ततः पाहि दिवाकर ।

श्रीसूर्यायाऽऽसनं समर्पयामि नम इति मण्डलस्योत्तरतो दद्यात् ॥ २ ॥

ॐ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।

अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

श्रीसूर्यायार्घ्यं समर्पयामि नम इति पद्मे देवशिरसि वा गन्धपुष्पाक्ष-
 तयवकुशाग्रतिलसर्पपट्टार्घ्यासहितजलरूपमर्घ्यं तैजसेन पात्रेण दद्यात् ॥ ३ ॥
 ॐ उदु त्यं० क्र. १ श्रीसूर्याय पाद्यं समर्पयामि नम इत्यासनमण्डल-

पोर्मध्ये पद्मे वा श्यामाकटुर्वाकमलविष्णुकान्तासहितं केवलं वा
 सलिलं पाद्यं दद्यात् ॥ ४ ॥ ॐ अपत्येता० क्र. १ श्रीसूर्यायाऽऽचमनं
 समर्पयामि नम इति पद्मे जातिलवङ्गकङ्कोलमिश्रितेन कर्पूरादिवासितेन
 जलेन केवलजलेन वा तैजसपात्रेणाऽऽचमनं दद्यात् ॥ ५ ॥ ॐ अदृश्रमस्य०
 क्र. १ श्रीसूर्याय स्नानं समर्पयामि नम इति कस्तूरीरोचनाकुङ्कुमादिमि-
 श्रितं जलं मण्डलकेसरे दद्यात् । अत्रार्घ्यादिषु प्रक्षेप्यद्रव्यालाम्भे तण्डुला-
 नेव तत्तद्भावनया क्षिपेत् ॥ ६ ॥ ॐ तरणिर्वि० क्र. १ श्रीसूर्याय वस्त्रं
 समर्पयामि नम इति पद्मस्य बहिर्भागे द्वारादौ वस्त्रं निवेदयेत् ॥ ७ ॥
 ॐ प्रत्यङ् दे० क्र. १ श्रीसूर्यायोपवीतं समर्पयामि नम इति वस्त्रस्थाने
 दद्यात् ॥ ८ ॥ ॐ येनापाव० क्र. १ श्रीसूर्याय गन्धान्समर्पयामि नम
 इति पद्मे दद्यात् ॥ ९ ॥ ॐ विद्यामेषि० क्र. १ श्रीसूर्याय पुष्पाणि
 समर्पयामि नम इत्यूर्ध्वमुखानि पुष्पाणि पद्मे दद्यात् ॥ १० ॥ अथाऽऽ-
 वरणपूजा । तत्र कर्णिकायाम् । ॐ सूर्याय नमः । प्रागादिद्वादशदलेषु
 ॐ मित्राय नमः । ॐ रवये नमः । ॐ सूर्याय नमः । ॐ भानवे
 नमः । ॐ खगाय नमः । ॐ पूष्णे नमः । ॐ हिरण्यगर्भाय नमः ।
 ॐ मरीचये नमः । ॐ आदित्याय नमः । ॐ सवित्रे नमः । ॐ
 अर्काय नमः । ॐ भास्कराय नमः । १२ दक्षिणपार्श्वे ॐ दण्डाय न० ।
 वामपार्श्वे ॐ पिङ्गलाय न० । अग्रे ॐ अरुणसारथये न० । तृचेन
 सूर्याय पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।

भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

इति कलशजलेन देवस्य दक्षिणहस्त आवरणपूजां समर्प्य नमेत् ।
 इत्यावरणपूजा । ॐ सप्त त्वा ह० क्र. १ श्रीसूर्याय धूपं समर्पयामि नम
 इति देवस्य पादाभिमुख्येन धूपं प्रदर्श्य देवस्य वामतो धूपपात्रं स्थाप-
 येत् ॥ ११ ॥ ॐ अयुक्त सप्त० क्र. १ श्रीसूर्याय दीपं समर्पयामि नम
 इति देवस्य दृष्ट्याभिमुख्येन दीपं प्रदर्श्य देवस्य दक्षिणतो दीपपात्रं
 स्थापयेत् ॥ १२ ॥ देवस्य पुरतो वामे दक्षिणे वा कृतमण्डले नैवेद्यभृतं
 पात्रं निधाय ॐ उद्वयं तमस० क्र. १ श्रीसूर्याय नैवेद्यं समर्पयामि
 नमः ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा ॐ प्राणाय स्वाहेत्यादि पठित्वा श्रीसूर्याय
 पानीयमिदं स० । नैवेद्यपात्रमुत्तरतो निधाय श्रीसूर्याय गण्डूपानिमा-
 न्स० । श्रीसूर्याय हस्तप्रक्षालनमिदं स० । श्रीसूर्यायाऽऽचमनीयमिदं
 स० । श्रीसूर्याय मुखप्रोच्छनमिदं स० । इति सर्वं समर्पितं विभावयेत् ।

ॐ उद्यन्नद्य० क्र. १ श्रीसूर्याय फलानि स० ॥ १४ ॥ ॐ शुकेषु० क्र. १
श्रीसूर्याय ताम्बूलं स० ॥ १५ ॥ ततः सूर्याय प्रसन्नाय स० इत्यर्घ्यं
दत्त्वा ॐ उदगादय० क्र. १ श्री सूर्याय दक्षिणां स० ॥ १६ ॥ ततस्तुचेन
मुष्पाञ्जलिं दत्त्वा

कूपाकूपारतुल्यास्वथ च नदनदीखेयकासारवापी-
ष्वापातालं प्रविष्टैर्दशशतगुणितै रश्मिभिर्वारि मूरि ।
ग्राहं ग्राहं निषिञ्चन्मुखयसि तृषितान्पादपान्पादहीना-
नेपा ते दानधाटी निरुपधिकरुणा वेति मानो न विद्मः ॥ १ ॥

विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः ।

लोकप्रकाशकः श्रीमाल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥

लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा ।

तपनः पावनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ॥

गभास्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः ।

इति स्तुत्वोत्थाय दक्षिणं हस्तं प्रसार्य शिरोदक्षमुजमूले नमयित्वा
दक्षकटिं च किञ्चिद्विनाम्य प्रादक्षिण्येन सप्तवारं वेष्टयेत् । ततो देवस्य
साक्षादभिमुखं भागं परिहृत्य किञ्चित्पार्श्वभागस्थो देवाभिमुखमूर्ध्वबाहु-
र्धण्डवद्भूमौ निपत्य

हृदयं चिबुकं वक्त्रं नासिकाग्रं ललाटकम् ।

बह्वरन्ध्रं दक्षवामौ कर्णौ च क्रमशो भुवि ॥

स्पर्शयेत्स नमस्कारः कायिकोऽष्टाङ्ग ईरितः ।

इतिरीत्या कायिकं श्रीसूर्याय नम इति कथनरूपं वाचिकं मत्तोऽय-
मुत्कृष्ट इतिभावनरूपं मानसिकं च नमस्क्रुर्यात् । नैवेद्याच्छतांशं सजलं
माठरादिभ्यो निवेद्य

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं च यन्मया ।

कृतं त्वराश्रितं कर्म कृपया तत्प्रपूरय ॥

इति प्रार्थ्य नत्वा

भास्कराय विद्महे महद्द्युतिकराय धीमहि ।

तन्न आदित्यः प्रचोदयात् ॥

इति द्वादशवारं जपेत् । इति पूजाविधिः ।

ततः—निपीदति यथा भूमौ पूर्वजानुः क्रमेलकः ।

पादाग्रं पश्चिमस्थाने गुल्फस्थस्तु यथाक्रमम् ॥

उद्गासिकाख्यमुपवेशनं सौरार्घ्यकर्मणीत्युक्तलक्षणमुपविश्य ॐ ह्रीं
 उद्यन्नद्य मित्रमहः । मित्राय दक्षिणमणिबन्धाय नमः । ॐ ह्रीं
 आरोहन्नुत्तरां दिवम् । रवये दक्षिणप्रकोष्ठाय० । ॐ ह्रूं हृद्रोगं मम सूर्य ।
 सूर्याय दक्षिणहस्ताय० । ॐ ह्रूं हरिमाणं च नाशय । मानवे दक्षिण-
 कूर्पराय० । ॐ ह्रौं शुकेषु मे हरिमाणम् । खगाय दक्षिणकरतलाय० ।
 ॐ ह्रः रोपणाकासु धूमसि । पूष्णे दक्षिणकरपृष्ठाय० । ॐ ह्रां अथो
 हारिद्रवेषु मे । हिरण्यगर्भाय वाममणिबन्धाय० । ॐ ह्रीं हरिमाणं
 निधूमसि । मरीचये वामप्रकोष्ठाय० । ॐ ह्रूं उदगादयमादित्यः ।
 आदित्याय वामहस्ताय० । ॐ ह्रूं विश्वेन सहसा सह । सवित्रे वाम-
 कूर्पराय० । ॐ ह्रौं द्विपन्तं मह्यं रन्धयन् । अर्काय वामकरतलाय० ।
 ॐ ह्रः मो अहं द्विपते रधम् । मास्कराय वामकरपृष्ठाय० । इति कर-
 शुद्धिन्यासं कृत्वा द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं षोडशाङ्गुलदीर्घं षष्ठ्यङ्गु-
 लोच्चं मध्येऽष्टदलकमलयुक्तं व्यावहारिकचतुःषष्टितोलात्मकमागधप्रस्थो-
 वकग्राहि ताम्रमर्घ्यपात्रं कलशजलेनाऽऽपूर्य तत्राङ्गुष्ठानामिकाभ्यां
 रक्तचन्दनं रक्तपुष्पमेकं दश षड्भा रक्ततण्डुलानेकां दूर्वां यत्रांस्तिलांश्च
 क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तत्पात्रं शनैः शिरःपर्यन्तं नीत्वा सूर्यचित्तो नासा-
 ग्रमवलोकयन् ॐ ह्रां उद्यन्नद्य मित्रमहः । ह्रां मित्राय नम इति
 सूर्यं दृष्ट्वा मनसा नत्वेदमर्घ्यं समर्पयामीति देवशिरसि प्रक्षिपेत् ।
 एवमग्रेऽप्यर्घ्यपूरणादिप्रक्षेपान्तम् । ॐ ह्रीं आरोहन्नुत्तरां दिवम् । ह्रीं
 रवये नम इदमर्घ्यं समर्पयामि । ॐ ह्रूं हृद्रोगं मम सूर्य । ह्रूं सूर्याय० ।
 ॐ ह्रूं हरिमाणं च नाशय । ह्रूं मानवे० ॐ ह्रौं शुकेषु मे हरिमाणम् ।
 ह्रौं खगाय० । ॐ ह्रः रोपणाकासु धूमसि । ह्रः पूष्णे नम इ० । ॐ
 ह्रां अथो हारिद्रवेषु मे । ह्रां हिरण्यगर्भाय० । ॐ ह्रीं हरिमाणं निद-
 धूमसि । ह्रीं मरीचये० । ॐ ह्रूं उदगादयमादित्यः । ह्रूं आदित्याय० ।
 ॐ ह्रौं विश्वेन सहसा सह । ह्रूं सवित्रे न० ॐ ह्रौं द्विपन्तं मह्यं रन्ध-
 यन् । ह्रौं अर्काय० । ॐ ह्रः मो अहं द्विपते रधम् । ह्रः मास्कराय
 नम इदमर्घ्यं समर्पयामि । अथार्धर्चशः । ॐ ह्रां ह्रीं उद्यन्नद्य० दिवम् ।
 ह्रां ह्रीं मित्ररविभ्यां नमः इद० । ॐ ह्रूं ह्रूं हृद्रोगं म० शय । ह्रूं ह्रूं
 सूर्यभानुभ्यां न० । ॐ ह्रौं ह्रः शुकेषु० धूमसि । ह्रौं ह्रः खगपूषभ्यां० ।
 ॐ ह्रां ह्रीं अथो हा० धूमसि । ह्रां ह्रीं हिरण्यगर्भमरीचिभ्यां न० ॐ

ह्रूं हैं उदगाद० सह । ह्रूं ह आदित्यसवितृभ्यां न० । ॐ हौं हः द्विपन्त०
 रधम् । हौं हः अर्कभास्कराभ्यां नम इदमर्घ्यं समर्पयामि । अथ
 ऋकूशः । ॐ हां हीं ह्रूं हैं उद्यन्नद्य० ऋ० १ हां हीं ह्रूं हैं मित्ररविमू-
 र्यभानुभ्यो नम इद० । ॐ हौं हः हां हीं शुकेषु मे० ऋ० १ हौं हः हां हीं
 खगपूपहिरण्यगर्भमरीचिभ्यो न० । ॐ ह्रूं हैं हौं हः उदगाद० ऋ० १ ह्रूं
 हैं हौं हः आदित्यसवित्रर्कभास्करोभ्यो न० । ॐ हां हीं ह्रूं हैं हौं हः
 हां हीं ह्रूं हैं हौं हः उद्यन्नद्य० ऋ० ३ हां हीं ह्रूं हैं हः हां
 हीं ह्रूं हैं हौं हः मित्ररविसूर्यभानुखगपूपहिरण्यगर्भमरीच्यादित्यसवि-
 त्रर्कभास्करोभ्यो नम इदमर्घ्यं समर्पयामि । एवं त्रीण्यर्घ्याणि दद्यात् ।
 ॥ २४ ॥ एवं प्रत्यहं द्वादशाऽऽवृत्तय इत्युत्तमः पक्षः । पडिति मध्यमः ।
 चतस्र इत्यधमः । तिस्र इति निकृष्टः । यथाशक्तीति ततोऽपि चरमः ।
 प्रात्यहिकाद्विगुणं रविवासरे । एवमभीप्सितां संख्यां समाप्य पूर्वो-
 क्तार्धचपडङ्गं स्वशरीरे न्यस्य पञ्चमिरुपचारैरुक्तमन्त्रैरेव संपूज्यार्घ्य-
 पात्रेऽर्घ्यजलं गृहीत्वा सूर्यगायत्र्या पिबेत्पाययेद्वा ।

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।

त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशंकरात्मने ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, आकृष्णेनेति स्तुत्वा सविता पश्चात्तादिति
 संप्राथम्यं

रविः कर्ता रविर्भोक्ता रविः सर्वमिदं जगत् ।

रविर्जयति सर्वत्र यो रविः सोऽहमेव हि ॥

त्वमेवाहमहं त्वं च सच्चिन्मात्रवपुर्धरः ।

आवयोरन्तरभ्रान्तिस्त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु ॥

इत्युक्त्वा सूर्यरूपिणमात्मानं ध्यात्वाऽऽवरणदेवतास्तेजोमयीः कृत्वा
 सूर्यतनौ प्रविष्टा विभाव्य क्षणं ध्यात्वा नत्वा तालत्रयेण देवं प्रबोध्य
 तेजोमयमात्रं विभाव्य, उद्यन्नद्येत्यृचमुच्चार्य श्रीसूर्यं साङ्गं सपरिवारं
 विसर्जयामि नमः स्वस्थानं गच्छ गच्छेत्युक्त्वा विसर्जयेत् । न वा विस-
 र्जनम् । तत आचम्यानेन सूर्यार्घ्यदानेन श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् । तुचम-
 न्त्रेण नमस्कारा अपि कार्याः । तत्रेदमर्घ्यं समर्पयामीतिपल्लववर्जिताः
 पूर्वोक्ता एव मन्त्राः । इत्याचारेन्दौ सूर्यार्चनं समाप्तम् ।

अथ प्रसङ्गान्नैमित्तिकजपविधिरुच्यते । तत्काल उक्त आश्वलायना-
 चार्येण—

न जपेत्संध्ययोरेवं कामार्थी ब्राह्मणः क्वचित् ।

प्राग्वा पश्चाच्च तत्कालाच्छस्तः कामजपः सदा ॥ इति ।

तत्कालात्संध्याकालकर्तव्यगायत्रीजपकालात् । तद्विधिरुच्यते—

अपमृत्युविनाशार्थं चतुर्वारमनुच्छ्वसन् ।

सावित्रीं प्रजपेन्नित्यं सहस्रं ध्यानतत्परः ॥

शतादप्यधिकायुः स्याज्जपेनानेन मानवः ।

श्रीमानरोगी विरजा विद्वान्पूज्यश्च बन्धुमान् ॥

कपिलसंहितायाम्—

नमकं चमकं चैव रौद्रसूक्तं विशेषतः ।

तमुद्बुहीत्यृचं वाऽपि सद्योजातादि पञ्चकम् ॥

पञ्चाक्षरं महामन्त्रं जपेदनुदिनं सुधीः ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं संततिं पूर्णजीवनम् ॥

संपत्समृद्धिसौख्यं च लभते शिवशासनात् ।

दीर्घरोगी जपेद्बुद्धं नित्यं प्रातरुदङ्मुखः ॥

अरोगी पूर्णजीवी च भवेत्पणमासयोगतः ।

उदङ्मुखो जपेत्कामी निष्कामः प्राङ्मुखो जपेत् ॥

आचार्यः—वैष्णवैर्वारुणैः सौरैः पावमानीभिरेव च ।

क्षपयेदाशु पापानि कामांश्च निखिलैर्लभेत् ॥

रौद्रैर्विशेषतो घोरान्ब्रह्महत्यादिकानपि ।

क्षपयेत्पौरुषेणापि कामौश्चाऽऽप्नोति दुर्लभान् ॥

सर्वमन्त्राणामादौ मन्त्रसिद्धये पुरश्चरणमवश्यं कर्तव्यम् । तथा च
वैशम्पायनः—

पुरश्चरणसंपन्नो मन्त्रो हि फलदायकः ।

किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः ॥

रहस्यानां हि मन्त्राणां यदि न स्यात्पुरस्क्रिया ॥

तच्च पञ्चाङ्गमुक्तं मन्त्रकौमुद्याम्—

जपो होमस्तर्पणं च मार्जनं विप्रभोजनम् ।

मन्त्रविद्भिस्तु पञ्चाङ्गं पुरश्चरणमीरितम् ॥

एतत्संख्याऽप्युक्ता तत्रैव—

होमो जपदशांशेन तद्दशांशेन तर्पणम् ।

मार्जनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन भोजनम् ॥

महोदधिटीकायां पञ्चाङ्गं पुरश्चरणमिति कनीयान्पक्षः । अभिषेक-
वर्जं मध्यमः । तर्पणाभिषेकवर्जसूयङ्ग उत्तमः पक्षः । नारदः—

संख्यापूर्तौ निजैर्द्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः ।

यथोक्तकुण्डे जुहुयाद्यथाविधि समाहितः ॥

अथ वा प्रत्यहं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः ।

होमाशक्तौ ब्राह्मणानां पुरश्चरणसंख्याद्विगुणो जप इति मुख्यः
पक्षः । होमसंख्याद्विगुणो जप इति गौणः । क्षत्रियादीनां त्रिगुणादि-
जपः । एवं तर्पणेऽपि । जपलक्षणमाह कुम्भसंभवः—

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य शश्वदावर्तनं हि तत् ।

अन्तरङ्गाक्षराणां च न्यासपूर्वो जपः स्मृतः ॥

अङ्गेति सुतीक्ष्णसंबोधनम् । अक्षराणामन्तरावर्तनं जप इति संबन्धः ।
वायवीयसंहितायाम्—

एवमुक्तविधानेन विलम्बत्वारितं विना ।

उक्तसंख्यं जपं कुर्यात्पुरश्चरणसिद्धये ॥

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं संभावयन्धिया ।

जपेदेकमनाः प्रातःकालान्मध्यंदिनावधि ॥

यत्संख्यया समारब्धं तत्कर्तव्यं दिने दिने ।

यदि न्यूनाधिकं कुर्याद्व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥

तथा जपदेशस्तत्रैव—

सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य वा ।

विप्राणां वा गवां वाऽपि संनिधौ शस्यते जपः ॥

अथ वा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति ।

कूर्मपुराणेऽपि—गुह्यका राक्षसाः सिद्धा हरन्ति प्रसभं मनः ।

एकान्ते तु शुभे देशे तस्माज्जप्यं सदा जपेत् ॥

आसनविधेरावश्यकत्वमुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

आसनं प्रोक्ष्य संपूज्य जपं तत्र समाचरेत् ।

आसनोपवेशनप्रकार(रो) जपोपांशुत्वादि च संध्याप्रकरणोक्तमत्रानु-
संधेयम् । भूतशुद्धेरप्यावश्यकत्वमुक्तं कुम्भसंभवेन—

भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाऽभिचारवत् ।

विपरीतं फलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा ॥ इति ।

प्राणप्रतिष्ठापनमप्युक्तं सारसंग्रहे—

भूतशुद्धिं विधायेत्थं ततो वै स्थापयेदसून् ।

असून्प्राणान् । अन्तर्मातृकाबहिर्मातृकान्यासावपि तत्रैव—

कृत्वाऽन्तर्मातृकान्यासं बहिर्न्यासं ततश्चेत् ॥

न्यासस्याऽऽवश्यकत्वमुक्तं गौतमीये—

ध्यानं जपार्चना होमाः सिद्धमन्त्रकृता अपि ।

अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी ॥

कपिलपञ्चरात्रे—ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा ।

जपः संसाधितोऽप्येव तत्र तुच्छफलं भवेत् ॥ इति ।

अथ मुद्राः । तत्र बहिर्न्यासमुद्रा दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

पुष्पैरनामया वाऽपि मनसा वा न्यसेदणून् ।

अणून्मन्त्रान् । अत्रैवं व्यवस्था । पुष्पैर्देवतामूर्तौ । अनामया
स्वदेहे । मनसा मूलाधारादिचक्रेषु । तत्र करस्पर्शासंभवात् । अनामया
साङ्गुष्ठया ।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु न्यासः सर्वत्र संमतः ।

इति पद्यवाहिनीवचनात् । अङ्गन्यासमुद्रास्तु तन्त्रराजादौ—

प्रसारितमनङ्गुष्ठं तर्जन्यादिचतुष्टयम् ।

हृदि मूर्धनि चाङ्गुष्ठहीनो मुष्टिः शिखातले ॥

चकाराद्धृदयवदेव मूर्धनि ।

स्कन्धमारभ्य नाभ्यन्ता दशाङ्गुल्यस्तु वर्मणि ।

तर्जन्यादित्रयं नेत्रत्रये नेत्रद्वये द्वयम् ॥

प्रसारिताभ्यां हस्ताभ्यां कृत्वा तालत्रयं सुधीः ।

तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे स्फालयन्बन्धयन्दिशः ॥

एषाऽस्त्रमुद्रा संप्रोक्ता विष्णोरेताः प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

मुष्टी विनिर्गताङ्गुष्ठौ संयुक्तौ हृदि विन्यसेत् ।

निस्तर्जनीतट्टशौ तु शिरस्यथ शिखातले ॥

निरङ्कुष्ठकनिष्ठौ तु निरङ्कुष्ठप्रदेशिनी ।
मुष्टी पृथक्कृतौ स्कन्धाद्धृदन्तं वर्मणि स्मृतौ ॥
तर्जन्यादित्रयं नेत्रे तलास्फोटोऽस्त्र ईरितः ।

शैवी षडङ्गमुद्रोक्तेति । शक्तेरङ्गमुद्रास्तु गायत्रीजपप्रकरण उक्ताः ।
ऋष्यादिन्यासमुद्रा अपि तत्रैव—

ऋषिच्छन्दोदेवतानां न्यासे त्वङ्गुलयः स्मृताः ।
चतस्रोऽङ्गुष्ठरहिता इति विद्वत्प्रभाषितम् ॥

अथ जपमाला । गौतमः—

अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेकमुदाहृतम् ।
रेखयाऽष्टगुणं प्रोक्तं जीवैर्दशगुणाधिकम् ॥
शतं स्याच्छङ्खमणिभिः प्रवालैश्च सहस्रकम् ।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं भौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तफलमुच्यते ॥

आचारप्रकाशे स्कान्दे—प्रवालमुद्रास्फाटिकैर्जप्तं कोटिफलप्रदम् ।

तुलसीमणिना येन गणितं चाक्षयं भवेत् ॥

अगस्तिसंहितायाम्—तुलसीकाष्ठघटितैर्मणिभिर्जपमालिका ।

सर्वकर्मणि सर्वेषामीप्सितार्थफलप्रदा ॥

मणिसंख्यामाह प्रजापतिः—

अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुष्पञ्चाशिका तथा ।
सप्तविंशतिका कार्या ततो नैवाधिका हिता ॥
अष्टोत्तरशता माला उत्तमा सा प्रकीर्तिता ।
चतुष्पञ्चाशिका वत्स मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥
अधमा प्रोच्यते नित्यं सप्तविंशतिसंख्यया ॥ इति ।

अयुतादिसंख्यजपे तु

न खण्डां कारयेन्मालां जपकर्मणि मानवः ॥

इति मालाखण्डननिषेधादेतासां मालानां जपसाधनत्वासंभवेन शत-
संख्यमणिघटितमालाया विधानाभावेऽप्यनायत्या शतसंख्यमणिघटितैव
मालाऽत्र कल्पनीया ।

मन्त्रेण मालां पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य शीतजलेन प्रक्षाल्य वामदेवेति चन्दने-
नाऽऽघृष्याघोरेति गुग्गुल्वंगरुभिर्धूपयित्वा तत्पुरुषेति कस्तूरीचन्दनादिना
लेपयित्वा, ईशान इति मन्त्रेण प्रतिमणि मन्त्रावृत्त्या सर्वान्मणीनमिम-
न्ध्याघोरेभ्य इत्यनेन मेरुं शतवारमभिमन्त्रयेत् । तत एतैरेव पञ्चभिर्मन्त्रैर्ग-
न्धादिपञ्चोपचारैर्मालां प्रपूजयेदिति । केचित्तु मन्त्रयेत्पञ्चमेनैव प्रत्येकं
तु शतं शतमिति यामलवचनात्प्रतिमणि शतवारमभिमन्त्रणमाहुः ।
प्रतिमणि दशवारं वेति धर्माब्धिसारः । ग्रन्थान्तरे—

प्राणानां स्थापनं कुर्यात्तत्राऽऽवाह्येष्टदेवताम् ।

इष्टदेवतां यदीयमन्त्रजपस्ताम् । मूलेनाभ्यर्च्याभिमन्त्र्य मातृकाव-
र्णैश्च मूलतः । मातृकावर्णैर्मूलेन च मालामभिमन्त्रयेत्यर्थः ।

आज्याहुतीरष्टशतं मूलेन जुहुयात्ततः ।

संपाताज्यं तु मालायां प्रत्याहुति विनिक्षिपेत् ॥

होमाशक्तौ तु मूलेन मालाया अभिमन्त्रणम् ।

होमसंख्याद्विगुणितसंख्यया साधकश्चरेत् ॥

अन्यच्च तन्त्रान्तरे—

यन्मन्त्रस्य जपाद्यर्थं सा(या) माला संस्कृतां तु(त)या ।

तन्मन्त्रस्यैव कुर्वीत जपं नान्यस्य कस्यचित् ।

शिवमन्त्रेण संग्रथ्य शक्तिमन्त्रं जपेदपि ॥

शक्तिमन्त्रेण संग्रथ्य शिवमन्त्रं जपेच्छिवे ।

ध्रुवेण मातृकाभिर्वा ग्रथ्यन्ते मणयो यदि ॥

तदा सर्वेऽपि जप्तव्या मनवो मालया तथा ।

ध्रुवः प्रणवः ।

प्रमादाद्भलिता हस्तान्माला छिन्नाऽथ वा भवेत् ।

स्पृष्टा वा स्यान्निषिद्धेन मूलमष्टशतं जपेत् ॥

गौतमीये—जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतं जपेत् ।

मूलमिति शेषः । तन्त्रान्तरे—

जपकाले प्रगोप्तव्या नियमेन सुमेधसा ।

परदृष्टिगता माला निष्फला जपकर्मणि ॥

जपकालेऽक्षमालां तु गुरवेऽपि न दर्शयेत् ।

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्गृहीत्वा जपमाचरेत् ॥

शैवागमे—तर्जन्या न स्पृशेत्सूत्रं कम्पयेन्न च घर्षयेत् ।
 न स्पृशेद्द्वामहस्तेन करभ्रष्टां न कारयेत् ॥
 अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठेनान्यमक्षं न संस्पृशेत् ।
 जपकाले सदा विद्वान्मेरुं नैव विलङ्घयेत् ॥
 परिवर्तनकाले च संघट्टं नैव कारयेत् ।
 कलिः खटखटाशब्दे दोलमाने चलन्मतिः ॥
 चलिते चैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसंभवः ।
 हस्तच्युते महाविघ्नः सूत्रच्छेदे विनश्यति ॥

चलिते मध्यमातोऽङ्गुल्यन्तरगते ।

अङ्गुष्ठेनाक्षमालां च चालयेन्मध्यमाग्रतः ।

इति वचनात् । तथा—

कासे क्षुते च जृम्भायामेकमावर्तनं सृजेत् ।

प्रमादात्तर्जनीस्पर्शो भवेदावर्तनं त्यजेत् ॥

आवर्तनं मन्त्रस्य ।

जपन्निषिद्धसंस्पर्शं क्षालयित्वा पुनर्जपेत् ।

उत्तरतन्त्रे—जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ।

विधाय मण्डपस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ॥

इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ।

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥

चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयादक्षिणे करे ॥

बीजं गाणपतं पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ।

अविघ्नं कुरु माले त्वमिति तां प्रार्थयेद्विजः ॥

मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना ।

देवीं विचिन्तयज्जाप्यं कुर्याद्द्वामेन न स्पृशेत् ॥

जपान्ते तां नमस्कृत्य विदध्यान्मस्तके ततः ।

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव ॥

शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा ।

पुष्करं शिखिबीजस्य सूक्ष्मसूक्ष्मान्वितं भवेत् ॥

आकाशशशिसंयुक्तं सिद्धयै हृदयसंयुतम् ।

ह्रीं सिद्धयै नम इति ।

एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो मालायाः परिकीर्तितः ।

ग्रहणे स्थापने चैव पूजने विनियोजयेत् ॥

न धारयेत्करे मूर्ध्नि कण्ठे वा जपमालिकाम् ।

जपकाले जपं कृत्वा सदा शुद्धस्थले क्षिपेत् ॥

बाह्यैरुपचारैरिष्टदेवतां संपूज्य जपं कुर्यात् । यद्वा मानसैरुपचारैः पूजनम् । तत्प्रकारः प्रपञ्चसारे—प्रथममुभयकराङ्गगुष्ठाग्रेणोभयकनिष्ठिकयोर्मध्यमपर्वणोः स्पृशन् ॐ गन्धं परिकल्पयामीत्युक्त्वा गन्धोपचारं समर्पयेत् । पुनस्तथैव तर्जन्यग्रद्वयेनाङ्गुष्ठमध्यदेशसंस्पर्शपूर्वकम् । ॐ पुष्पं समर्पयामीति पुष्पमुद्रया पुष्पोपचारं समर्पयेत् । पुनरितरासु तिसृष्वप्यङ्गुलीषु तर्जन्यादिष्वङ्गुष्ठाग्रेण मध्यदेशसंस्पर्शपूर्वकं धूपदीपनैवेद्यमुद्राः क्रमेण तत्तन्नाम्ना पूर्ववदेव समर्पयेत् । एवमेव सर्वत्र मानसपूजाप्रकारः । अथवा कल्पान्तरोक्तप्रकारेण गन्धाद्युपचारमन्त्राः—लं पृथिव्यात्मने नारायणाय सत्यं गन्धं कल्पयामि । हं आकाशात्मने वासुदेवाय ब्रह्मापुष्पं कल्पयामि । यं वाय्वात्मने संकर्षणाय धूपं कल्पयामि । रं अग्न्यात्मने प्रद्युम्नाय दीपं कल्पयामि । वं अवात्मनेऽनिरुद्धायाऽऽनन्दनैवेद्यं कल्पयामि । मुद्रास्तु पूर्वोक्ता एव । यद्वा केवलनैवेद्यमुद्राप्रदर्शनम् । तदुक्तं क्रमदीपिकायाम्—ततो नैवेद्यमुद्रिकां प्रधानया करद्वये स्पृशन्ननामिकां निजं मनुं जपन्प्रदर्शयेत् । प्रधानयेत्यङ्गुष्ठेन । व्यासः—

जपकाले न भाषेत व्रतहोमादिकेषु च ।

एतेष्वेवावसक्तस्तु यथा गच्छन्द्भिजोत्तमः ॥

अभिवाद्य ततो विप्रं योग(गं) क्षेमं च कीर्तयेत् ॥ इति ।

यथा गमनवेलायां तन्मनस्कः सन्नेव गच्छति तद्वज्रपादिष्वपि तन्मनस्क एव भवेदित्यर्थः । विप्रमभिवाद्य तेन विप्रेण योगं क्षेमं च कीर्तयेदित्यर्थः । अलब्धलाभो योगः । लब्धस्य रक्षणं क्षेमः । एतदतिरिक्तवाग्यमलोपे तु वैष्णव्यृजप इति पूर्वमुक्तम् । फेत्कारिणीतन्त्रे—

जपकाले यदा पश्येदशुचिं मन्त्रवित्तमः ।

प्राणायामं ततः कृत्वा जपशेषं समापयेत् ॥

यदा चैवं मवेन्मन्त्री स्वयमेवाशुचिः पुनः ।

स्नात्वाऽऽचम्य यथापूर्वं न्यासं कृत्वा जपेदिति ॥

न्यासोऽधिकारसंपादकः । एतेन मूत्रोत्सर्गादावशुचित्वसंभवश्चेत्स्नानम् । अन्यथा प्राणायामपटङ्गन्यासान्कृत्वा शेषं समापयेदिति प्रतीयते । कपिलपञ्चरात्रे—

विक्षेपादथ वाऽऽलस्याज्जपहोमार्चनान्तरा ।

उत्तिष्ठति तदा न्यासं पटङ्गं विन्यसेत्पुनः ॥

सिद्धार्थादिशोधनं मन्त्रविशेषे तदपवादो मन्त्रसंस्कारः पुरश्चरणधर्माश्च ग्रन्थान्तराज्ज्ञेयाः । विस्तरभयान्नात्र लिख्यन्ते । अथ मालासंख्याने वर्ज्यपदार्थान्ग्राह्यगुटिकां चाऽऽह संग्रहकारः—

नाक्षतैर्न च पर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः ।

न मृन्मयैः फलैर्वाऽपि जपसंख्यां न कारयेत् ॥

लक्षाकुसीदं सिन्दूरं चन्दनं च करीषकम् ।

संमेल्य गुटिकां कृत्वा जपसंख्यां तु कारयेत् ॥

अथ नवार्णविधिः । डामरतन्त्रे—

नवबीजनिबद्धोऽयं मन्त्रश्चैलोक्यपावनः ।

एतं जपति यो मन्त्री फलं तस्य वदाम्यहम् ॥

वश्या भवन्ति कामिन्यो राजानोऽनुचरा इव ।

न हस्तिर्न सर्पदावाग्निचोरशत्रुभयं भवेत् ॥

सर्वाः समृद्धयस्तस्य जायन्ते चण्डिकाज्ञया ।

नश्यन्ति दारुणा रोगाः सत्यं सत्यं न संशयः ॥

अस्मिन्नवाक्षरे मन्त्रे महालक्ष्मीर्व्यवास्थिता ।

तस्मात्सुसिद्धः सर्वेषां सर्वदिक्षु प्रदीपकः ॥

अनेनास्य सिद्धादिविचारो नास्तीति स्थापितम् । अथ मन्त्रोद्धारः—

ऐं बीजमादीन्दुसमानदीप्तिं ह्रीं सूर्यतेजोद्युतिमप्रमेयम् ।

क्लीं भूतवैश्वानरतुल्यरूपं तृतीयमानन्त्यसुखाय चिन्त्यम् ॥

चा शुद्धजाम्बूनदकान्तितुर्यं मुं पञ्चमं रक्ततरं प्रकल्प्यम् ।

स्याड्वा षडुग्रार्तिहरं सुनीतं यै सप्तमं कृष्णतरं रिपुघ्नम् ॥

वि पाण्डुरं त्वष्टममादिसिद्धं चे धूम्रवर्णं नवमं विशालम् ।

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इति नवाक्षरो मन्त्रः ।

नवाक्षरस्य ऋषयो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

छन्दांस्युक्तानि मुनिभिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ॥

महासरस्वति चित्ते महालक्ष्मि सदात्मिके ।

महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्त्वज्ञानसिद्धये ॥

अनुसंदध्महे चण्डि वयं त्वां हृदयाम्बुजे ।

इतिमन्त्रार्थमनुसंधान इष्टसंख्यं मन्त्रं प्रारम्भे प्रोक्तसंख्यावधौ च
प्रणवपुटितं जपित्वा

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव ।

शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा ॥

इति संप्रार्थ्यं ह्रीं सिद्धै नम इति मालां शिरसि निधाय सुगुप्तस्थले
निदध्यात् । अथ पुनर्ऋष्यादिमानसपूजान्तं विधाय

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्मयि स्थिरा ॥

इति जलधारया देव्या दक्षिणहस्ते जपं निवेदयेत् । यद्यन्यदीयं जपं
करोति तदा मयीत्यत्र यजमान इत्यूह इति केचित् । अन्ते सकृदाचम्या-
नेन नवार्णजपेन श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यात्मकचण्डिका
प्रीयताम् । इति नवार्णविधिः । अस्य चतुर्लक्षात्मकं पुरश्चरणम् ।

एवं ध्यात्वा जपेलक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।

पायसान्नेन जुहुयात्पूजिते हेमरेतसि ॥

इति महोदधावुक्तेः । यद्वा—

आश्विनस्य सिते पक्ष आरभ्याग्नितिथिं सुधीः ।

अष्टम्यन्तं जपेलक्षं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥

इतिगुप्तवत्युक्तप्रकारेण पुरश्चरणम् ।

अथ शिवपञ्चाक्षरविधानम् । तत्र मन्त्रोद्धारः शिवार्चनचन्द्रि-
कायाम्—

हृदयं वपरं साक्षि लान्तोऽनन्तान्तिको मरुत् ।

पञ्चाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः ॥

ब्रह्मोत्तरखण्डे शिवपञ्चाक्षरं प्रक्रम्य—

महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ॥

प्रणवेन विना मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरो मतः ।

स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥

नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ।

न कालनियमश्चात्र जप्यः सर्वैरयं मनुः ॥

स्कन्दपुराणे सूतसंहितायां नैमिषीया उचुः—

भगवन्देवदेवस्य नीलकण्ठस्य शूलिनः ।

ब्रूहि पूजाविधिं विद्वन्कृपया भुक्तिमुक्तिदम् ॥

इतिप्रश्ने सूतः कथकः—वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा इत्युपक्रम्य

श्रीमत्पञ्चाक्षरेणैव प्रणवेन युतेन तु ॥

इति पूजासाधनमन्त्रमभिधायाऽऽश्रमभेदेन तथा स्त्रीणां शूद्राणां च मन्त्रे विशेषं दर्शयति—

प्रणवेन महादेवं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च सुव्रतः ॥

एवं दिने दिने देवं पूजयेदम्बिकापतिम् ।

प्रणवेनेति प्रणवयुक्तेन पञ्चाक्षरेणेत्यर्थः ।

संन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् ।

नमोन्तेन शिवेनैव स्त्रीणां पूजा विधीयते ॥

शिवेन मन्त्रेण ।

विरक्तानां च शूद्राणामेवं पूजा प्रकीर्तिता । इति पारिजाते ।

भाले त्रिपुण्ड्रकं भाति गले रुद्राक्षमालिका ।

वक्त्रे षडक्षरो मन्त्रः स रुद्रो नात्र संशयः ॥

एवं च ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थानाम् । ॐ नमः शिवायेति प्रणवाद्यः षडक्षरः । स्त्रीशूद्राणां तु शिवाय नमो नमः शिवायेति वा । संन्यासिनां तु केवलः प्रणवः । अस्य प्रणवयोगेन षडक्षरत्वेऽपि पञ्चाक्षरमन्त्रजपं करिष्य इत्येव संकल्पः ।

पञ्चाक्षरः सप्रणवो द्विजराज्ञोर्विधीयते ।

इति वासिष्ठादिवचनैः पञ्चाक्षरस्य प्रणवसाहित्यविधानात् । शिवार्चनचन्द्रिकायाम्—

वामदेवमुनिश्छन्दः पङ्क्तिरीशोऽस्य देवता ।

पङ्क्तिभिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मन्त्रस्य देशिकः ॥

जपे कालनियमो रामकल्पे—

सर्वेषां श्रुतिमूलानां नित्यनैमित्तिकात्मनाम् ।
कर्मणामविरोधेषु कालेषु जप इष्यते ॥

शिवगीतायामपि—

बाह्यं मुहूर्तमारभ्य आमध्याह्नं जपेन्मनुम् ।
अत ऊर्ध्वं कृते जप्ये विनाशो भवति ध्रुवम् ॥
पुरश्चरं विधायैवं सर्वकामफलेष्वपि ।
नित्यनैमित्तिके वाऽपि तपश्चर्यासु वा पुनः ॥
सर्वदैव जपः कार्यो न दोषस्त्वत्र कश्चन । इति ।

तथा स्थाननियमोऽपि तत्रैव—

बिल्वमूले समाश्रित्य यो मन्त्रान्विविधाञ्जपेत् ।
एकैकदिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भवेत् ॥
यस्तु बिल्ववने नित्यं कुटीं कृत्वा जपेन्नरः ।
सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति जपमात्रेण केवलम् ॥

अथ प्रयोगः । आचम्य प्राणानायम्य कम्बलाद्यासने पृथिव त्वयेत्यु-
द्ङ्मुख उपविश्य पद्मस्वस्तिकाद्यासनं बद्ध्वा देशकालावनुकीर्त्य मम
श्रीशिवसाक्षात्कारसिद्धिपूर्वकधर्मार्थकाममोक्षार्थसिद्ध्यर्थं श्रीसदाशिव-
प्रीत्यर्थं वा श्रीशिवपञ्चाक्षरविद्योपासनं करिष्ये । अस्याः श्रीशिवप-
ञ्चाक्षरविद्याया वामदेव ऋषिः । पङ्क्तिश्छन्दः । श्रीसदाशिवो देवता ।
मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं जपे वि० । वामदेवर्षये नमः शिरसि ।
पङ्क्तिच्छन्दसे नमो मुखे । सदाशिवदेवतायै नमो हृदये । मम चतु-
र्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगाय नमः करसंपुटे । ॐ हृदयाय
नमः । नं शिर० । मं शिखायै० । शिं कवचाय० । वां नेत्रत्रयाय० । यं
अस्त्राय० । यद्वा ॐ ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने हृदया० । ॐ नं नित्यतृप्तश-
क्तिधाम्ने शिरसे० । ॐ मं अनादिबोधशक्तिधाम्ने शिखायै० । ॐ शिं
स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने कवचा० । ॐ वां अलुप्तशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय० ।
ॐ यं अनन्तशक्तिधाम्ने, अस्त्रा० । अथ ध्यानम् ।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

मानसैः पञ्चोपचारैरभ्यर्च्य नवार्णोक्तप्रकारेण मालाग्रहणादि कृत्वेष्ट-
संख्यां जपित्वा मालाप्रार्थनादि सर्वमुत्तराङ्गं नवार्णवत्कृत्वा सकृदाच-
म्यानेन शिवपञ्चाक्षरविद्योपासनेन श्रीसाम्बसदाशिवः प्रीयताम् । अस्य
चतुर्विंशतिलक्षात्मकं पुरश्चरणम् ।

तत्त्वलक्षं जपेन्मन्त्रं दीक्षितः शैववर्त्मना ॥

तावत्संख्यासहस्राणि जुहुयात्पायसैः शुभैः ।

ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकाभीष्टसिद्धिदः ॥

इतिवचनात् । यद्वा

लक्षपट्कं जपेद्वत्स नियमस्थो जितेन्द्रियः ॥

तावत्सहस्रं जुहुयात्तिलैः शुद्धैर्धृतप्लुतैः ।

पायसैः क्षीरवृक्षोत्थसमिद्धिर्वा गणेश्वर ॥

इतिवचनात्पञ्चलक्षात्मकं पुरश्चरणम् । इति शिवपञ्चाक्षरविधानम् ।

अथ पुरश्चरणालोकल्पचन्द्रिकायाम्—

चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः ।

स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥

जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमास्तु तर्पणम् ।

तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल ॥

होमे विधिस्तु वैदिकः प्रसिद्धः । तान्त्रिकस्तु मत्कृते सामान्यविधौ
द्रष्टव्यः । तर्पणमार्जनयोर्विधिर्महोदधौ—

एवं होमं समाप्याथ तर्पयेद्देवतां जलैः ।

आवाह्य तद्दशांशेन तर्पणादभिषेचनम् ॥

तर्पयामि नमश्चेति द्वितीयान्तेष्टपूर्वकम् ।

मूलान्ते तु पदे देयं सिञ्चामीत्यभिषेचनम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे चण्डिकां तर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं
क्लीं चामुण्डायै विच्चे चण्डिकामभिषिञ्चामीति । यद्वा ॐ ऐं ह्रीं विच्चे
नमश्चण्डिकामभिषिञ्चामीत्यभिषेके विशेष उक्तः पुरश्चरणचन्द्रिकायां
स्वमूर्धन्यभिषेक इत्यपि तत्रैव । अन्यत्र तु देवतायाः शिरसि वाऽभिषेक
इत्युक्तम् ।

इति शाण्डिल्यकुलसंभवमाटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्र्यम्बकवि-
रचित आचारेन्दौ नैमित्तिकजपप्रकरणम् ।

अथ पुराणश्रवणम् । चतुर्वर्गचिन्तामणौ—

सर्वपापविनिर्मुक्तिकरणे यस्य मानसम् ।
वर्तते विधिवत्तेन पुराणे श्रूयते ध्रुवम् ॥
प्रातःकाले समुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।
प्रातःस्नानं विधायैव जुहुयाज्जातवेदसम् ॥
कृताह्निकं समाहूय वक्तारं शीलकोविदम् ।
संभाव्याऽऽसनदानेन नमस्कुर्यात्समञ्जसा ॥

तत्र नमस्कारमन्त्रः—नमस्ते भगवन्व्यास वेदशास्त्रार्थकोविद् ।

ब्रह्मविष्णुमहेशानां मूर्ते सत्यवतीसुत ॥ इति ।

श्रीमद्भागवतेऽपि—त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्रयः ।

सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ इति ।

अनेन प्रातर्होमोत्तरं पुराणं श्रोतव्यमिति लभ्यते । दक्षस्तु कालान्तरमाह—

इतिहासपुराणाद्यैः पष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥ इति ।

सर्वपुराणेषु श्रीमद्भागवतमवश्यं नित्यं श्रोतव्यम् । तदुक्तं पद्मपुराणेऽम्बरीषं प्रति गौतमेन—

अम्बरीष लुक्प्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।

पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ॥ इति ।

अथ प्रयोगः । आचम्य प्राणानायस्य देशकालौ संकीर्त्य सकलपातकक्षयपूर्वकमोक्षसिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतश्रवणं करिष्ये । ॐ सरस्वत्यै नम इति गन्धादिभिः पुस्तकं संपूज्य ॐ व्यासस्वरूपिणे वाचकाय नम इति वाचकं गन्धादिभिः संपूज्य नमस्ते भगवन्निति श्लोकेन नमस्कृत्य तन्मुखदेकाग्रमनाः पुराणं शृणुयात् । इत्याचारेन्दौ पुराणश्रवणविधिः ।

अथ नित्यदानविधिरभिधीयते । याज्ञवल्क्यः—

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।

याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः ॥

स्मृतिरत्नावलयाम्—दातव्यं प्रत्यहं पात्रे स्वस्थः शक्त्यनुसारतः ।

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संग्रहात् ॥

आयासतः प्रलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः ।

गतिरेकैव वित्तस्य दानमण्वपि यत्नतः ॥

विद्वराहसमा नार्यो बह्वयः सन्ति बहुप्रजाः ।
 सैकैक(व)विरला काचिद्या दातृबुधवीरसूः ॥
 ग्रासादर्थतरो ग्रासो ह्यर्थिभ्यः किं न दीयते ।
 इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥
 अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य च संचयम् ।
 अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥

महाभारते भीष्मो युधिष्ठिरं प्रत्याह—

एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते ।

दस्युभिर्मुपितस्येव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम् ॥

तस्माद्विभवानुसारतः पूगीफलादिकमपि प्रत्यहं देयमिति तात्पर्यार्थः ।
 अत्र प्रत्यहशब्दश्रवणादहनि यदा कदा वा दानमिति केचित् । भट्टदि-
 नकरस्तु “उपो ये ते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः” इति मन्त्रलि-
 ङ्गदर्शनाद्धोमात्पूर्वं नित्यदानमाह । इदं च नित्यं प्रत्यहशब्दश्रवणात् ।
 इत्याचारेन्दौ नित्यदानविधिः ।

अथ प्रातर्नित्यं ससुवर्णाज्यदानम् । मदनरत्ने विष्णुपुराणे—

स्वमात्मानं घृते पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवनम् ।

भविष्ये—कांस्यपात्रस्थिताज्ये च आत्मरूपं निरीक्ष्य च ।

ससुवर्णं द्विजो दद्यात्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

हेमाद्रौ—आयुष्यमथ वर्चस्यं सौभाग्यं शत्रुतापनम् ।

दुष्टप्रणाशनं धन्यं घृतावेक्षणमुच्यते ॥

प्रयोगचिन्तामणौ—दद्यात्पूर्वामुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः ।

आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ॥

नामगोत्रे समुच्चार्य संप्रदानस्य चाऽऽत्मनः ।

संप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्रयम् ॥

अथ प्रयोगः । आचमनादिदेशकालकीर्तनान्ते भूमैतच्छरीरावच्छि-
 न्नसमस्तपापक्षयसर्वग्रहपीडाशान्तिशरीरोत्थार्तिनाशमनःप्रसादायुरारो-
 ग्यादिसर्वसौख्यकामोऽहं ससुवर्णकांस्यपात्रस्थाज्यदानं करिष्ये । स्वयं
 प्राङ्मुख उदङ्मुखं द्विजं संपूज्य रूपं रूपमिति मन्त्रेण स्वप्तिरूपमा-
 ज्येऽवलोक्य

आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं शुभम् ।
 आज्येन देवास्तृप्यन्ति आज्ये देवाः प्रतिष्ठिताः ॥
 या लक्ष्मीर्यच्च मे दौस्थ्यं सर्वाङ्गे समुपस्थितम् ।
 तत्सर्वं नाशयाऽऽज्य त्वं श्रियमायुश्च वर्धय ॥

इत्युच्चार्य संकल्पोक्तफलकाम इदं सुवर्णकांस्यपात्रस्थाज्यं विष्णुदैव-
 त्यममुकगोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यमहं संप्रदद इति जलपूर्वकं द्विजहस्ते
 दद्यात् । दानसाङ्गतार्थं यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् । अनेन कांस्यपात्र-
 दानेनापि नित्यदानसिद्धिः । यथा काम्याग्निहोत्रेण नित्याग्निहोत्रस्येति ।
 स्वमात्मानं घृते पश्येदिति विष्णुपुराणवचने केवलावलोकनस्यैव विहि-
 तत्वादशक्तावलोकनमात्रं न दानम् । इति ससुवर्णकांस्यपात्रस्था-
 ज्यदानम् ।

अथात्र प्रसङ्गाद्गोदानसमान्युच्यन्ते । तत्र याज्ञवल्क्यः—

श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम् ।
 पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदासमम् ॥

श्रान्तस्याऽऽसनशयनदानेन श्रमापनयनम् । रोगिणां परिचर्या यथा-
 शक्त्यौषधदानेन । सुरार्चनं प्रसिद्धम् । पादशौचं द्विजानां समानाम-
 धिकानां वा । तेषामेवोच्छिष्टमार्जनम् । एतानि गोदानसमानीत्यर्थः ।
 तथा—

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमालयानुलेपनम् ।
 यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्त्वाऽत्यन्तं सुखी भवेत् ॥

अभयं भीतव्राणम् । मालयं मल्लिकादि । अनुलेपनं कुङ्कुमचन्द-
 नादि । वृक्षमुपजीव्यमात्रादिकम् । प्रियं यद्यस्य प्रियं धर्मादिकम् । शेषं
 प्रसिद्धम् । न च हिरण्यादिवज्रस्ते दातुमशक्यस्य धर्मस्य दानासंभवः ।
 भूमिदानादावपि समानत्वात् ।

देवतानां गुरुणां च मातापित्रोस्तथैव च ।
 पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं नोदितं क्वचित् ॥

इति स्मृत्यन्तरेऽपि धर्मदानश्रवणाच्चेति ।

अथ देवपूजा । तत्कालः स्मृत्यन्तरे—

प्रातर्होमं च कृत्वैव कृत्वा वा ब्रह्मयज्ञकम् ।
 यद्वा माध्याह्निकं कृत्वा पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ इति ।

मात्स्ये तु—प्रातर्मध्यंदिने सायं देवपूजां समाचरेत् ।

अशक्तौ विस्तरेणैव प्रातः संपूज्य केशवम् ॥

मध्याह्ने चैवं सायं च पुष्पाञ्जलिमपि क्षिपेत् ।

इत्युक्तम् । एकपाकवतां पितृपुत्रभ्रातृणामपि पृथग्देवतार्चनमा-
हाऽऽचार्यः—

पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजन्मनाम् ।

अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत्तथा ॥

निर्णयसिन्धौ बृहस्पतिस्तु—

एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् ।

एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्बृहद्देव गृहे ॥

इत्याह । देवसंख्याविशेषनिषेध आचारप्रकाशे—

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं गणेशत्रयमेव च ।

शक्तित्रयं तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं गृहे ॥

द्वौ शङ्खौ नार्चयेच्चैव शालग्रामशिलाद्वयम् ।

द्वे चक्रे द्वारकायास्तु तथा सूर्यद्वयं बुधः ॥

एतेषां पूजने नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद्बृही । इति ।

अन्यत्र तु—चक्राङ्कमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत् ॥

इत्युक्तं तेन विकल्पः । वाराहे—

गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च नार्चाः पूज्या वसुंधरे ॥ इति ।

निर्णयसिन्धौ—शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि ।

विषमा नैव पूज्यास्तु विषमेष्वेक एव हि ॥

शालग्रामशिला भग्ना पूजनीया सचक्रका ।

खण्डिता स्फुटिता वाऽपि शालग्रामशिला शुभा ॥

चमत्कारचिन्तामणौ—

नार्च्या गृहेऽस्मजा मूर्तिश्चतुरङ्गुलतोऽधिका ।

न वितस्त्यधिका धातुसंभवा श्रेय इच्छता ॥

पञ्चायतनपूजापक्षे तत्स्थापनप्रकारे बोधदेव आह—

शंभौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शंकरे-

भास्थेनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिका स्थापिताः ।

देव्यां विष्णुशिवैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेश्वरे-

नार्याः शंकरभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु ते हानिदाः ॥

इनः सूर्यः । अजो विष्णुः । आर्या दुर्गा । शंकरभाग ईशानदिक् ।
तामारभ्योक्तरीत्या स्थापिता अतिसुखदा नान्यथेत्यर्थः । अत्र दिक्स्वरू-
पमुक्तं प्रयोगपारिजाते मन्त्रशास्त्रे—

देवस्य मुखमारस्य दिशं प्राचीं प्रकल्पयेत् ।

तदादिपरिवाराणामङ्गाद्यावरणस्थितिः ॥

विष्णुयामलेऽपि—

पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीं प्रोक्ता विचक्षणैः ।

प्राच्येव प्राचीं सोद्विष्टा मुक्त्वा वै देवपूजनम् ॥ इति ।

आचारमयूखे तु पूज्यपूजकान्तः प्राच्यागमोक्तपूजायामेव । तत्परि-
भाषायामुक्तत्वात् । वैदिकपूजायां तु—

यत्रैव भानुस्तु वियत्युदेति प्राचीं तु तां वेदविदो वदन्ति ।

इति गौतमोक्तप्रसिद्धप्राच्येव ग्राह्येत्युक्तम् । बहुशिष्टाचारानुसारादि-
दमेव युक्तम् । पूजाक्रमे तु विवदन्ते । तत्र तावत्

रविर्विनायकश्चण्डी ईशो विष्णुस्तु पञ्चमः ।

अनुक्रमेण पूज्यन्ते व्युत्क्रमेण महद्भयम् ॥

इतिपाद्मोक्तपाठक्रमानुसारेण पूजा कार्येति केचिदाहुः । राघवभ-
ट्टास्तु—

मुख्ये पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा गणेशाद्यर्चनं भवेत् ।

गणेश एव मुख्यश्चेत्तत्र सूर्यक्रमान्द्रवेत् ॥

इति वचनाद्गणेशमारभ्यैव सर्वत्राङ्गपूजा । गणेशस्य मुख्यत्वे तु
सूर्यमारभ्येति मन्यन्ते । अत्र पुष्पाञ्जलिशब्देन तदन्ता पूजा लक्ष्यते
पुष्पाञ्जल्यन्तरं वा विधीयत इति । वस्तुतस्तु अयं पूजाक्रमस्तान्त्रिक-
पूजायामेव ज्ञेयः । तत्रैवोक्तत्वात् । वैदिकपूजायां तु स्थापनक्रम एव ।
अत एव वाजपेययाजिभिर्विष्णुशिवगणेशसूर्यदुर्गाभ्यो नम इति श्लिष्ट-
मन्त्र उक्तो विष्णुपञ्चायतने ।

अथोपचाराः । ते चाष्टोत्तरशतं चतुःषष्टिरष्टादश षोडश दश पञ्चेति
पङ्क्तिविधाः । तत्र चतुःषष्टिरष्टोत्तरशतं च प्रायेण देवीविषय एवोपल-
भ्यन्ते ते च ग्रन्थान्तराज्ज्ञेयाः । षोडशसंख्या तु संख्येयमेदान्नानाविधा

दृश्यते । तत्राऽऽश्वलायनैर्वक्ष्यमाणपरिशिष्टोक्ता एव षोडशोपचारा
ग्राह्याः । दशोपचारास्तु ज्ञानमालायाम्—

अर्घ्यः पाद्यमाचमनं मधुपर्कासनानि च ।

गन्धादिपञ्चकं चेति उपचारा दशोदिताः ॥

पञ्चोपचारा अपि तत्रैव—

गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं पञ्चमं स्मृतम् ।

सर्वोपचारासंभवे गन्धपुष्पमात्रेणैव पूजा कार्येति तिथितत्त्वे स्थितम् ।
सूर्योदयात्पूर्वं घण्टादिवाद्यैर्दिवं प्रबोधयेत् । तदुक्तं पाद्मे—

प्रबोधे मज्जने धूपे दीपनैवेद्ययोस्तथा ।

नीराजने च कुर्वीत घण्टावाद्यं हि पूजकः ॥

तथा च द्योते—विना तूर्यादिघोषेण द्वारस्योद्घाटनं मम ।

महापराधं जानीयाद्वात्रिंशदिति मे प्रिये ॥ इति ।

तत्रैव—वैनतेयाङ्किता घण्टा सुदर्शनयुताऽपि वा ।

अत्र वैनतेयपदं तत्तद्वाहनायुधोपलक्षणम् । तेन शिवादेर्नन्दित्रिशू-
लादियुता बोध्या । निर्माल्यापसरणं सूर्योदयात्पूर्वमुक्तं स्मृत्यन्तरे—

देवा यत्र सनिर्माल्यास्तरणेरुदयात्परम् ।

द्वादशग्रामसंभूतं पातकं तस्य मस्तके ॥

स्कान्दे—मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् ।

अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥

शङ्खलक्षणमुक्तं क्रियासारे—

प्रस्थाम्बुप्रमितः शङ्खः श्रेष्ठस्तत्र्यंशसर्वकः ।

मध्यः स्यादर्धप्रमितः कनिष्ठः क्रमशो भवेत् ॥

सुश्वेतः प्रांशुशिखरः स्निग्धो दीर्घाम्बुपट्टतिः ।

शङ्खः स्यादर्चने योग्यो योऽसावलिकचक्षुषः ॥

अलिकचक्षुरयम्बकः । तथा च तत्रैव—

ताम्रस्फटिकशङ्खेषु सुवर्णकलधौतयोः ।

न विद्यते भिन्नदोषो द्रव्येष्वन्येषु विद्यते ॥

कलधौतं रजतम् ।

शङ्खः शुद्धो भवेत्तक्रतुपाभ्यां धर्पणेन च । इति ।

अथोपकरणलक्षणं पारिजाते—

सपर्याविष्टं ब्रह्मन्हस्तमानोन्नतं शुभम् ।

यद्वा न्यूनसमुत्सेधं यथावित्तानुसारतः ॥

सपर्याविष्टं सिंहासनम् ।

सिंहपादयुतं यद्वा हस्तिपादचतुष्टयम् ।

शार्दूलपादमथ वा हेमरत्नपरिष्कृतम् ॥

चतुरस्रं मध्यमे तु सरसीरुहविस्तृतम् ।

तपनीयमयं यद्वा रजतादिविनिर्मितम् ॥

दारुजं वा मणिच्छन्नं स्वर्णपिष्टैर्विराजितम् ।

लोहजान्दीपिकास्तम्भांश्चतुर्हस्तप्रमाणकान् ॥

त्रिहस्तानेकहस्तान्वा द्विहस्तान्वा यथाबलम् ।

ताम्रजान्नाजतीयान्वाऽयुग्मैस्तैः स्नेहधारकैः ॥

युग्मैर्वा वृत्तविस्तीर्णैर्बह्वस्रैर्वा परिष्कृतान् ।

स्नेहाधारगतैः क्षिप्तः पद्मकोशैरलंकृतान् ॥

कुर्यादध्यादिपात्राणि सौवर्णानीतराणि च ।

राजतान्युभयाभावे शुद्धताम्रमयानि वा ॥

तथा—कार्तस्वरमयं वृत्तं राजतं वाऽथ पावनम् ।

अरतिमानविस्तारं मध्येऽष्टदलसंयुतम् ॥

प्रतिपद्मदलं मध्ये सुपिराणि शतं भवेत् ।

अष्टोत्तरशतं भूयः पर्यन्तदलमध्यतः ॥

खचितं च महारत्नैरेवं धारासहस्रकम् ।

धाराष्टकेन वा युक्तमभिषेकाय कल्पयेत् ॥

व्याकोशपङ्कजाकारं शुद्धमुत्तमलोहजम् ।

आढकापरिमाणाम्भःपूरयोग्यं महाविलम् ॥

हस्तदीर्घजलस्रावि पार्श्वमानोपशोभितम् ।

कल्पयेदपरं स्नानपात्रं मुक्तापरिष्कृतम् ॥

यद्वा शङ्खनिभाकारमग्रतो जलनालकम् ।

धूपपात्रं सरोजामं सुवर्णादिविनिर्मितम् ॥

पादयोरपि तस्य स्यादुत्सेधश्चतुरङ्गुलः ।

अनेकसुपिरं तस्य पिधानं संहतं भवेत् ॥

अथ वा विकसत्पद्मसदृशाकारशोभितम् ।
 दीपपात्रं तथा नालमध्ये कुमुदकुङ्कुमलम् ॥
 वर्त्याधारैः शतेनापि युक्तमष्टाभिरेव च ।
 विंशत्या चाष्टभिश्चैव द्वाभ्यां वा दशभिश्च वा ॥
 अष्टभिर्वा यथाशक्ति कल्पयेच्छिल्पवित्तमः ।

तथा—नैवेद्यपात्रं वक्ष्यामि केशवाय महात्मने ॥
 हैरण्यं राजतं ताम्रं कांस्यं मृन्मयमेव वा ।
 पालाशं पद्मपत्रं वा पात्रं विष्णोरतिप्रियम् ॥

तथा—नीराजनक्रियापात्रयो हेमादिद्रव्यनिर्मिताः ।
 त्रितालायतविस्तीर्णा वृत्तमध्यसरोरुहाः ॥
 नव वा सप्त वा पञ्च तिस्रस्त्वेवाऽऽवृत्तिर्भवेत् ॥

वाराहे—शृणु तत्त्वेन मे देवि प्रियपात्राणि यानि मे ।
 सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यं चैव तु यद्भवेत् ॥
 सर्वेभ्योऽभ्यधिकं ताम्रं तदेव मम रोचते ।

इत्युपकरणलक्षणम् । अथाऽऽवाहनाद्युपचारलक्षणम् । तत्राऽऽवाहनं
 महोदधौ—

मूलमुच्चार्य हृदयात्सुषुम्नावर्त्मना महः ।
 द्वारेण ब्रह्मरन्ध्रस्य नासारन्ध्रविनिर्गतम् ॥
 पुष्पाञ्जलिं मातृकाब्जे योजयित्वा विनिक्षिपेत् ।
 मूर्तौ पुष्पाञ्जलिं चैतदावाहनमुदीरितम् ॥

अथाऽऽसनम् । तत्तावत्सप्तविधम्—पौष्पं दारवं वास्त्रं चार्मणं कौशं
 तैजसं शैलं चेति ।

पौष्पं पुष्पौघरचितं कुशसूत्रेण वेष्टितम् ।
 अहिफेनादिकुसुमैर्निर्गन्धै रचितं न हि ॥
 यज्ञदारुसमुद्भूतमासनं मसृणं शुभम् ।
 सुदर्शं नाति विस्तीर्णं दारवं तत्प्रचक्षते ॥

वास्त्रं चार्मणं च प्रसिद्धम् ।

यदासनं कुशमयं तत्तु कौशमिति स्मृतम् ।
 आयसं सीसकं कांस्यं त्यक्त्वा ताम्रादितैजसम् ॥

शैलं रत्नमयं चारुशिलामयमपि स्मृतम् ।
 पौष्पेषु तत्तद्देवस्य प्रीतिदैः कुसुमैर्वरम् ॥
 दारवे चान्दनं श्रेष्ठं वास्त्रे काम्बलमुत्तमम् ।
 चार्मणे शाम्बरं शस्तं तैजसेषु हिरण्मयम् ॥
 शैले रत्नभवं श्रेष्ठमन्तर्वेदिभवं कुशे ।

यान्येवाऽऽसनानि देवताया विहितानि तान्येव साधकस्यापि पौष्प-
 मिन्नानि द्विरदन्तसहितानि । परिमाणे तु विशेषः—

चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासनं मतम् ।
 षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्राये चतुरङ्गुलम् ॥
 षडङ्गुलं वा कुर्यात्तु नोच्छ्रितं चात आचरेत् ।
 वास्त्रं त्रिहस्ताब्जो दीर्घं सार्धहस्ताब्जं विस्तृतम् ॥
 न त्र्यङ्गुलात्तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि संश्रयेत् ।
 यथेष्टं चार्मणं कुर्यात्पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम् ॥
 षडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रितं तु कदाचन ।
 बहुदीर्घं बहुच्छ्रायं तथैव बहुविस्तृतम् ॥
 दारुभूमिसमं प्रोक्तमन्यद्वास्तरणं स्मृतम् ।

अत्र भूमिसममित्यनेन तत्र जपपूजादिनिषेध उक्तस्तदुपर्यासनान्तरा-
 वश्यकता च सिध्यति । स्वस्योपवेशने यदि स्थलाभावस्तदोत्थायैव पूजा
 कार्या ।

यद्यासितुं न संस्थानं विद्यते तोयमध्यतः ।

अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजां समाचरेत् ॥

इत्यासनम् । अथ पाद्यम् । आहामरसिंहः—पादार्थमुदकं पाद्यं(?)
 पाद्यं पादार्थवारिणि । विष्णुपादोदकधारणपानादिविधिष्वपि पादोदक-
 शब्देन पाद्यस्यैव ग्रहणं न स्नानीयादिजलानामिति भक्तिमीमांसातन्त्रे
 शाण्डिल्यमुनिना पादोदकं तु पाद्यमव्याप्तेरित्यधिकरणे निर्णीतम् ।
 पाद्यद्रव्याणि रत्नकोशे—

पद्मं च विष्णुपर्णी च दूर्वा श्यामाकमेव च ।

चत्वारि पाद्यद्रव्याणि लब्धं वाऽपि समाचरेत् ॥

केवलं तोयमेवैतदिति तु क्वचित् । तत्तैजसपात्रेण सर्वेभ्यो देयं सूर्ये-
 तरेभ्यः शङ्केन वेति तृचभास्करे । महोदधौ तु—

हेमरूप्योदुम्बराब्जरीतिदारुसमुद्भवम् ।

पालाशं पद्मपत्रं वा स्मृतं पाद्यादिभाजनम् ॥

अशक्तावर्घ्यपात्रेण पाद्यादीनि निवेदयेत् ।

पाद्यादीनि देवशरीरे देयानि तदुक्तं तृचभास्करे—

प्रतिमादिषु यद्योग्यं गात्रे दातुं च तत्तनौ ।

दद्यादयोग्यं पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ॥

तत्रापि पाद्यं पादोपर्येव दद्यात् ।

मूलश्लोकनमोमन्त्रैः पाद्यं पादाम्बुजेऽर्पयेत् ।

इति महोदधावुक्तत्वात् । इति पाद्यम् । अथार्घ्यम् । महोदधौ

अर्घ्यपात्रे क्षिपेद्दूर्वातिलदर्भाग्रसर्षपान् ।

यवपुष्पाक्षतान्गन्धं मूर्ध्नि तेनार्घ्यमाचरेत् ॥

यद्वा रत्नकोशे—कुशाक्षततिलव्रीहियवमापप्रियङ्गवः ।

सिद्धार्थकसमायुक्तमर्घ्यस्य तु विशेषतः ॥

महोदधौ—विहाय शंकरं सूर्यमर्घ्यं शङ्खः प्रशस्यते ।

इत्यर्घ्यम् । अथाऽऽचमनीयम् । तृचभास्करे—

उदकं क्षीयते यत्तु प्रसन्नं फेनवर्जितम् ।

आचमनाय देवेश्यस्तदाचमनमुच्यते ॥

जातीलवङ्गकङ्कलेर्मतमाचमनीयकम् ।

केवलं तोयमेवैतद्दद्याद्वाऽन्यैरभिहितम् ॥

जाती जातीफलम् ।

तथाऽऽचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातीफलं मुने ।

इति वचनान्तरात् । यद्वा रत्नकोशे—

एलालवङ्गगोक्षीरं कंकोलं च चतुर्थकम् ।

आचम्यमिति विज्ञेयं यथालाभं प्रगृह्य च ॥

इदं मुखे देयम् । दद्यादाचमनं वक्त्रे इति महोदधावुक्तेः । तथा च तत्रैव—

पाद्यादिद्रव्याभावे तु तत्स्मरन्नक्षतान्क्षिपेत् ।

इत्याचमनीयम् । अथ मधुपर्कः ।

दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सितेत्येभिस्तु पञ्चाभिः ।

प्रोच्यते मधुपर्कोऽयं सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥

जलं तु सर्वतः स्वल्पं सिता दधि घृतं समम् ।

सर्वेषामधिकं क्षौद्रं मधुपर्कं प्रयोजयेत् ॥

दधि क्षौद्रमिति द्वाभ्यां मधुपर्कं परे जगुः ।

यद्वा रत्नकोशे—इक्षुर्मधु घृतं चैव पयो दधि सहैव तु ।

प्रस्थप्रमाणं वा ग्राह्यं मधुपर्कमिहोच्यते ॥

इह कांस्यपात्रं प्रशस्तम् । अयं च मुखे देयः ।

पात्रे तु मधुपर्कस्य दध्याज्यं च मधु क्षिपेत् ।

मूलश्लोकसुधामन्त्रैर्दद्यात्तं वदने प्रभोः ॥

इति महोदधावुक्तेः । मधुपर्कोत्तरमङ्गत्वेनाऽऽचमनीयम् । इति मधु-
पर्कः । अथ पञ्चाशृतस्नानानि । तत्र दुग्धदध्याज्यशर्करामधूनि दुग्ध-
दध्याज्यमधुशर्करा इति वा क्रम इति महार्णवे । पञ्च द्रव्याणि समा-
न्येवेत्यपि तत्रैवोक्तम् । पञ्चद्रव्यालाभे संग्रहे—

मधुदध्नामलाभे तु घृतस्य च नराधिप ।

क्षीरस्नानेन चैकेन सर्वं संपूर्णतां व्रजेत् ॥

अभ्यङ्गमाह महोदधिः—गन्धतैलं ततो दद्यादिति । तत उद्धर्तनं
रत्नकोशे—

शालिपिष्टं च गन्धांश्च पलाशस्य तु भस्मकम् ।

शिलाचूर्णं तु संप्रोक्तमथोद्धर्तनमाहरेत् ॥ इति ।

नरसिंहपुराणेऽपि—यवगोधूमयोश्चूर्णैरुद्धत्योष्णेन वारिणा ।

प्रक्षाल्य देवदेवेशं वारुणं लोकमाप्नुयात् ।

पादपीठं तु यो भक्त्या धिल्वपत्रैर्निघर्षयेत् ॥

उष्णाम्बुना च प्रक्षाल्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

महोदधौ—हरिद्राद्यैस्तमुद्धृत्य स्नापयेदुभयं पठन् ।

इत्युद्धर्तनम् । अथ स्नानम् । मन्त्रैस्तन्त्रप्रकाशे—

अक्षता गन्धपुष्पाणि स्नानपात्रे तथा त्रयम् ।

विष्णुधर्म—पुष्पोदकेन गोविन्दं तथा गन्धोदकेन च ।

स्नापयित्वा नरो भक्त्या युगं स्वर्गाधिपो भवेत् ॥

जलेन वस्त्रपूतेन यः स्नापयति केशवम् ।

पर्वपापविनिर्मुक्तः शताब्दं मोदते दिवि ॥

स्नानोत्तरं वा पञ्चामृतस्नानादीति केचित् । प्रयोगपारिजाते व्यासः—
प्रतिमापट्टयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् ।

कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम् ॥

लेप्यादिमूर्तौ स्नाने विशेषस्तुचभास्करो—

सद्यः स्निग्धे मृन्मये वा सार्पिःसिन्दूरजे तथा ।

श्रीचन्दननिघर्षे वा लेपने प्रतिमातनौ ॥

अन्तिकस्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेऽथ वा ।

कमलाकराह्निके नृसिंहपरिचर्यायाम्

जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्सुकृतं तु समर्जितम् ।

नश्यति द्वादशीदिने हरेर्निर्माल्यलङ्घनात् ॥

स्नानं यो हरये दद्याद्वादश्यां वैष्णवो दिवा ।

जन्मप्रभृति यत्पुण्यं बाष्कलाय तु गच्छति ॥

इति दिवास्नाननिषेधाद्वात्रौ सायंसंध्योपासनानन्तरं स्नानादिषोड-
शोपचारैः पूजा कार्या । दिवा तु पञ्चोपचारैरेवेति । अत्र वैष्णवग्रहणा-
द्विष्णुदीक्षावतामेवायं नियम इति केचित् । इति स्नानम् । अथाभि-
षेको महोदधौ—

ततः सहस्रं शङ्खेन शतं वा शक्तितोऽपि वा ।

गन्धयुक्तोदकैरीशमभिषिञ्चेन्मनुं जपन् ॥

तन्त्रान्तरे—महाभिषेकं सर्वत्र शङ्खेनैव प्रकल्पयेत् ।

सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना ॥

आदित्यपुराणे—उद्धरिण्या जलं ग्राह्यं नाप्सु शङ्खं निमज्जयेत् ।

शङ्खस्य पृष्ठसंलग्नं पयः पापकरं ध्रुवम् ।

शिवार्चनचन्द्रिकायाम्—शिवं गवयशङ्खेण केशवं शङ्खवारिणा ।

विघ्नाकौ ताम्रपात्रेण स्वर्णेन जगद्भिकाम् ॥

अभिषेकपात्रलक्षणमुक्तं प्राक् । स्कान्दे—

कपिलाक्षीरमादाय शङ्खे कृत्वा जनार्दनम् ।

यज्ञायुतसहस्रस्य प्लावयित्वा लभेत्फलम् ॥

तत्र ताम्रमूर्तौ गव्याभिषेको न निषिद्धः । तदुक्तं पट्टत्रिंशन्मते—

स्नानतर्पणदानेषु ताम्रे गव्यं न दुष्यति ।

होमकार्ये तथा दोहे पाके च परिवेषणे ॥

इत्यलंकाराः । अथ गन्धाः । तत्र सर्वदेवसाधारणगन्धाष्टकं
रत्नकोशे—

मांसीमलयजं चैव कुङ्कुमोशीरमेव च ।
ह्रीविरं चैव कोष्ठं तु कर्पूरं चांगरं तथा ॥
गन्धद्रव्याणि चाष्टौ तु गृहीत्वा च विशेषतः । इति ।

देवताभेदेन गन्धाष्टकानि शारदायाम्—

चन्दनांगरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचनाः ।
जटामांसीमुरयुतं शक्तेर्गन्धाष्टकं मतम् ॥
चन्दनांगरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम् ।
कुशीतकुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं मतम् ॥
चन्दनांगरुह्रीविरकुङ्कुमं कुष्ठसेव्यकौ ।
जटामांसीमुरयुतं विष्णोर्गन्धाष्टकं मतम् ॥

तृचभास्करे—सेव्यकं कुङ्कुमं कुष्ठं ह्रीविरोगुरुचन्दनम् ।
जटामांसी मुरश्चेति सौरं गन्धाष्टकं मतम् ॥

मदनरत्ने गारुडे—

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य तु ।
कुङ्कुमस्य त्रयश्चैकं शशिनः स्याच्चतुःसमः ॥

शशी कर्पूरः ।

कर्पूरं चन्दनं दर्पः कुङ्कुमं च समांशकम् ।
सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम् ॥

मन्त्रराजानुष्ठुविधाने—

शान्तिके पौष्टिके नित्ये गन्धः स्याद्यक्षकर्दमः ।
[*त्रिपलं चन्दनं प्रोक्तं कुङ्कुमं तत्समं स्मृतम् ॥
तदर्धं कर्पूरं ज्ञेयं घनसारश्च तत्समः ।
पलैर्नैकेन कस्तूरीमेलनाद्यक्षकर्दमः ॥]
यथालाभानिमान्विद्वान्कलयेत्संख्ययाऽनया ।
एवं कर्तुमशक्तश्चेदेकैकेनापि पूजयेत् ॥

* अनुचिह्नान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति ।

चन्द्रिकायां पात्रे—

गन्धेभ्यश्चन्दनं श्रेष्ठं चन्दनादगरुर्वरः ।

कृष्णागरुस्ततः श्रेष्ठः कुङ्कुमं तु ततो वरम् ॥ इति ।

आचारसारे गारुडे—

यो ददाति हरेर्नित्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम् ।

युगानि वसति स्वर्गे अनन्तानि नरोत्तमः ॥

सर्वेषामपि देवानां तुलसीकाष्ठचन्दनम् ।

पितॄणां च विशेषेण सदाऽभीष्टं हरेर्यथा ॥

तुलसीदललघ्नेन चन्दनेन जनार्दनम् ।

विलेपयति यो नित्यं लभते चिन्तितं फलम् ॥

गन्धपात्रमुक्तं स्कन्दपुराणे—

विलेपयति देवेशं शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम् ।

परं गत्वा परां प्रीतिं करोति शतवार्षिकीम् ॥

शङ्खे शङ्खपात्रे ।

शङ्खपात्रस्थितं गन्धं मन्त्रैर्दद्यात्कनिष्ठया ।

इति पदार्थादर्शोक्तेः । ताम्रपात्रनिषेधः संग्रहे—

हस्ते धृतानि पुष्पाणि ताम्रपात्रे च चन्दनम् ।

गङ्गोदकं चर्मपात्रे निषिद्धं सर्वकर्मसु ॥

अत्र गन्धान्समर्पयामीति बहुवचनान्तः प्रयोगः कर्तव्यः ।

गन्धो गन्धक आमोदे लेशे संबन्धगर्वयोः ।

स एव द्रव्यवचनः पुंसि भूमि च गद्यते । इतिविश्वकोशात् ।

वाराहपुराणस्थचातुर्मास्यमाहात्म्ये—

द्रवीभूतं घृतं चैव द्रवीभूतं च चन्दनम् ।

नार्षयेन्मम तुष्टयर्थं घनीभूतं तदर्पयेत् ॥

इति गन्धाः । अथ पुष्पाणि । तत्र विष्णावाचारप्रकाशे स्कान्दे—

वासन्ती मल्लिकापुष्पं तथा वै वार्षिकी तु या ।

कुसुमं यूथिके द्वे च तथा चैवातिमुक्तकम् ॥

केतकं चम्पकं चैव माद्यं वृत्तकमेव च ।

पुरन्ध्री मञ्जरीपुष्पं चूतपुष्पं तथैव च ॥

पाटलायास्तथा पुष्पं नीलमिन्दीवरं तथा ।
 बन्धुजीवकपुष्पं च कुसुमं कुङ्कुमस्य च ॥
 जातीपुष्पाणि सर्वाणि कुन्दपुष्पं तथैव च ।
 कुमुदे श्वेतरक्ते च श्वेतरक्ते तथाम्बुजे ॥
 एवमादीनि पुष्पाणि दातव्यानि सदा हरेः ।

तथा—मञ्जरी सहकारस्य केशवोपरि नारद ।

यच्छन्ति ये महामागा गोकोटिफलभागिनः ॥

वामनपुराणे—जातीशताह्वासुमनाः कुन्दं चाम्बुपटं तथा ।

बाणं च चम्पकाशोकं करवीरं च यूथिका ॥

पारिभद्रं पाटला च वकुलं गिरिशालिनी ॥

तिलकं जासुवनजं पीतकं तगरं तथा ।

एतानि सुप्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने ॥

सुरभीणि तथाऽन्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ।

अत्र विहितप्रतिपिद्धत्वात्केतक्या विकल्प एवेति केचित् । अन्ये तु
 निषेधे केतकपदं धत्तूरपरं वनकेतरूपरं वेत्याहुः । शताह्वाऽशोकः ।
 अश्वुपटः कर्णिकारः । जासुवनजं जपा । गिरिशालिनी श्वेतकुटजा ।
 यूथिका जुयी । विष्णुरहस्ये—

मल्लिकां तु दिवा रात्रौ नक्तं संपाकयूथिके ।

नद्यावत् चार्धरात्रे मालतीं प्रातरेव च ॥

इतराणि च पुष्पाणि दिवा भगवतेऽर्पयेत् ।

मल्लिका वेलमोगरा । जटमल्लग्रन्थे—

येषां च सन्ति पुष्पाणि प्रशस्तान्यर्चने हरेः ।

पल्लवा अपि तेषां स्युः शस्ता अर्चाविधौ हरेः ॥

अथ पत्राणि—अपामार्गस्य प्रथमं भृङ्गराजमतः परम् ।

तस्माच्च खादिरं श्रेष्ठं शमीपत्रमतः परम् ॥

दूर्वापत्रं ततः श्रेष्ठं ततोऽपि कुशपत्रकम् ।

तस्माद्दमनकं श्रेष्ठं ततो बिल्वस्य पत्रकम् ॥

बिल्वपत्रादपि हरेस्तुलसीपत्रमुत्तमम् ।

एतेषां तु यथालाभपत्रैश्चैवार्चयेद्भरिम् ॥

स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।

तथा—विल्वपत्रैरखण्डैश्च सकृद्देवं प्रपूज्य वै ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ममलोके स तिष्ठति ॥

विष्णुरहस्ये च—सकृदभ्यर्च्य गोविन्दं विल्वपत्रेण मानवः ।

मुक्तिभागी निरातङ्कः कृष्णस्यानुचरो भवेत् ॥

पादौ—तावद्गर्जन्ति पुष्पाणि तथा मुक्तामयानि च ।

यावन्न प्राप्यते पुण्या तुलसी विष्णुबलभा ॥

स्कान्दे—मणिकाञ्चनपुष्पाणि तथा मुक्तामयानि च ।

तुलसीदलपत्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

पादौ—तुलसीकाननं वैश्य गृहे यस्य तु तिष्ठति ।

तद्गृहं तीर्थभूतं हि न यान्ति यमकिंकराः ॥

गारुडे—तुलसीं प्राप्य यो नित्यं न करोति ममार्चनम् ।

तस्याहं प्रतिगृह्णाभि न पूजां शतवार्षिकीम् ॥

तथा—तुलसीदलजा(जां) मालामेकादश्यां विशेषतः ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥

तन्मूलमृत्तिकां चाङ्गे कृत्वा स्नाति दिने दिने ।

दशाश्वमेधावभृथस्नानजं लभते फलम् ॥

भविष्यत्पुराणे—अवकः कर्णिकारस्तु किंकिरातो हरेस्तथा ।

किंकिरातः पीताग्रकः । विहितप्रतिषिद्धमित्यर्थः ।

अथ निषिद्धानि । ज्ञानमालायाम्—

कलिकाभिस्तथा नेज्यं विना चम्पकपङ्कजैः ।

शुक्लैर्न पूजयेद्विष्णुं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—न गृहे करवीरोत्थैः कुसुमैरर्चयेद्धरिम् ।

पतितैर्मुकुलैर्मलानैः श्वासैर्वा जन्तुदूषितैः ॥

आघ्रातैरङ्गसंस्पृष्टैरुपितैश्चैव नार्चयेत् ।

अत्र गृहे करवीरोत्थैरित्यस्याऽऽरोपितवशाद्गृहजातैरित्यर्थः ।

बन्धूककरवीरे तु न गृहे रोपयेत्कचित् ।

इतिवामनोक्तैकवाक्यत्वादिति । आचारसारे तु यथाश्रुतमेव युक्तमित्युक्तम् । तथा—

अन्यायतनजातानि कण्टकानि तथैव च ।
 रक्तान्यकालजातानि चैत्यवृक्षोद्भवानि च ॥
 श्मशानजातपुष्पाणि नैव देयानि कर्हिचित् ।
 तथा—करानीतं पटानीतमानीतं चार्कपत्रके ॥
 एरण्डपत्रेष्वानीतं तत्पुष्पं सकलं त्यजेत् ।

करो वामः । पटोऽधोवस्त्रम् ।

देवोपरि धृतं यच्च वामहस्ते धृतं च यत् ।
 अधोवस्त्रधृतं यच्च तत्पुष्पं परिवर्जयेत् ॥

इति पञ्चायतनसारात् ।

तथा—नार्कं नोन्मत्तकं किञ्चित्तथैव गिरिकर्णिकाम् ।
 न कण्टकारिकापुष्पमच्युताय निवेदयेत् ॥
 कुटजं शाल्मलीपुष्पं शिरीषं च जनार्दने ।
 समर्पितं भयं शोकं निःस्वतां च प्रयच्छति ॥

तथा—क्रकचस्य च पुष्पाणि तथा धत्तूरकस्य च ।
 कृष्णं च कुटजं चार्कं न च देयं जनार्दने ॥

क्रकचः करवीरः । महोदधौ—

अक्षतानर्कधत्तूरौ विष्णौ नैवार्पयेत्सुधीः ।

अक्षता नाम यवाः । अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता इति पदार्थादर्श उक्त-
 त्वात् । अयमक्षतानिषेधः शालग्रामशिलायामेव विष्णुपूजने ।

शालग्रामशिलामेव नाक्षतेरर्चयेद्विजः ।

इति चन्द्रिकाधृतवचनेनोपसंहारात् । अयमपि च निषेधः पञ्चायत-
 नातिरिक्त इति हेमाद्रिः । महोदधिख्यायां तु—अक्षतांस्तण्डुलादीं-
 स्तेषां तिलकोपर्यर्पणे न दोष इत्युक्तम् ।

शालग्रामे मणौ यन्त्रे नित्यपूजां समाचरेत् ।

इति महोदध्युक्तत्वाच्छालग्रामे देवतान्तरपूजने नाक्षतनिषेधोऽ-
 वतरति ।

अथ शिवे विहितपुष्पाणि । आचारप्रकाशे—

अर्कपुष्पे तथैकस्मिन्निशवाय विनिवेदिते ।

दश दत्त्वा सुवर्णस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥

अर्कपुष्पसहस्रेभ्यः करवीरं विशिष्यते ।
 करवीरसहस्रेभ्यो बिल्वपत्रं विशिष्यते ॥
 बिल्वपत्रसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते ।
 द्रोणपुष्पसहस्रेभ्य अपामार्गं विशिष्यते ॥
 अपामार्गसहस्रेभ्यः कुशपुष्पं विशिष्यते ।
 कुशपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते ॥

तथा—पद्मपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते ।
 बकपुष्पसहस्रेभ्य एकं धत्तूरकं वरम् ॥

बको बकुलः । तथा—

चम्पकोशीरतगरं तथा वै नागकेसरम् ।
 पुंनागं किंकिरातं च द्रोणपुष्पं तथा शुभम् ॥
 शिशपोदुम्बरश्चैव जपा मल्ली तथैव च ।

मल्ली वेलमोगरा ।

पुष्पाणि यज्ञवृक्षस्य तथा बिल्वं प्रियं शुभे ।
 कुङ्कुमस्य च पुष्पाणि तथा वैकट्कतस्य च ॥
 नीलं च कुमुदं चैव तथा रक्तोत्पलानि च ।
 सुरभीणि च सर्वाणि स्थलजान्यौदकानि च ॥
 गृह्णामि शिरसा देवि यो मे भक्त्या निवेदयेत् ।
 नीलोत्पलसहस्रस्य यो मे मालां प्रयच्छति ॥
 शिवाय विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥
 वसेच्छिवपुरे श्रीमाञ्जिशवतुल्यपराक्रमः ।

सुरभीणि च सर्वाणीति सर्वपदं निषिद्धेतरविषयम् । अन्यथा निषे-
 धानर्थक्यापातात् । अत्र विशेषो लैङ्गे—

मणिमुक्ताप्रवालैस्तु रत्नैरप्यर्चनं कृतम् ।
 न गृह्णामि दिना देवि बिल्वपत्रैर्वरानने ॥

तत्त्वसागरसंहितायाम्—

विष्णोर्यानीह चोक्तानि पुष्पाण्यपि च पत्रिकाः ।
 केतकीपुष्पमेकं तु विना तान्यखिलान्यपि ॥
 शस्तान्येव सुरश्रेष्ठ शंकराराधनेऽपि हि ।

विहितप्रतिपिद्धाधिकारे भविष्यत्पुराणे—

कुन्दं पलाशकुसुमं दूर्वा च शिवपूजने ।
तिलकं मालती बाणस्तुलसी भृङ्गराजकम् ॥
तमालं शिवदुर्गार्थं निपिद्धं विहितं भवेत् ।

बाणः करसला इति प्रसिद्धः ।

अगस्तिरतिमुक्तश्च तिरीटं च हरे हरौ ।

अथ निपिद्धानि । आदित्यपुराणे—

शिवे कुन्दं मदन्तीं च यूथीं बन्धूककेतकम् ।
जपां रक्तां त्रिसंध्ये द्वे सिद्धौ कुटजानि च ॥
मालतीं दुसृणं रक्तहयारिं बर्बरीं त्यजेत् ।

यूथी जुयी । बन्धूकः, दुपारी । त्रिसंध्यं, तिसंगी । रक्तहयारिरारक्त-
करवीरः ।

उग्रगन्धमगन्धं च कृमिकेशादिदृषितम् ।
अशुद्धपात्रे प्राण्यङ्गवासोभिः कुत्सितात्मभिः ॥
आनीतं नार्पयेच्छंभोः प्रमादादपि दोषकृत् ।
कलिकाभिस्तथा नेज्यं विना चम्पकपङ्कजैः ॥ इति ।

अत्र कुन्दनिषेधो माघेतरविषयः । माघे च कुन्दकुसुमैरिति
तत्र विशेषतो विधानादित्याचारसारे । वस्तुतस्तु पूर्वोक्तभविष्यद्वचना-
न्माघातिरिक्ते विहितप्रतिपिद्धः कुन्दो माघे विहित एव । केतकनिषे-
धस्तु रात्रेरन्यत्र ज्ञेयः । आचारप्रकाशे—

चम्पको रीतकः कुन्दो बाणो बर्बरमल्लिका ।
अशोकस्तिलको रोध्रः कुरण्टश्चाटरूपकः ॥

अटरूपकः, अडोलसा । बर्बरमल्लिका बर्बरीति प्रसिद्धा । पूजार्थं
मास्करस्येष्टानीत्यनुपङ्गः ।

अथ निपिद्धानि । तत्रैव—

कृष्णलोन्मत्तकं काञ्ची तथा च गिरिकर्णिका ।
न कण्टकारिकापुष्पं तथाऽन्यद्वन्धवर्जितम् ॥

कृष्णलो गुञ्जा । उन्मत्तकः, धोत्रा । गिरिकर्णिका गोकर्णी । कण्ट-
कारिका, डोर्लि । तथा—

धत्तूरं शिंशपापुष्पं मन्दारश्चापराजिता ।
सूर्यविष्णवोर्न विहितं दमनं शिवसूर्ययोः ॥

अथ देव्यां विहितपुष्पाणि । देवीपुराणे—

शृणु शक्र प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायं समासतः ।
ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्मल्लिकाजातिकुङ्कुमैः ॥
सितरक्तैश्च कुसुमैस्तथा पद्मैश्च पाण्डुरैः ।
किंशुकैस्तगरैश्चैव किंकिरातैः सचम्पकैः ॥
बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैस्तिरीटकैः ।
करवीरार्कपुष्पैश्च शैशिपैश्चापराजितैः ॥
सितै रक्तैस्तथा पीतैः कृष्णैश्चैव चतुर्विधैः ।
धत्तूरकातिमुक्तैश्च बन्धूकागस्तिसंभवैः ॥
मदनैः सिन्धुवारैश्च सुरभीमरुबकैस्तथा ।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य दूर्वाङ्कुरैश्च कोमलैः ॥
मञ्जरीभिः कुशानां च बिल्वपत्रैः सुशोभनैः ।

किंकिरातः पीतपुष्पकारव्यो बठर इति प्रसिद्धः । मन्दारो निम्बः
श्वेतार्को वा । तिरीटको लोध्रः । अतिमुक्तश्चमेली । सिन्धुवारो निर्गुण्डी ।
न दूर्वया यजेद्दुर्गामिति ज्ञानमालोक्तेर्विहितप्रतिषिद्धा दूर्वा । महोदधि-
टीकायां तु शक्तौ दूर्वा निषिद्धा । महालक्ष्म्यास्तु दूर्वा प्रशस्तेत्युक्तम् ।
अर्कमन्दारयोरपि विहितप्रतिषिद्धत्वम् ।

देवीनामर्कमन्दारौ सूर्यस्य तगरं तथा ।

इति पराशरेण निषिद्धेषु परिगणनात् । यद्वाऽर्कमन्दारनिषेधो दुर्गे-
तरदेवीविषयः । दुर्गापूजाधिकारे तयोः पाठात् ।

कदम्बैरर्चयेद्वात्रौ मल्लिकोभयतः शुभा ।
दिवा शेषाणि पुष्पाणि यथालाभेन योजयेत् ॥
मल्लिकामुत्पलं पुष्पं शमीं पुन्नागचम्पकम् ।
अशोकं कर्णिकारं च द्रोणपुष्पं विशेषतः ॥
पारिजाते—यानि पुष्पाणि चोक्तानि शंकरस्यार्चने पुरा ।
तानि गौर्याः प्रशस्तानि त्वपामार्गं विशेषतः ॥
शिवार्चने निषिद्धानि पत्रपुष्पफलानि च ।
तानि देव्याः प्रशस्तानि अनुक्तानि विशेषतः ॥

नित्यं गौर्याः प्रशस्तानि रक्तपुष्पाणि सर्वदा ।
 शुक्रान्यपि च सर्वाणि गन्धवन्ति स्मृतानि वै ॥
 मविष्यत्पुराणे—पाटला च शमीपत्रं दुर्गायास्तु हिताहितम् ।
 जयः काशः श्वेतपद्मः श्वेतमन्दारकं तथा ॥
 दुर्गायाश्चैव विष्णोश्च निषिद्धं विहितं भवेत् ।

जयो जयन्ती । अथ पुष्पावचयः । तत्र हारीतः—
 समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।
 शूद्राहृतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्व्रजत्यधः ॥

अत्र शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैरिति सामानाधिकरण्येन संबन्धः । अन्यथा
 वेतनदानेन क्रयत्वाविशेषादारामादेः स्वयमपि पुष्पाहरणे दोषापत्तेः ।
 कुशेष्वप्येवम् । अतो द्विजेभ्यः कुशादिक्रये न दोषः । स्वयमिति शक्त-
 परम् । तेनैव नियमसिद्धौ शूद्रानीतनिषेधानुपपत्तेः । तेन स्वाशक्तौ
 शिष्यपुत्राद्याहरणेऽप्यदोषः । पारिजाते—

अस्वामिकवनानीतं स्वीकृतं विक्रयेण च ।

पुष्पं तद्देवपूजायां निष्फलं याचितं तु यत् ॥

अस्वामिकवननियमो द्विजेतरपरः ।

द्विजस्तृणैधःपुष्पाणि सर्वतः स्ववदाहरेत् ।

इति याज्ञवल्क्योक्तेः ।

वानस्पत्ये फले मूले दार्ढ्यग्न्यर्थं च गोस्तृणम् ।

देवतार्थं च कुसुममस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥

इति मनूक्तेश्च । एतन्नित्यपूजापरम् ।

पारक्यारामसंजातैः कुसुमैरर्चयेत्सुरान् ।

तेन पापेन लिप्येयं यदेतदनुतं भवेत् ॥

इति नारदीयादिति पञ्चायतनसारः । हारीतः—

स्नानं कृत्वा तु ये केचित्पुष्पं चिन्वन्ति मानवाः ।

देवतास्तन्न गृह्णन्ति भस्मी भवति काष्ठवत् ॥

तन्मध्याह्नस्नानपरम् ।

अस्नात्वा तुलसीं छित्त्वा देवतापितृकर्मणि ।

तत्सर्वं निष्फलं याति पञ्चगव्येन शुध्यति ॥

इति पाद्मोक्तेरिति चन्द्रिकामदनरत्नयोः । अत्र तुलसीपदं पुष्पमा-
 त्रपरम् । शिष्टाचारानुरोधादिति रुद्रधरः । पारिजाते—

प्रक्षाल्य पादौ पाणी च आचम्य च कृताञ्जलिः ।

पादपाभिमुखो भूत्वा प्रणवादिनमोन्तकम् ॥

विसृज्य पुष्पमेकं तु वाचा वरुणमुच्चरेत् ।

व्योमाय च पृथिव्यै च द्वित्रिपुष्पं यथाक्रमम् ॥

पूर्वं पूर्वमुखो भूत्वा पुष्पं संचिनुयाच्छुभम् ।

तुलसीग्रहणमन्त्रः—तुलस्यमृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिया ।

केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥

त्वदङ्गसंभवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम् ।

तथा कुरु विचित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनी(नि) ॥

तुलसीग्रहणे निषिद्धकालः । निर्णयसिन्धौ स्मृतिसारे—

वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु ।

पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये ॥

तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे तु—रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना ।

जीवितस्याविनाशाय प्रावेचिन्वीत धर्मवित् ॥

इत्युक्तम् । अयं निषेधो न कृष्णतुलस्याः ।

तुलसी कालतुलसी तथा रक्तं च चन्दनम् ।

केतकीपुष्पपत्रं च जीरकं कृष्णजीरकम् ॥

इतिवदित्याचारसारे । रुद्रयामले—

देवार्थं तुलसीछेदो होमार्थं समिधस्तथा ।

इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थं तु तृणस्य च ॥

बिल्वग्रहणे मन्त्रः—अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा ।

गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात् ॥

अत्र निषिद्धदिनानि लैङ्गे—

अमारिक्तासु संक्रान्त्यामष्टम्यामिन्दुवासरे ।

बिल्वपत्रं न च छिन्द्याच्छिन्द्याच्चेन्नरकं व्रजेत् ॥

पारिजाते—पत्रेणैतत्समासाद्य पुष्पं वै संचितं पुरा ।

अन्ते च प्रक्षिपेत्पत्रं पुष्परक्षाकरं प्रति ॥

पुष्पं वस्त्रेण बध्नीयाच्छिरसा न वहेद्बुधः ।

नयेत्पत्रपुटेनैव पाणिनाऽऽलम्ब्य संयतः ॥

इति पुष्पाद्यवचयः । अथ पुष्पार्पणविधिः । तत्र पुष्पदानं कराभ्यामिति केचित् । तन्न । अत्र दक्षिणकरनियमात् । पुष्पाञ्जलावञ्जलिविधेश्च । यत्तु यजन्कराभ्यां यज्ञेशमिति यच्च

तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ

इति तत्कथंचिल्लब्धकरद्वयव्यापारानुवाद इति टोडरानन्दः । पुष्पाञ्जलिपरमित्याचारसारः । मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः पुष्पार्पणम् ।

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः पुष्पं संगृह्य पूजयेत् ।

इति चिन्तामणिधृतवचनात् । तृचभास्करे—

पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम् ॥

पुष्पाञ्जलिविधिं हित्वा यथोत्पन्नं तथाऽऽर्पणम् ।

दूर्वाः स्वाभिमुखाग्राः स्युर्विल्वपत्रं त्वधःकृतम् ॥

पुष्पाञ्जलौ नायं निषेधः । अधःकृतमनुत्तानम् । दूर्वासु स्वसंमुखाग्रत्वोक्त्या बिल्वे तथा नेति सिध्यति । प्रतिष्ठासारदीपिकायां पूजायां पुष्पमूर्ध्वमुखं फलं संमुखं तुलस्यादिपत्रमात्माभिमुखाग्रं न्युञ्जं समर्पणीयम् । बिल्वपत्रं तु देवाभिमुखाग्रं न्युञ्जं समर्पणीयम् । तथा च स्कान्दवाराहयोः—

अच्छिद्रैश्च नवैः शुद्धैः संवृतैः परितोऽन्वितैः ।

वामपत्रे स्थितो ब्रह्मा पद्मनाभश्च दक्षिणे ॥

मध्यपत्रे स्थितो रुद्रः साध्यः संसारमोचकः ।

पृष्ठभागे स्थिता यक्षा ह्यभक्तानां निषेधकाः ॥

इन्द्रादयो लोकपाला वृन्ताग्रे परिकीर्तिताः ।

पूर्वभागेऽमृतं न्यस्तं देवैर्ब्रह्मादिभिः पुरा ॥

अतो वै पूर्वभागेण पूजयेद्गिरिजापतिम् ।

वाराहे—पुष्पं चाधोमुखं नेष्टं तुलसीबिल्ववर्जितम् ।

तस्मादधोमुखं देयं बिल्वपत्रं च शंकरे ॥

स्कान्देऽपि—पुष्पमूर्ध्वमुखं योज्यं पत्रं योज्यं त्वधोमुखम् ।

फलं तु संमुखं योज्यं यथोत्पन्नं तथाऽर्पयेत् ॥ इति ।

शिवरहस्ये तु—बिल्वपत्रं समुत्तानमुदगग्रं जलान्वितम् ।

अर्पयेत्परया भक्त्या शिवाय परमात्मने ॥

अत्र निर्गलितोऽर्थः । पुष्पाञ्जलिं विना पुष्पमूर्ध्वमुखं सर्वसंमतम् । तुलसीपत्रं स्वाभिमुखाग्रं न्युब्जमेव च । बिल्वपत्रं देवाभिमुखाग्रं न्युब्जमुत्तानमुदगग्रं वेति । इतरपत्राणामप्यूर्ध्वमुखाधोमुखत्वयोर्विकल्पः । फलं देवाभिमुखाग्रम् । धर्माब्धिसारे तु बिल्वपत्रं स्वाभिमुखाग्रं न्युब्जमर्पयेदित्युक्तम् । शारदायाम्—

लक्षपूजासु सर्वासु पुष्पमेकैकमर्पयेत् ।

समुदायेन चेतपूजा लक्षपुष्पार्पणं न तत् ॥

लक्षपुष्पादौ पुष्पाद्यर्पणं यथेष्टमिति पञ्चायतनसारः । इति पुष्पा-
र्पणविधिः ।

अथ पुष्पपर्युषितत्वविचारः । निर्णयसिन्धौ भविष्ये—

प्रहरं तिष्ठते जातीं करवीरमहर्निशम् ।

जाती प्रहरात्करवीरमहोरात्रात्पञ्चादेवादुत्तारणीयमित्यर्थ इति पुरु-
षार्थचिन्तामणौ । आचारसारे तु अवचयोत्तरं जातीपुष्पं प्रहरपर्यन्तं
पूजार्हमित्युक्तम् ।

तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ।

न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च ॥

पारिजाते—जलं पर्युषितं त्याज्यं पत्राणि कुसुमानि च ।

तुलस्यगस्त्यबिल्वानि गाङ्गं वारि न दुष्यति ॥

अत्र विशेषः स्कान्दे—

पालाशं दिनमेकं च पङ्कजं च दिनत्रयम् ।

पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ॥

अपर्युषितमित्यनुपङ्गः । बोपदेवस्त्वन्यथाऽऽह—

बिल्वापामार्गजातीतुलसिशमिशताकेतकीभृङ्गदूर्वा-

मन्दाम्भोजाहिदर्भा मुनितिलतगरब्रह्मकह्लारमल्ली ।

चम्पाश्वारातिकुम्भीदमनमरुचका बिल्वतोऽहानि शस्ता-

स्त्रिशत् ३० त्रये ३ का १ र्य ६ री ६ शो ११ दधि ४ निधि ९
वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् ।

अस्यार्थः । शता शतावरी । मन्दो मन्दारः । अहिर्नागचम्पकः ।
मुनिरगस्त्यः । अश्वारातिः करवीरः । कुम्भी पाटला । बिल्वमारभ्या-

हिपर्यन्तं गणयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादि गणयेदिति । स्मृतिसार
वल्याम्—

कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ।

न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि ॥

विष्णुधर्मोत्तरे—समित्पुष्पकुशादीनि बहतो नाभिवादयेत् ।

तद्भारी चैव नान्याह्नि निर्माल्यं तद्भवेत्तयोः ॥

आपस्तम्बोऽपि—समित्पुष्पकुशाग्न्यम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकम् ।

जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवाद्येत वै द्विजम् ॥

शङ्खः—नोदकुम्भहस्तोऽभिवादयेन्न भिक्षां चरन्न पुष्पाज्यहस
नाशुचिर्न जपन्न देवपितृकार्यं कुर्वन्न शयान इति । आचाररत्ने तु—

सर्वे वाऽपि नमस्कार्याः सर्वावस्थासु चैव हि । इति ।

आचारप्रकाशे—देवोपरि धृतं यच्च वामहस्ते च यद्धृतम् ।

अधोवस्त्रधृतं यच्च जलेऽन्तः क्षालितं च यत् ॥

देवतास्तत्र गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यतां गतम् ।

महोदधौ—मलिनं तनुसंसृष्टमाघ्रातं स्वविकाशितम् ।

शुष्कं पर्युषितं कृष्णं भूमिगं नार्पयेत्सुमम् ॥

यथोक्तपुष्पपत्राद्यलाभे पारिजाते—

यद्वा पर्युषितैश्चापि पुष्पाद्यैरविकारिभिः ।

गन्धोदकेन चास्त्रेण त्रिः प्रोक्ष्येव प्रपूजयेत् ॥

अस्त्रं फाडिति । शिवरहस्ये—

शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद ।

पूजयेद्विरिजानाथमलाभे यत्नतो नरः ॥

सुवर्णं बिल्वपत्रं च दलं च रजतं तथा ।

न हि पर्युषितं यस्माच्छुद्धमेव स्वयं ततः ॥

चन्द्रिकायां भविष्ये—

तुलसी बिल्वनिर्गुण्डी जम्ब्वामलककं तथा ।

पञ्च बिल्वमिति प्रोक्तमर्चयेदिन्दुशेखरम् ॥

मालायां पर्युषितत्वं नास्ति तदाह वसिष्ठः—

अन्यशेषं पर्युषितं वर्जयेद्यज्ञकर्मणि ।

प्रथितानि च पुष्पाणि नैव पर्युषितानि वै ॥

स्कान्दे-अर्पितान्यपि बिल्वानि प्रक्षाल्यापि पुनः पुनः ।

शङ्करायार्पणीयानि न नवानि यदि क्वचित् ॥

इति पुष्पपर्युषित[त्वं]विचारः । इति पुष्पाणि ।

अथ धूपः । तृचभास्करे—

नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ।

दह्यमानस्य काष्ठस्य पवित्रस्येतरस्य वा ॥

परागस्याथ वा धूपो निस्तापो यस्य जायते ।

स धूप इति विज्ञेयो देवानां प्रीतिदायकः ॥

भविष्ये-अंगरुं चन्दनं मुस्ता सिंहकं वृषणं तथा ।

समभागं तु कर्तव्यं धूपोऽयममृताह्वयः ॥

सिंहकं शिलारस इति प्रसिद्धः । वृषणं कस्तूरी । तथा—

पद्मभागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पञ्च नखस्य भागाः ।

हरीतकी सर्जरसः सभांसी भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् ॥

घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो मुनीन्द्रैः ।

सर्जरसः राळ । मांसी जटामांसी । घनः कर्पूरः । पुरो गुग्गुलुः ।

बृहन्नारदीये—

शंकरस्याथवा विष्णोर्घृतयुक्तं च गुग्गुलुम् ।

दद्याद्भक्त्या नरो यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

नारसिंहे-कृष्णागरुसमुत्थेन धूपेन श्रीधरालयम् ।

धूपयेद्वैष्णवो यस्तु स मुक्तो नरकार्णवात् ॥

महोदधौ-धूपयेद्वक्षहस्तेन देवतानाभिदेशतः ।

पादाभिमुखेन धूपः प्रदर्शनीयः । स च देवस्य पुरतो वामतो वा
स्थापनीय इति तृचभास्करे । विधानपारिजाते—

वनस्पतीतिमन्त्रेण देवपादौ च धूपयेत् ।

धूपयेद्यजनेनैव न करेण न वाससा ॥

इति धूपः । अथ दीपः । तृचभास्करे—

पद्मसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवा तथा ।

शाणजा बादरा वाऽपि फलकोशोद्भवा तथा ॥

वर्तिका दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधा स्मृता ।

दीपवृक्षास्तु कर्तव्यास्तैजसा वाऽपि काष्ठजाः ॥

वृक्षेषु दीपा दातव्या न तु भूमौ कदाचन ।
 दक्षिणावर्तवर्तिस्तु दीप उत्तम ईरितः ॥
 वृक्षेण रहितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ।
 विहीनः पात्रतैलाभ्यामधमः परिकीर्तितः ॥

दीपवृक्षाः ठाणवयी समयीति भाषया प्रसिद्धाः । महोदधौ—

दीपमुद्रादर्शनं च तद्दानं नेत्रदेशतः ।
 भूयःपक्षे तु वर्तिनां विषमा वर्तिका मताः ॥
 घृतदीपो दक्षिणतस्तैलदीपस्तु वामतः ।
 सितवर्तियुतो दक्षे वामाङ्गे रक्तवर्तिकः ॥

वर्तिनां बहुत्वपक्षे विषमारुयाद्याः । सितवर्तियुतस्तैलदीपोऽपि
 दक्षिणतः । रक्तवर्तिघृतदीपोऽपि वामत इत्यर्थः । आचारप्रकाशे—

घृतेन वाऽथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ।
 विष्णवे विधिवद्भक्त्या तस्य पुण्यफलं वृणु ॥
 विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसंनिभः ।
 ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोके महीयते ॥

मविष्योत्तरे—प्रज्वाल्य देवदेवस्य कर्पूरेण तु दीपकम् ।

अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥

दीपे शलाकां प्रज्वाल्य तेन दीपप्रज्वालनं कार्यं न तु साक्षाद्दीपे ।

दीपेन दीपं प्रज्वाल्य दरिद्री व्याधिमान्भवेत् ।

इति लैङ्गे दीपस्योक्तेः । शाकलकारिकायाम्—

दक्षिणाभिमुखं दीपं स्थापयेन्न कदाचन ।
 प्रत्यङ्मुखं तथा नैव दोषः स्यादेकदीपके ॥
 दीपस्याभिमुखो दीपः सुखायुःश्रीधनप्रदः ।
 गृहे चैवापि देवे च प्राङ्मुखो वाऽप्युदङ्मुखः ॥

संग्रहे—मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्धृत्वा दीपं सुपूजितम् ।

नेत्रप्रदेशे षड्वारं भ्रामयन्देवमर्चयेत् ॥ इति ।

तन्त्रसारे—दीपं दक्षिणतो दद्यात्पुरतो वा न वामतः ।

वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे ॥

नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः ।

दीपप्रलोपनं पुरुषस्य निषिद्धम्—

दीपप्रलोपनं पुंसां कूष्माण्डच्छेदनं स्त्रियाः ।

अचिरेणैव कालेन वंशच्छेदो भवेद्भुवम् ॥

आचारप्रकाशे पादौ—शङ्खोदकं हरेर्भुक्तं निर्माल्यं पादयोर्जलम् ।

चन्दनं धूपशेषस्तु ब्रह्महत्यापहारकः ॥

धूपं चाऽऽरार्तिकं विष्णोः कराभ्यां यस्तु वन्दते ॥

कुलकोटिं समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम् ।

उपचारभिन्नकाले दीपस्पर्शे तु पातालखण्डे—

स्पृष्ट्वा दीपमनाचम्य पूजनं चानृतेन यत् ।

अपराध इति । अथ नैवेद्यम् । तृचभास्करे—

निवेदनीव्यं यद्द्वयं प्रशस्तं प्रयतं तथा ।

तद्भक्ष्याद्यं पञ्चविधं नैवेद्यमिति गद्यते ॥

भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम् ।

बृहन्नारदीये—हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ॥

नैवेद्यं देवदेवाय विष्णवे विनिवेदयेत् ।

संस्कृतं चान्नमाज्याद्यैर्दधिक्षीरमधूनि च ॥

फलमूलव्यञ्जनादि मोदकं च निवेदयेत् ।

फलानामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधीरपि ॥

ओषधीनामलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत् ।

तदलाभे तु सर्वत्र मानसं प्रवरं स्मृतम् ॥

अत्र—परमान्नप्रियः सूर्यो गणेशो लङ्कुकप्रियः ।

इत्यादि तत्तद्देवताप्रियपदार्थानामावश्यकतार्थमेवोक्तिर्नेतरपरिसंख्या ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

नैवेद्यस्य त्वलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् ।

पारिजाते शिवपूजाविधौ—

परमान्नं हरिद्रान्नं दध्यन्नं कृसरौदनम् ।

गुडौदनं च मुद्गान्नमित्यन्नं षड्विधं स्मृतम् ॥

तण्डुलत्रिगुणं दुग्धं दुग्धार्धं जीवनीयकम् ।

तदर्धं गुडचूर्णं तु परमान्नमिति स्मृतम् ॥

संस्कृतं मथितं गव्यं तण्डुलानां चतुर्गुणम् ।

ईपद्भिरिद्रया युक्तं मरीचाज्जिसंयुतम् ॥

एतदुक्तं हरिद्रान्नं सुपक्रं पाचितं यथा ।

अजाजी जीरकः ।

मधुराम्लेन गोदध्ना शुद्धान्नं तु विमिश्रितम् ।

तण्डुलद्विगुणेनैव मरीचक्षोदसंयुतम् ॥

लवणाद्रकसंयुक्तमेतदध्योदनं स्मृतम् ।

मरीचक्षोदो मरीचकणः ।

तण्डुलार्धमुद्गभिन्नं वारिणा सह संपचेत् ।

युक्तं मरीचचूर्णेन तिलचूर्णं विनिक्षिपेत् ॥

इदं कृसरनामान्नमित्यारव्यातं सुरेश्वर ।

पूर्वाक्तपायसे युक्त्यादुग्धार्धं गुडखण्डकम् ॥

अयमर्थः—पूर्वाक्तपायसवत्तण्डुलत्रिगुणदुग्धार्धजलयोगे दुग्धार्धगुडं
योजयित्वा पचेदित्यर्थः । इतरथा गुडौदनमितिभिन्नसंज्ञानुपपत्तिः ।

तदर्धमाज्यं मोचायाः फलमेतदुडौदनम् ।

तण्डुलस्य त्रिभागैक(?)मुद्गखण्डेन मिश्रितम् ॥

पक्वं यदेतन्मुद्गान्नमारव्यातं च चतुर्मुख ।

विना शुद्धान्नमन्येषां प्रदद्यालवणं बुधः ॥

गारुडे—नैवेद्यं तुलसीमिश्रं घण्टाद्यैर्जयनिस्वनैः ।

नीराजनैश्च हरये दद्यादापोशनं ततः ॥

स्कान्दे—दद्याच्छ्रीहरये नित्यं यद्यत्प्रियमथाऽऽत्मनः ।

प्रक्षिप्य तुलसीं प्रोक्ष्य सप्तकृत्वोऽभिमन्त्रयेत् ॥

गोविन्दराजीये ब्रह्माण्डे—

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानीयमौषधम् ।

अनिवेद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पितम् ॥

कौर्मोऽपि—अनर्पयित्वा गोविन्दे यैर्भुक्तं धर्मवर्जितैः ।

शुनो विष्ठासमं चान्नं नीरं च सुरया समम् ॥

अत्रानिवेदितभक्षणनिषेधात्सर्वान्ननिवेदनमित्याचारसारे । महो-
दधौ—

निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे ।

पोडशार्णमिति प्रोच्य ग्रासमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥

वामहस्तेन पद्मानां प्राणाद्या दक्षिणेन तु ।

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्मुद्रा प्राणस्य कीर्तिता ॥

तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैरपानस्य तु मुद्रिका ।
 अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरुदानस्य तु सा स्मृता ॥
 तर्जन्यनामामध्याभिः साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्थिका ।
 सर्वाभिः सा समानस्य प्राणाद्यान्डेद्विठान्वितान् ॥
 तारपूर्वाक्षपन्मुद्राः प्राणादीनां प्रदर्शयेत् ।
 ततो जवनिकां दत्त्वा ब्रह्मेशाद्यैरिदं पठन् ॥ इति ।

देवस्य पुरतश्चतुरस्रं मण्डलं कृत्वा तदुपरि यन्त्रिकां निधाय तस्यां
 परिविष्टनैवेद्यपात्रं संस्थाप्य निवेद्येदिति पारिजातः । पूर्वापोशनमुत्त-
 रापोशनं च समन्त्रकमुक्तं तृचभास्करे । आचारचन्द्रोदये—

अथ भुक्तवते दद्याज्जलैः कर्पूरवासितैः ।
 आचमनं तु ताम्बूलं चन्दनैः करमार्जनम् ॥

अथ ताम्बूलो मुखवासाख्यः । पारिजाते—

श्वेतपत्रं च चूर्णं च क्रमुकाणां फलानि च ।
 नारिकेलफलं पेतं मातुलुङ्गसमायुतम् ॥
 एलालवङ्गकङ्कोलैर्मुखवासं प्रचक्षते ।

पर्णानि मगधदेशोद्भवानि अन्यानि वा । दक्षिणदेशोद्भवाः क्रमुकाः ।
 सुगन्धिखादिरः । प्राण्यङ्गजं चूर्णम् । कर्पूरनागैरैलालवङ्गकेशरजातीफ-
 लपत्रपनसनारिकेलशकलमरीच्यादिकं चेति यथायोग्यं मिलितं पर्णादि-
 चतुष्टयमेव वा ताम्बूलपदवाच्यम् ।

अथ स्तुतिः । सा च प्रयोगे वक्ष्यते ।

अथ नमस्कारस्त्रिस्थलीसेतौ—

प्रणामाः सर्वदेवेषु पञ्च सप्त त्रयोऽपि वा ।
 वराहपुराणे—प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥

स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ।
 नमस्कारेण चैकेन त्वष्टाङ्गेन हरिं व्रजेत् ॥

नारसिंहे—पद्भ्यां कराभ्यां शिरसा पञ्चाङ्गा प्रणतिः स्मृता ।
 दोभ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ॥
 मनसा वचसा भक्त्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।

गोविन्दराजीये भविष्ये—

अग्रे पृष्ठे वामभागे समीपे गर्भमन्दिरे ।

जपहोमनमस्कृरान्न कुर्याद्विवतालये ॥

वाराहे—वस्त्रप्रावृतदेहस्तु यो नरः प्रणमेत माम् ।

सदा संजायते मूर्खः सप्तजन्मनि भामिनि ॥

इदं परिधानीयान्यपरमित्याचारसारः । इति नमस्कारः ।

अथ प्रदक्षिणाः । तृचभास्करे—

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः ।

दर्शयन्दक्षिणं पार्श्वं मनसाऽपि च दक्षिणः ॥

सकृन्निर्वा वेष्टयेद्यत्तत्प्रदक्षिणमुच्यते ।

एकां चण्ड्यां रवेः सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके ॥

चतस्रो विष्णवे देयाः शिवस्यार्धं प्रदक्षिणम् ।

अर्धं सोमसूत्रान्तमित्यर्थः ।

शिवं प्रदक्षिणीकुर्वन्सोमसूत्रं न लङ्घयेत् ।

इति वचनान्तरात् । तथा—

सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रणालीं नैव लङ्घयेत् ॥ इति ।

इदं स्थिरलिङ्गे । चरे तु सव्येनैवेति पुरुषार्थचिन्तामणौ । सोमसू-
त्रलङ्घनापवाद आचारसारे—

तृणैः काष्ठैस्तथा पर्णैः पाषाणैर्वेष्टकादिभिः ।

अन्तर्धानं पुनः कृत्वा सोमसूत्रं तु लङ्घयेत् ॥

तत्प्रमाणं तत्रैव—

प्रासादविस्तारसमानसूत्रं सोमस्य सूत्रं दिशि सोमसूत्रम् ।

मण्डपादुदीच्यां दिशि प्रासादविस्तारसमानसूत्रं सोमसूत्रमित्यर्थः ।
बृहन्नारदीये—

सोमसूत्रद्वयं यत्र यत्र वा विष्णुमन्दिरम् ।

अपसव्यं न कुर्वीत कुर्वीतैव प्रदक्षिणम् ॥ इति ।

सचण्डाशिवे विशेषः पारिजाते—

स्थाने चण्डस्य संकल्प्य वृषभादौ प्रदक्षिणम् ।

सव्ये सव्यं विजानीयादपसव्येऽपसव्यकम् ॥

वृषे चण्डे वृषे भूयः सोमसूत्रे पुनर्वृषे ।

चण्डे च सोमसूत्रे च पुनश्चण्डे पुनर्वृषे ॥

नवप्रदाक्षिणोपेतं यः कुर्यात्तु प्रदाक्षिणम् ।

त्रिंशत्सहस्रसंख्याकं प्रदक्षिणफलं लभेत् ॥ इति ।

तत्रैव—पदं पदान्तरे न्यस्य करौ चलनवर्जितौ ।

स्तुतिर्वाचि हृदि ध्यानं चतुरङ्गं प्रदक्षिणम् ॥

एकां गणाधिपे दद्याद्दे सूर्ये त्रीणि शंकरे ।

चत्वारि केशवे दद्यात्सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणम् ॥

वाराहे—प्रदक्षिणं न कर्तव्यं पुरतः पृष्ठदर्शनात् ।

चक्रवद्भ्रमयेदङ्गं पृष्ठतोऽङ्गं न दर्शयेत् ॥

हलायुधे—एकहस्तप्रणामं च एका चैव प्रदक्षिणा ।

अकाले दर्शनं चैवं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥

चण्डीविनायकयोरेकाऽपि प्रदक्षिणा कार्या । विशिष्यविधानात् ।
इति प्रदक्षिणाः ।

अथ फलानि । विष्णुधर्मे—

फलानि दत्त्वा देवेभ्यः सुफलां विन्दते श्रियम् ।

पारिजाते—कदलीनारिकेलान्नपनसानां फलानि च ।

जम्बूफलेक्षुदण्डानि सुपक्वानि शुभानि च ॥ इति ।

दद्यादिति शेषः । अथ दक्षिणा । तत्र प्रत्यहं दक्षिणारहितं देवा-
र्चनं कार्यमिति हेमाद्रिः । पूजासाफल्यार्थं सदक्षिणं कार्यमिति महा-
र्णव ऋग्विधाने । दानकमलाकरे—

देवे दत्त्वा तु ताम्बूलं देवे दत्त्वा तु दक्षिणाम् ।

तत्सर्वं ब्राह्मणे दद्यादिति ।

अथ नीराजनम्—आरार्ति(त्रि?)कं सकर्पूरं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।

ते प्राप्नुवन्ति सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥

पारिजाते—बहुवर्तिसमायुक्तं बलिनं केशवोपरि ।

कुर्यादारार्ति(त्रि?)कं यस्तु कल्पकोटि दिवं व्रजेत् ॥

नीराजनप्रभा विष्णोर्येषां गात्राणि संस्पृशेत् ।

यज्ञावभृथलक्षाणां स्नानजं लभते फलम् ॥

मदनपारिजाते—

उच्चैरादाय हस्ताभ्यामापादतलमस्तकम् ।

त्रिः परिभ्राम्य देवेशं बहिरेनं ततः क्षिपेत् ॥

देवाभिमुख्येन नववारं भ्रामणमिति तृचभास्करे ।

अथ पुष्पाञ्जलिः । कमलाकराह्निके—

नानावेदोक्तमन्त्रैश्च अन्ते पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । इति ।

ततो नैवेद्यस्य शतांशं विष्वक्सेनादिभ्यो दद्यात् । संग्रहे—

विष्वक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यस्य शतांशकम् ।

पादोदकं प्रसादं च लिङ्गे चण्डेश्वराय तु ॥

अथ निर्माल्यधारणविधिः । तत्र स्कान्दे—

विष्णुसूर्गि स्थितं पुष्पं शिरसा यो बहेन्नरः ।

अपर्युषितर्पापस्तु भवेद्युगचतुष्टयम् ॥

बृहन्नारदीयेऽपि—

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः ।

पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः ॥

अथ शिवनिर्माल्यग्रहणविचारो धर्माधिसारे—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।

शालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥

शैवसौरनैवेद्यभक्षणे चान्द्रायणम् । अन्यनिर्माल्येऽप्यनापद्येवम् । इदं च ज्योतिर्लिङ्गस्वयंभूसेन्द्रप्रतिष्ठापितलिङ्गातिरिक्तस्थावरलिङ्गविषयम् । ज्योतिर्लिङ्गादौ तु पूजकेन दत्तं फलतीर्थादिकं भक्त्या शुद्ध्यर्थं ग्राह्यं न लोभेन । पञ्चायतनस्थितचरलिङ्गेषु प्रतिमासु चान्नादेरपि स्वयं ग्रहणेऽपि न दोषः । ज्योतिर्लिङ्गाद्यन्यस्थिरलिङ्गेषु तीर्थोदकचन्दनमात्रं श्रद्धावद्भिः शिवोपासकैरेव ग्राह्यम् । ज्योतिर्लिङ्गादौ पूजकदत्तमत्रमपि भक्ष्यमिति केचित् ।

स्कान्दे—शङ्खमध्यस्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि ।

अङ्गलघ्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यायुतं दहेत् ॥ इति ।

अथ तीर्थविधिः । तत्र पूजापटले—

उदकं चन्दनं चक्रं शङ्खं च तुलसीदलम् ।

घण्टां पुरुषसूक्तं च ताम्रपात्रमथाष्टमम् ॥

शालग्रामशिला चैव नवभिस्तीर्थमुच्यते । इति ।

यस्य यस्य यदाराध्यदैवतं तेन तेन तस्यैव तीर्थनैवेद्यादि ग्राह्यमिति केचित् ।

पादौ—पीते धृते च शिरसि सर्वास्तुष्यन्ति देवताः ।

प्रायश्चित्तं हि पापानां कलौ पादोदकं हरेः ॥ इति ।

भविष्ये—विष्णुपादाभिषिक्तं यः पात्रेणैव पिबेज्जलम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥

यः पादसलिलं विष्णोः करेण पिबते यदि ।

स मूढो नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

अगस्त्यः—शालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके ।

प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते ॥

यानि तु केवलकरेणैव प्राशनविधायकवचनान्युपलभ्यन्ते तानि वैष्णवपराणि । प्राशने मन्त्रस्तु तदस्य प्रियमिति वैदिकः । अस्यार्थः—अभिप्रियं सर्वप्रकारैः प्रियं तत्पाथः, अस्यां पिवेयं किं तद्यत्र पाथसि पीयमान इति शेषः । नरः देवयवो देवत्वं प्राप्तुमिच्छवो मदन्ति हृष्यन्ति पुनस्तर्हि यदस्य विष्णोः परमे पदे मध्व मधुरसस्योत्सः, निष्पन्दो मधुरसरूपेण परिणमते । स हि पुरुष इत्था इत्थंप्रकारेणो-रुक्रमस्य विष्णोर्बन्धुः सखेति । अस्य मन्त्रस्य तीर्थपाने लिङ्गाद्विनि-योगः । यथा स्योनं ते सदनं करोमीति मन्त्रस्य पुरोडाशसदनकरणे । पौराणं मन्त्रान्तरं प्रयोगे दृश्यते । यदा सर्वदुरितक्षयकामः स्मृत्यन्तरो-क्तविप्रपादसलिलं पिबेत्तदा क्रमः पादौ—

विष्णुपादोदकात्पूर्वं विप्रपादोदकं पिबेत् ।

विरुद्धमाचरेद्यस्तु ब्रह्महा स निगद्यते ॥

गारुडे—विष्णुपादोदकं पीत्वा कोटिजन्माघनाशनम् ।

तदेवाष्टगुणं पापं भूयौ बिन्दुनिपातनात् ॥ इति ।

कमलाकरे विष्णुरहस्ये—

विष्णुपादोदकं पीत्वा पश्चादशुचिशङ्कया ।

यश्चाऽऽचामति संमोह्य ब्रह्महत्यां स बिन्दति ॥ इति ।

श्रान्द्वैकादश्यादौ तीर्थग्रहणविचारः ।

तत्र—जलस्यापि नरश्रेष्ठ प्राशनान्द्वेषजाहते ।

नित्यक्रिया निवर्तेत काम्यनैमित्तिकैः सह ॥

इति कालिकापुराणवचनादेकादश्यादिव्रतदिने च श्रान्दात्पूर्वं तीर्थ-प्राशनं न कर्तव्यमिति केचित् । तन्न ।

देहः शुध्यति चाप्यात्मा पीत्वा पादोदकं हरेः ।

नित्ये नैमित्तिके काम्ये पीत्वा भुक्त्वा न दुष्यति ॥

इति कमलाकरधृतस्मृत्यन्तरवचोविरोधेन कालिकापुराणवचनस्य रागप्राप्तविषयत्वात् । एकादशीभिन्नदिने त्रिवारं तीर्थं ग्राह्यमेकादश्यां तु सकृत् ।

एकादशीदिने चैव तथैव हरिवासरे ।

त्रिवारं न पिबेत्तोयं शालग्रामशिलोद्भवम् ॥

इति गारुडे त्रिवारप्राशननिषेधादेकादश्यामेकवारं तीर्थं च तुलसीं विनेतिसंग्रहवचने सकृत्प्राशनविधानाच्च । आह्निकप्रदीपे—

सूतके मृतके चैव आशौचं नैव विद्यते ।

तेषां पादोदकं मूर्ध्नि प्राशनं ये च कुर्वते ॥ इति ।

अथ नैवेद्यग्रहणम् । श्रीमद्भागवते—

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोलंकारचर्चिताः ।

उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥

पादौ गौरीं प्रति शिववाक्यम्—

अग्निटोमसहस्रैश्च वाजपेयशतैरपि ।

यत्फलं लभते देवि विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥

नैवेद्यमन्नं भोजनकाले भुञ्जीत तदुक्तं कौर्मे—

मध्याह्ने विधिवत्पूज्य श्रीविष्णुं वैष्णवोत्तमः ।

नैवेद्यं शिरसा नत्वा श्लोकमेतमुदीरयेत् ॥

यस्योच्छिष्टं हि वाञ्छन्ति ब्रह्माद्या ऋषयोऽमलाः ।

सिद्धाद्याश्च हरेस्तस्य वयमुच्छिष्टभोजिनः ॥

तिथ्यालोके तु मन्त्रान्तरम्—

उच्छिष्टभोजिनस्तस्य वयमक्लिष्टकारिणः ।

येन लीलावराहेण हिरण्याक्षो निपातितः ॥ इति ।

यत्तु आचारादर्शे—सात्वतेभ्यस्तु तद्देयं विष्णवे यन्निवेदितम् ।

इति ब्राह्मं तदन्येन निवेदितविषयम् ।

अनिवेद्यं न भोक्तव्यं विष्णवे तु कदाचन । इति बृहन्नारदीये नञ्द्वयेन निवेद्यैव भोक्तव्यमित्यर्थात्कत्वाप्रत्ययेनाभिपुत्य हुत्वा भक्षयन्तीतिवन्निवेदनसमानकर्तृकभक्षणोक्तेः । पारिजाते—

मुखवाद्यकृतो ये तु देवतायतने नराः ।
 विमानशतसंयुक्ताः कल्पं स्वर्गाधिवासिनः ॥
 करशब्दं प्रकुर्वन्ति देवतायतने तु ये ।
 ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमानेशा युगद्वयम् ॥
 देवतायतने ये तु घण्टानादं प्रकुर्वते ।
 तेषां पुण्यं निगदितुं कः समर्थोऽस्ति पण्डितः ॥
 तालादिकांस्यनिनदं कुर्वन्विष्णुगृहे नरः ।
 यत्फलं लभते राजञ्छृणुष्व गदतो मम ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानशतसंकुलः ।
 गीयमानश्च गन्धर्वैर्विष्णुना सह मोदते ॥
 शिलाचूर्णेन यो मर्त्यो देवतायतने नृप ।
 करोति स्वस्तिकादीनि तेषां पुण्यं निशामय ॥
 यावत्यः कणिका भूमौ क्षिप्ता रविकुलोद्भव ।
 तावद्युगसहस्राणि हरिसालोक्यमश्नुते ॥
 देवतायतने राजन्कृत्वा संमार्जनं नरः ।
 यत्फलं समवाप्नोति तन्मे निगदतः शृणु ॥
 यावत्यः पांसुकणिकाः सम्यक्संमार्जिता नृप ।
 तावद्युगसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥
 मृदा धातुविकरैर्वा वर्णकैर्गोमयेन वा ।
 उपलेपनकृद्यस्तु नरो वैमानिको भवेत् ॥

अथ वैखानसाचार्योक्तद्वात्रिंशदपराधा उच्यन्ते—

अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः ।
 यानैर्वा पादुकैर्वाऽपि गमनं भगवद्गृहे ॥
 देवोत्सवाद्यसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः ।
 एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम् ॥
 उच्छिष्टे च तथाऽशौचे भगवद्वन्दनादिकम् ।
 पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् ॥
 शयनं भाषणं चैव मिथ्याभाषणमेव च ।
 उच्चैर्भाषा वृथा जल्पो रोदनादि च विग्रहः ॥

निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीष्वसत्कृतभाषणम् ।
 अश्लीलकथनं चैव अधोवायुविमोचनम् ॥
 कम्बलास्तरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।
 शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम् ॥
 तत्तत्कालभवानां च फलादीनामनर्पणम् ।
 विनियुक्तविशिष्टस्याप्रदानं व्यजनादिनः ॥
 गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ।
 तमेव प्रणमेत्प्राज्ञो विष्णुक्षेत्रे विनेतरान् ॥ इति ।

अन्येऽप्यपराधास्तत्प्रायश्चित्तानि च पारिजातादौ ज्ञेयानि । विस्तृ-
 तिभीतेन लिखितानि । अपराधापवादः पारिजाते—

अपराधाः परिज्ञेयाः प्रतिमाद्यर्चने सदा ।
 शालग्रामे च चक्राङ्के पूजायां ते न सन्ति हि ॥

अपराधप्रायश्चित्तं पातालखण्डे—

सहस्रनामपाठाच्च गीतापारायणादपि ।
 तुलसीपूजनाद्यापि अपराधनिवारणम् ॥ इति ।

[* स्मृतिकौस्तुभे—अपराधसहस्राणि अपराधशतानि च ।

पञ्चैकैकं देवेशः क्षमते हरिरर्चितः ॥]

अथ पूजाविधौ सव्याख्यानमाश्वलायनगृह्यपरिशिष्टम्—

अथाहोमोऽहरहश्चैत्ययज्ञः ।

अथशब्द आनन्तर्यार्थः । आचार्येण गृह्यपरिशिष्टे होमसहितश्चैत्यय-
 ज्ञापरनामको ग्रहयज्ञ उक्तः । इदानीं होमरहितश्चैत्ययज्ञापरनामकः
 पूजायज्ञ उच्यते । यस्त्विदानींतनकचित्पुस्तकेषु अथ होम इतिपाठो
 दृश्यते स लेखकप्रमादादिति प्रतिभाति । केवलहोमशब्दाद्गोमराहित्य-
 रूपविवक्षितार्थानुपलब्धेः । अहरहरिति वीप्सावचनं सर्वपामाश्रमिणां
 नित्यत्वप्रदर्शनार्थम् । चैत्ययज्ञ इत्यस्यार्थो ग्रहयज्ञप्रकरण आचार्येण
 स्वेनैवोक्तः । अथ ग्रहयज्ञश्चैत्यश्चित्यमुपयाचितमुच्यते । तत्र भवाः
 शान्तिपुष्टिदा देवताश्चैत्या इति गृह्यसूत्रस्थचैत्ययज्ञव्याख्यावसरे चित्ते
 भवश्चैत्य इति वृत्तिकारेणोक्तम् । अथ गृहस्थस्य विशेषमाह—

गृहस्थो ह्यहरहरिष्टान्देवानिष्ट्वाऽभीष्टानर्थान्श्चिनोति । तस्य तेऽहरहश्चैत्याः ।

इष्टान्देवानिष्ट्वाऽभीष्टानर्थान्श्चिनोति संगृह्णाति । ततस्ते देवास्तस्या-हरहश्चैत्याः पूज्या भवन्ति । गणपत्यादीनां पाठेनैव देवत्वे सिद्धे देवानिति वचनं यक्षिण्यादेः सकाशादभीष्टार्थसिद्ध्यावपि तद्यजनमहरहर्मा भूदित्येवमर्थम् । अथ चैत्यानाह—

ते गणपतिर्वा स्कन्दो वा सूर्यो वा सरस्वती वा गौरी वा गौरीप-तिर्वा श्रीपतिर्वाऽन्यो वा योऽभिमतस्त एते यथारुचि समस्ता वेज्यन्ते ।

प्रत्येकं वाशब्दोपादानं तत्तदुपासकान्प्रति तत्तत्प्राधान्यद्योतनार्थम् । अन्यो वेत्यत्रान्यशब्देन देव एव गृह्यते । पूर्ववाक्ये देवानित्युक्तेः । योऽभिमत इति सर्वत्र संबध्यते । ततश्च गणपत्यादीनां मध्ये यः स्वस्याभिमतस्तं यजेत । एत इत्यत्रैकशेषः । यथारुचीत्यस्य द्वौ वेत्येते बहवो वेज्यन्त इति फलितोऽर्थः । अन्यत्स्पष्टम् । अथ पक्षान्तरमाह—

केचिद्गणपतिमादित्यं शिवं शक्तिमच्युतं पञ्चक्रमेव वाऽहरहर्यजन्ते । पञ्चक्रमिति गणपत्यादिप्रधानमेकैकमेतदेव पञ्चायतनमिति व्यवह्रियते । अविवक्षितः क्रमोऽयम् । पञ्चायतनस्थापनक्रमस्तु पूर्वमुक्तः । अथ पूज्याधिकरणान्याह—

तानप्सु वाऽग्नौ वा सूर्ये वा स्वहृदये वा स्थण्डिले वा प्रतिमासु वा यजेत ।

वाशब्दाभ्यासोऽधिकारिभेदेन सर्वेषां प्राधान्यद्योतनार्थः । आचार्येणात्र यद्यप्यविशेषेण पूज्याधिकरणपट्टमुक्तं तथाऽप्यधिकारिभेदेन व्यवस्थेयम् ।

कर्मिणाऽग्नौ जले सर्वैर्यागिभिर्हृदये हरिः ।

सूर्ये मनीषिभिः पूज्यः स्थण्डिले भावितात्मभिः ॥

प्रतिमास्वल्पमतिभिः स्थानेष्वेतेषु पूज्यते ।

इति नारदोक्तेः । नन्वग्नौ पाद्यादिदानेनाग्निनाशः प्रसज्येत तत्कथं तत्र पूजनं संभवतीत्याकाङ्क्षायां तत्तत्स्थानभेदेनार्चनप्रकारमाह स एव—

हविषाऽग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदयेऽर्चयेत् ।

जपेन सूर्यविम्बे तु स्थण्डिले विनतात्मभिः ॥

बाह्यैर्द्रव्यगणैरन्यैः प्रतिमां पूजयेत्सदा । इति ।

प्रतिमास्वक्षणिकासु नाऽऽवाहनविसर्जने भवतः ।

प्रत्यहमिति शेषः । अक्षणिकासु धातुपापाणादिनिर्मितासु स्थिरासु नाऽऽवाहनविसर्जने भवतः । तत्र प्रतिष्ठाकाल एव देवताया आवाहितत्वात् । क्षणिकासु मृत्तिकादिनिर्मितासु ते भवत इत्यर्थसिद्धम् ।

स्वाकृतिषु हि शस्तासु ।

नाऽऽवाहनविसर्जने भवत इत्यत्रापि संबध्यते । मध्यगतस्य विशेषाग्रहणात् । स्वाकृतिषु स्वयंभवादिषु शालग्रामादिषु च । शस्तास्वतिवचनमशस्तासु पूजनं मा भूदित्येवमर्थम् । ततश्च शालग्रामादीनां तच्छास्त्रेण सल्लक्षणादिकं ज्ञात्वा शस्तानामेव पूजनं कार्यमिति सिद्धम् । उक्तं च—

चक्राङ्कितहरेश्चापि शालग्रामस्य लक्षणम् ।

यथायोग्यं विचार्यैव ग्रहीतव्यः प्रयत्नतः ॥ इति ।

अशस्तायाः पूजने कोटरा पूजकं हन्तीत्यादिदोषा अपि स्पष्टतरा एव । ननु स्वाकृतिषु प्रत्यहमावाहनविसर्जने कुतो न भवत इत्यत आह—
देवता नित्यं संनिहिता इति ।

यतस्तासु देवता नित्यं संनिहिताः सन्तीति हेतोस्ते न भवतः । उक्तं च शालग्रामविषये—

शालग्रामशिलायां तु नित्यं संनिहितो हरिः ।

तस्मादावाहनं नैव प्रत्यहं न विसर्जनम् ॥ इति ।

बाणलिङ्गविषये भविष्यपुराणे—

बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये ।

न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं न च ॥ इति ।

अयं निषेधः शालग्रामशिलासु विष्णोरेव पूजायाम् । देवतान्तरस्य तत्र पूजायामावाहनमावश्यकम् । एवं बाणे शिवस्यैव ; हिङ्गुलापीठोद्भवपाषाणे देव्या एव । एवं मातृपुरस्थपाषाणेऽपि । शोणनर्मदापाषाणयोर्धिनायकस्यैवेत्यादि बोध्यमिति परमरहस्यमिति तृचभास्करे ।

अस्थिरायां विकल्पः ।

व्यवस्थितोऽयम् । यस्यां धात्वादिनिर्मितायां चलप्रतिमायां प्रतिष्ठाकाल एव नित्यं देवतासांनिध्यार्थमावाहनं कृतं स्यात्तत्र न प्रत्यहमा-

वाहनविसर्जने भवतः । तद्भावे तद्वयमपि प्रत्यहं भवतीति । स्थण्डिले तूभयं भवति । स्पष्टम् । प्रतिमां प्राङ्मुखीं कल्पयित्वेति शेषः ।

उदङ्मुखो यजेत । स्थिरप्रतिमाविषयमिदम् । यस्यां दिशि प्रति-
मामुखं तामेव दिशं प्राचीं कल्पयित्वा तदनुरोधेन प्रतिमाया दक्षिण-
भाग उदङ्मुखो भूत्वा यजेतेत्यर्थः ।

अन्यत्र प्राङ्मुखः ।

चलप्रतिमादावित्यर्थः ।

संभृतसंभारं यजनभवनभेत्य ।

यजनभवनं देवागारम् । संभृतसंभारमित्यनेन पूर्वमेव शास्त्रान्तरो-
क्तप्रकारेण तत्तद्देवतोक्तान्पूजासंभारान्संभृत्य देवागारे निदध्यादिति
सिद्धम् ।

देवागारप्रवेशात्पूर्वं कर्माङ्गित्वेनाऽऽचमनं कर्तव्यम् ।

देवसमीपे तन्निषेधात् । तच्च सकृद्देवाऽऽचान्त इति परिभाषाखण्डे-
विशेषेणोक्तत्वात् । यत्र द्विराचमनमिष्यते तत्र विदधाति । यथा
संध्योपासन एवं द्विराचम्येति । यत्तु

दाने भोजनकाले च संध्ययोरुभयोरपि ।

आचान्तः पुनराचामेज्जपहोमार्चनादिषु ॥

इति द्विराचमनविधायकं व्यासवचनं तद्ब्रह्मचेतरान्प्रति सार्थकम् ।

द्वारदेशे स्थित्वा हस्ततालत्रयेण

अपसर्पन्तु ये(ते)भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।

ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

इति विघ्नानुद्वास्य प्रविश्य येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पय एवा पित्रे
विश्वदेवाय वृष्णे इति च जपित्वा ।

विघ्नास्त्वत्र भूतरूपा मन्त्रलिङ्गात् । ऋचोर्जयो मनुष्यगन्धनिवार-
णार्थः । तेभ्यो वै देवा अपैवावीभत्सन्त मनुष्यगन्धात् एते धाम्ये
अन्तरदधत येभ्यो मातैवापित्र इतीत्यैतरेयब्राह्मणात् ।

शुचावासने पृथिवि त्वया धृ० सनमित्युपविश्याऽऽयतप्राणः कर्म
संकल्प्य

स्मृतितः प्राप्तावपि शुचावासन इति यदुक्तं तेनैतज्ज्ञाप्यतेऽर्चन-
विधौ यदुक्तमासनं तदेव ग्राह्यमिति । तेनान्यत्र शुचित्वेऽपि कम्बला-

सनस्यात्र निषेध इति गम्यते । द्वात्रिंशदपराधेषु कम्बलास्तरणस्य परि-
गणितत्वात् । पूर्वं वस्त्रासनेषूक्तं कम्बलासनं देवतासनविषयमिति न
विरोधः । नार्चायां दार्वासनोपवेशनमित्याचारदीपे भट्टकमलाकरः ।
आयतप्राणः कृतप्राणायामः । कर्म संकल्प्य देवतार्चनं करिष्य इति
संकल्प्य

शुचि शङ्खादिपात्रं सपवित्रमद्भिः प्रणवेन पूरयित्वा गन्धाक्षतपु-
ष्पाणि प्रक्षिप्य सावित्र्याऽभिमन्त्र्य तीर्थान्यावाह्याभ्यर्च्य पवित्रपुष्प-
पाणिस्तदुदकेनाऽऽपो हि ष्ठीयाभिरात्मानमायतनं यजनाङ्गानि चाभ्युक्ष्य ।

शुचि सुप्रक्षालितम् । आदिपदेन सुवर्णादिपात्रं गृह्यते । विष्णु-
पूजायां शङ्खोऽतिप्रशस्तः ।

पुरतो वासुदेवस्य सपुष्पं सजलाक्षतम् ।

शङ्खमभ्यर्चितं तिष्ठेत्तस्य लक्ष्मीर्न दुर्लभा ॥

इति स्कान्दात् । शङ्खालाभे पात्रान्तरम् । विष्ण्वतरदेवतापूजायां
शङ्खो वा पात्रान्तरमिति बोध्यम् । अत्र पवित्रशब्देन प्रादेशमात्रं धर्म-
द्वयात्मकं पाकयज्ञतन्त्रे यत्प्रसिद्धं तदेव ग्राह्यम् । केचित्तु सुवर्णमयम् ।
पवित्रं वै हिरण्यमिति श्रुतेरित्याहुः । तुलसीपत्रदूर्वादि यत्पवित्रं तदि-
त्यन्ये । तीर्थावाहनमन्त्रस्तु प्रयोगे वक्ष्यते । यजनाङ्गानि पूजासं-
भाराः । अभ्युक्षणलक्षणं प्राशुक्तम् । प्रथमयर्चाऽऽत्मनः । द्वितीयया
देवतायतनस्य । तृतीयया संभाराणामिति यथासंख्यम् । अपि वाऽऽपो
हि ष्ठीयाभिरिति बहुवचननिर्देशात्तृचान्त आत्माद्यभ्युक्षणम् ।

क्रियाङ्गोदंकुम्भं गन्धादिभिरभ्यर्च्य तेनोदकेनाबर्थान्कुर्वीत ।

क्रियाङ्गानि पाद्यादीनि तदर्थमुदंकुम्भं गन्धादिभिरभ्यर्च्य तदुदकेन
पाद्यादीन्युदककार्याणि कुर्वीत । अङ्गन्यासोऽप्यत्राऽऽवश्यकः ।

देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।

इति वचनात् । देवो भूत्वा न्यासं कृत्वेत्यर्थः ।

न्यासेन तु भवेत्सोऽपि स्वयमेव जनार्दनः ।

इति शौनकोक्तेः । केचिदत्रानुक्तत्वाभ्यासे विकल्पमाहुः । अथ
पूजामन्त्रानाह—

नमोन्तेन नाम्ना ।

नाममन्त्रेणेत्यर्थः । तल्लक्षणम्—

ॐ क्लारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्तनम् ।

स्वनाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥ इति ।

ॐ विष्णवे नमः । ॐ शिवाय नम इत्यादिः । युगपदनेकदेवता-
पूजने समुदितमन्त्रोऽपि कैश्चिदुक्तः । यथा ॐ शिवविष्णुभ्यां नमः ।
ॐ विष्णुशिवगणेशसूर्यलक्ष्मीभ्यो नम इत्यादिः ।

तल्लिङ्गमन्त्रेण वा ।

वैदिकेनेति शेषः । गणानां त्वेत्यादिमन्त्रपाठेनैव तल्लिङ्गमन्त्रत्वे
सिद्धे तल्लिङ्गमन्त्रेणेति वचनं परिगणितेतरदेवतायागेऽपि तल्लिङ्गमन्त्रं
ज्ञात्वा तेन यजेतेतिज्ञापनार्थम् । वाशब्दो विकल्पार्थः । केचिद्वाशब्दं
समुच्चयार्थं मन्यन्ते । ऋगन्ते श्लिष्टमन्त्रमुच्चार्थं पाद्यादि निवेदयेदित्या-
चारार्कोक्तेः ।

क्रमेणोपचारान्दद्यात्पुष्पोदकेन ।

पाठादेव क्रमे सिद्धे यत्क्रमेणेत्युक्तं तदेतेनैव क्रमेण न शास्त्रान्तरो-
क्तक्रमेणेतिज्ञापनार्थम् । उपचारान्पुष्पोदकेन दद्यात् । महोदधावपि—
आह्वानाद्युपचारेषु प्रत्येकं पुष्पपाथसी ।
दत्त्वा प्रक्षाल्य च करमुपचारान्तरं चरेत् ॥

तथा हि मन्त्रान्त उपचारं समर्प्य पात्रेषु पुष्पोदकं गृहीत्वा तद्देवाग्रे
क्षिप्त्वा हस्तं प्रक्षाल्योपचारान्तरं चरेत् ।

पाद्योदकमर्घ्यं च पात्रान्तरेण सगन्धाक्षतकुसुमं दद्यात् ।

पाद्यदानेऽर्घ्यदाने चायं विशेषः । उदकुम्भोदकं तत्तदुपचारपर्याप्तं
पात्रान्तरे कृत्वा तत्र गन्धाक्षतपुष्पं प्रक्षिप्य दद्यादिति । अत्र पात्रान्त-
रेणेत्युक्तत्वादप्यत्रोदकुम्भेनैवेति गम्यते । सति संभवे पूर्वोक्तपदार्था-
नपि पाद्यादिषु क्षिपेत् । अथोपचारानाह—

आवाहनमासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं स्नानमाचमनीयं वस्त्रमाचमनी-
यमुपवीतमाचमनीयं गन्धं पुष्पं धूपं दीपं नैवेद्यं पानार्थं जलमुत्तरमाच-
मनीयं मुखवासं स्तोत्रं प्रणामं प्रदक्षिणां विसर्जनं च कुर्यात् ।

स्थिरादिप्रतिमाशालग्रामादिप्यावाहनविसर्जने न स्तः । तत्र तत्स्थाने
पुष्पाञ्जलिं समर्पयेत् । उक्तं च मन्त्रराजानुष्टुप्विधाने—

आवाहनऋचा दद्यात्पूर्वं पुष्पाञ्जलिं हरेः ।

तस्यैवोन्मुखताप्राप्त्यै यागे चोद्भासने ऋचा ॥

अन्ते पुष्पाञ्जलिं दद्याद्यागसंपूर्तिसिद्धये । इति ।

वस्त्रमित्येकवचनं जात्यभिप्रायम् । वस्त्रद्वयमिति शास्त्रान्तरे दर्शनात् । उपवीतमित्यत्रापि तथैव । पुष्पमित्यत्रापि च तथैव । पुष्पशब्दश्च पत्रादीनामुपलक्षणार्थः । ततश्च यथालाभं पुष्पाणि तुलसीपत्र-दूर्वाङ्कुरादीनि तत्तद्देवप्रियाणि चार्पयेत् । नैवेद्यशब्देनान्नमेव गृह्यते । पृथगन्नेन वेत्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । तच्च वैश्वदेवयोग्यम् । तच्छेषेण तद्विधानात् । मुखवासप्रणामप्रदक्षिणालक्षणानि प्रागुक्तानि । शेषाः प्रसिद्धाः ।

असंपन्नं मनसा संपादयेत् ।

मनसा संपादने(नं) प्रतिनिधिव्यावृत्त्यर्थम् । प्रतिनिधिस्तु पारिजात उक्तः—

तत्तद्व्यं तु संकल्प्य पुष्पैर्वाऽपि समर्चयेत् ।

अर्चनेषु विहीनं यत्तत्तोयेन प्रकल्पयेत् ॥ इति ।

तस्मात्पदार्थालाभे मनसा संपादनपक्ष एवाऽऽचार्यस्याभिमतः । आसनं मनसा परिकल्पयामीत्यादि प्रयोगो बोध्यः । अनेकपदार्थके ताम्बूलादौ किञ्चिद्व्यालाभे तत्तद्व्यं मनसा संकल्प्य लब्धं निवेदयेत् ।

द्रव्याणामप्यलाभे तु तत्तद्व्यं स्मरेद्बुधः ।

इतिवचनात् । षोडशेमानुपचारानिति वक्ष्यमाणत्वादत्रोक्तोपचाराणां षोडशातिरिक्तत्वाच्च पूर्वापरविरोध इतीमां शङ्कां परिहर्तुमाह स्वयमेवाऽऽचार्यः—

आचमनं न पृथगुपचारः ।

प्रणामः स्तोत्राङ्गं प्रदक्षिणादि विसर्जनाङ्गमत्राऽऽचमनशब्देन द्वितीयादि गृह्यते । प्रथमं तूपचार एवान्यथा षोडशसंख्यानुपपत्तेः । एवं च स्नानोत्तरं यदाचमनमुक्तं तत्स्नानाङ्गमेव । एवमुत्तरत्रापि । पानार्थं जलमपि न पृथगुपचारः किं तु नैवेद्यान्तर्गतमेव । नैवेद्योत्तराचमनीययोर्मध्ये पाठात् । स्तोत्रमुपचारः । तदङ्गं प्रणामः । प्रदक्षिणादि विसर्जनाङ्गं तच्च विसर्जनात्पूर्वमेव तदन्ते देवतासान्निध्याभावात् । आदिश-

ब्देन फलदक्षिणानीराजनादेः समर्पणं यथालाभम् । एवमुपचाराणां षोडशत्वमुपपन्नम् । अथ गणपत्यादीनां पूजनमन्त्रानाह—

अथ मन्त्राः । गणानां त्वेति गणपतेः । कुमारश्चित्पितरमिति स्कन्दस्य । आकृष्णेन रजसेत्यादित्यस्य । पावका नः सरस्वतीति सरस्वत्याः । जातवेदस इति शक्तेः । त्र्यम्बकं यजामह इति रुद्रस्य । गन्धद्वाराभिति श्रियः । इदं विष्णुरिति विष्णोः ।

स्पष्टम् । इति गणपत्यादीनां तत्तल्लिङ्गकान्मन्त्रानुक्त्वेदानीं गणपत्यादीनां सर्वेषामविशेषेण पूजनमन्त्रा उच्यन्ते—

षोडशेमानुपचारान्पौरुषेणैव सूक्तेन प्रत्यृचं सर्वत्रैव प्रयुञ्जते ।

इमानितिवचनं पुरुषसूक्तमन्त्रार्चनपक्षेऽपीमानेव पूर्वाक्तानुपचारान्दद्यान्न शास्त्रान्तरोक्तानितिज्ञापनार्थम् । तेन शौनकीयऋग्विधानोक्ते पुरुषसूक्तार्चनविधौ ये नमस्कारप्रदक्षिणासहिताः षोडशोपचारा उक्तास्तेऽत्र नाऽऽदत्तव्या इति सिद्धम् । पौरुषेणैव सूक्तेनेति नान्येन षोडशार्चेन सूक्तेनेत्यर्थः । सर्वत्रैव सर्वासु देवतासु इत्यर्थः । प्रयुञ्जते यज्ञधिदः । ननु देव्याः पूजने कथमेते मन्त्राः पुरुषपदघटिता उपयुज्यन्ते । उच्यते—वैदिकमन्त्राणां ब्रह्मपरत्वात्तस्य च सर्वव्यापकत्वाद्द्वैदिकमन्त्राः सर्वत्रोपयोक्तुं शक्याः । दृश्यते च सर्वानुक्रमण्यां जातवेदस इति मन्त्रेऽग्निर्देवता मन्त्रलिङ्गेनापि सैव । अस्मिंश्चैत्ययज्ञे तु जातवेदस इति शक्तेरित्युक्तत्वादौरी । कचिद्दुर्गाऽपि । तद्वदत्रापि ज्ञेयम् । उक्तं च शौनकीय ऋग्विधाने—

आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्तस्य देवता ।

पुरुषो यो जगद्धीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥ इति ।

तस्माज्जगद्धीजरूपेण स्त्रीपुरुषभेद इति ज्ञाते न कश्चिद्विरोध इति । अथ मतान्तरेणान्यानपि सर्वासां देवतानां साधारणमन्त्रानाह—

अन्ये सावित्र्या वा जातवेदस्या वा प्राजापत्यया वा व्याहृतिभिर्वा प्रणवेनैव वा कुर्वन्ति ।

चैत्ययज्ञमिति शेषः । अत्रापि मन्त्राणां साधारण्यं पूर्ववच्चारव्येयम् । प्रत्येकं वाशब्दस्तुल्यविकल्पद्योतनार्थः । एवकारः प्रणवेऽतिप्राशस्त्यद्योतकः ।

स एष देवयज्ञः ।

अन्वर्थसंज्ञेयम् ।

अहरहर्गोदानसंमितः ।

प्रत्यहं गोदानफलप्रदः । एवं च गोदानस्य प्राजापत्यप्रत्याग्न्यायपर-
त्वात्पापभीरुणा चैत्ययज्ञानुष्ठानेऽभ्यस्ते प्रत्यहमेकैकं प्राजापत्यं भव-
तीति ज्ञेयम् । अथास्य यज्ञस्य काम्यत्वं दर्शयन्नाह—

सर्वाभीष्टप्रदः स्वर्ग्योऽपवर्ग्यश्च ।

अपवर्गो मोक्षः । शेषं स्पष्टम् । काम्यत्वेऽपि नित्यानुष्ठानस्य
काम्येनैव सिद्धिः । यथा काम्याग्निहोत्रेण नित्यस्य सिद्धिस्तद्वत् ।
एवं चास्य यज्ञस्य नित्यत्वं प्रायश्चित्तत्वं काम्यत्वं चेति त्रैविध्यं सिद्धम् ।

तस्मादेनमहरहः कुर्वीत ।

पुनर्विधानमकरणे प्रत्यवायप्रदर्शनार्थम् । प्रत्यवायस्तु कूर्मपुराणे—

यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।

भुङ्क्ते स याति नरकान्कृमिभूत्वेह जायते ॥ इति ।

प्रायश्चित्तं तु सकृदकरणेऽर्धकृच्छ्रमुपवासत्रयमेक उपवासोऽष्टोत्त-
रशतं गायत्रीजपो वेति शक्त्यनुसारेण बोध्यम् ।

तमेन वैश्वदेवहुतशेषेण वा पृथगन्नेन वा कुर्यात् ।

एतच्छब्देन षोडशोपचारान्तर्गतं नैवेद्यं गृह्यते । अनेन नैवेद्ये प्राधान्य-
मपि द्योतितम् । ततश्च संकष्टे प्रधानेऽनुष्ठिते सति प्रत्यवायाभाव इति वैश्व-
देवं कृत्वा तच्छेषेण नैवेद्यं कुर्यात् । अथ वा नैवेद्यार्थं पृथक्पाकं कुर्यात् ।
आद्यः पक्षो माध्याह्निकपूजाविषयः । द्वितीयः कालान्तरपूजाविषय इति
वा व्यवस्था बोध्या । नास्य शेषेण वैश्वदेवं कुर्यात् । हुतशेषेणेत्येतेनैव
नैवेद्यशेषेण वैश्वदेवस्य प्रतिषेधे सिद्धे पुनर्वचनं नैवेद्यशेषेण यद्वैश्वदेवा-
तिरिक्तं कर्म तत्सर्वं कुर्यादित्येवमर्थम् । ततश्च मनुष्ययज्ञनित्यश्राद्धादि
कर्तव्यमिति सिद्धम् ।

अथात्रानेकपक्षत्वेऽपि बह्वाचारात्पुरुषसूक्तमन्त्रनाममन्त्रैः शालग्रामा-
मादिविष्णुपञ्चायतनदेवतार्चनपक्षमाश्रित्य प्रयोगो लिख्यते—स्नानादिना
शुचिभूत्वा बद्धशिशुः शुक्लवस्त्रधरो देवागाराद्वहिः सकृदाचम्य द्वारदेशे
स्थित्वाऽपसर्पन्तु वामदेवः शिवोऽनुष्टुप् । भूतादिविघ्नाद्वासने विनियोगः ।
ॐ अपसर्पन्तु ते भूता येऽज्ञयेति हस्ततालत्रयेण विघ्नानुद्वास्य पूज्यदेवता

ध्यायन्समाहितमनाः प्रणतिमुद्रया नम्रो भूत्वा देवागारं प्रविश्य देवाग्रे तिष्ठन् । येभ्यो मातेत्यस्य गयः प्लातो विश्वेदेवा जगती । एवापित्र इत्यस्य वामदेवो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् । मनुष्यगन्धनिवारणार्थं जपे वि० । ॐ येभ्यो माता० क्र.१ ॐ एवा पित्रे० क्र.१ इति जपित्वा देवान्नमस्कृत्य देवस्याग्रभागे पृथ्वीतिमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः । कूर्मो देवता । सुतलं छन्दः । आसनोपवेशने वि० ॐ पृथिव त्वया० सनमित्यासन उपविश्य प्राणानायम्य देशकालौ स्मृत्वा मम गोदानजन्यफलसमफलसर्वाभीष्टस्वर्गापवर्गफलप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विष्णुशिवगणेशसूर्यदुर्गार्चनं करिष्ये । कामाभावे न फलोल्लेखस्तत्र ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विष्णुशिवगणेशसूर्यदुर्गार्चनं करिष्ये इत्येव संकल्पः । ततः प्रक्षालितघण्टां गन्धपुष्पादिभिरलंकृत्य

आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम् ।

कुरु घण्टे वरं नादं देवतास्थानसंनिधौ ॥

इति संप्रार्थ्य वादयित्वा तां निधाय प्रक्षालिते शङ्खे वर्धद्वयात्मकं पवित्रं निधाय तदभावे सौवर्णदूर्वातुलसीपत्रादि निधाय प्रणवेनाद्भिः पूरयित्वा गन्धाक्षतपुष्पाणि प्रक्षिप्य सावित्र्याऽभिमन्त्र्य

पृथिव्यां यानि तीर्थानि स्थावराणि चराणि च ।

तानि तीर्थानि शङ्खेऽस्मिन्विशन्तु ब्रह्मशासनात् ॥

इति तीर्थान्यावाह्य ॐ शङ्खाय नम इति गन्धपुष्पादिभिरभ्यर्च्य

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ।

निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते ॥

इति नमस्कुर्यात् । पात्रान्तरे तु तानि तीर्थानि पात्रेऽस्मिन्नित्यूहस्तूष्णीं नमस्कारः । शङ्खस्थपवित्रं पुष्पं च दक्षिणहस्ते कृत्वा, आपो हि धेति तु० गायत्री । आत्माद्यभ्युक्षणे वि० । ॐ आपो हि षा० क्र.३ शङ्खोदकेनाऽऽत्मानमभ्युक्ष्य देवागारं पूजासंभारांश्चाभ्युक्षेत् । ततः पूजाकलशं शुद्धोदकपूरितम् ॐ उदकुम्भाय नम इतिमन्त्रेण गन्धादिभिरभ्यर्च्य

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।

मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥

* ख. पुस्तके तत्र इति समाप्ते पाठान्तरं दर्शितम् ।

१ ख. 'ण्टे महाता' । २ ख. सर्वाणि । ३ ख. धिताः ।

कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुंधरा ।
 ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥
 अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।
 अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥
 आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारिकाः ।
 गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ॥
 नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ।

इत्यभिमन्त्र्य प्रार्थयेत्

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
 उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
 त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
 त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
 शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
 आदित्या वसवो रुद्रा विश्वे देवाः सपैतृकाः ॥
 त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
 त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ॥
 सांनिध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।

अपि वा गङ्गे च यमुने० कुरु इतिमन्त्रेणैवाभिमन्त्र्य प्रार्थयेत् ।
 अत्रानुक्तत्वात्कलशपूजनं विना नैव किञ्चिदिति वा । अथ न्यासपक्षे ।
 सहस्रशीर्षेतिषोडशर्चस्य सूक्तस्य नारायणः पुरुषोऽनुष्टुप् । अन्त्या
 त्रिष्टुप् । स्वाङ्गन्यासे वि० । ॐ सहस्रशीर्षा० ऋ. १ वामकराय नम
 इति वामकरे । एवमुत्तरत्र । ॐ पुरुष० ऋ. १ दक्षिणकरे । ॐ एतावा०
 ऋ. १ वामपादे । ॐ त्रिपादूर्ध्व० ऋ. १ दक्षिणपादे । ॐ तस्माद्विरा०
 ऋ. १ वामजानौ । ॐ यत्पुरुषेण० ऋ. १ दक्षिणजानौ । ॐ तं यज्ञं०
 ऋ. १ वामकक्ष्याम् । ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं० ऋ. १ दक्षिणकक्ष्याम् ।
 ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतं ऋचः सा० ऋ. १ नाभौ । ॐ तस्मादध्वा० ऋ. १
 हृदये । ॐ यत्पुरुषं व्य० ऋ. १ कण्ठे । ॐ ब्राह्मणोऽस्य० ऋ. १ वाम-
 बाहौ । ॐ चन्द्रमा० ऋ. १ दक्षिणबाहौ । ॐ नाभ्या आ० ऋ. १
 मुखे । ॐ सप्तास्या० ऋ. १ अक्षणोः । ॐ यज्ञेन यज्ञं० ऋ. १ मूर्ध्नि ।
 अथ पञ्चाङ्गन्यासः । ॐ ब्राह्मणोऽस्य० ऋ. १ हृदये । ॐ चन्द्रमा० ऋ. १
 शिरसि । ॐ नाभ्या आ० ऋ. १ शिखायाम् । ॐ सप्तास्या० ऋ. १

कवचे । ॐ यज्ञेन० क्र.१ अस्त्रे । एवमेव देवाङ्गे पुष्पतुलसीपत्रादिना
 न्यासं कृत्वाऽकृत्वा वा षोडशोपचारैः पूजयेत् । सहस्रशीर्षेति षोडश०
 पूजायां विनि० । ॐ सहस्रशीर्षा० क्र. १ ॐ विष्णुशिवगणेशसूर्यदु-
 र्गाभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामीति पुष्पाञ्जलिं समर्प्य देवाग्रे पुष्पो-
 दकं क्षिपेत् । एवमुत्तरत्रापि । ॐ श्रीसूर्यगणेशमहालक्ष्मीशिववि-
 ष्णुभ्यो नम इति वा मन्त्रः । ॐ पुरुष० क्र.१ ॐ श्रीविष्णुशिवगणे-
 शसूर्यमहालक्ष्मीभ्यो नम आसनं समर्पयामि । तदभाव आसनं मनसा
 परिकल्पयामीति वदन्मनसा संपादयेत् । एवमुत्तरत्राप्युपचाराभावे
 मनसा समर्पणम् । ॐ एतावा० क्र.१ इति कलशस्थमुदकं किञ्चित्पा-
 त्रान्तरेऽवनीय पूर्वोक्तपदार्थयुतं गन्धाक्षतपुष्पयुतं वा कृत्वा तेन पात्रं
 दद्यात् । ॐ त्रिपादूर्ध्व० क्र. १ इति पात्रान्तरावनीतं जलं पूर्वोक्तार्ध-
 पदार्थयुतं गन्धाक्षतपुष्पसहितं वा कृत्वा तेनार्घ्यं दद्यात् । ॐ तस्माद्विरा०
 क्र. १ इति पूर्वोक्ताचमनीयपदार्थयुतेन केवलजलेन वाऽऽचमनीयं
 दद्यात् । ॐ यत्पुरुषेण० क्र.१ इति स्नानोक्तपदार्थयुतेन केवलजलेन वा
 स्नानमिदानीं सति संभवे सुगन्धतैलाभ्यङ्गपञ्चामृतस्नानान्यपि दद्यात् ।
 कनिक्रददितिसूक्तेन सुगन्धतैलाभ्यङ्गं कृत्वोद्धृतनेनोद्धृत्योष्णोदकेनाभि-
 पिच्य, आप्यायस्वेत्यस्य राहूगणो गौतमः सोमो गायत्री । पयःस्नापने
 वि० । ॐ आप्याय० क्र. १ इति पयसा संस्नाप्य शुद्धवारिणा स्नापयेत् ।
 दधिक्रावण इत्यस्य वामदेवो दधिक्रावाऽनुष्टुप् । दधिस्नापने वि० । ॐ
 दधिक्रावणो० क्र.१ इति दध्ना संस्नाप्य शुद्धोदकेन च संस्नाप्य घृतं
 मिमिक्ष इत्यस्य गृत्समदः प्रियस्त्रिष्टुप् । घृतस्नापने वि० । ॐ घृतं
 मिमिक्षे० क्र. १ इति घृतेन स्नापयित्वा शुद्धोदकेन च संस्नाप्य मधु-
 वाता इत्यस्य गौतमो विश्वे देवा गायत्री । मधुस्नापने वि० । ॐ मधु-
 वाता० क्र. १ इति मधुना संस्नाप्य शुद्धोदकेन च संस्नाप्य स्वादुः
 पवस्वेत्यस्य वेनो भार्गवो विश्वे देवा जगती । शर्करास्नापने वि० ।
 ॐ स्वादुः पवस्व० क्र.१ इति शर्करया स्नापयित्वा शुद्धोदकेन च संस्नाप्य
 ततो देवाय चन्दनतुलसीपत्रपुष्पाणि समर्प्य घण्टावादनपूर्वकं पुरुष-
 सूक्तेन शङ्खोदकेनाभिपेकं कुर्यात् । ॐ श्रीविष्णुशिषगणेशसूर्यमहाल-
 क्ष्मीभ्यो नम आचमनीयं समर्पयामि । एवमुत्तरत्राप्यङ्गोपचारसमर्पणं नाम-
 मन्त्रेण । ॐ तं यज्ञं० क्र. १ इति वस्त्रद्वयम् । आचमनीयं स० । ॐ तस्माद्य-

ज्ञात्सर्वहुतः संभृतं० क्र. १ इति यज्ञोपवीतियुगम् । आचमनीयं स० । ॐ
 तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः० क्र. १ इति गन्धान्स० । ॐ तस्मादश्वा० क्र. १
 इति पुष्पाणि तुलसीपत्राबिल्वपत्रदूर्वाङ्कुरादि च यथासंभवं दद्यात् । ॐ
 यत्पुरुषं व्य० क्र. १ इति धूपं पाददेशं दर्शयन्घण्टाशब्दं कुर्वन्समर्प्य देववा-
 मभागे संस्थापयेत् । ॐ ब्राह्मणो० क्र. १ इति देवदृष्ट्यभिमुखं दीपं
 षड्वारं भ्रामयन्घण्टाशब्दं कुर्वन्समर्प्य देवदक्षिणभागे संस्थापयेत् ।
 ततो देवस्य पुरतो वामे दक्षिणे वा चतुरस्रमण्डले यन्त्रिकायां नैवेद्य-
 पात्रं संस्थाप्य गायत्र्या तुलसीपत्रेण प्रोक्ष्य तुलसीपत्रं नैवेद्योपरि
 संस्थाप्य ॐ चन्द्रमा० क्र. १ ॐ प्राणाय स्वाहेत्यादिमन्त्रैर्घण्टां वादय-
 न्नैवेद्यं समर्पयेत् । पानार्थं जलं नाममन्त्रेणोत्तरमाचमनीयं चन्दनेन
 करोद्वर्तनं फलं च समर्प्य ॐ नाभ्या आ० क्र. १ इति मुखवासं स०
 ॐ सप्तास्याऽऽस० क्र. १ इति मन्त्रमुच्चार्य स्तोत्रं पठेत् । तच्च तत्तद्देवता-
 कसूक्तपुरुषसूक्तोत्तरनारायणादि वैदिकम् । अथ वा ऋग्विधानोक्तं
 महापुरुषविद्याख्यं सूक्तम् ।

ॐ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
 नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥ १ ॥
 नमो हिरण्यगर्भाय प्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
 ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥ २ ॥
 देवानां दानवानां च सामान्यमधिदैवतम् ।
 सर्वदा चरणद्वंद्वं ब्रजामि शरणं तव ॥ ३ ॥
 एकस्त्वमसि लोकस्य स्रष्टा संहारकस्तथा ।
 अध्येक्षश्चानुमन्ता च गुणमायासमावृतः ॥ ४ ॥
 संसारसागरं घोरमनन्तं क्लेशसाधनम् ।
 त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः ॥ ५ ॥
 न ते रूपं न चाऽऽकारो नाऽऽयुधानि न चाऽऽस्पदम् ।
 तथाऽपि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे ॥ ६ ॥
 नैव किञ्चित्परोक्षं ते प्रत्यक्षोऽसि न कस्यचित् ।
 नैव किञ्चिदसिद्धं ते न च सिद्धोऽसि कस्यचित् ॥ ७ ॥
 कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाक्यमुत्तमम् ।
 योगिनां परमां सिद्धिं वदन्ति परमर्षयः ॥ ८ ॥

अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन्मयावहे ।
 पाहि मां पुण्डरीकाक्ष न जाने शरणं परम् ॥ ९ ॥
 कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाप्युत ।
 शरीरेऽपि गते चापि वर्धते मे महद्भयम् ॥ १० ॥
 त्वत्पादकमलादन्यन्न मे जन्मान्तरेष्वपि ।
 निमित्तं कुशलस्यास्ति येन गच्छामि सद्गतिम् ॥ ११ ॥
 विज्ञानं यदिदं प्राप्तं यदिदं ज्ञानमर्जितम् ।
 जन्मान्तरेऽपि मे देव मा भूदस्य परिक्षयः ॥ १२ ॥
 दुर्गतावपि जातायां त्वं गतिस्त्वं मतिर्मम ।
 यदि नाथं च विन्देयं तावताऽस्मि कृती सदा ॥ १३ ॥
 अकामकलुषं चित्तं मम ते पादयोः स्थितम् ।
 कामये वैष्णवत्वं तु सर्वजन्मसु केवलम् ॥ १४ ॥
 पुरुषस्य हरेः सूक्तं स्वर्ग्यं धन्यं यशस्करम् ।
 आत्मज्ञानमिदं प्रोक्तं योगज्ञानमिदं परम् ॥ १५ ॥
 इत्येवमनया स्तुत्या देवदेवं दिने दिने ।
 किंकरोऽस्मीति चाऽऽत्मानं देवायैव निवेदयेत् ॥ १६ ॥

ततः शिवादीनां तत्तदुक्तस्तोत्राणि पठित्वा तदन्ते
 ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ॥
 सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ।

इत्यादिमन्त्रैर्देवान्नमस्कुर्यात् ।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
 तानि तानि विनश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ॥

इति प्रदक्षिणत्रयमधिकं वा । ततो नाममन्त्रेण दक्षिणां समर्प्य
 श्रिये जात इत्यस्य कण्वः श्रीस्त्रिष्टुप् । नीराजनसमर्पणे वि० । ॐ श्रिये
 जातः० क्र. १ इति नीराजनं समर्प्य ॐ यज्ञेन यज्ञम० क्र. १ इति
 पुष्पाञ्जलिं समर्प्य ततो विष्वक्सेनादिभ्यो निर्माल्यं नैवेद्यस्य शतांशं
 जले दद्यात् । तत्र केचिच्छास्त्रान्तरोक्तान्मन्त्रान्पठन्ति । ते यथा—

विष्वक्सेनोद्धवाक्रूराः सनकाद्याः शुक्रादयः ।

महाविष्णुप्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु वैष्णवाः ॥ १ ॥

बाणरावणचण्डीशनन्दिभृङ्गिरिटादयः ।

सदाशिवप्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु शांभवाः ॥ २ ॥

गणेशो गालवो गार्ग्यो मङ्गलश्च सुधाकरः ।

गणेशस्य प्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु भागिनः ॥ ३ ॥

छाया संज्ञा श्राद्धदेवा दण्डमौठरकादयः ।

दिवाकरप्रसादोऽयं ब्राध्ना गृह्णन्तु शेषकम् ॥ ४ ॥

शक्तिरुच्छिष्टचाण्डाली सोमसूर्यहुताशनाः ।

महालक्ष्मीप्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु शाक्तिकाः ॥ ५ ॥

अपि वा मन्त्रं विनैव विष्वक्सेनाद्युद्देशेन निर्माल्यादि जले समर्प-
येत् । ततः सजलं शङ्खं देवोपरि भ्रामयित्वा

शङ्खमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि ।

अङ्गुलग्रं मनुष्याणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

इति शङ्खस्थमुदकं स्वशिरस्यभ्युक्ष्य ततो देवतीर्थं हृद्ग्रमं पात्रा-
न्तरेण पिबेन्न करेण । तत्र वैदिकमन्त्रः । ॐ तदस्य प्रियमभिपाथो०
॥ १ ॥ यद्वा

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।

विष्णुपादोदकं तीर्थं *जठरे धारयाम्यहम् ॥

यद्वा—कालमृत्युहरं पुण्यं हत्याकोटिविनाशनम् ।

व्याधिघ्नं पुण्यदं पास्ये विष्णुपादावनेजनम् ॥

ततः शिरसि तीर्थं धृत्वा देवमनेकधा संप्रार्थयेत्—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।

पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर ॥ १ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।

यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २ ॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।

तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष मां परमेश्वर ॥ ३ ॥

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।

त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं शिव ॥

* ख. पुस्तके समासे 'तीर्थे जठरे' इत्यत्र 'पीत्वा शिरसा' इति पाठो दर्शितः ।

मत्समो नास्ति पापिष्ठस्त्वत्समो नास्ति पापहा ।
इति ज्ञात्वा महादेव यथेच्छासि तथा कुरु ॥ ५ ॥
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ६ ॥

ततो देवशिरस्थपुष्पं स्वशिरसि धृत्वा पूजावशिष्टं चन्दनादि प्रसा-
दत्वेन धृत्वा नैवेद्यमन्नं काले भुञ्जीतेति । अयमेवार्चनविधिराश्वलाय-
नैरनुष्ठेयः । बह्वलपं वेति वचनात् । इति परिशिष्टोक्तदेवपूजाप्रयोगः ।

अथ शिवपूजा सा च लिङ्गे प्रशस्ता । शूलपाणौ लैङ्गे—

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाऽपि कर्तनम् ।

न त्वसंपूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥ इति ।

तच्च लिङ्गं द्विविधं स्थावरं चरं च । तच्च पञ्चसूत्रं कार्यम् । तल्लक्षणं
पुरुषार्थचिन्तामणौ—लिङ्गोच्चताप्रमाणसूत्रसमानसूत्रं लिङ्गमस्तकं कृत्वा
त्रिगुणिततत्सूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं स्थौल्यसूत्रपरिमितं पीठोच्चत्वं
पीठविस्तारं च कृत्वा त्रिगुणिततत्सूत्रवेष्टनार्हं पीठस्थौल्यं पीठो-
च्चतासूत्रतृतीयांशेन पीठोच्चतामध्यप्रदेशे लिङ्गस्थौल्यद्विगुणस्थौल्यमे-
कवर्गं द्विवर्गं त्रिवर्गं समं वा पीठं कृत्वा पीठस्योत्तरदिग्भागे लिङ्गोच्च-
तासमदीर्घं पीठार्धदीर्घं वा मूले तत्समविस्तारमग्रे तदर्धविस्तारं गोमु-
खाकारं प्रणालं कुर्यात् । लिङ्गमस्तकविस्तारपष्ठांशेन पीठस्य प्रणाल-
पष्ठांशेन प्रणालस्य च समन्तादुपरितनबहिर्भागं त्यक्त्वाऽऽसमन्तात्तत्परि-
माणकं खातं कुर्यादिति ।

पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत् ।

यथाकथंचिद्विधिना रमणीयं तु कारयेत् ॥

पक्वजम्बूफलाकारं सर्वकामप्रदं शिवम् ।

इतिवचनात् पार्थिवलिङ्गातिरिक्तलिङ्गे पञ्चसूत्रविधानमावश्यक-
मिति बोध्यम् ।

अखण्डं स्थावरं लिङ्गं द्विखण्डं चरमेव च ।

ये कुर्वन्ति नरा मूढा न पूजाफलभागिनः ॥

इत्यादिवचनात्स्थावरं द्विखण्डमेव चरलिङ्गमखण्डमेव कार्यम् । चर-
लिङ्गेषु यद्यपि

रत्नलिङ्गसहस्रस्य पूजया यत्फलं भवेत् ।

ततः शतगुणं पुण्यं धातुलिङ्गस्य पूजने ॥

इत्यादिवचनै रत्नधातुमृद्वाणपारदलिङ्गानि यथोत्तरं प्रशस्तान्युक्तानि
तथाऽपि केवलपारदलिङ्गस्य दुर्लभत्वात्

सप्तकृत्वस्तुलारूढं वृद्धिमेति न हीयते ॥

बाणलिङ्गमिति प्रोक्तं शेषं नार्मदमुच्यते ।

इतिलक्षणलक्षितबाणलिङ्गस्यापि दुर्लभत्वात्सुवर्णादिलिङ्गे पञ्चसूत्र-
संपादनस्याऽऽवश्यकत्वात्तस्य च दुःसंपादकत्वात्पार्थिवं तु कलौ युग इति
वचनेन कलौ पार्थिवस्यैव श्रेष्ठत्वप्रतिपादनात्तत्र पञ्चसूत्रत्वाभावेऽपि
दोषामावाच्च

आयुष्मान्बलवान्श्रीमान्पुत्रवान्धनवान्सुखी ।

वरमिष्टं लभेलिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत् ॥

इति नन्दीपुराणे प्राशस्त्यप्रतिपादनात्पार्थिवलिङ्गपूजनं प्रशस्ततरम् ।
तत्र शिवपूजनं भस्मरुद्राक्षधारणं विना न कार्यं तदुक्तं लैङ्गे —

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया ।

पूजितोऽपि महादेवो न तस्य फलदो भवेत् ॥

तथा निर्णयसिन्धौ—

विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ।

स याति नरकान्घोराभ्यावदिन्द्राश्रतुर्दश ॥

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ।

रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥

त्रैयम्बकादिमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ।

यद्वा ॐ अघोर ॐ ह्रीं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूप ह्रें
स्वाहाऽनेनाभिमन्त्र्य धारयेत् । पुरुषार्थप्रबोधे तु

प्रक्षाल्य गन्धतोयेन पञ्चगव्येन चोपरि ।

शिवाम्भसा च प्रक्षाल्य श्रीरुद्रेणाभिषेचयेत् ॥

रुद्राक्षाणां प्रतिष्ठेयमेव वैदिकसंमता ।

अथवा वैदिकमते प्रतिष्ठा नैव विद्यते ॥

इत्युक्तम् । बोपदेवः—

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे

षट्पट्टकर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ।

बाह्वोरिन्द्रोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां

वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥

प्रजापतिः—सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ।

यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥

उपचारनिर्णयो निर्मात्यग्रहणाग्रहणविचारश्च पूर्वमुक्तः । स्कान्दे—
एकं मोचाफलं पक्वं यः शिवाय निवेदयेत् ।

सर्वभक्षमहाभोगैः शिवलोके महीयते ॥

मोचा कदली । गौतमः—

रात्राबुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव हि ।

शिवार्चनं सदाऽप्येवं शुचिः कुर्याद्बुदङ्मुखः ॥

सदा रात्रौ दिवा चेत्यर्थः । रुद्रयामलेऽपि—

न प्राचीमग्रतः शंभोर्नोदीचीं शक्तिसंश्रिताम् ।

न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतो दक्षं समाश्रयेत् ॥

इदं चरलिङ्गविषयम् । तदुक्तं क्रियासारे—

चरलिङ्गेऽर्चयेद्देवं पूर्वाभिवदनं बुधः ।

स्थिरालिङ्गे यथाकृतमुखमादौ तथाऽर्चयेत् ॥

अथ पार्थिवलिङ्गपूजाप्रयोगः । देशकालौ स्मृत्वा मम चतुर्विधपुरु-
षार्थसिद्ध्यर्थं पार्थिवलिङ्गपूजनमहं करिष्ये । ॐ हराय नम इति मृदमा-
हृत्य शोधितायां तस्यां जलप्रक्षेपेण संपीड्य तेन पिण्डेन ॐ महेश्वराय
नम इति लिङ्गं कुर्यात् । तच्च लिङ्गमशीतिगुञ्जात्मककर्पादधिकपरिमा-
णमङ्गुष्ठमात्रं ततोऽधिकं वा कार्यं न न्यूनम् । ॐ शूलपाणये नमः शिव
इह प्रतिष्ठितो भवेति सखित्वपत्रे पूजापीठे प्रतिष्ठाप्य ध्यायेन्नित्यं महेश-
मिति ध्यात्वा ॐ पिनाकधृषे नमः श्रीसाम्ब शिव इहाऽऽगच्छेह प्रति-
ष्ठेह संनिहितो भवेत्यावाहयेत् । इह द्विजानां सर्वत्र मूलमन्त्रोऽपि ज्ञेयः ।
तत ॐ नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण पाद्यमर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पशुपतये
नम इति मूलेन च स्नानं वस्त्रमुपवीतं गन्धान्पुष्पं धूपदीपनैवेद्यफलता-
म्बूलनीराजनमन्त्रपुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा शर्वाय क्षितिमूर्तये नम इति प्राच्यां
पूजयेत् । भवाय जलमूर्तये नम इतीशान्यां रुद्रायाग्निसूर्तये नम इत्युदी-
च्यामुग्राय वायुमूर्तये नम इति वायव्यां भीमायाऽऽकाशमूर्तये नम इति
प्रतीच्यां पशुपतये यजमानमूर्तये नम इति नैऋत्यां महादेवाय सोममू-
र्तये नम इति दक्षिणस्यामीशानाय सूर्यमूर्तये नम इत्याग्नेय्यां ततः
स्तुत्वा नमस्कृत्य महादेवाय नम इति विसर्जयेत् । इति । विस्तरस्तु

पुरुषार्थचिन्तामणौ ज्ञेयः । दानधर्मस्थशिवसहस्रनामसु मुख्यान्यष्टना-
मान्युक्तानि । तदनुक्रमः शिवपुराणे—

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।

संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ॥

नामाष्टकमिदं तस्य प्रतिपादितमीशितुः ॥ इति ।

एतैरष्टनामभिः पूजाकाले बित्त्वपत्राण्यर्पयेत् । लिङ्गपूजान्ते कर्तव्यं
महोदधौ—

लिङ्गपूजां विधायाग्रे स्तोत्रं वा शतरुद्रियम् ।

प्रजपेत्तन्मना भूत्वा शिवे स्वं विनिवेदयेत् ॥

इति पार्थिवपूजाविधिः । अथ पूजानुकल्पाः । तत्र पारिजाते—

दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा ।

अर्चितं तेन वै सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

ऋग्विधाने—सहस्रशीर्षामूक्तं तु त्रिवारं च दिने दिने ।

विष्ण्वादिसर्वदेवानां सर्वार्चनफलं लभेत् ॥

महोदधौ—अशक्तः कारयेत्पूजां दद्यादर्चनसाधनम् ।

दानाशक्तः समर्चन्तं पश्येत्तत्परमानसः ॥

केवलनैवेद्यसमर्पणेनैव पूजासिद्धिरिति परिशिष्टव्याख्यायां पूर्वमुक्तम् ।

गन्धपुष्पसमर्पणमात्रेण पूजासिद्धिरित्यपि पूर्वमुक्तम् । इत्याचारेन्दौ

पूजानुकल्पाः । अथ पूजाधिकारिणो लैङ्गे—

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचैरप्यशुचैरपि ।

स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रादपि सुदुःसहः ॥ इति ।

अत्र केचित्स्त्रीशूद्रपदमसत्स्त्रीशूद्रपरम् ।

मद्यपस्तु समासाद्य मम कर्मपरायणः ॥

तस्य पापं प्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि तत्त्वतः ।

एकजन्म भवेद्बुधश्चाण्डालः सप्तजन्मसु ॥

इति वाराहोक्त्यैकवाक्यत्वाद्विष्णुमन्त्रदीक्षितादिसत्स्त्रीशूद्रैस्तु स्पर्श-

वत्यपि पूजा कार्येत्याहुः । भट्टास्तु स्पर्शसहितपूजाया निषेधार्थत्वम-

विशेषेण मन्यन्ते । वस्तुतस्तु स्त्रीशूद्रादिस्पर्शनिषेधः प्रतिष्ठितलिङ्गशा-

लग्नविषयः ।

यदा प्रतिष्ठितं लिङ्गं मन्त्रविद्धिर्यथाविधि ।

तदाप्रभृति शूद्रश्च योषिद्वाऽपि न संस्पृशेत् ॥

इति बृहन्नारदीये प्रकरणवाक्याभ्यां प्रतिष्ठितयोरेव विष्णुलिङ्गयोः
स्पर्शनिषेधाभिधानात् । एतेन—

स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर ।
स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥
शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा ।
केशवं च शिवं वाऽपि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥

इति निषेधा अपि व्याख्याताः । इति पूजाधिकारिणः । अथ पुराण-
पूजा । तत्र स्कन्दपुराणे—

वैष्णवानि तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति सदा गृहे ।
धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुस्तेषां वरप्रदः ॥
धारयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं हि ये ।
कल्पकोटिसहस्राणि विष्णुलोके वसन्ति ते ॥

अथ गुरुपूजा । स्मृत्यर्थसारे—

एवं देवार्चनं कृत्वा गुरुं संपूज्य यत्नतः ।
पुष्पं क्षिप्त्वा प्रणम्याथ नित्यदानं स्वशक्तितः ॥
कृत्वा वृद्धान्नमस्कृत्य कर्तव्यं मङ्गलेक्षणम् ।

मात्स्ये—तत्रोपदेष्टारमपि पूजयेच्च ततो गुरुम् ।

न पूज्यते गुरुर्यत्र नरैस्तत्राफला क्रिया ॥ इति ।

अथ तुलसीपूजा स्कान्दे—

दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाऽथ वा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता ।
रोपिता सिञ्चिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥

तथा—धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ।
सफलं जीवितं तस्य त्रितयं यस्य वेश्मनि ॥

इति माटेइत्युपनामकत्रयम्बकविरचित आचारेन्दौ पूजाप्रकरणं
समाप्तम् ।

अथ मङ्गलदर्शनादि मनुः—

अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ।

दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात्पश्येत्सदा बुधः ॥

कपिला कपिलवर्णा धेनुरिति माधवः । नारदोऽपि—

लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।
 हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥
 एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेत्तु यः ।
 प्रदक्षिणं तु कुर्वीत तथाऽस्याऽऽयुर्न हीयते ॥

वामनपुराणे—

होमं च कृत्वाऽऽलभनं शुभानां ततो बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम् ।
 दूर्वां च सर्पिर्दधि चोदकुम्भं धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम् ॥
 मृद्धोमयं स्वस्तिकमक्षतांश्च चैलं मधु ब्राह्मणकन्यकां च ।
 श्वेतानि पुष्पाणि तथा शमीं च हुताशनं चन्दनमर्कविम्बम् ॥
 अश्वत्थवृक्षं च समालभेत ततश्च कुर्यान्नजजातिधर्मम् ।
 भरद्वाजोऽपि—कण्डूय पृष्ठतो गां तु कृत्वा वाऽश्वत्थवन्दनम् ।
 उपगम्य गुरुन्सर्वान्विप्रांश्चैवाभिवादयेत् ॥ इति ।

प्रदक्षिणार्हाणि स्मृतिदीपिकायाम्—

चित्रभानुमनद्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् ॥
 ब्राह्मणं धार्मिकं चैव नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ इति ।

चित्रभानुरग्निः । रक्षणमात्रेण शुद्धिप्रदान्पदार्थानाह पराशरः—
 अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ।
 तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ इति ।

अथ धार्याण्याह भरद्वाजः—

विष्णुक्रान्तां शमीं दूर्वां चन्दनं शङ्खपुष्पिकाम् ।
 सिद्धार्थांश्च प्रियङ्गूँश्च प्रातः शिरसि धारयेत् ॥
 रत्नावल्याम्—धार्याणि शिरसा नित्यं पुष्पाणि श्रियमिच्छता ॥ इति ।
 छागलेयः—यतीनां दर्शनं चैव स्पर्शनं भाषणं तथा ।
 कुर्वाणः पूर्यते नित्यं तस्मात्पश्येत नित्यशः ॥

इति मङ्गलदर्शनादि । एतावदष्टधा विभक्तस्याह आद्यभागे कर्तव्यम् ।
 दिवसस्याऽऽद्यभागे तु सर्वमेतत्समाचरेत् ।

इति दक्षोक्तेः ।

इति माटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्रयम्बकविरचित आचारेन्दाव-
 ष्ठधाविभक्तदिवसस्य प्रथमभागकृत्यम् ।

तर्तुं संसृतिवारिधेस्त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभो—

येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संहृतम् ।

यश्चैतन्यघनः प्रमाणपुरतो वेदान्तवेद्यो विभु-

स्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम् ॥

अथ द्वितीयभागकृत्यम् । दक्षस्मृतौ—

द्वितीये च तथा भागे वेदाभ्यासो विधीयते ।

स पञ्चधा तदुक्तं षट्त्रिंशन्मते—

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ।

तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यः—वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च ।

विविधानि धर्मशास्त्रादीनि न तु बौद्धादिसंमतानि ।

अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः ।

इति कौर्मात् । एतस्मिन्नेव भागे कृत्यान्तरमाह

दक्षः—समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः ।

इति द्वितीयभागकृत्यम् । अथ तृतीयभागकृत्यम् ।

दक्षः—तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम् । इति ।

कुर्यादिति शेषः । पोष्यवर्गं स एवाऽऽह—

माता पिता गुरुभार्या प्रजाहीनः समाश्रितः ।

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥

मनुरपि-वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ।

अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥

दानप्रकाशे—ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथाऽनाथः समाश्रितः ।

अन्योऽपि धनयुक्तस्य पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥

ज्ञातिः सपिण्डः । बन्धुः पितृबन्धादिः, द्वयोर्विशेषणं क्षीण इति ।

अनाथः पोषकरहितः । इदं समाश्रितविशेषणम् । कौर्मे—

उपेयादीश्वरं चाथ योगक्षेमार्थसिद्धये ।

साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विजः ॥ इति ।

ईश्वरं राजानमन्यं वा समर्थम् । अप्राप्तस्य प्रापणं योगः । प्राप्तस्य

पालनं क्षेमः । एतच्च धनसाधनं यथावृत्तिं कार्यं तदाह मनुः—

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।

अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥

अगर्हितानि याजनादीनि । तदुक्तं तेनैव—

पण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।

याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ इति ।

अत्र विशेषः श्रीमद्भागवते—

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ।

अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषहृक्तयोः ॥ इति ।

वृत्त्यन्तरमाह गौतमः—कृषिवाणिज्ये वाऽस्वयंकृते कुसीदं चेति ।
कुसीदं वृद्ध्यर्थं द्रव्यप्रयोगः । तत्र याज्ञवल्क्यः—

अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके ।

वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—कुसूलकुम्भीधान्यो वा ज्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वा ।

जीवेद्वाऽपि शिलोञ्छेन श्रेयानेषां परः परः ॥

स्वकुटुम्बपोषणे द्वादशाहपर्याप्तधान्यः कुसूलधान्यः । षडहपर्याप्त-
धान्यः कुम्भीधान्यः । ज्याहिकाश्वस्तनौ प्रसिद्धौ । अश्वस्तनिकवृत्तिः
कलौ वर्ज्या । अश्वस्तनिकता तथेति माधवीयकलिवर्ज्यपाठात् । श्रीम-
द्भागवते—

वार्ता विचित्राः शालीनं यायावरशिलोञ्छनम् ।

विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥

वार्ता विचित्राः कृष्यादिरूपाः । शालीनं धाष्ट्यं विनैव प्राप्तमया-
चितम् । यायावरं प्रत्यहं धान्ययाज्ना । शिलं शालिक्षेत्रादौ स्वामित्य-
क्तकणिशोपादानम् । उञ्छनमापणादिपतितकणोपादानम् । शिलो-
ञ्छनद्वयमेकीकृत्य चतुर्धेतुक्तम् । श्रेयस्युत्तमा । शिलोञ्छवृत्तिः कलौ
वर्ज्येति ग्रन्थान्तरे । चतुर्विंशतिमते—

राजप्रतिग्रहो घोरो मध्वास्वादो विषोपमः ।

पुत्रमांसं वरं भोक्तुं न तु राजप्रतिग्रहः ॥

एतच्चोच्छास्त्रवर्तिराजविषयम् । तथा च याज्ञवल्क्यः—

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयालुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः । इति ।

धर्मिष्ठराजप्रतिग्रहस्तु ज्यायानेव । तदाह नारदः—

शुचीनामशुचीनां च संनिपातो यथाऽम्भसि ।

समुद्रे समतां याति तद्द्राक्षां धनागमः ॥

यथाऽग्नौ संस्थितं सर्वं शुद्धिमायाति काञ्चनम् ।
एवं प्रतिग्रहाः सर्वे शुचितां यान्ति राजनि ॥ इति ।

इदं चानापदि । आपदि तु लुब्धादेरपि राज्ञः प्रतिग्रहे न दोषः ।
तदुक्तं चतुर्विंशतिमते—

सीदंश्चेत्प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणेभ्यस्ततो नृपात् ।
ततस्तु वैश्यशूद्रेभ्यः शङ्खस्य वचनं यथा ॥ इति ।
स्कान्देऽपि—दुर्भिक्षे दारुणे प्राप्ते कुटुम्बे सीदति क्षुधा ।
असतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेव च ॥ इति ।

द्रव्यतो वर्ज्यप्रतिग्रहमाह मनुः—

तिलधेनुर्गजो वार्जा प्रेतान्नमजिनं मणिः ।
सुरभिः सूयमाना च घोराः सप्त प्रतिग्रहाः ॥ इति ।

अथाप्रत्यारब्धेयान्याह याज्ञवल्क्यः—

कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः ।
मांसं शय्याऽऽसनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥
अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।
अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥

एतच्छाकादिकं स्वयमुपानीतं न प्रत्याख्येयम् । यस्मादयाचितमेतत्कु-
शादिकमाहृतं दुष्कृतकर्मणोऽपि संबन्धि ग्राह्यं किमुत यथोक्तकारिणः,
तस्मान्न प्रत्याख्येयमिति । मिताक्षरायाम्—

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वाज्याभयदक्षिणाम् ॥

अभ्युद्यतं पक्वान्नाद्यपि । क्षत्रियादेस्तु युद्धादयोऽर्जनोपायाः । तथा
च गौतमः—स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं
लब्धं विजितं क्षत्रियस्य निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोरिति ।

अथाऽऽपद्रवृत्तयः । तत्र ब्राह्मणस्याऽऽह नारदः—

आपद्यनन्तरा वृत्तिर्ब्राह्मणस्य विधीयते ।
वैश्यवृत्तिस्ततश्चोक्ता न जघन्या कथंचन ॥ इति ।

अनन्तरा क्षत्रियवृत्तिः । जघन्या शूद्रवृत्तिः । याज्ञवल्क्यः—

कृषिः शिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः ।
सेवानूपं नृपो भैक्षमापत्तौ जीवनानि तु ॥

कृषिः स्वकृता । शिल्पं क्रियाकौशलम् । भृतिर्वेतनम् । विद्या भृत-
काध्यापनादि कुसीदं स्वयंकृता वृद्धिः । शकटं धान्यादिवाहनेन जीव-
नसाधनम् । एवं गिरिस्तृणादिना । अनूपं जलप्रायदेशः शाकादिना ।
तथा विक्रेयविषये नारदः—

ब्राह्मणस्य तु विक्रेयं शुष्कदारुतृणानि च ।
गन्धमुच्चैरकावेत्रतूलं मूलं कुशावृते ॥

अविक्रेयाण्याह याज्ञवल्क्यः—

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपदीरुधः ।
तिलौदनरसक्षारान्दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥
शस्त्रासवमधूच्छिष्टमधुलाक्षासबर्हिपः ।
सृच्चर्मपुष्पकुंतुपकेशतक्रविषाक्षितीः ॥
कौशेयनीलीलवणमांसैकशफसीसकान् ।
शाकाद्रौषधिपिण्याकपशुगन्धास्तथैव च ॥
वैश्यवृत्त्याऽपि जीवन्नो विक्रीणीत कदाचन ।

सर्वानेतान्वैश्यवृत्त्या जीवन्ब्राह्मणः कदाचिदपि नो विक्रीणीत क्षत्रि-
यादेस्तु न दोषः । अत एव नारदेन—

वैश्यवृत्तावविक्रेयं ब्राह्मणस्य पयो दधि ।

इति ब्राह्मणग्रहणम् । द्विजेभ्यो गोरसादेः क्रयौऽपि निषिद्धः ।
तदुक्तं पाराशरपुराणे—

पिण्याकं सक्तवस्तैलं गव्यं तक्रादिकं तथा ।
शूद्रादेव तु संग्राह्यं न द्विजेभ्यः कदाचन ॥ इति ।

प्रतिप्रसवमाह—

धर्मार्थं विक्रयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ।

तिलन्यायो रसेऽपि योजनीयः । अत एव मनुः—

रसा रसैर्निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः ।

कृतान्नं च कृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥ इति ।

अन्नेन चान्नस्य मनुष्याणां मनुष्यै रसानां च रसैर्गन्धानां च गन्धै-
र्विद्यया विद्यानामिति । आपदुक्तक्षात्रादिधर्ममपेक्ष्य ब्राह्मणादेर्विगु-
णोऽपि स्वधर्म एव श्रेयान् । यदुक्तं मनुना—

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।

परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ इति ।

इत्यापदवृत्तयः । धनार्जनार्थं प्रवासप्रसक्तौ ताद्विधिः कारिकायाम्—
कश्चिद्धनार्थं सूक्तेन वयमु त्वा पथस्पते ॥

धनार्थं धनमर्जयितुं प्रवृत्तः पूर्ववत्प्रत्यूचं होमं कुर्यात्सूक्तं तु वा
जपेत् । केवलगृह्याग्निमतो मासद्वयावधिप्रवासः । उक्तं च पैठीनसिना—
प्रसखलीकृतधर्मस्य पीड्यमानस्य शत्रुभिः ।

मासद्वयं प्रवासोऽस्ति परतो नाऽऽहिताग्निवत् ॥

मासद्वयोपर्यनाहिताग्नेराहिताग्निवत्प्रवासो नास्तीति तुर्यपादार्थः ।
मासद्वयावधिप्रवासे होमार्थं द्विजं परिकल्प्य प्रवसेदित्याह कात्यायनः—

निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यत्विजं तथा ।

प्रवसेत्कार्यवान्विप्रो वृथैव न चिरं वसेत् ॥ इति ।

अत्र कार्यवानिति धनार्थो न तु तपोर्थी ।

धनान्यर्जयितुं युक्तः प्रवासो ह्यग्निहोत्रिणः ।

धनैर्यत्संभवेदिज्या तपाद्यर्थं न तु व्रजेत् ॥

इति सत्यव्रतोक्तेः । तीर्थाद्यकरणे कारणमाह मण्डनः—

ब्रह्मा विष्णुः शिवः सूर्यो गोविप्राः पितुर्देवताः ।

अग्निहोत्रिगृहे सन्ति तीर्थानि च तपांसि च ॥ इति ।

साग्निकविषये त्रिकाण्डमण्डन आह—

अग्निहोत्रेण रहितः पन्थानं शतयोजनम् ।

साग्निस्तु प्रतियात्येवमग्निहोत्रं विनश्यति ॥

प्रवासविधिप्रयोगः । अग्निं प्रज्वाल्याऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ
संकीर्त्य प्रवासविधिं करिष्य इति संकल्प्य तीर्थेन प्रपद्यौपासनस्य जघन-
देशे स्थित्वा ॐ अभयं वोऽभयं मेऽस्तु इति मन्त्रेणौपासनाग्निमुपस्थाय
प्रदक्षिणमावृत्य तीर्थेन निष्क्रम्य तमग्निमनवेक्षमाणो मा प्रगामेति सूक्तं
जपन्प्रव्रज्य यावद्गृहाच्छादनं न दृश्यते तावद्गृत्वा वाचं विसृजेत् । ततः
पन्थानं प्राप्य सदा सुग इत्यृचं ब्रूयात् । इष्टकालं प्रवासं कृत्वा पुनरागत्य
ग्रामसीमायां स्थित्वा, अपि पन्थामगन्महीति पठित्वा यतवाक्पुत्रादि-
द्वाराऽग्निं प्रकटीकृत्य ज्वलन्तमिति ज्ञात्वा तीर्थेनौपासनस्य जघनभागे
स्थित्वाऽभयमिति मन्त्रेणौपासनाग्निमुपस्थाय दशरात्रादूर्ध्वप्रवासनिमित्तं

चतुर्गृहीतेनाऽऽज्येन मनस्वत्या होष्यामीति संकल्प्य परिसमूहनादित्रयं कृत्वाऽऽज्यं संस्कृत्य चतुर्गृहीतं कृत्वा ॐ मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञं समिधं दधातु । या इष्टा उपसो निष्ठुचश्च ताः संदधामि हविषा घृतेन स्वाहा । मनसे ज्योतिष इदं० । प्राग्दशरात्रादिदं न भवति । ततः परिस्तरणविसर्जनादि । ततो गृहानीक्षेत गृहा मा बिभीतो पवः स्वस्त्येवोऽस्मासु च प्रजायध्वं मा च वो गोपतीरिषदिति मन्त्रेण । ततः प्रपद्येत

गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नो वीरवतः सुवीरान् ।

इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संविशानि ॥ इति ।

शिवं शमं शंयोः शंयोरिति मन्त्रेण गच्छन्सर्वान्पदार्थाननुवीक्षमाणस्त्रिरावृत्य मन्त्रं ब्रूयात् । ततः पुत्रस्य शिरः प्रतिगृह्य मूर्धनि त्रिरवघ्राय जपति ।

ॐ अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।

आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम् ॥ इति ।

तस्मिन्नहन्यवगतमप्यप्रियं प्रवासादागताय न निवेदयेयुः । इति केवलसाग्निकस्य पुरुषप्रवासविधिः । अयं च श्रौतसूत्र उक्तः । अस्य च

श्रौतोक्तमधिरुद्धं यन्मृग्यं तु शतशस्त्विदम् ।

इति कारिकोक्तेः स्मार्तेऽपि प्राप्तिः । अथ संक्षिप्तप्रकारः प्रयोगरत्ने— होमान्ते पूर्वोक्तमन्त्रैरुपस्थाय पुनः प्रवासार्थमभयं वोऽभयं मेऽस्त्विति मन्त्रेणाग्निमुपस्थाय प्रोष्य पुनः स्वगृहसमीपमेत्य ॐ गृहा मा इति गृहं निरीक्ष्य ॐ गृहानहं० इति गृहं प्रविश्य ॐ शिवं शमं शंयोः शंयोरिति पुनस्त्रिरनुवीक्ष्य होमकाल उपस्थानान्तं कृत्वा ॐ अभयं वोऽभयं मेऽस्त्विति पुनरग्निमुपतिष्ठेत । ततः पुत्रशिरोवघ्राणादि समानमिति । वस्तुतस्तु गृहानीक्षेताप्यनाहिताग्निरिति सूत्रवृत्तावीक्षणं प्रपदनं चानाहिताग्निरपि कुर्यादित्युक्तेः प्रवासादेत्य पुत्रस्य शिरः परिगृह्येत्यादि गृह्यसूत्र उक्तत्वाच्चेक्षणप्रपदनपुत्रशिरोवघ्राणान्येव कार्याणि नान्यदुपस्थानादीति । संस्काररत्नमालायां तु सर्वोऽपि प्रवासविधिर्गार्ह्यं कृताकृतः । तत्र करणे त्वभ्युदयः । अकरणे प्रत्यवायाभाव इति ज्ञेयम् । करणपक्षे सर्वदा कर्तव्य एवेत्युक्तम् । इदानींतनशिष्टैरकरणपक्ष एव स्वीकृतः । अथ समार्यस्य प्रवासे प्रसक्तेऽग्निसमारोपणविधिः । काल-

होमानन्तरम् । अयं ते योनिरित्यस्य गाथिपुत्रो विश्वामित्रोऽग्निस्त्रिष्टुप् ।
अग्निसमारोपणे वि० । ३० अयं ते ऋ. १ इत्यनेनाराणिद्वयेऽग्निं समा-
रोपयेत् । अथ वाऽनेनैवाश्वत्थसमिधि समारोपयेत् । तत्र प्रादुष्करण-
कालेऽरणीसमारोपेऽरणी निर्मन्थ्य प्रत्यवरोह जातवेद इत्यनेन स्थण्डि-
लेऽग्निं प्रतिष्ठापयेत् । अश्वत्थसमित्समारोपणपक्षे श्रोत्रियागारादग्निमा-
हृत्य संस्कृते स्थण्डिले प्रतिष्ठाप्य प्रत्यवरोहेतिमन्त्रेण तां समिधं निद-
ध्यादिति । संकटे केवलपत्न्याऽपि प्रवासोपस्थानमकृत्यैव प्रवासः
कर्तव्य एवेति प्रायश्चित्तकुतूहलादौ ।

अथात्र प्रसङ्गात्पुनराधाननिमित्तानि । कात्यायनः—

विहायाग्निं सभार्यश्चेत्सीमामुलङ्घ्य गच्छति ।

होमकालात्यये तस्य पुनराधानमर्हति ॥

अत्र सीमा गृहसीमा न तु ग्रामसीमा । तदुक्तं त्रिकाण्डमण्डनेन—

विहारकाले यदि कार्यलोभा-

त्पत्नी तु सीमानमतीत्य गच्छेत् ।

निःसंशयोऽग्निः खलु नाशमेति

गृहस्य सीमाऽत्र विवक्षितोऽर्थः ॥ इति ।

शौनकः—अग्नावनुगते यत्र होमकालद्वयं व्रजेत् ।

उभयोर्विप्रवासे वा लौकिकोऽग्निर्विधीयते ॥

गोविन्दार्णवे तु—

द्वादशाहे कृते होमे स्थालीपाकत्रये तथा ।

पिण्डयज्ञात्यये चैव अग्निर्नश्यति वै ध्रुवम् ॥

श्रौतहोमत्रये लोपे पुनराधानमिष्यते ।

आश्वलायनानां तु द्वादशदिनं होमलोप एवाग्निनाशः ।

भगवान्—प्रोषिते तु यदा पत्नी यदि ग्रामान्तरं व्रजेत् ।

होमकाले यदि प्राप्ता न सा दोषेण युज्यते ॥

अथ तत्रैव वसतिर्होमकालव्यतिक्रमः ।

लौकिकोऽग्निर्विधीयेत काठकश्रुतिदर्शनात् ॥ इति ।

मण्डनः—

संध्यावदन्यथाऽप्यग्नीन्हित्वा चेदंपती गतौ ।

ग्रामं वाऽप्यथ सीमान्तं तत्रैकेऽग्नीन्गतान्विदुः ॥

अन्ये ग्रामान्तरं गत्वा न त्वतिक्रममात्रतः ।
सीमि त्वतिक्रमादेव केवलान्नाशमब्रुवन् ॥
यदोभावप्यतिक्रम्य सीमां प्रत्यागतौ पुनः ।
उदयास्तमयात्पूर्वं न नाशोऽत्रेति केचन ॥

तथा—पत्न्यन्तरेऽथ वा पत्यौ हुताशनसमीपगे ।
तदा पत्नी यथाकाममतिक्रामेन्नदीमपि ॥

असमुद्रगामिनीमिति केचित् ।

अब्दं स्वयमजुह्वानो हावयेदृत्विगादिना ।
तस्य स्यात्पुनराधेयं पवित्रेष्टिरथापि वा ॥ इति ।

यज्ञपार्श्वे—गजोद्वृषभं नारी समारुह्याथ वा पुमान् ।
योजने योजने कृच्छ्रमग्निश्चापि विनश्यति ॥

प्रायश्चित्तप्रदीपे—

आहिताग्निस्तु यो मोहादनुगच्छेच्छवं यदि ।
तदाऽग्नीनां विनाशः स्यादिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ इति ।

इदमन्यगोत्रविषयम् ।

आहिताग्निः प्रमादाद्वा प्रेतानुगमनं यदि ।
अग्निनाशं विजानीयात्सपिण्डे तु न दोषकृत् ॥

इति प्रायश्चित्तकेशवीकारोक्तेः ।

आहिताग्नेः प्रमादाच्चेच्छवानुगमनं यदि ।
अग्निनाशं विजानीयात्सगोत्रेषु न दोषकृत् ॥

इति प्रयोगदर्पणे स्मृतिवचनाच्च । वाहिनीपद्धतावपि—असपिण्डश-
वानुगमने शवस्पर्शं च पुनराधानमिति । आहिताग्निग्रहणं साग्निकोपल-
क्षणमिति केचित् । एवमन्यान्यपि निमित्तानि ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञात-
व्यानि विस्तृतिभीतेनात्र लिखितानि । इति पुनराधाननिमित्तानि ।

अथार्जितधनस्य विभागः । दानधर्मे—

धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम् ।
कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः ॥
एकेनांशेन धर्मार्थश्चर्तव्यो भूतिमिच्छता ।
एकेनांशेन कामार्थ एकमंशं विवर्धयेत् ॥

कामः कुटुम्बस्याऽऽत्मनश्चाऽऽवश्यको भोगः । वर्धयेदित्यनेन धनेन धनान्तरमर्जयेदित्यर्थः प्राप्यते । तथा च विदेशगमनाद्युपयोगितया शस्त्रवाहनादिसंपादकतया सेवादिसंपादकतया वा ब्राह्मणादीनां धनसाधनत्वं धनस्येति बोध्यम् । अयं चौचित्यावर्जिते विभागप्रकारः । अन्यथा नियमादृष्टकल्पनापत्तेरतः स्वल्पतरपरिजनस्येतोऽप्यधिकदाने बहुतरपरिजनस्य स्वल्पार्जन इतोऽपि न्यूनदाने वा न प्रत्यवायः । अत एव

एकां गां दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।

इत्यादावन्यादृशोऽपि प्रकार उक्तः । न चायं गोमात्रपरः पूर्ववचनं तु तदितरपरमिति वाच्यम् । दशन्यूनगोमतो गोदानानुपपत्तेः । प्रकारान्तरं शिवधर्मे—

तस्माच्चिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् ।

भागद्वयं तु धर्मार्थमनित्यं जीवितं यतः ॥

वित्तस्य भागपञ्चकं कृत्वा भागत्रयं जीवनार्थं भागद्वयं दानार्थमिति हेमाद्रिः । अत्रार्जितसर्वधनस्यायं पञ्चधा विभाग इति केचित् । मक्ष्यावशिष्टस्येत्यन्ये । तत्र जीवनायेति दुर्भिक्षादाविति व्याख्येयम् । श्रीमद्भागवते—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।

पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥

एतेषां वचनानामविरोधः कृपणोदारभेदेनेति कश्चित् । स्वल्पाधिकपरिजनपरतयेत्यपरे । इत्यर्जितधनविभागः ।

इति माटे इत्युपनामकनारायणसुतत्रयम्बकविरचित आचारेन्दावष्टधाविभक्तस्य दिनस्य पोष्यवर्गार्थसाधनं नाम तृतीयभागकृत्यम् ।

अथ चतुर्थभागकृत्यम् । दक्षः—

चतुर्थे तु दिवाभागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।

तिलपुष्पकुशादींश्च स्नायाच्चाकृत्रिमे जले ॥

व्यासः—स्नानं मध्यंदिने कुर्यात्सुजीर्णान्नो निरामयः ।

न भुक्तालंकृतो रोगी नाज्ञाताम्भसि नाऽऽकुले ॥

निरामय इत्यनेनाऽऽमययुक्तो न स्नायादित्युक्तं भवति । अथ गृह्यपरिशिष्टम्—अथ मध्यंदिने तीर्थमेत्य धौतपादपाणिमुखो द्विराच-

म्याऽऽयतप्राणः स्नानं संकल्प्य ऋजुदर्भपाणिः शुचौ देशे खनित्रेण भुवं
 गायत्र्यस्त्रेण खात्वोपरि मृदं चतुरङ्गुलिमुद्रास्याधस्तान्मृदं तथा खात्वा
 गायत्र्याऽऽदाय गर्तमुद्रासितयोः प्रतिपूर्य मृदमुपात्तां शुचौ तीरे निधाय
 गायत्र्या प्रोक्ष्य तच्छिरसा त्रेधा विभज्यैकेन मूर्ध्ना आ नाभेरपरेण चाध-
 स्तादात्मानमनुलिप्याप्स्वाप्लुत्य क्षालयित्वाऽऽदित्यं निरीक्ष्य तं ध्याय-
 न्स्नायादेतन्मलस्नानमाहुरथ तीरे द्विराचम्य तृतीयमस्त्रेणाऽऽदाय सव्ये
 पाणौ कृत्वा व्याहृतिभिस्त्रेधा विभज्य दक्षिणभागमस्त्रेण दिक्षु दशसु
 विनिक्षिप्योत्तरं तीर्थं क्षिप्त्वा तृतीयं गायत्र्याऽभिमन्त्रितमादित्याय दर्श-
 यित्वा तेन मूर्ध्ना आपादादायत्र्या प्रणवेन वा सर्वाङ्गमनुलिप्य सुमित्र्या
 न आप ओषधयः सन्त्विति सकृदद्भिरात्मानमभिषिच्य दुर्मित्र्यास्तस्मै
 भूयासुर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति मृच्छेपमद्भिः प्रक्षालयेदथ
 वरुणप्रार्थनादिना तर्पणान्तेनोक्तेन विधिना स्नायान्नास्मिन्प्राग्ब्रह्मयज्ञ-
 तर्पणाद्वस्त्रं निष्पीडयेदपुत्रादयो ह्यन्ते तर्प्या इत्येष स्नानविधिस्तदेतद-
 संभवेऽद्भिरेव कुर्याद्भौमादिषु च न च गृहे मृदा स्नायादिति ।

गायत्र्यस्त्रेण । प्रचोदयादितिपदं गायत्र्यस्त्रमन्त्रः । भौमादिष्विति
 भौमभानुवारादिनिषिद्धकालेषु । ते च पारिजाते—

नन्दायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च ।
 भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥
 अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ।
 मृदा स्नानं पिण्डदानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

मन्वादियुगादयस्तूत्तरत्र तिलतर्पणे वक्ष्यन्ते ॥ दक्षः—

प्रक्षाल्य यज्ञसूत्रं तु मृद्भिरद्भिः शनैः शनैः ।
 आपादमस्तकं देहं तथैव क्षालयेद्बुधः ॥

एतच्च मलापकर्पणं स्नानं तटे कार्यम् । तदुक्तं नृसिंहपुराणे—

शुचौ देशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्कुशमृत्तिकाः ।
 मृत्तोयेन स्वकं देहं बहिः संशोध्य यत्नतः ॥

अथ मध्याह्नस्नानप्रयोगः । तीर्थमेत्य प्रक्षालितपादपाणिमुखो द्विरा-
 चम्य प्राणानायम्य देशकालौ स्मृत्वाऽऽत्मनः कायवाङ्मनःकृतकर्मदोष-
 परिहारद्वाराऽऽयुरभिवृद्धिद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मध्याह्नस्ना-

करिष्य इति संकल्प्य ऋजुदर्भपाणिः शुचौ देशे ॐ प्रचोदयादितिमन्त्रेण खनित्रेण भूमिं स्वात्पोपरि मृदं चतुरङ्गुलामुद्रास्याधस्तान्मृदं पूर्ववत्पुनः स्वात्वा तां गायत्र्याऽऽदाय गर्तमुद्रासितया मृदा प्रतिपूर्योपात्तां मृदं दर्भास्तिलान्यवांस्तण्डुलांश्च शुचौ तीरे निधाय मृदं गायत्र्या प्रोक्ष्याऽऽवृत्तेन ॐ आपो ज्योऽस्वरोमिति गायत्रीशिरसा त्रिधा विमज्ज्यैकेन भागेन मूर्धादिनाभिर्यन्तं द्वितीयेन नाभेरधः पादपर्यन्तमनुलिप्याप आप्लुत्याङ्गानि क्षालयित्वाऽऽदित्यं निरीक्ष्य तं ध्यायन्स्नात्वा तीर आगत्य द्विराचम्य ॐ प्रचोदयादिति तृतीयं मृद्भागमादाय सव्ये पाणौ निधाय ॐ भूरिति दक्षिणभागमो भुव इति मध्यमभागमो स्वरित्युत्तरभागं विधाय ॐ प्रचोदयादितिमन्त्रेणाऽऽवृत्तेन दक्षिणं भागं दशसु दिक्षु निक्षिप्योत्तरभागं तीर्थे तूष्णीं क्षिप्त्वा मध्यमभागं गायत्र्याऽभिमन्त्र्याऽऽदित्याय प्रदर्श्य तेन मूर्धादिपादपर्यन्तं गायत्र्या प्रणवेन वा सर्वाङ्गमनुलिप्य ॐ सुमित्र्या न आप ओषधयः सन्त्विति दक्षिणेन पाणिनाऽद्भिरात्मानमभिषिच्य ॐ दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति मन्त्रेणाङ्गानि प्रक्षाल्याऽऽचम्य प्रातःस्नानवद्गुरुणप्रार्थनादितर्पणान्तं वस्त्रनिष्पीडनवजं कुर्यात् । प्रावरणवस्त्रं तीरे निधाय ब्रह्मयज्ञाङ्गतर्पणान्ते ये के चास्मदितिमन्त्रेण तन्निष्पीडयेदिति । मृत्तिकास्नानासंभवे भौमादिपूर्वोक्तनिषिद्धादिने गृहे च मृत्तिकास्नानं जलेनैव कुर्यादेतच्छक्तौ । अशक्तौ तु प्रातर्वत्स्नानमात्रं कुर्यादिति कगलाकरः । अत्राप्यशक्तौ पूर्वोक्तपरिशिष्टप्रकारेण मन्त्रस्नानं कुर्यात् । स्मृतिरूपेणाऽऽहाऽऽचार्यः—

स्नानं वारुणिकं चैव क्वचित्कर्तुं न शक्यते ।

तत्राऽऽदौ ब्रह्मयज्ञार्थं मन्त्रस्नानं विधीयते ॥ इति ।

इदं मध्याह्नस्नानं प्रातःस्नानापेक्षयाऽत्यावश्यकमाश्वलायनानाम् । अप आप्लुत्येति ब्रह्मयज्ञप्रकरणे तत्सूत्र उक्तत्वात् । इति मध्याह्नस्नानप्रयोगः । अथ ब्रह्मयज्ञः । तत्कालमाह बृहस्पतिः—

स चार्वाक्तर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ।

वैश्वदेवावसाने वा नान्यदर्थे निमित्ततः ॥ इति ।

अत्र प्रातराहुतेः पश्चादिति शाखान्तरविषयम् । आश्वलायनेन तु धनार्जनोत्तरकालमेव कर्तव्यताया उक्तत्वात्तदीयैस्तथैवानुष्ठेयम् । यदाह—
प्रातरेवार्जयित्वैव महायज्ञांस्ततश्चरेत् ।

स्वगृह्यविधिना कृत्वा ब्रह्मयज्ञं पुरा द्विजः ॥

स्वाध्यायतर्पणाभ्यां च गृहमेत्याऽऽचरेत्परान् ॥ इति ।

शौनकोऽपि—मध्याह्ने तु पुनः स्नात्वा ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् ।

ततो माध्याह्निकीं संध्यां कृत्वा तु गृहमाविशेत् ॥ इति ।

तैत्तिरीयश्रुतौ—मध्यंदिने प्रबलमधीयीत य एवं विद्वान्महारात्र उप-
स्युदिते । इति । एवं च ब्रह्मयज्ञः सर्वकालं भवति न तु रात्रौ निषेधः ।
तथा च सूत्रम्—तस्य द्वावनध्यायौ यदात्माऽशुचिर्यदेश इति ।

तथा श्रुतिरपि—ग्रामे मनसा स्वाध्यायमधीयीत दिवा नक्तं चेति ।
तेन पितृतर्पणमपि रात्रौ सिद्धम् । तस्य ब्रह्मयज्ञाङ्गत्वात्सूत्रे गृहानेत्य
यद्दाति सा दक्षिणेत्यन्तेन ब्रह्मयज्ञोपसंहारात् । अवगाहं ब्रह्मयज्ञ-
मिति रात्रिनिषेधकं वचनं तच्छाखान्तरपरम् । अत्र केचित्

आवर्तनेऽवगाह्यापः कुशपाणिस्तु बह्वृचः ।

ततो माध्याह्निकीं संध्यां ब्रह्मयज्ञमतः परम् ॥

इति स्मृतिसंग्रहवचनेन मध्याह्नसंध्योत्तरं ब्रह्मयज्ञ इत्याहुस्तदाश्व-
लायनेतरविषयम् । आश्वलायनानां तु तत्सूत्रे—अथ स्वाध्यायविधिरि-
त्युपक्रम्याप आप्लुत्येति मध्ये मध्याह्नस्नानमुक्त्वा ततो ब्रह्मयज्ञोक्ते-
रवान्तरप्रकरणात्स्नानं ब्रह्मयज्ञाङ्गं तयोर्मध्ये न संध्या, अङ्गाङ्गिनोरन-
ङ्गेन व्यव्यापत्तेः । कर्मणि कर्मान्तरारम्भायोगात्पूर्वोक्तशौनकवचनेऽपि
ब्रह्मयज्ञोत्तरमेव संध्योक्तेश्च ब्रह्मयज्ञोत्तरमेव संध्या । न चैवमन्ते यद्दाति
सा दक्षिणेत्युक्तेस्तावत्पर्यन्तमवान्तरप्रकरणाद्ब्रह्मयज्ञोत्तरमपि संध्या न
स्यादिति । ददातीत्यस्याविधायकत्वात् । अत एव वृत्तिकृदन्यथा
दद्यादित्येवावश्यदित्युक्तवान् । अथेतिकर्तव्यता । योगयाज्ञवल्क्यः—

प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्योपविश्य च । इति ।

श्रुतिश्च—दक्षिणत उपवीत्युपविश्येति । दक्षिणतः प्रदक्षिणं कृत्वे-
त्यर्थ इति माधवः । तत आचमनम् । तच्च श्रौतमाहाऽऽश्वलायनः—

मध्याह्ने च पुनः स्नात्वा धौतशुक्लाम्बरावृतः ।

श्रुत्युक्तविधिनाऽऽचम्य प्राङ्मासीनः कुशासने ॥

तत्प्रकारः श्रुतौ ब्रह्मयज्ञं प्रकृत्य हस्ताववनिज्य त्रिराचामेद्विः
परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य शिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभ्येति ।
अत्र सकृदुपस्पृश्येत्यस्यानन्तरं सव्यं पाणिं पादौ प्रोक्षेदित्यध्याहर्त-
व्यम् । उत्तरस्मिन्फलवाक्ये तथाऽनुक्रमणात् । प्रकारान्तरं पट्कर्म-
चन्द्रिकायाम्—

देव्याः पादैस्त्रिभिः पीत्वा अबिलङ्गैर्नवधा स्पृशेत् ।
सप्तव्याहृतिगायत्रीशिरोमन्त्रो द्विधा कृतः ॥

एते समस्य चतुर्विंशतिमन्त्रा भवन्ति । तेषां विनियोगः केशवादी-
नामिव द्रष्टव्यः । अन्यच्छ्रुत्याचमनं स्मृत्यन्तरे—

तदोङ्कारेणाऽऽचमनं यद्वा व्याहृतिभिर्भवेत् ।
सावित्र्या वाऽपि कर्तव्यमिति व्यासेन भाषितम् ॥ इति ।

यद्वा श्रौतस्मार्तपौराणेष्विच्छयाऽन्यतमं कर्तव्यं यथेष्टं वा विधीयत
इति आचमनप्रकरणे पूर्वमुक्तत्वात् । आह शौनकः—

प्राणायामैर्दग्धदोषः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
यथाविध्यप आचम्य आरोहेद्दर्भसंस्तरम् ॥

अत्र कम्बलाद्यासननिषेध उक्तः पारिजाते संग्रहे—

न कुर्यादासनस्थोऽपि ब्रह्मयज्ञं कदाचन ।
तथैवाऽऽचमनं प्रोक्तं तथैव ब्राह्मणार्चनम् ॥

ततः संकल्पः । स च तानेतान्यज्ञानहरहः कुर्वीतेत्याश्वलायनोक्तेर्ब्रह्म-
यज्ञं करिष्य इत्येव । पारिजातेऽप्येवम् । अत एव दानप्रकाशे महादा-
नविधौ महादानमहं करिष्य इत्येव संकल्पः । महादानमखं कुर्यादि-
त्युपक्रमात्पोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवेत्युपसंहाराच्चेत्युक्तम् ।
अत्राऽऽद्यन्तयोरप उपस्पर्शनं मन्त्रश्चोक्तः पारिजाते स्मृतिसार—

प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्योपविश्य च ।
वाग्यतः सोत्तरीयश्च स्पृशेद्विद्युदसीत्यपः ॥
विद्युदसीत्यस्य ऋषिरग्निर्वै समुदाहृतः ।
वाच्यमानुहुभं छन्दो वरुणो देवता स्मृता ॥
नमो ब्रह्मण इत्येतां त्रिरुद्धृत्य समापयेत् ।
आपो वृष्टिरसि स्पृष्ट्वा चान्ते जल उ(मु)पस्पृशेत् ॥
वृष्टिरसीतिमन्त्रस्य ऋषिरग्निरिति स्मृतः ।
देवः प्रजापतिस्तस्य छन्दोऽनुहुप्रकीर्तितम् ॥ इति ।

आचाररत्ने तु ब्रह्मयज्ञस्याऽऽद्यन्तयोर्विद्युद्वृष्टिमन्त्रौ पठनीयौ । सर्वेषु
यज्ञक्रतुषु होष्यन्नयः स्पृशेत्—विद्युदसि विद्य मे पाप्मानमिति । अथ
हुत्वाऽपः स्पृशेद्वृष्टिरसि घृथ मे पाप्मानमिति वक्ष्यमाणो वेष्ट्वा वेति

तैत्तिरीयश्रुतेः । श्रुतिभाष्ये माधवेऽप्येवम् । इदं तैत्तिरीयमात्रपरम् । अन्यथा बह्वृचस्य वैश्वदेवादावपि तदापत्तेः । होप्यन्नित्युक्तेः सहोमके-
प्येव यज्ञेष्विदमिति केचिदित्युक्तं तत्पारिजातधृतस्मृतिसारवचनादर्श-
नमूलकमिति वक्तुं युक्तम् । स्मृतिसारवचनेन सर्वेषामविशेषेण तत्प्राप्तेः ।
इदमत्र गृह्यम्—अथ स्वाध्यायविधिः । प्राग्वोदग्वा ग्रामान्निष्कम्याप
आप्लुत्य शुचौ देशे यज्ञोपवीत्याचम्याक्लिन्नवासा दर्भाणां महदुपस्तीर्य
प्राक्कूलानां तेषु प्राङ्मुख उपविश्योपस्थं कृत्वा दक्षिणोत्तरौ पाणी
संधाय पवित्रवन्तौ विज्ञायत इति । महदिति बह्वित्यर्थः । प्राक्कूलानां
प्रागग्रानामित्यर्थः । दक्षिणोत्तरेणोपस्थं कुर्यादपैतृकत्वादिति वृत्तिः ।
तेन पैतृके सव्योत्तर्युपस्थं सिद्धं भवति । स्मृतिरूपेणाऽऽहाऽऽचार्यः—

दक्षिणं चोपविश्योरुं वामगुल्फोपरि न्यसेत् ।

वामोरौ दक्षिणं गुल्फं तच्चोपस्थमुदीरितम् ॥

वामपादाङ्गुष्ठोपरि दक्षिणपादाङ्गुष्ठं निधाय पादपार्ष्णिमेलनेनोपस्थ-
मिति पृथ्वीचन्द्रोदयः । इतरेतरपादव्यत्यासेनोपवेशनं तदिति स्मृतिम-
ञ्जयां मदनपारिजाते च । अत्राऽऽद्य पक्ष एव सूत्रवृत्तिसंमतत्वादाश्वला-
यनानां मुख्यः । द्वितीयस्तीरादौ स्थलसंकोचे याज्यः । तृतीयस्त्वा-
श्वलायनातिरिक्तपरः । दक्षिण उत्तरो ययोः पाण्योस्तौ दक्षिणोत्तरो
पाणी पवित्रे प्रादेशमात्रे । सव्यं पाणिं प्रागङ्गुलिमुत्तानं विधाय तस्मि-
न्प्रागग्रे पवित्रे निधाय दक्षिणं पाणिं न्यञ्चं प्रागङ्गुलिं कृत्वा तेन संद-
ध्यादित्यर्थ इति वृत्तिः । यस्तु ।

पवित्रे लक्षणैर्युक्ते कृत्वाऽच्छिन्नाग्रतादिके ।

तयोरेकैकमेकैकपाणिना धारयेत्पृथक् ॥

एवं पवित्रवन्तौ द्वौ पाणी कृत्वा द्वयोरथ ।

सव्यस्य पाणेरङ्गुष्ठप्रदेशिन्योस्तु मध्यतः ॥

दक्षिणस्याङ्गुलीन्यस्येच्चतस्रोऽङ्गुष्ठवर्जिताः ।

तथा सव्यकराङ्गुष्ठं दक्षिणाङ्गुष्ठवेष्टितम् ॥

कुर्वीत चैवं संबद्धौ पाणी दक्षिणसक्थनि ।

निधाय स्वस्य हृदये पश्यन्केवलमम्बरम् ॥

इति शौनकोक्तो विशेषः सस्वसूत्रवृत्तिविरुद्धत्वादाश्वलायनैर्नाऽऽदर-
णीयः । दक्षिणसक्थिनिधानमात्रमविरुद्धत्वादपेक्षितत्वाच्च ग्राह्यम् ।
गृह्यम्—आवापृथिव्योः संधिमीक्षमाणः संमील्य वा यथा वा युक्तमा-

त्मानं मन्येत तथा युक्तोऽधीयीत स्वाध्यायमोपूर्वा व्याहृतयः सावित्रीम-
न्वाह पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामिति तृतीयमिति । प्रणवमादौ सकृदुक्त्वा
ततस्तिष्ठो व्याहृतीः समस्ता ब्रूयादिति वृत्तिः । तृतीयावृत्तौ धीमहि धिय
इत्यत्र सस्वरः संधिर्विस्वरो वेति रत्नमालायाम् । प्रतिगायत्रि प्रणवव्या-
हृतिशङ्का न कार्या । उपाकर्षण्येव तथाविधानात् । ततोऽध्येतव्यमाह
गृह्यकारः—अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसो
ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति । सूत्राण्येव
कल्पा इत्युच्यन्ते । गाथा नाम ऋग्विशेषा इन्द्रगाथादयः । यदिन्द्रादो
दाशराज्ञ इतीन्द्रगाथाः पञ्चर्चो नाराशंस्यश्च ऋच एव इदं जना उपश्रुते-
त्यादयः । इतिहासं महाभारतम् । यत्र स्थित्युत्पत्तिप्रलयाः कथ्यन्ते
तत्पुराणमिति वृत्तिः । तत्र ब्रह्मपुराणस्य प्राथमिकत्वात्तदादिश्लोकमारभ्य
पठनीयमिति केचित् । अन्ये तु वारुणीं जपित्वा वारुण्या जुहुयादिति-
सूत्रव्याख्यानेऽत्राविशेषाद्ये केचन वारुण्यौ भवत इति वृत्तिकृदुक्तत्वा-
त्तद्वद्वापि पुराणेषु यत्किमपि पुराणं पठनीयम् । अत एव श्रीमद्भागव-
ताद्यश्लोकमेव पठन्ति शिष्टाः । गृह्यम्—स यावन्मन्येत तावदधीत्येतया
परिदधाति नमो ब्रह्मणेऽकरोमीति । ऋगादीनां दशक्रमध्येतव्यमित्यु-
क्तम् । तत्र नियमेन दशानामृगादीनामध्ययने प्राप्त इदमुच्यते—स याव-
त्कालमेकाग्रमनस्तमात्मानं मन्येत तावत्कालमेवाधीयीत न दशैवेति
नियमः । सर्वदा समाहितमनसैवाध्येतव्यमिति नियम इत्यर्थः । परिधानी-
यायाश्च त्रिः पाठ इति वृत्तिः । अत्र विशेषमाचारसार आह व्यासः—

वेदनादौ समारभ्य यथोपर्युपरि क्रमात् ।

यदधीतेऽन्वहं शक्त्या स्वाध्यायं तं प्रचक्षते ॥

उपर्युपरीति प्रथमेऽह्नि वेदादीन्पठित्वा तदुत्तरं कञ्चिद्वेदभागं पठेत्तद-
न्यदिनेषु वेदादि पठित्वा तदुत्तरान्वेदभागान्पठेदिति चन्द्रिका ।
विष्णुरपि—

ॐकारं व्याहृतीस्तिस्रः सावित्रीं च तदित्यृचम् ।

मनसैतामनुस्मृत्य वेदादीन्समुपक्रमेत् ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—वेदार्थं च पुराणानि संहितासानि शक्तितः ।

जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यामाध्यात्मिकीं जपेत् ॥ इति ।

प्रत्यहं वेदादिपाठो नास्तीति पृथ्वीचन्द्रः । वेदादिपाठपक्षे यजुरगदिः,
इषे त्वेत्यारभ्य कर्मण इत्यन्तो यजुः । अग्र आयाहीति ऋक्सामादिः ।

स्वशाखाध्ययनं यत्तद्वह्नयज्ञं प्रचक्षते ।
 ब्रह्मयज्ञपरो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते ॥
 वेदाभ्यासो यथाशक्त्या ब्रह्मयज्ञक्रियाक्षमः ।
 नाशयत्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥
 ब्रह्मयज्ञपरो मर्त्यो ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेहा जायते पुनः ॥
 ब्रह्मयज्ञेन तुष्यन्ति सर्वे देवाः सवासवाः ।

याज्ञवल्क्योऽपि—

यं यं क्रतुमधीयीत तस्य तस्याऽऽप्नुयात्फलम् ।
 त्रिविधं पूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते ॥ इति ।

ब्रह्मयज्ञजपानन्तरं करस्थपवित्रे स्वोत्तरतस्त्यजेत् । तदुक्तं पारिजाते स्मृत्यन्तरे—

कुशावुत्तरतः क्षिप्त्वा तथाऽऽचमनमाचरेत् ॥ इति ।

कातीयसूत्रप्रयोगेऽपि—यथाशक्ति पठित्वाऽन्ते ॐ स्वस्तीत्युक्त्वो-
 दीच्यां दर्भाभिरस्येदिति । न चाऽऽश्वलायनानां तर्पणस्य ब्रह्मयज्ञाङ्ग-
 त्वोक्तेस्तैस्तर्पणसमाप्त्यन्तं ब्रह्मयज्ञजपकालगृहीते पवित्रे एव ग्राह्ये इति
 वाच्यम् ।

ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे ।
 हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥

इति ब्रह्मयज्ञतर्पणयोर्दर्भाणां भिन्नत्वोक्तेः । कुशाग्रैस्तर्पयेद्देवानिति
 तर्पणदर्भाणां बहुत्वोक्तेः ।

तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानिचित् ।
 तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः सप्तपत्रैर्विशेषतः ॥

इति हेमाद्रौ नारदीयाच्चेति ।

अथ तर्पणम् । तत्र गृह्यम्—देवतास्तर्पयति प्रजापतिर्ब्रह्मेत्यादि ।
 कारिकाऽपि—

अपां समीपमागत्य तर्पयेदथ देवताः ।
 एवमन्तानि तृप्यन्त्वित्यन्तैश्च प्रतिमन्त्रकम् ॥
 सिञ्चेत्प्रजापतिस्तृप्यत्वित्यपो देवतीर्थतः ।
 धातुस्तृप्तिर्यथालिङ्गं मन्त्रास्तेषूपयुज्यते ॥

अत्र द्यावापृथिवी तृप्यतामिति लोटः प्रथमपुरुषद्विदचनं प्रयोक्तव्यं तृप्येतामिति लोडात्मनेपदं प्रयुञ्जते प्राश्चः । तदशुद्धम् । तृप प्रीणन इत्यस्य धातोः परस्मैपदित्वात् । न च परस्मैपदं न भवेदिति वाच्यम् । ये चान्य आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्त्विति वक्तुराश्वलायनस्य लोटः प्रयोग-स्यैव विवक्षितत्वात् । तथा

मन्त्रैः शतर्चिनस्तृप्यन्त्वित्यादिभिरतः परम् ।
 प्रतिमन्त्रं निवीती तु तर्पयेद्वपितीर्थतः ॥
 प्राचीनावीत्यथेदानीं तर्पयेत्पितृतीर्थतः ।
 सुमन्त्वित्यादिभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं च पूर्ववत् ॥
 द्वितीयान्तेषु मन्त्रेषु तर्पयामिपदं वदेत् । इति ।
 अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
 तृप्यतामिति सेक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना ॥

इति योगयाज्ञवल्क्योक्तः सर्वत्र तृप्यतामिति प्रयोगः
 अथाङ्गिस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिः पितृनपि ।
 नामान्ते तर्पयामीति आदावोमिति च ब्रुवन् ॥

इति कात्यायनोक्तस्तर्पयामीति प्रयोगश्च स्वसूत्रवृत्तिकारिकाविरुद्ध-त्वादाश्वलायनैर्नाऽऽदर्तव्यः । आश्वलायनानां तर्पणस्य ब्रह्मयज्ञाङ्गत्वा-त्तत्र च प्रणवनिषेधात्तेषां तर्पणे प्रणवाद्यताऽपि न भवति । शिष्टाचारोऽ-प्येवम् । वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
 सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामथ वा तर्पणं भवेत् ॥ इति ।

अत्र पूर्वार्धं बह्वृचान्प्रत्युत्तरार्धमन्यान्प्रति बोध्यम् । दक्षिणं प्रतीया-दनादेश इत्याश्वलायनसूत्रात्तेषां केवलदक्षिणाङ्गप्रसक्तावन्वारम्भरूपेति-कर्तव्यतायाः सूत्रानुक्ताया अप्यविरोधेन स्मृतितो ग्रहणे बाधकाभावात् । स्पृतिप्राप्ततीर्थग्रहणादेर्वृत्तिकृतसंमतत्वाच्चेत्याचाराकर्षणः । मम त्वासनं वा सर्वत्रैवंभूतो वचनादन्यदितिसूत्रवृत्तावुक्तस्यान्यथाभावो यावन्मा-त्रस्य वचनं तावन्मात्रस्यैव न तत्संबन्धिनोऽन्यस्यापीति तेन होमादौ क्रियमाणे दक्षिणपाणे रपायेऽपि सव्यो हृदयान्नापैतीति सिद्धमित्युक्तेः सव्यपाण्यनन्वारब्धदक्षिणपाणिनैव तर्पणमाश्वलायनानामिति भाति । ननु श्रौतसूत्र उक्तस्यास्य कथं गार्ह्ये प्राप्तिरिति चेत्संबन्धकरणेन दक्षि-

णाङ्गादिपरिभाषा यथा प्राप्यन्ते तद्वदस्यापि परिभाषात्वादेव प्राप्तिरिति वक्तुं युक्तमेवेति । देवादितीर्थान्याचमनविधौ पूर्वमुक्तानि । तर्पणे प्राङ्मुखतैव । अस्य ब्रह्मयज्ञाङ्गत्वात्तत्र च प्राङ्मुखताया नियमात् । यस्तु

प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुखः सुरान् ।

उदङ्मनुष्यांस्तर्प्येत पितृन्दाक्षिणतस्तथा ॥

इति दक्षोक्तो विशेषः स स्नानाङ्गतर्पणपरः । स्थलस्थो भूमावेव तर्पणं कुर्यान्न जलादौ । तथा च विष्णुः—

स्थले स्थितो जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः ।

नोपतिष्ठति तद्वारि पितॄणां तन्निरर्थकम् ॥ इति ।

आर्द्रवासाश्चेज्जल एव ।

आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ।

शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ॥

इतिहारीतोक्तेः । भूमावपि विशेषस्तत्रैव—

वसित्वा वसनं शुष्कं स्थले विस्तीर्णवर्हिषि ।

विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यान्न पात्रेषु कदाचन ॥

पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत् ।

जलपूर्णेऽथ वा गर्ते न स्थले तु विवर्हिषि ॥ इति ।

कुशास्तरणे विशेष उक्त आग्नेयपुराणे—

प्राग्नेषु सुरांस्तर्प्यन्मनुष्यांश्चैव मध्यतः ।

पितॄंस्तु दक्षिणाग्नेषु चैकद्वित्रिजलाञ्जलीन् ॥ इति ।

यत्र पुनरशुचिस्थलं तत्र जले दद्यादित्याह विष्णुः—

यत्राशुचिस्थलं वा स्यादुदके देवताः पितॄन् ।

तर्पयेत्तु यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ इति ।

मदनस्तु वस्त्रं परिधायाद्भिरेवाप्सु यथोत्तरं देवान्पितॄंस्तर्पयेदिति बौधायनेन जल एव तर्पणविधानात्स्थलस्थस्यानुद्धृतजलेन तर्पणे जल-स्थलयोरधिकरणयोर्विकल्प इत्याह । आचारप्रकाशे तु—

जलमध्ये जलक्षेपो गङ्गादिषु विधीयते ।

ह्रदादिषु तटक्षेपो नो जातु जलमध्यतः ॥

इति स्कान्दवचनाद्व्यवस्थोक्ता । करणपात्रमाह च्छागलेयः—

लघुपात्रं करे कृत्वा सौवर्णं खाड्गमेव वा ।

राजतं ताम्रजं वाऽपि तेन संतर्पयेत्पितृन् ॥

अत्र शक्तौ पात्रद्वैवाद्वितीयोः समुच्चयः । अशक्तौ केवलद्वैवाद्वितीयेन । अधिकरणपात्रमाह पितामहः—

हेमरूप्यमयं पात्रं ताम्रं कांस्यसमुद्भवम् ।

पितॄणां तर्पणे पात्रं मृन्मयं तु परित्यजेत् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—खड्गमौक्तिकहस्तेन कर्तव्यं पितृतर्पणम् ।

मणिकाञ्चनदर्भैर्वा न शुद्धेन कदाचन ॥

शुद्धेन रिक्तेन । योगयाज्ञवल्क्यस्तु—

अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रूप्यमेव च ।

कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥

मरीचिरपि—विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलैस्तथा ।

विना मन्त्रैश्च दर्भैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ इति ।

न चात्र समुच्चयो नापि समविकल्प इत्यभिप्रेत्य स एवाऽऽह—

तिलानामप्यभावे तु सुवर्णरजतान्वितम् ।

तदभावे निषिञ्चेत्तु दर्भैर्मन्त्रैश्च वा पुनः ॥ इति ।

स्मृतिदीपिकायाम्—रजते मनसा याति सुवर्णे हस्तनिःसृतम् ।

द्विमुहूर्तेन ताम्रे तु आश्वेव तु तिलोदकम् ॥

आशु शीघ्रेण ।

दर्भैः सप्तमुहूर्तेन मन्त्रमुक्तं तथाऽक्षयम् ।

इति दर्भेषु विशेषः । स्मृतिभास्करे—

कुशाग्रैस्तर्पयेद्देवान्मनुष्यान्कुशमध्यतः ।

द्विगुणीकृतमूलाग्रैः पितॄन्संतर्पयेद्विजः ॥ इति ।

भृगुस्तु ऋषितर्पण उदगग्रतामाह—

प्रागग्रैस्तर्पयेद्देवानुदगग्रैस्तु मानुषान् ।

तानेव द्विगुणीकृत्य तर्पयेत्प्रयतः पितृन् ॥ इति ।

तानेवेति देवर्षितर्पणविनियुक्तानामपि तेषां पितृतर्पणयोग्यतेत्युक्तमिति हेमाद्रिः । दर्भसंख्यामाह नारदः—

तर्पणादीनि कार्याणि पितॄणां यानि कानिचित् ।

तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः सप्तपत्रैर्विशेषतः ॥ इति ।

पात्रे—देवान्ब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयिताक्षतोदकैः ।

अक्षता यवा इति केचन । व्रीहितण्डुला इत्यन्ये । स्मृत्यन्तरे—

अग्निस्तण्डुलमिश्राभिर्देवानां तर्पणं भवेत् ।

सयवाभिर्ऋषीणां स्यात्पितॄणां सतिलोदकैः ॥ इति ।

गोभिलस्तु देवादितर्पणे वर्णभेदेन तिलानेवाऽऽह—

शुकैस्तु तर्पयेद्देवान्मनुष्याञ्छबलैस्तिलैः ।

पितॄस्तु तर्पयेत्कृष्णैस्तर्पयेत्सर्वदा द्विजः ॥

स्मृतिसारे—जलान्ते तिलदर्भादीन्नानुष्ठानाय याचयेत् ।

जलान्ते तीरे । अर्थादन्यत्र याचने न दोषः । अस्यापवादः कमलाकराह्निके—

देवातिथ्यर्चनकृते गुरुभृत्यादिवृत्तये ।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्तत्र दोषो न विद्यते ॥ इति ।

तिलग्रहणे विशेषमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

यद्युद्धृतं निषिञ्चेत्तु तिलान्संमिश्रयेज्जले ।

अतोऽन्यथा तु सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः ॥ इति ।

अन्यथाऽनुद्धृतेन तर्पणे । सव्येनेत्यधिकरण एनप्प्रत्ययो न तृतीया । सव्यपाणौ तिलान्स्थापयेदित्यर्थः । दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठतर्जन्योरन्यतरेण वामहस्तस्थतिलग्रहणम् । अथ वा येषां शाखिनामेकहस्तेन तर्पणं तेषां सव्येनैव तिलग्रहणमिति ज्ञेयम् । अस्मिन्पक्षे सव्येनेति करणे तृतीया । सव्यहस्ते तिलस्थापने विशेषो गोभिले—

रोमसंस्थांस्तिलान्कृत्वा यस्तु तर्पयते पितॄन् ।

पितरस्तर्पितास्तेन रुधिरेण मलेन वा ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—वामहस्ते तिलान्क्षिप्त्वा जलमध्ये तु तर्पयेत् ।

स्थले शाठ्या(ट्य ?)न्तरे पात्रे रोममूले न कुत्रचित् ॥

अथ तिलतर्पणनिषेधकालमाह बोपदेवः—

भौमेऽर्के भृगुजे मघागृहनिशासप्तम्यनङ्गाह्वया-

नन्दाजन्मदिनेषु संधियुगुले नो तर्पणं स्यात्तिलैः ।

नोद्वाहवतचौलवृद्धिषु समार्धार्धैकमासं क्रमा-

न्नो दुष्येत्तु मृतौ महालयगयापुण्याहतीर्थादिषु ॥

संग्रहे—नन्दायां भार्गवादिने कृत्तिकासु मघासु च ।
 भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥
 अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ।
 पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

इदं संग्रहवचनद्वयं चिन्त्यमिति कमलाकरः । मन्वादय उक्ता मत्स्य-
 पुराणे—

आश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी सिता ।
 तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥
 फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ।
 आपाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥
 श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आपाढस्यापि पूर्णिमा ।
 कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता ॥
 मन्वन्तरादयश्चैते दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ इति ।

युगादय उक्ता विष्णुपुराणे—

वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।
 नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥ इति ।

हलायुधीये—द्वादश्यां निशि सप्तम्यां रविशुक्रदिने तथा ।
 श्राद्धे जन्मदिने चैव न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

एते सर्वेऽपि निषेधास्तिलमात्रपरा न तु नित्यतर्पणपराः ।
 अन्यथा तिलतर्पणपदवैयर्थ्यापत्तेः । अत्र महेशादयः—सर्वे तिलतर्प-
 णनिषेधा गृहविषयाः ।

सप्तम्यां रविवारे च जन्मर्क्षदिवसोत्सवे ।
 गृहे निषिद्धं सतिलं तर्पणं तद्वाहिर्भवेत् ॥

इति सत्यव्रतेन निषिद्धदिनेषु बाहिस्तर्पणविधानादित्याहुः । अन्ये
 तु गृहस्य पृथगेव तिलतर्पणनिषिद्धनिमित्ततेति सर्वदैव सतिलतर्पणं
 गृहे निषिद्धमिति व्याचक्षते । अपरे तु गृहेऽपि तिलोदकेन शिष्टानां
 तर्पणाचारदर्शनात्सत्यव्रतोक्तेश्च सप्तम्यादिकालत्रय एव गृहे सतिलतर्प-
 णनिषेधः स्वारसिको न तु सर्वदा । नापि निषिद्धकालान्तरे । उपल-

क्षणत्वे प्रमाणाभावात् । अन्यथा प्रतिप्रसववाक्यानां गृह एव तर्पण-
विधाने तात्पर्यं वक्तव्यमिति महदनिष्टम् । तथाहि—

अयने विषुवे चैव संक्रान्तौ ग्रहणेषु च ।

उपाकर्मवृषोत्सर्गे युगादौ मृतिवासरे ॥

निषेधेऽपि हि सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ।

इत्यादिवचनैर्भवन्मते गृहे निषिद्धतर्पणस्य पुनः प्रापणेन संनिहि-
तेऽपि महातीर्थं गृह एव तर्पणं स्यात् । किं च जाह्नव्यादौ निषेधस्या-
प्राप्तत्वात् ।

विशेषतस्तु जाह्नव्यां सर्वदा तर्पयेत्पितृन् ।

न कालनियमस्तत्र क्रियते सर्वकर्मसु ॥

तिथितीर्थविशेषे च गङ्गायां प्रेतपक्षके ।

निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥

इति स्कान्दाद्युक्तप्रतिप्रसवोऽप्यनुपपन्नः स्यादित्याहुः । तिलतर्पण-
निषेधप्रतिप्रसवमाह गोभिलः—

संक्रान्त्यादिनिमित्तेषु स्नानाङ्गे तर्पणे तथा ।

तिथिवारनिषेधेऽपि तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥ इति ।

अत्र संक्रान्तिरयनभिन्ना । पूर्ववचने पितृग्रहणं पितृव्यादिश्राद्धसंग्र-
हार्थम् । अमावास्याग्रहणं सकलश्राद्धतिथेरुपलक्षणमिति पारिजाते ।
पूर्वोक्तवचने तिथिविशेषोऽष्टकाकपिलाषष्ठ्यादिः । तीर्थविशेषश-
ब्देन यस्य तीर्थस्य समीपे निवसति तद्व्यतिरिक्तं तीर्थं ग्राह्यम् ।
अन्यथा तीर्थं इत्येतावतैव सिद्धौ विशेषपदवैयर्थ्यापत्तेः । एतच्च गङ्गा-
तिरिक्तपरम् । तस्य पुनर्ग्रहणात् । गङ्गा च पञ्चधेति पूर्वमुक्तम् । उपरागे
पितुः श्राद्ध इति पूर्वोक्तकातीयवचनं परेद्युःश्राद्धाङ्गतिलतर्पणविषय-
मिति केचित् । श्राद्धाशक्तस्य तत्स्थानापन्नतर्पणविषयमिति निर्णय-
सिन्धुः । स्मृत्यर्थसारे—

तिथिवारसमायोगान्निषेधो य उदाहृतः ।

ऋषिभिस्तर्पणे नित्ये नैमित्तं न तु बाधते ॥ इति ।

अत्र तिथ्यादिनिषेधास्तात्कालिकाः ।

निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते ।

इति वचनात् । आह्निकचन्द्रिकायां तु गृहे तिलतर्पणनिषेधः पृथक्त्वि-
लाभिप्रायो ज्ञेय इत्युक्तम् । यज्ञोपवीतादेर्लक्षणमाह भरद्वाजः—

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य वामस्कन्धे निवेशितम् ।
 यज्ञोपवीतमित्युक्तं देवकार्येषु शस्यते ॥
 कण्ठावलम्बितं चैव ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ।
 तन्निवीतमिति ख्यातं शस्तं कर्मणि मानुषे ॥
 उत्क्षिप्ते वामबाहौ च दक्षिणस्कन्धमाश्रितम् ।
 प्राचीनावीतमित्याहुस्तत्पिड्येष्वेव कर्मसु ॥

जीवत्पितृकं प्रत्याह वृद्धगार्ग्यः—

न कुर्वीतापसव्यं च न कुर्वीतापि मुण्डनम् ।

अपसव्यनिषेधः प्रकोष्ठादुपरि ।

अपसव्यं द्विजाभ्याणां पिड्ये सर्वत्र कीर्तितम् ।

आप्रकोष्ठात्प्रकर्तव्यं मातापित्रोस्तु जीवतोः ॥

इति वचनादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये मट्टैः । प्रकोष्ठस्तस्य चाप्यध
 इत्यमरः । तस्य कूर्परस्याधो मणिबन्धपर्यन्तं प्रकोष्ठ इत्यर्थः । अस्य
 कृष्णतिलतर्पणनिषेधमाह व्यासः—

न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैः कृष्णैश्च तर्पणम् । इति ।

कात्यायनः—दक्षिणं पातयेज्जानु देवान्परिचरन्सदा ।

पातयेदितरज्जानु पितृन्परिचरन्नपि ॥

नैतत्तर्पणैकविषयम् । सदेतिवचनात् । आचारसारे पुलस्त्यः—

मनुष्यतर्पणं कुर्वन्न किञ्चिज्जानु पातयेत् ।

जानुनिपातनमुपस्थस्योत्तानत्वाविरोधेन कर्तव्यमिति पूर्वमुक्तमेव ।
 अञ्जलिसंख्यामाह व्यासः—

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।

अर्हन्ति पितरर्क्षींस्त्रीन्स्त्रियस्त्वेकैकमञ्जलिम् ॥ इति ।

अत्र पितृशब्देन मनुष्यपितरो दिव्यपितरश्च संगृहीता इति चन्द्रिका ।
 अत्र स्त्रीपदं मात्राद्यतिरिक्तपरम् ।

मातृमुख्यास्तु यास्तिसस्तासां त्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन् ।

सप्तन्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जली ॥

इति यमोक्तेः ।

मातृस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादन्यासामेकमञ्जलिम् ।

इत्याचाररत्नोक्तेश्च । सपत्नी सपत्नमाता । आचार्यपत्नी ।

आचार्यस्तु—उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः ।

इति लक्षणोक्तस्तस्य पत्नी । मातामह्यादीनामप्यञ्जलित्रयं देयम् ।

मातृमुख्याश्च यास्तिस्रो मातामह्यादयश्च याः ।

अञ्जलित्रयमेतासामन्यत्रैकैकमञ्जलिम् ॥

इति स्मृत्यन्तरोक्तेः । मातामहानामञ्जलित्रयम् ।

पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते ।

पितामहेभ्यश्च तथा प्रीयेत प्रपितामहान् ॥

मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च समाहितः ।

इति विष्णुपुराणादिति पृथ्वीचन्द्रोदये । अयं च संख्याविशेषः
आश्वलायनानां वैकल्पिकः । तत्सूत्रे संख्यानुक्तेः । येषां सूत्रे संख्योक्ति-
स्तेषां नित्य इति माधवो हेमाद्रिश्च ।

अथ तर्पणीयपितरः । आह बोपदेवः—

ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं

सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः ।

ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जाया पिता सद्गुरुः

शिष्याप्ताः पितरो महालयगयातीर्थे तथा तर्पणे ॥

अत्र सस्त्रीति मातामहादित्रयस्य विशेषणम् । मातामहाः सपत्नीका
इति स्मृतेः । तस्त्रीत्यपि क्वचित्पठ्यते तत्र मूलमथ मातामहीनां चेति
गारुडवचनं ज्ञेयम् । बोपदेवोक्तक्रमे तु

पूर्वं पित्रादयस्तर्प्यास्ततो मात्रादयोऽपि च ।

ततो मातामहाश्चैव मातामह्यस्ततः परम् ॥

इत्यादिव्यासादिवचांसि मूलभूतानि सन्तीति निर्मूलताशङ्का न
कार्या । यत्तु स्मृत्यन्तरे क्रमान्तरमुपलभ्यते तत्रैच्छिको विकल्पो भवि-
ष्यति । सस्त्रिय इति स्त्रीपदं रुयपत्ययोरुपलक्षणम् । तेन पितृव्यं सप-
त्नीकं सापत्यमित्यादिप्रयोगः । पितृभगिनीं मातृभगिनीमिति षष्ठ्या
लुक्प्रयोगं कुर्वन्ति बहवस्तत्र । ऋतो विद्यायोनिर्बन्धेभ्यः [६-३-२३]
इत्यनेन योनिर्बन्धे षष्ठ्या अलुग्विधानात् । पितुर्भगिनीं मातुर्भगिनी-
मित्येव वाच्यम् । अत्र पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भातरौ मातुलास्तद्भ-
गिन्यो मातृष्वसारस्तद्गृहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिन्यानीति

सुमन्तुवचनात्सापत्नमातुलादीनामपि स्वमातुलाद्यनन्तरं तर्पणं केचि-
दाहुः । प्रयोगे विशेषमाह वसिष्ठः—

संबन्धमनुकीर्त्यैव नामगोत्रमनन्तरम् ।

वस्वादिरूपं संकीर्त्य स्वधाकारेण तर्पयेत् ॥ इति ।

योगयाज्ञवल्क्यः—

गोत्रनामस्वधाकारैस्तर्पयेदनुपूर्वशः । इति ।

यद्यपि स्मृतिषु क्वचिन्नान्नः प्राथम्यं क्वचिद्गोत्रस्येति द्वैविध्याद्विकल्प
एव न्याय्यस्तथाऽपि बह्वृचानां गोत्रोच्चारः पूर्वं ततो नामोच्चारस्तस्य
गोत्रं नाम च गृहीत्वेति तद्वृत्त्य उक्तत्वात् । आचाररत्ने कमलाकरे
चैवम् । नामग्रहणे विशेषमाहाऽऽश्वलायनः—

शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । इति ।

निर्णयसिन्धौ—

सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता ॥

यथा काश्यपसगोत्रमिति । गोत्रसगोत्रयोः पर्यायत्वाच्छाखामेदेन
व्यवस्थेति तत्रैव । अस्मत्पितरं काश्यपगोत्रं विष्णुशर्माणं स्वधा नम-
स्तर्पयामीत्यादिप्रयोगो द्रष्टव्यः । अत्राञ्जलिनानात्वेऽपि मन्त्रो नाऽऽव-
र्तते । मन्त्रस्य तर्पणकरणत्वेनाञ्जल्यनङ्गत्वात् । अञ्जलीनिति द्वितीया
तु सक्तूञ्जुहोतीत्यत्र सक्तूनिविबद्धात्वर्थकर्मतयोपपाद्या । तथा च
द्वित्वादिसंख्याञ्जलिकरणकर्तृपणस्यैकत्वात्सकृदेव मन्त्रो व्रीह्यवघात-
मन्त्रवत् । आचारार्के तु संध्यार्घ्यदानवन्मन्त्रावृत्तिरित्युक्तम् । तन्न ।
अर्घ्यदानेन मन्त्रस्य द्रव्यसंस्कारकतायाः

कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।

इति व्यासस्मृतावभिधानाद्द्रव्यभेदान्मन्त्रावृत्तिरिति वैषम्यम् । अस्तु
वा येषां सूत्रे द्विस्तर्पयेत्रिस्तर्पयेदित्युक्तं तत्रोत्पत्तिवाक्यगतायाः संख्या-
यास्तिस्र आहुतीर्जुहोतीतिवत्कर्मभेदकत्वात्तर्पणभेदे तदावृत्तौ तदङ्गम-
न्त्रस्याप्यावृत्तिः । आश्वलायनानां तु सूत्रे संख्यानुक्तत्वान्न मन्त्रावृत्तिः ।
एकमन्त्राणि कर्माणीति नारायणवृत्तौ कपर्दिसूत्रन्यायोक्तेरिति । आचा-
ररत्न आचारसारे चैवमित्यलम् । आवृत्तिपक्षेऽस्मदित्यादितर्पयामीत्य-
न्तस्याऽऽवृत्तिः । केचित्तु स्वधा नमस्तर्पयामीति मन्त्रैकदेशस्यैवाऽऽ-

वृत्तिं कुर्वन्ति तत्प्रमाणाभावादुपेक्ष्यम् । अत्रावसानाञ्जलिमाह कात्या-
यनः—पितृवंश्या मातृवंश्या ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति तांस्तर्पयामी-
त्यवसानाञ्जलिरिति । विस्तरेण कर्तुमसमर्थस्य संक्षेपेण तर्पणमुक्तं
स्मृत्यन्तरे—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।

तुष्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।

आब्रह्मभुवनालोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥

एकं जलाञ्जलिं दद्यात्कुर्यात्संक्षिप्ततर्पणम् । इति ।

आचारार्के तु अस्यैवावसानाञ्जलित्वमुक्तं तत्किमूलकमिति न विद्मः ।
प्रकारान्तरमुक्तं विष्णुपुराणे—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तुष्यत्विति ब्रुवन् ।

क्षिपेत्पयोञ्जलींस्त्रीस्तु कुर्यात्संक्षिप्ततर्पणम् ॥ इति ।

स्वपितृतर्पणस्यापि संक्षेप उक्तो वृत्तिकारेण—प्रतिपुरुषं पितृस्तर्प-
यित्वा गृहानेत्य यद्ददाति सा दक्षिणा । पितरं पितामहं प्रपितामहं च
तर्पयित्वा गृहानेत्य यद्ददाति अतिथिभोजनभिक्षादानादि सा ब्रह्मय-
ज्ञस्य दक्षिणा भवतीति सदक्षिणत्वं ब्रुवता सोमयागसाम्यमस्य दर्शित-
तमिति । दक्षिणाविषये श्रुतिरपि—गृहानेति ततो यत्किंचिद्ददाति सा
दक्षिणेति । सेयं दक्षिणा गृह एव न त्वरण्य इत्यर्थ इति पारिजाते ।
तर्पणाकरणे प्रत्यवायः पुराणे दर्शितः—

देवताश्च पितृंश्चैव मुनीन्वा यो न तर्पयेत् ।

देवादीनामृणी भूत्वा नरकं प्रतिपद्यते ॥ इति ।

द्विगुणीकृतदर्भत्यागे मन्त्रविशेष उक्तः स्मृतिरत्नावल्याम्—

येषां पिता न न भ्राता न पुत्रो नान्यगोत्रिणः ।

ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः कुशैस्तथा ॥ इति ।

अथ तिथिविशेषकर्तव्ययमतर्पणविधिः । वृद्धमनुः—

दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं च यमतर्पणम् ।

कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यामपि कार्यं सदैव हि ॥ इति ।

अथ भीष्मतर्पणं व्यासः—

शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।

संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ इति ।

एतच्च ब्राह्मणस्य न भवतीति मदनपारिजाते। योगयाज्ञवल्क्योऽपि—
सवर्णभ्यो जलं देयं नासवर्णेभ्य एव च ॥ इति ।

तत आचम्य पवित्रदर्भविसर्जनं कुर्यात् । तथा चोक्तं स्मृतिर-
त्नावल्याम्—

विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि ।

आचान्तः सन्प्रकुर्वीत दर्भसंत्यजनं बुधः ॥ इति ।

वस्त्रनिष्पीडनमाह पराशरः—

निष्पीडयेत्स्नानवस्त्रं तिलदर्भसमन्वितम् ।

न पूर्वं तर्पणाद्वस्त्रं नैवाभ्यसि न पादयोः ॥

निष्पीडनं स्थले कार्यं तदुक्तं स्मृत्यन्तरे—

वस्त्रनिष्पीडितं तोयं श्राद्धे चोच्छिष्टभोजनम् ।

भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत्स्थले ॥ इति ।

तथा—धौतवस्त्रं प्रपीडयेत् ऊर्ध्वपल्लवसंयुतम् ।

पल्लवाधो न पीडयेत् पीडिते त्वशुचिर्भवेत् ॥

वस्त्रनिष्पीडनं ये के चास्मदिति प्राचीनाबीतिना कार्यमिति प्रातः-
स्नानविधौ परिशिष्टे पूर्वमुक्तम् । यत्तु—

मनुष्यतर्पणे चैव स्नानवस्त्रनिष्पीडने ।

निवीती तु भवेद्विप्रस्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ इति,

तच्छास्त्रान्तरविषयम् । गृहस्नानादौ वस्त्रनिष्पीडनं न कुर्यात् । आह
मदनरत्ने पराशरः—

द्वादश्यां पञ्चदश्यां च संक्रान्तौ श्राद्धवासरे ।

वस्त्रं निष्पीडयेन्नैव न च क्षारेण योजयेत् ॥

आचारप्रकाशे भृगुः—एकादश्याममायां च मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

न पीडयेत्स्नानवस्त्रं न च क्षारेण योजयेत् ॥ इति ।

गृहे वस्त्रनिष्पीडननिषेधः पूर्वं प्रातःस्नाननिधावुक्तः । अतो गृहादौ
ये के चास्मदिति मन्त्रलोपो बोध्य इत्याह्निकचन्द्रिकायाम् । ततः सूर्या-
याध्वं तदुक्तं विष्णुपुराणे—

दत्त्वा कामोदकं सम्यक्प्रेतेभ्यः श्रद्धयाऽन्वितः ।

आचम्य च ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ॥

नमो विवस्वते ब्रह्मन्भास्वते विष्णुतेजसे ।

जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥ इति ।

ततः सकृदाचमनं कर्मान्त आचमनमिति परिशिष्टोक्तेः । ततः कर्म-
समर्पणमिति ।

अथ ब्रह्मयज्ञप्रयोगः—प्रामात्राच्यामुदीच्यामन्यस्यां वा प्रशस्तायां
दिशि नद्यादौ स्वगृहे वा वारुणस्नानं विधायाशक्तौ मन्त्रस्नानं कृत्वा
धौते वाससी परिधाय मुद्गस्मयोरन्यतरत्पुण्ड्रं विधाय पवित्रे धृत्वाऽऽ-
त्मानं प्रदक्षिणीकृत्य ॐ वेदपुरुषाय नम इति नमस्कृत्य प्राङ्मुखः
श्रुत्युक्ताचमनं कुर्यात् । तद्यथा हस्तौ प्रक्षाल्य त्रिराचम्य सोदकेनाङ्-
गुष्ठमूलेन द्विरोष्ठौ संमृज्य सार्द्धमध्यमाङ्गुलीभिरोष्ठौ सकृदुपस्पृश्य संव्य-
पाणिं पादौ प्रोक्ष्य शिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभ्येति । यद्वा ।
ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । इति त्रिराचम्य प्राणानायस्य त्र्यादि-
बहुदर्भान्प्रागग्र्याङ्गुली चैव देश आस्तीर्य तत्र प्राङ्मुख उपविश्य देशकालौ
स्मृत्वा ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं ब्रह्मयज्ञं करिष्ये इति
संकल्प्य विद्युदसि विद्य मे पाप्मानमुतात्सत्यमुपैमि, इत्यप उपस्पृश्य वाम-
जानूपरि दक्षिणपादं निधाय सव्यपाणिं प्रागङ्गुलिमुत्तानं दक्षिणजानु-
शिरसि निधाय तस्मिन्प्रादेशमात्रौ कुशौ निधाय तत्र दक्षिणपाणिं
न्यश्चं प्रागङ्गुलिं संधाय सप्ताहितमना मनसा गृहेऽन्यत्र मध्यमेन स्वरेण
पठेत् । ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् । भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः
प्रचोदयात् । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः
प्रचोदयात् । अग्निमीळे पुरोहितं० स्वस्तये । इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थो
पायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे । अग्न आयाहि
वीतये गृगानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि । शं नो देवीरभि-
ष्टय आपो भञ्जन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः । अग्निर्वै देवानामवमो
विष्णुः परमः । अथैतस्य समाप्तायस्य । यदिन्द्रादोदाशराज्ञे मानुषं
व्यगाहथाः । इदं जना उपश्रुत ।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जन्माद्यस्य यतोऽन्ववादित्रश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

नमो ब्रह्मणे नमोऽङ्करोमीति त्रिरुच्चार्य, ॐ इत्युक्त्वा वृष्टिरसि वृश्च
मे पाप्मानमृतात्सत्यमुपागामित्यप उपस्पृश्य करस्थपवित्रे स्वोत्तरतस्त्य-
जेत् । ततो दक्षित्रजानु संपात्य सतण्डुलाभिरद्भिस्त्रिभिः कुशाग्रैर्नद्यादौ
जलेऽन्यत्र ताम्रादिपात्रे सव्यान्वारब्धदक्षिणपाणिना तर्पयेत् । प्रजाप-
तिस्तृप्यतु । ब्रह्मा तृप्यतु । वेदास्तृप्यन्तु । देवास्तृप्यन्तु । ऋषयस्तृप्यन्तु ।
सर्वाणि च्छन्दांसि तृप्यन्तु । ॐकारस्तृप्यतु । वषट्कारस्तृप्यतु । व्याहृतय-
स्तृप्यन्तु । सावित्री तृप्यतु । यज्ञास्तृप्यन्तु । द्यापृथिवी तृप्यताम्* । अन्त-
रिक्षं तृप्यतु । अहोरात्राणि तृप्यन्तु । सांख्यास्तृप्यन्तु । सिद्धास्तृप्यन्तु ।
समुद्रास्तृप्यन्तु । नद्यस्तृप्यन्तु । गिरयस्तृप्यन्तु । क्षेत्रौषधिवनस्पतिगन्धर्वा-
प्सरसस्तृप्यन्तु । नागास्तृप्यन्तु । वयांसि तृप्यन्तु । गावस्तृप्यन्तु । साध्या-
स्तृप्यन्तु । विप्रास्तृप्यन्तु । यक्षास्तृप्यन्तु । रक्षांसि तृप्यन्तु । भूतानि
तृप्यन्तु । एवमन्तानि तृप्यन्तु । इत्येकोनविंशन्मन्त्रैर्देवतीर्थैर्नैकैकवारं
तर्पणं कुर्यात् । ततो निवीती—ऋषितीर्थेन कुशमध्यतः सयवाभिरद्भिः
शतर्चिनस्तृप्यन्तु । माध्यमास्तृप्यन्तु । गृत्समदस्तृप्यतु । विश्वामित्रस्तृ-
प्यतु । वामदेवस्तृप्यतु । अत्रिस्तृप्यतु । भरद्वाजस्तृप्यतु । वसिष्ठस्तृप्यतु ।
प्रगाथास्तृप्यन्तु । पावमान्यस्तृप्यन्तु । क्षुद्रसूक्तास्तृप्यन्तु । महासूक्तास्तृ-
प्यन्तु । इति द्वादशमन्त्रैः सकृन्मन्त्रेण सकृत्तूष्णीमेवं द्विद्विस्तर्पणं कुर्यात् ।
ततः प्राचीनावीती—सव्यं जान्वाच्य द्विगुणीकृतकुशमूलाग्रैः पितृतीर्थेन
सतिलाभिरद्भिः सुमन्तुजैमिनिवैशंपायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारत-
धर्माचार्यास्तृप्यन्तु । जानन्तिबाह्विगार्ग्यगौतमशाकल्यबाभ्रव्यमाण्ड-
व्यमाण्डूकेयास्तृप्यन्तु । गर्गी वाचक्लवी तृप्यतु । वडवा प्रातीथेयी
तृप्यतु । सुलभा मैत्रेयी तृप्यतु । कहोळं तर्पयामि । कौपीतकं तर्प० ।
महाकौपीतकं त० । पैङ्ग्यं त० । महापैङ्ग्यं त० । सुयज्ञं त० । सांख्यायनं
त० । ऐतरेयं त० । महैतरेयं त० । शाकलं त० । बाष्कलं त० । सुजातवक्त्रं

* ख. पुस्तकसमासे—लोके द्यावापृथिवी तृप्येतामिति पाठो दृश्यते स दुष्टः । तृप्यतामिति
प्रयोक्तव्यम् । न तु तृप्येतामिति । तद्वि द्वेधा स्यात् । लोडात्मनेपदे लिङ्परमस्मैपदे वा । तत्र
नाऽऽद्यः । भ्रातोः परस्मैपदित्वात् । न द्वितीयः । शौनकादिभिर्लोटा व्यवहारात् । तृप्यत्वित्यादि-
पूर्वापरसंदर्भविरोधाच्चेति दिक् । (एतदुपाहिकादुद्धृतम्)

त० । औदवाहिं त० । महौदवाहिं त० । सौजाभिं त० । शौनके त० । आश्व-
लायनं त० ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्तु । इति त्रयोविंशतिमन्त्रैः
सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीमेवं त्रिंश्रिस्तर्पयेत् । ततोऽस्मत्पितरममुकगोत्र-
ममुकशर्माणं वसुरूपं स्वधा नमस्तर्पयामीत्येतदन्तेन सकृन्मन्त्रेण
द्विस्तूष्णीं जलं देयं सर्वत्र । एवं पितामहादीनाप्तान्तांस्तर्पयेत् । तत्र
सापत्नमातुः पत्न्याश्च सकृन्मन्त्रेण सकृत्तूष्णीम् । मातृमातामहीपार्व-
णभिन्नस्त्रीणां सकृन्मन्त्रेण । आचार्यस्य सकृन्मन्त्रेण सकृत्तूष्णीम् ।
ततः पितृवंश्या मातृवंश्या ये चान्ये मत्तोदक्रमहन्ति तांस्तर्पयामीत्यव-
सानाञ्जलिं दद्यात् । शाकलः—

तर्पणं नैत्यकं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञपुरःसरम् ।

ग्रहणादिनिमित्तेषु ब्रह्मयज्ञं विना भवेत् ॥

इत्याचारेन्दौ तर्पणविधिः । एवं विस्तृततर्पणकरणाशक्तौ—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।

तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।

आब्रह्मभुवनालोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥

इत्येकाञ्जलिं दद्यात् । त्रिरित्याचारार्के । गृहादौ तिलतर्पणनिषेधे
तिलालाभे वा तिलपदस्थान इदमस्तु कुशोदकमित्याद्यूहः कार्य इति
केचित् । न्यायविदस्त्वत्रातीतकुलकोटीनामितिमन्त्रलोपस्तिलपदलोपो
वेत्याहुः । न प्रकृतावूह इतिन्यायात् । मम त्वसंपन्नं मनसा संपादये-
दिति पूजाविधौ परिशिष्टोक्तेः

द्रव्याणामप्यलाभे तु तत्तद्द्रव्यं स्मरेद्बुधः ।

इति तृचभास्करधृतवचनाच्च तिलध्यानमात्रं मन्त्रस्त्वविकृत एव
तिलालाभे । तिलनिषेधे तु यदन्तरिक्षमितिमन्त्रस्थगार्हपत्यपदलोपा-
त्तिलपदलोप एवेति भाति । अस्याप्यशक्तावाब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृ-
प्यत्विति त्रिरावृत्तेन मन्त्रेण त्रीनञ्जलीन्दद्यात् । तत आचम्य

येषां पिता न न भ्राता न पुत्रो नान्यगोत्रिणः ।

ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः कुशैस्तथा ॥

इति द्विगुणीकृतदर्भास्त्यक्त्वा प्राचीनावीत्येव

ये के चास्मत्कुले जाता अगुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

इतिमन्त्रेण पूर्वस्थापितपरिधानीयवस्त्रं चतुर्गुणमुपरिदशं तिलदर्भ-
सहितं वामभागे स्थल एव निष्पीड्य वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचामे-
दिति । एतच्च संक्रान्तिपौर्णमासीद्वादश्येकादश्यमावास्याश्राद्धदिनेषु
गृहे च वर्ज्यम् । ततो वज्रोपवीती

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन्भास्वते विष्णुतेजसे ।

जगत्पवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥

इत्येकाञ्जलिं सूर्याय दद्यादिति । अस्य कृतस्य ब्रह्मयज्ञस्य परिपूर्ण-
तासिद्ध्यर्थं भैक्षं दास्यमानं दक्षिणात्वेन दातुमहमुत्सृज्य इति संकल्प्य
सकृदाचक्ष्यानेन ब्रह्मयज्ञाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतामितीश्वराय
कर्म समर्प्य पवित्रग्रन्थि विस्रस्य शुचिदेशे क्षिपेत् । इति ब्रह्मयज्ञप्रयोगः ।

अथ मध्याह्नसंध्या । अत्र यद्यप्याचार्यैर्गृह्ये मध्याह्नसंध्या नोक्ता
तथाऽपि गृह्यपरिशिष्ट उक्तत्वात्

संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनाऽऽत्मविदा सदा ।

इति योगयाज्ञवल्क्योक्तेः

एतत्संध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम् ।

यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥

इति च्छन्दोगपरिशिष्टाच्चावश्यं कार्या । तत्कालो दिनार्धभागो
मुख्यः । यश्च पूर्वापराह्णयोः संधिस्तत्कालभवा देवता संध्या तामुपासी-
तेति परिशिष्टोक्तेः । कमलाकरस्तु पूर्वाह्णो वै देवतां मध्यंदिनो मनु-
प्याणामपराह्णः पितृणामिति श्रुतौ त्रेधाविभक्ते मध्याह्ने मनुप्याणां
भोजनोक्तेस्त्रेधाविभक्तदिनद्वितीयभागे मध्याह्नसंध्या कार्येत्याह । तत
आसार्यं गौणकाल इत्यपि स एव । स्मृतिसंग्रहे—

मध्याह्नस्नानादूर्ध्वं यः कालस्त्वव्यवधानतः ।

तत्र मध्याह्नसंध्या स्यादूर्ध्वं गौणः स्मृतो बुधैः ॥ इति ।

अव्यवधानतः शाखान्तरपरः । आश्वलायनानां ब्रह्मयज्ञोत्तरमेव
मध्याह्नसंध्येति पूर्वं प्रपञ्चितत्वात् । शाकलकारिकायामपि—

कुर्यान्माध्याह्निकीं संध्यां ब्रह्मयज्ञादनन्तरम् ।

संगवादूर्ध्वमित्याहुर्न चेद्वर्गागथापि वा ॥ इति ।

संध्यात्रयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ।

मध्याह्न उदये वाऽपि विश्राडादीच्छया जपेत् ॥

इति च्छन्दोगपरिशिष्ट उदये वाऽपीत्यभिधानादुदयानन्तरमपि मध्याह्नसंध्येति पारिजाते स्थितम् । दक्षः—

अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीष्यते । इति ।

परिशिष्टम्—अथ मध्यंदिन आपः पुनन्त्विति मन्त्राचमनम् । आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहं स्वाहेत्यथाऽऽकृष्णीयया हंसवत्या वा त्रिः सकृद्वाऽर्घ्यमुत्क्षिप्योर्ध्वबाहुरुन्मुख उदुत्यं जातवेदसं चित्रं देवानामिति सूक्ताभ्यामाभ्यां वा मन्त्राभ्यां तच्चक्षुरित्येकया वाऽऽदित्यमुपस्थाय जपमासीनो यथेष्टं कालं कुर्यादित्येव संध्याविधिर्व्याख्यात इति ।

भगवान्—सवितुर्मण्डलं पश्यन्नुपतिष्ठेद्विवाकरम् ।

ऊर्ध्वबाहुः पठेत्सूक्तमुदुत्यं जातवेदसम् ॥

तच्चक्षुरितिसूक्तं च हंसः शुचिपदित्यपि ।

चन्द्रिकायां पुराणे—ततो मध्याह्नसंध्यायामासीनः प्राङ्मुखो जपेत् । इति ।

तिष्ठंश्चेद्वीक्षमाणोऽर्कमासीनः प्राङ्मुखो जपेत् ।

इति योगयाज्ञवल्कीयं वैकाल्पिकं तिष्ठञ्जपविधानं शाखान्तरपरम् । आश्वलायनानामासीन इत्याचार्येणोक्तेः प्राबल्यात् । अत्र केचिज्जपोत्तरं दिग्भिवादनादि उपसंग्रहणान्तं प्रातर्वत्कुर्यादित्याहुः । तन्न । एवं सायमिति सायंसंध्यायामेवाऽऽचार्येण दिग्भिवादनादिकृत्स्नातिदेशस्य कृतत्वान्मध्याह्ने जपमासीनो यथेष्टं कालं कुर्यादित्येव संध्याविधिर्व्याख्यात इत्युपसंहारात् । स्मृत्यन्तरेऽपि प्रातःसायंसंध्ययोरेव दिग्भिवादनादेरुक्तत्वाच्च । अध्यर्धदानविषय आश्वलायनः—

मध्याह्ने तु विशेषोऽयं प्रदद्याद्धंस इत्यृचा ।

आकृष्णेन द्वितीयार्घ्यं गायत्र्या च तृतीयकम् ॥

उपविष्टः समाचम्य तिष्ठेदभिमुखो रवेः ।

व्यासस्तु—सकृदेव तु मध्याह्ने क्षेपणीयं द्विजातिभिः । इत्याह ।

कात्यायनः—पुष्पाण्यम्बुमिश्राण्यूर्ध्वं प्रक्षिप्योर्ध्वबाहुः सूर्यमुदीक्ष्येति । अध्यर्धदानं ऋजुत्वं प्रागुक्तम् ।

अथ प्रयोगः—द्विराचम्य प्राणानायस्य देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्त-
दुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मध्याह्नसंध्यामुपासिष्य इति संकल्प्य
पूर्ववत्प्रथममार्जनं कृत्वाऽऽपः पुनन्विष्यत्यस्य विष्णुऋषिः । आपो देवता ।
अष्टिच्छन्दः । मन्त्राचमने वि० ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता
पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूता पुनातु माम् । यदुच्छिष्टम-
भोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहं
स्वाहा । इति मन्त्राचमनं कृत्वाऽऽचम्य पूर्ववद्वितीयमार्जनात्मपरिषे-
काद्यघर्मर्पणाचमनानि कृत्वा सूर्याभिमुखस्तिष्ठन्नेव हृत्समाञ्जलिमुद्धृत्य
जल एवाऽऽकृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टु-
प्छन्दः । अर्घ्यदाने वि० । ॐ आकृष्णेन० ऋ. १ श्रीसूर्यायेदमर्घ्यं
समर्पयामीति त्रिः सकृद्वाऽर्घ्यं दद्यात् । ततः पूर्ववदात्मानं परिषिच्यो-
पविश्याप उपस्पृश्योत्थायोर्ध्वबाहुरुन्मुखः सूर्यमुपतिष्ठेत् । उदुत्यमिति
त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्य काण्वः प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता नवाऽऽद्या
गायत्र्यः । अन्त्याश्वत्सोऽनुष्टुभः । सूर्योपस्थाने वि० । ॐ उदुत्यं
जातवेद० रधम् । चित्रं देवानामिति षड्ऋचस्य सूक्तस्याऽऽङ्गिरसः कुत्स
ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । सूर्योपस्थाने० । ॐ चित्रं देवाना०
द्यौः । अथ वोदुत्यं काण्वः प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री । चित्रं देवानामा-
ङ्गिरसः कुत्सः सूर्यश्चिष्टुप् । सूर्योपस्थाने० । ॐ उदुत्यं जा० ऋ. १ ॐ
चित्रं दे० ऋ. १ अथ वा तच्चक्षुर्वसिष्ठः पुर उष्णिक् । सूर्योप० ॐ
तच्चक्षु० ऋ. १ इत्युपस्थायोपविश्य शुचौ देशे दर्भाभ्यसोक्षिते दर्भाना-
स्तीर्येत्यादिन्यासान्ते युवतीं युवादित्यमण्डलमध्यस्थां श्वेतवर्णां श्वेता-
म्बरानुलेपनस्रगाभरणां पञ्चवक्त्रां प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखरां
त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गुडमर्चकूचतुर्भुजां वृषभासनाखटां रुद्रदैवत्यां यजु-
र्वेदमुदाहरन्तीं भुवर्लोकधिष्ठात्रीं सावित्रीं नाम देवतां ध्यायामीति
मन्त्रदेवतां ध्यात्वाऽऽवाह्योपविश्यैव यथेष्टकालं गायत्रीं जपित्वोत्तरप-
ङ्क्तं विधाय

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्धवेत् ।

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि ॥

इति संप्राप्त्यं सकृदाचम्यानेन मध्याह्नसंध्यापासनेन श्रीपरमेश्वरः
प्रीयतामिति कर्मेश्वरा[या]र्वयेत् । इत्याचारेन्दौ मध्याह्नसंध्याविधिः ।
प्रमादादस्या अकरण आश्वलायनानां न प्रत्यवाय इति संध्याभाष्ये ।

ततो गङ्गातिरिक्तवस्त्रपूतजलपूर्णपात्रं दक्षिणहस्ते गृहीत्वा गृहमा-
गच्छेत् । तदुक्तं मनोहरकृताह्निके—

यदि स्नातो द्विजस्तीर्थाद्गृहीतकमण्डलुः ।

अज्ञानाद्गृहमागच्छेत्स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥

गर्गः—त्रिसंध्यं वाग्यतो वारि गुप्तमाहृत्य शोधयेत् ।

होमोपहारभोगार्हद्रव्यात्मपरिचारकान् ॥

शाठ्यायनिः—ततः सूर्यमुपस्थाय सम्यगाचम्य च स्वयम् ।

अभ्युक्षणं समादाय संयतात्मा गृहं व्रजेत् ॥

सोपानत्कः सदर्भश्च पात्रस्थं सदशोत्तरः ।

सोपानत्क उपानदारूढः । सदर्भो दर्भपवित्रपाणिः । सदशोत्तरो
दशायुक्तोत्तरीयवस्त्रावृतः । पात्रस्थमभ्युक्षणार्थं जलमाहरेदित्यर्थः ।
स्वस्यासामर्थ्यं पारिजाते—

आत्मीयं प्रथमं प्रोक्तं विप्रहस्ताद्वितीयकम् ।

तृतीयमुदकस्थानाच्चतुर्थं मणिकास्मृतम् ।

नद्यादेः स्वयमाहृतं प्रथमम् । अन्येन शुचिना ब्राह्मणेन तस्मादानीतं
द्वितीयम् । गृहस्थितादेव कूपदेर्जलस्थानाद्गृहीतं तृतीयं मणिकादुपातं
चतुर्थम् । बहुलजलभाण्डं मणिक इति । नारसिंहे—

जलदेवान्नमस्कृत्य ततो गृहगतः शुचिः ।

विधिना पुरुषसूक्तस्य तत्र विष्णुं समर्चयेत् ॥ इति ।

तत्प्रकारं तु प्रागेव मुख्यकाले सविस्तरमदर्शयम् । गृहागमनोत्तरं
यथाशक्त्युपचारैर्देवं संपूज्य ब्रह्मयज्ञदक्षिणार्थं पूर्वसंकल्पितमन्नमतिथि-
पूजनकाले तस्मा अन्यस्मै भिक्षवे वा दद्यादिति । अथ दिवा विहितानि
प्रातःसंध्यादिकर्माणि प्रमादादकृतानि चेद्वात्रौ प्रथमयामपर्यन्तं क्रमेण
कर्तव्यानि । तदुक्तं परिशिष्टे—यदि दिवोदितानि कर्माण्यकृतानि याव-
त्प्रहरं यामिन्यास्तावत्क्रमेणैव सर्वाणि सौरं वर्जयित्वा कुर्यादाकृष्णीय-
यैवार्धदानं कुर्यादिति । एतन्मते प्रातःस्नानादि यथाक्रमं सर्वमाह्निकं
कृत्वा सायंसंध्यामुपास्य ततः सायंहोमादि कुर्यात् । केचित्तु प्राप्तका-
लत्वादादौ सायंसंध्यामुपास्य ततः क्रमेणातिक्रान्तमाह्निकं कृत्वा ततः
सायंहोमादि कुर्यादित्याहुः । माध्याह्नसंध्यायां गायत्र्यैवार्धदानमिति

पारिजाते तदाश्वलायनातिरिक्तपरम् । आकृष्णीययैवेत्याचार्योक्तेः
श्रावल्यात् । उपस्थाने विशेषः स्मृतिसंग्रहे—

मध्याह्नसंध्या रात्रौ चेत्प्रमादाक्रियते यदि ।

सौरस्थाने जपेत्सूक्तं सौर्यवैश्वानरीयकम् ॥

हविष्पान्तमजरं स्वर्धित्येकोनविंशत्युचात्मकं सौर्यवैश्वानरीयं सूक्त-
मुपस्थाने जपेत् । अङ्गिराः—

रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकर्माणि कारयेत् ।

अवगाहं च सौरं च ब्रह्मयज्ञं च वर्जयेत् ॥

अवगाहस्नानस्य प्रतिप्रसवनाह व्यासः—

प्रदोषे पश्चिमे यामे दिनवत्स्नानमाचरेत् । इति ।

ब्रह्मयज्ञस्य प्रतिप्रसवस्तु ब्रह्मयज्ञप्रकरण उक्तः । सौरजपस्तु प्रति-
पिद्ध एव प्रतिप्रसवविध्यभावात् । इत्याचारेन्दौ रात्रौ पूर्वयामे दिनक-
र्मणां कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयः ।

अथाऽऽशौचे नित्यस्नानादिकर्तव्याकर्तव्यनिर्णयः । स्मृत्यर्थसारे—
सूतकादौ नित्यस्नानबालिदानापोशनप्राणाहुत्यादयो भुजिनियमा अस्पृ-
श्यस्पर्शनस्नानादिकं चेति सर्वं कर्तव्यमेवेति । अत्र नित्यस्नानं निषेधकव-
चनाभावात्संकल्पमार्जनाद्यधर्मणाङ्गतर्पणसहितं कार्यमित्याचार्योक्तं ।

स्नानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ।

सूतके स्मृतके चैवास्पर्शनं स्मृतकेऽधिकम् ॥

इति भृगूक्तेः समन्त्रकस्नानस्य निषेध एवेति केचिदाहुः । ग्रहणनि-
मित्तकस्नानथाह्नादावपि नाऽऽशौचमिति शेषरे । प्रयोगपारिजाते संक्रा-
न्तिनिमित्तकस्नानादावपि नाऽऽशौचमित्युक्तम् । संध्यामाह भरद्वाजः—

सूतके स्मृतके कुर्यात्प्राणायामममन्त्रकम् ।

तथा मार्जनमन्त्रांश्च मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्ध्यं निवेदयेत् ।

मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥ इति ।

विष्णुस्मृतौ—अध्यान्ता मानसी संध्या ज्ञेया प्रणववर्जिता । इति ।

आश्वलायनानां तु गायत्रीजपप्राधान्यात्तैरध्यान्तं मनसा कृत्वा दश-
संख्या गायत्र्यपि जप्या । उक्तं च भट्टोजीये—आश्वलायनस्मृतौ—

आपन्नश्चाशुचिः काले तिष्ठन्नपि जपेद्दश । इति ।

आपन्नो नामाऽऽपन्नस्तस्तं प्रति अग्निस्मृतावज्ञान्तरहानावपि अर्घ्य-
स्याऽऽवश्यकत्वमुक्तम् ।

जलाभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि ।

उभयोः संध्ययोः काले रजसा चार्घ्यमुत्सृजेत् ॥ इति ।

अशुचावाशौच इत्यर्थ इति भट्टोजीये । विधानपारिजाते—

उच्चार्य वाचा गायत्रीं दद्यादर्घ्याञ्जलीनपि ।

अष्टाविंशतिकृत्वोऽत्र गायत्रीं मनसा जपेत् ॥ इति ।

पैठीनसिः—सूतके सूतके चैव रोगोत्पत्तौ तथाऽध्वनि ।

मानसीं च जपेत्संध्यां कुशवारिविवर्जिताम् ॥

पराशरः—देशभङ्गे प्रवासे च व्याधिषु व्यसनेषु च ।

रक्षेदेव स्वदेहं च पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥ इति ।

अथ सूतकिनां संध्यावन्दनप्रयोगः । आचम्यामन्त्रकं प्राणायामं
विधाय देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं
प्रातःसंध्यामुपासिष्य इति संकल्प्य प्रणवरहितमार्जनमन्त्रान्मनसोच्चार्य
मध्यभातर्जनीभ्यां कुशरहितजलेन प्रथममार्जनं कृत्वा प्रणवरहितमानसो-
च्चारणेनैव मन्त्राचमनं विधाय द्वितीयमार्जनं पूर्ववत्कृत्वा प्रणवरहितमान-
सोच्चारणेनाधमर्पणं विधायाऽऽचम्योत्थाय गायत्रीमन्त्रेण सम्यगुच्चरितेन
त्रीण्यर्घ्याणि दत्त्वा मनसोच्चारितेनासावादित्य इति मन्त्रेणाम्भसाऽऽत्मानं
परिषिच्योपविश्याप उपस्पृश्योत्थायाष्टाविंशतिदशान्यतरसंख्यं मानसं
गायत्रीजपं विधायोपविश्याऽऽचम्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् । इति सूतकिनां
संध्यावन्दनप्रयोगः । अथाऽऽपत्कालकर्तव्यसंध्यावन्दनविधिः ।

राष्ट्रक्षोभे नृपक्षोभे रोगार्ते शावसूतके ।

संध्यावन्दनविच्छित्तिर्न दोषाय कदाचन ॥ इति ।

एतत्साङ्गानुष्ठानविषयम् ।

जलाभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि ॥

उभयोः संध्ययोः काले रजसा चार्घ्यमुत्क्षिपेत् ।

इति अग्निस्मृतावनुकल्पविधिस्मरणात् । तदभावे सूर्यध्यानमेवाऽऽह
भारते व्यासः—

तं तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।

संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ इति ।

दंशिताः संनद्धाः । संधिमागतं संध्यागतम् । इत्यापत्कालसंध्यावन्द-
नविधिः ।

जातूकर्ण्यः—सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत् ॥

पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत् ।

चरुः स्थालीपाकः श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः । सर्वथा लोप-
प्रसक्तौ स्थालीपाको ब्राह्मणद्वारा कार्यः । अन्यथाऽऽशौचान्ते संपूर्ण-
श्रवणाकर्मादिकं च विप्रद्वाराऽऽशौचेऽपि पत्न्यार्तवेऽपि कार्यमिति
धर्माब्धिसारः । तत्र त्यागमात्रे स्नानोत्तरं स्वस्य कर्तृत्वम् । श्रौते कर्मणि
तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयादिति स्मृतेः । त्यागातिरिक्ते तु श्रौते स्मार्ते
चान्यस्यैव कर्तृत्वमिति निर्णयसिन्धुः । अपरार्कादिनिबन्धास्तु श्रौतं
सर्वं स्वयं कार्यम् । स्मार्ते तु त्यागातिरिक्तेऽन्यस्यैव कर्तृत्वं त्यागमात्रे तु
स्वस्यैवेत्याहुः । समारूढेऽग्नौ द्विविधाशौचपाते प्रत्यवरोहपूर्वको होमो न
कार्य इति केषांचिन्मतं किं तु पुनराधानमेव । समारोपप्रत्यवरोहयोरा-
शौचेऽप्यदादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च भवत्येव होम आशौचेऽपीत्य-
न्येषां मतं होमविधिवलेनैव प्रत्यवरोहसिद्धेस्तेन समारोपोऽपि कर्तव्य
इति च । एजोदोषे सूतके सूतके चागतिकप्रवासगमनागमनेऽपि न दोष
इति प्रायश्चित्तरत्नमालायाम् । अग्न्यनुगमने प्रायश्चित्तपूर्वकपुनरुत्पत्ति-
रन्यद्वारा भवतीति धर्माब्धिसारः । शिवपूजायां नाऽऽशौचम् ।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाऽपि कर्तनम् ।

न त्वसंपूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥

सूतके मरणे चैव न दोषः परिकीर्तितः ।

इति लैङ्गात् । विष्णुपूजा न कार्येति आचारार्के । पुरश्चरणादिजपः
स्तोत्रपाठोऽविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशादिश्रवणादिश्च कर्तव्यः । काल-
नियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादि हेयमेवेति सिन्धुः । रत्नमालायाम्—

सूतकात्प्राक्स्मारव्यमनेकाहं तु यद्व्रतम् ।

कार्यिकं तत्तु कुर्वीत न तु दानार्चनं जपम् ॥

सूतकाहे तु यत्किंचिद्दानाद्यन्तरितं भवेत् ।

सूतकानन्तरे त्वाहि तत्कर्तव्यमतन्द्रितः ॥ इति ।

संदर्तः—पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः । इति ।

हरदत्तस्तु आश्वलायनानां सूतकेऽपि वैश्वदेवं भवति । तानेतान्य-
ज्ञानहरहः कुर्वीतेति सर्वेषां नित्यत्वोक्तावपि तस्य द्वावनध्यायौ यदा-
त्माऽशुचिर्यद्देश इत्यनेनाऽऽशौचादौ ब्रह्मयज्ञस्यैव विशेषतो निषेधादि-

त्याह । एतदयुक्तमिति वृत्तिः । विष्णुः— नाऽऽशौचे कस्यचिदन्नमश्नीया-
दिति । केपुचिदाशौचिस्वामिकेषु द्रव्येषु दोषाभावमाह मरीचिः—

लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च ।

शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च ॥

तिलौषधाजिने चैव पक्वापके स्वयं ग्रहः ।

पुण्येषु चैव सर्वेषु नाऽऽशौचं मृतमृतके ॥ इति ।

पक्वं भक्ष्यजातमपक्वं तण्डुलादि स्वयमेव स्वाभ्यनुज्ञातो गृह्णीयादि-
त्यर्थः । पक्वापक्रमनुज्ञातमन्नसन्नप्रवृत्तमिति विज्ञानेश्वरः । पडशीतौ—

संसर्गाद्यस्य चाऽऽशौचं यस्यातिक्रान्तकालता ।

तदीयस्य पदार्थस्य नाऽऽशौचं विद्यते क्वचित् ॥ इति ।

शेखरेऽपि—अनुगमननिर्हराद्याशौचे तद्व्याणां नाऽऽशौचं नित्यकर्म-
लोपश्च नास्ति । सूतकेऽस्पृश्यत्वं नास्ति तदाह कूर्मः—

सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्यति ॥ इति ।

अयं स्पर्शनिषेधाभावः कर्मकालातिरिक्तकाल इति धर्माधिसारः ।
आशौचमुक्तिसन्नानं संगवे कार्यमिति पडशीतिविवृतौ । प्रातरेवेति
धर्माधिसारः । एकादशाहप्रातःसंध्या त्वाशौचवद्वेव । तत्कालस्य
दशरात्रान्तःपातात् । तदूर्ध्वं तु शुद्धिदशावदशुचित्वाभावात् । न च
मुख्यकालवदेव गौणकालेऽपि तत्करणमिति युक्तमुक्तहेतोः । आशौ-
चापगमे पञ्चगव्यप्राशनमुक्तं विधानमालायाम्—

ब्रह्मशुद्धौ गृहारम्भे सूतके मृतके तथा ।

यज्ञारम्भे धनप्राप्तौ प्रायश्चित्ते विशेषतः ॥

रोगमुक्तौ च संपर्के क्षुद्रपापपनुत्तिषु ।

विदध्याद्ब्रह्मकूर्चं च मासि मास्यथ वा द्विजः ॥ इति ।

इदं च संध्यां विनाऽन्यकर्मस्वनधिकारात्प्रातःसंध्योत्तरं कर्तव्यमिति
रत्नमालायाम् । अन्ये त्वस्य शुद्धिसंपादकत्वात्संध्योपसनात्पूर्वमेव पञ्च-
गव्याशनमित्याहुः । शिष्टाचारानुरोधादिदमेव युक्तम् ।

अथ ब्रह्मकूर्चविधिः । बौधायनसूत्रे—

ब्रह्मकूर्चं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम् ।

शूद्राणां भाजने भुक्त्वा वेदानां विक्रये तथा ॥

होमातिक्रमकाले च पर्वहीनमसंस्कृतम् ।

एतेषां चैव शुद्ध्यर्थं पञ्चगव्यं प्रशस्यते ॥

पराशरः—गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥
 पयः काञ्चनवर्णाया नीलायाश्च तथा दधि ।
 घृतं च कृष्णवर्णायाः सर्वं कापिलमेव वा ॥
 अलाभे सर्ववर्णानां पञ्चगव्येष्वयं विधिः ।
 गोमूत्रे मापका न्य(अ)ष्टौ गोमयस्य तु षोडश ॥
 क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश कीर्तिताः ।
 गोमूत्रवद्घृतस्येष्टास्तदधं तु कुशोदकम् ॥
 गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।
 आप्यायस्वेति च पयो दधिक्राव्णेति वै दधि ॥
 तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।
 पञ्चगव्यमृचा पूतं होमयेदग्निसंनिधौ ॥ इति ।

कपिलास्वरूपं हेमाद्रौ—

सुवर्णकपिला पूर्वा द्वितीया गौरपिङ्गला ।
 तृतीया चैव रक्ताक्षी चतुर्थी गुडपिङ्गला ॥
 पञ्चमी बहुवर्णा स्यात्पष्ठी च श्वेतपिङ्गला ।
 सप्तमी श्वेतपिङ्गाक्षी अष्टमी कृष्णपिङ्गला ॥
 नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुच्छपाटला ।

स्मृत्यन्तरे—एकवर्णा तु कपिलेत्यपि कपिलालक्षणमुक्तम् । कांस्य-
 पात्रस्थितविलीनघृतसमानवर्णा कपिलेत्यपि कुत्रचित् ।

अथ प्रयोगरत्नानुसारी प्रयोगः । आचम्य प्राणानायम्य देश-
 कालौ संकीर्त्य ममाऽऽशौचजन्याशुचित्वसकलदोषनिवृत्तिपूर्वकशरीरशु-
 द्धिद्वारा संध्यादिनित्यकर्माद्यधिकारार्थं ब्रह्मकूर्चहोमपूर्वकपञ्चगव्यप्राशनं
 करिष्ये इति संकल्प्य स्थण्डिलकरणादिविठनामाग्निप्रतिष्ठापनध्यानान्ते
 क्रियमाणे ब्रह्मकूर्चहोमकर्मणि देवतापरिग्रहार्थमित्यादिचक्षुषी आज्ये-
 नेत्यन्तेऽत्र प्रधानं पृथिवीं विष्णुं रुद्रं ब्रह्माणमग्निं सोमं सवितारं पर-
 मात्मानं प्रजापतिमग्निं स्विष्टकृतमेता दश देवताः पञ्चगव्याहुत्याऽऽज्येन
 स्विष्टकृतमित्यादीधमस्थापनान्ते तृणेन सह ताम्रपात्रं पलाशपर्णपुटं
 वा पञ्चगव्यार्थमासाद्याऽऽज्ये दर्माग्रद्वयप्रक्षेपान्तेऽपरेणाग्निं दर्भेषु पञ्च-
 गव्यार्थमासादितं पात्रं निधाय तस्मिन्पवित्रे निधाय तत्सवितुरित्यस्य
 गाथिनो विश्वामित्रः सविता गायत्री । गोमूत्रग्रहणे विनियोगः । ॐ
 तत्सवि० क्र. १ इति ताम्राया गोमूत्रं मापाष्टकपरिमितमादाय गन्धद्वारा-

मित्यस्याऽऽनन्दः श्रीरनुष्टुप् । गोमयग्र० । ॐ गन्धद्वारां० क्र. १ इति श्वेता-
याः षोडशमापमितं गोमयमादाय, आप्यायस्वेत्यस्य राहूगणो गौतमः
सोमो गायत्री । पयोग्रहणे वि० । ॐ आप्यायस्व० क्र. १ इति काश्चनव-
र्णाया द्वादशमापमितं पय आदाय दधिक्राव्ण इत्यस्य वामदेवो दधि-
क्रावाऽनुष्टुप् । दधिग्रह० । ॐ दधिक्राव्णो० क्र. १ इति नीलाया दशमाप-
मितं दध्यादाय शुक्रमसीत्यस्य प्रजापतिराज्यं यजुः । घृतग्र० । ॐ शुक्र-
मासि ज्योतिरसि तेजोऽसीतिमन्त्रेण कृष्णाया माषाष्टकमितं घृतमादाय
देवस्य त्वेत्यस्य प्रजापतिरुदकं यजुः । कुशोदकग्रहणे० । ॐ देवस्य त्वा०
पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामीति माषचतुष्टयमितं सप्तभिः कुशैः स्रावितमु-
दकं गृह्णीयात् । देवस्य त्वेतिमन्त्रेऽभिषिञ्चामीति वाक्यशेषं केचिदाहुः ।
ततः प्रणवेन हस्तेनाऽऽलोड्य प्रणवेनैव यज्ञियकाष्ठेन निर्मन्थ्य तत्पवि-
त्रमाज्यपात्रे स्थापयित्वा पञ्चगव्यपात्रमाज्योत्तरतो निधाय पञ्चगव्य-
सहिताज्यपर्यग्निकरणादिबर्हिष्याज्याक्सिदादनानन्तरं तदुत्तरतो बर्हिषि
पञ्चगव्यपात्रासादनम् । आज्योत्पवनानन्तरं पञ्चगव्यस्याप्युत्पवनमिति
केचित् । सुवसंमार्गादिचक्षुष्यन्ते सप्तसु दर्भेषु सहाराथं सुवं निधाय
तेन त्रिभिर्मध्यमपलाशपर्णैर्वा पञ्चगव्यहोमं कुर्यात् । तत्र मन्त्राः । इरा-
वतीत्यस्य वसिष्ठो रुद्रस्त्रिष्टुप् । पञ्चगव्यहोमे वि० । ॐ इरावती० ।
मयूखैः स्वाहा । पृथिव्या इदं न मम ॥ १ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य काण्वो
मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री । पञ्चगव्यहोमे० । ॐ इदं विष्णु० सुरे स्वाहा
विष्णव इदं० ॥ २ ॥ मा नस्तोकेत्यस्य कुत्सो रुद्रो जगती । पञ्चगव्य-
होमे० । ॐ मा नस्तोके० सह स्वाहा । रुद्रायेदं० ॥ ३ ॥ ब्रह्मजज्ञानमि-
त्यस्य नकुलो ब्रह्मा त्रिष्टुप् । पञ्चगव्यहो० । ॐ ब्रह्मजज्ञानं० विवः
स्वाहा । ब्रह्मण इदं० ॥ ४ ॥ अग्नये स्वाहा । अग्नये इदं० ॥ ५ ॥ ॐ
सोमाय स्वाहा । सोमायेदं० ॥ ६ ॥ तत्सवितुरित्यस्य गायिनो विश्वा-
मित्रः सविता गायत्री । पञ्चगव्यहो० । ॐ तत्सवितु० यात्स्वाहा ।
सवित्र इदं० ॥ ७ ॥ प्रणवस्य परब्रह्मपरमात्मा त्रिष्टुप् । पञ्चगव्यहो० ।
ॐ ॐ स्वाहा । परमात्मन इदं० ॥ ८ ॥ व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिः
प्रजापतिर्बृहती । पञ्चगव्यहो० । ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । प्रजापतय
इदं० ॥ ९ ॥ ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । अग्नये स्विष्टकृत इदं० ॥ १० ॥
इति दशाऽऽहुतीर्हुत्वा ततोऽवाशिष्टं पञ्चगव्यं सर्वं प्रणवेनाभिमन्त्र्याऽऽ-
सनाद्वाहिरुपविश्य

ॐ यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके ।

प्राशनं पञ्चगव्यस्य दहत्वग्निंरिवेन्धनम् ॥

ॐ इति हस्तेन सर्वं पीत्वा हस्तमुखं प्रक्षाल्याऽऽचम्य स्वासन उप-
विश्याऽऽज्येन स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्याऽऽचम्यानेन ब्रह्मकूर्चहोमपू-
र्वकपञ्चगव्यप्राशनाख्येन कर्मणा तेन श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् । अस्मिन्होम
इध्माधानादिस्थालीपाकेतिकर्तव्यतां केचिन्नेच्छन्ति । इति ब्रह्मकूर्च-
विधिः । अयं होमादिविशिष्टो ब्रह्मकूर्चविधिः स्वस्यैव पञ्चगव्यप्राशने
भवति नान्यस्य । अथापरो होमरहितो ब्रह्मकूर्चविधिरुक्त आग्ने-
यपुराणे —

गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।

आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥

तेजोऽसीति तथा चाऽऽज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।

ब्रह्मकूर्चो भवत्येवमापो हि धेत्यृचं जपेत् ॥

अघमर्पणसूक्तेन संयोज्यं प्रणवेन वा ।

पीत्वा सर्वाघनिर्मुक्तो विष्णुलोकमुपैति सः ॥ इति ।

आशौचापगमे यज्ञोपवीतधारणमुक्तं परांशरेण—

सूतकान्त उपाकृत्य गते मासचतुष्टये ।

नवयज्ञोपवीतं तु धृत्वा जीर्णं विसर्जयेत् ॥ इति * ।

तत्र यज्ञोपवीतनिष्पत्तिप्रकारं तद्धारणप्रकारं च वदामः । बौधायनः—
अथातो यज्ञोपवीतक्रियां व्याख्यास्यामो ब्राह्मणेन तत्कन्यया वा कृतः
सूत्रमानीय भूरिति प्रथमां षण्णवतिं मिनोति भुव इति द्वितीयां सुव-
रिति तृतीयां मीत्वा पलाशपत्रे संस्थाप्याऽऽपो हि धेति तिसृभिर्हिर-
वर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकेन
सावित्र्याऽभिषिच्य दामहस्ते कृत्वा त्रिः संताड्य भूरग्निं चेत्येतैस्त्रिभि-
र्वलितं कृत्वा भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसेत्येतेन ग्रन्थि कृत्वौंकारमग्निं नागो-
न्सोमं पितृन्प्रजापतिं वायुं सूर्यं विश्वान्देवान्नवतन्तुषु क्रमेण विन्यस्य
संपूजयेद्देवस्य त्वेत्युपवीतमादायोद्वयं तमसस्परीत्यादित्याय दर्शयित्वा

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमग्न्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

* ख. पुस्तके समासे—केचिज्जननाशौचशावाशीचयोरन्तेऽपि तत्त्यागमादुरिति ध. सि. ।

१ ख. 'काव्योऽथ वै । २ क. छन्दोगपरिशिष्टे । ३ क. 'पाकमे ग' । ४ क. 'गान्यसं ।

इति धारयेदित्याह भगवान्यौधायन इति ।

बौधायनीयस्मार्तसूत्रं च—अथातो यज्ञोपवीतविधिं व्याख्यास्या-
मश्चिन्ने विनाशो वा हस्तपादं प्रक्षाल्याऽऽचम्य ब्राह्मणकन्यया वा
ब्राह्मणविधवया वा स्नातया शुद्धया कृताचमनया निर्मितं सूत्रं
गृहीत्वा प्राचीं वोदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य चतुरङ्गुलमात्रं पण्णवतिसूत्रं
परिमण्डलं चैवं द्वितीयमेवं तृतीयमग्निः प्रक्षाल्याऽऽपो हि ष्ठा मयोभुव
इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः सुव-
र्जन इत्येतेनानुवाकेन मार्जयित्वा देवागारे गवां गोष्ठे नदीतीरे शुचौ
देशे यत्र बैलवीं खादिरीमौदुम्बरीं पैप्पलीमाश्वत्थीं वैणवीं वा यज्ञिय-
वृक्षशाखामवलम्ब्य सजीवायां बध्नाति पितृभ्यो नम इति प्रथमं सव्ये
संपन्ने हस्ते गृहीत्वा प्रतिष्ठापयति भूः प्रतिष्ठापयामि भुव० प्रति०
सुवः प्रति० भूर्भुवः सुवः प्र०मीति प्रतिष्ठाप्य भूरग्निं च पृथिवीं चेति
दक्षिणावर्तिमभिमन्त्रयते भुवो वायुमिति मध्यमावर्तिं सुवरादित्यं च
दिवं चेत्युत्तरावर्तिं त्रयाणां ब्रह्मेश्वरादिष्णूनां प्रणामं कृत्वा

तन्तुत्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणा त्रिगुणीकृतम् ।

चतुर्वेदस्य चत्वारि त्रिवेदस्य त्रिकं भवेत् ॥

द्वे स्यातां वै द्विवेदस्य एकमेवैकवेदिनः ।

इति यज्ञोपवीतविधिर्यास्यातः । इति षष्ठोऽध्यायः ।

प्रकारान्तरं स्मृत्यर्थसारे—

शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके ।

आवेष्ट्य पण्णवत्या तं त्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥

अञ्जिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्ववृत्तं कृतम् ।

पुनस्तत्रिगुणीकृत्य नवसूत्रमधोवृत्तम् ॥

अप्रदक्षिणमावृत्तं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ।

अधःप्रदक्षिणावृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम् ॥

त्रिरावेष्ट्य वृद्धं कृत्वा हरिब्रह्मेश्वरान्नयसेत् ।

नमेदिति क्वचित्पाठः ।

सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम् ।

एवं कृत्वोपवीतं स्यात्तस्यैका(को) ग्रन्थिरिष्यते ॥

ग्रन्थेश्च नवसूत्राणां वक्ष्यन्ते देवताः क्रमात् ।

ॐकारोऽग्निस्तथा नागाः सोमपितृप्रजापतीन् ॥

वायुः सूर्यश्च शर्वश्च इत्येता नव तन्तुषु ।

न्यसेदिति शेषः ।

रुद्रेण दीयते ग्रन्थिः सावित्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् ॥
यज्ञोपवीतं परममिति मन्त्रेण धारयेत् ।
बहूनां धारणे तत्र प्रत्येकं मन्त्र इष्यते ॥ इति ।

ऊर्ध्ववृतप्रकारमाह संग्रहकारः—

करेण दक्षिणेनोर्ध्वं गतेन त्रिगुणीकृतम् ।
वलितं ब्राह्मणैः सूत्रं शास्त्र ऊर्ध्ववृतं स्मृतम् ॥ इति ।

ऊर्ध्वगतेनोर्ध्वस्थितेन दक्षिणकरेण त्रिगुणीकृतं सद्यद्वलितं तदूर्ध्व-
वृतमित्यर्थः । देवलः—

विधवारचितं सूत्रमनध्यायकृतं च यत् ।
विच्छिन्नं चाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥

अधोयातमित्यत्र कटेरिति शेषः । कात्यायनः—

पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम् ।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम् ॥

नातिलम्बमित्यनेन कटितोऽधिकं निषिध्यते । नोच्छ्रितमित्यनेन
कटितो न्यूनम् । स्मृतिसारेऽपि—

आ कटेस्तत्प्रमाणं स्याद्दीर्घं तु सुस्थितं तथा ।
आयुर्हरत्यतिह्रस्वमतिदीर्घं तपोहरम् ॥
सिद्धार्थफलमानेन स्थूलं स्यादुपवीतकम् ।
यशोहरमतिस्थूलमति सूक्ष्मं धनापहम् ॥ इति ।

पराशरः—रन्ध्रादिनाभिपर्यन्तं ब्रह्मसूत्रं पवित्रकम् ।

न्यूने रोगप्रवृत्तिः स्यादधिके धर्मनाशनम् ॥ इति ।

वसिष्ठः—नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः ।

तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥ इति ।

देवलः—स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न कर्तव्यं कथंचन ॥ इति ।

तच्चोपवीतं वर्णभेदेनाऽऽह मनुः—

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृतम् ।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याऽऽविकमुच्यते ॥

क्षौमेयं राजन्यस्येति पैठीनसिः । उक्तालामे देवलः—

कार्पासक्षौमगोवालशणवलकतृणादिकम् ।

यथासंभवतो धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः ॥ इति ।

धारणसंख्यामाह भृगुः—

उपवीतं बटोरेकं द्वे तथेतरोः स्मृते ।

एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

इतरयोर्गृहस्थवानप्रस्थयोः । गृहस्थस्य नित्योपवीतविषयमेतत् । बहूनि वाऽऽयुष्कामस्येति गृहस्थं प्रति देवलोक्तेः । [* बहुत्वावधिमाह कश्यपः—त्रीणि चत्वारि पञ्चाष्ट गृहिणः स्युर्दशापि वा । अत्र त्रिप्रभृति-दशपर्यन्तमधिकधारणे फलभूमा कल्पः (लप्यः)] सर्वथा यज्ञोपवीतालामे माधवीय ऋष्यशृङ्गः—अपि वा वाससी यज्ञोपवीतार्थं कुर्यात्तदभावे त्रिवृता सूत्रेणेति । वस्त्रप्रतिनिधित्वेन यज्ञोपवीतधारणं सव्यादिलक्षणं च पूर्वमुक्तम् । पराशरः—

पतितं त्रुटितं वाऽपि ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ।

नूतनं धारयेद्विप्रः स्नात्वा संकल्पपूर्वकम् ॥

यज्ञोपवीतमेकैकं प्रतिमन्त्रेण धारयेत् ।

आचम्य प्रतिसंकल्पं धारयेन्मनुरब्रवीत् ॥

एकमन्त्रैकसंकल्पं धृत्वा यज्ञोपवीतकम् ।

एकस्मिंस्त्रुटिते सर्वं त्रुटितं नात्र संशयः ॥ इति ।

जीर्णप्रतिपत्तिमाह मनुः—

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।

अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृहीतान्यानि मन्त्रतः ॥

कालनिर्णयचन्द्रिकायां व्यासः—

उपवीतं नवं वस्त्रं कटिसूत्रं च मेखलाम् ।

धारयेदजिनं दण्डं पुराणान्यप्सु निक्षिपेत् ॥

पुराणान्यप्सु वा क्षिपेदिति पाराशरस्मृतावुक्तेर्वाशब्दाद्वाह्मणाय दद्यादिति भावः । वस्त्रादिविषये गौतमस्तु जीर्णान्युपानच्छत्रवासःकू-
र्चानि । कूर्चं वृष्यादि । शेषं प्रसिद्धम् । जीर्णान्युपभुक्तान्युपानदादीनि

परिचरते शूद्राय देयानीति हरदत्तो व्याचख्यौ । पारिजाते—एवं स्वधृतं यज्ञोपवीतं जीर्णं भवति चैन्नवीनं धृत्वा जीर्णं सरिद्व्यतटाकान्यत-
मोदके ॐ समुद्रं गच्छ स्वाहेति मन्त्रेण प्रणवेन व्याहृतित्रयेण वा
विसृजेदिति । छन्दोगपरिशिष्टे—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ।

विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

अत्र पूर्वार्धेन सदाशब्दवशात्पुरुषार्थतोत्तरार्धेन विपर्ययानिन्दाद्वारेण
सशिखसोपवीताभ्यां कर्तव्यं कर्मेतिकीर्तनात्कर्मार्थता । एवं च कर्मकाले
शिखाबन्धोपवीताभावे कर्माङ्गलोपनिमित्तं पुरुषार्थलोपनिमित्तं चेति
प्रायश्चित्तद्वयं भवति दर्शपूर्णमासयोरिवानृतवदने । कर्मणो बहिस्तु
पुरुषार्थलोपनिमित्तमेकमेवेति प्रयोगरत्ने । प्रायश्चित्तं तु पारिजाते—
यज्ञोपवीतरहितः क्षणमात्रं तिष्ठति चेत्स तु यज्ञोपवीतं धृत्वा शतवारं
गायत्रीं जपेत् ।

तथैव—स्कन्धावरोहिते यज्ञसूत्रे त्रिः प्राणसंघमः ।

षट् कूर्परं गते तस्मिन्दिपट्कं मणिवन्धके ॥

वामहस्तव्यतीते तु तस्यस्त्वा धारयेन्नवम् ।

तस्माद्यज्ञोपवीतस्य चलनं न कदाचन ॥

अप्रमत्तैर्द्विजैः स्कन्धे सदा धार्यं प्रयत्नतः ।

भृगुः—देहस्थमेव तत्क्षाल्यमुत्तार्यं न कदाचन ॥ इति ।

शाखाविशेषेणोत्तारणनिषेधापवादमाह देवलः—

तैत्तिरीयाः कठाः कण्वाश्चरका वाजसनेयिनः ।

कण्ठादुत्तार्यं सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः ॥

बह्वृचाः सामगाश्चैव ये चान्ये याजुषाः स्मृताः ।

कण्ठादुत्तार्यं सूत्रं तु पुनरर्हन्ति संस्क्रियाम् ॥

अभ्यङ्गे चोदधिस्राने मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

कण्ठादुत्तार्यं सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः ॥ इति ।

अथर्वणानां तूत्तारणं कृताकृतमर्थात् । संस्क्रियां मन्त्रेणोपवीतान्तरधा-
रणम् । अभ्यङ्ग इत्येतद्वाक्यचोदितेष्वेवैषा व्यवस्था ज्ञेयेति संस्काररत्नमा-
लायाम् । अथ तूष्णीं निर्मितस्य यज्ञोपवीतस्य पूर्वोक्तबौधायनप्रकारेण
मन्त्रवत्संस्कार उच्यते—स्नात्वा वाससी परिधाय भस्मादिपुण्ड्रं धृत्वाऽऽ-

चम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य पुरुषार्थं श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठान-
सिद्ध्यर्थं च यज्ञोपवीतधारणं करिष्ये । तत्राऽऽदौ तूष्णींनिमित्तयज्ञोप-
वीतस्य मन्त्रवत्संस्कारं करिष्ये इति संकल्प्य प्रक्षालितानि यज्ञोपवीतानि
वामहस्ते कृत्वा दक्षिणेनाभिमन्त्रयेत् । ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ सुवः ।
ततः पलाशपत्रे संस्थाप्य याजुषैर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत् । आपो हि ष्ठा मयो-
भुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः
सुवर्जन इत्येतेनानुवाकेन सावित्र्या चाभिषिच्य वामहस्ते कृत्वा त्रिः
संताड्याभिमन्त्रयेत् । ॐ भूरग्निं च पृथिवीं च मां च । त्रींश्च लोकान्सं-
वत्सरं च । प्रजापतिस्त्वा सादयतु । तया देवतयाऽङ्गिरस्वदधुवा सीद ॥१॥
ॐ भुवो वायुं चान्तरिक्षं च मां च । त्रींश्च ० । ॐ सुवरादित्यं ० । ॐ भूर्भुवः
स्वश्च ० । ॐ कारं प्रथमतन्तौ न्यसामि १ अग्निं द्वितीयतः २ नागांस्तृती-
यतः ३ सोमं चतुर्थतः ४ पितृन्पञ्चमतः ५ प्रजापतिं षष्ठतः ६ वायुं सप्त-
मतः ७ सूर्यमष्टमतः ८ विश्वान्देवान्नवमतः ९ द्वयोर्यज्ञोपवीतयोः संस्कारे
ॐ कारं प्रथमतन्त्वोर्न्यसामीत्याद्यूहः । बहूनां संस्कारे ॐकारं प्रथम-
तन्तुषु न्यसामीत्यादि । ततो यज्ञोपवीतानि भूमौ निधाय गन्धादिभिः
संपूज्य ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्या-
मादद इत्यादाय, ॐ उद्वयं तमसस्परि ० क्र. १ इत्यादित्याय दर्शयित्वा
यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परब्रह्मपरमात्मा त्रिष्टुप् । यज्ञोपवीतधारणे
वि० । ॐ यज्ञोपवीतं परं तेज इति मन्त्रेण प्रथमं दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य
पश्चात्कण्ठे धारयेत् । प्रत्युपवीतं मन्त्रावृत्तिराचमनं च ।

अथ संस्कारकौस्तुभधृतच्छन्दोगपरिशिष्टानुसारेण प्रयोगः—संक-
ल्पान्तं पूर्ववत्कृत्वा यज्ञोपवीतमापो हि ष्ठेति तिसृभिः प्रक्षाल्य ॐकारा-
दिदेवता अष्टतन्तुषु त्वमे शर्वं ग्रन्थौ रुद्रं च विन्यस्य सावित्र्याऽभिमन्त्र्य
सावित्र्या दशवारं मन्त्रिताभिरद्भिः प्रोक्ष्य ॐ हरये नमः । ॐ ब्रह्मणे नमः ।
ॐ ईश्वराय नमः । इति त्रीन्मन्त्रान्विन्यस्य यज्ञोपवीतमितिमन्त्रेण धार-
येत् । अथापरः प्रकारः स्मृत्यर्णवे—तूष्णीमेवोर्ध्ववृत्त्वादिलक्षणविशिष्टं
यज्ञोपवीतं निर्माय सावित्र्याऽऽपो हि ष्ठादिभिर्मन्त्रैर्वाऽभिमन्त्रिताभिर-
द्भिर्दशवारं सावित्र्यैवाभ्युक्ष्य यज्ञोपवीतमितिमन्त्रेण व्याहृतिभिर्वा धार-
येदिति । कौपीतकिशाखायां तु यज्ञोपवीतेनोपव्ययामि दीर्घायुत्वाय
सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय सर्वेषां वेदानामाधिपत्याय यशसे ब्रह्मवर्चसायेति
यज्ञोपवीतधारणमन्त्र उक्तः । प्रयोगचिन्तामणौ तु—स्वगृह्ये यज्ञोपवी-

तस्य तन्मन्त्रस्य चानाम्नानाच्छाङ्खायनसूत्रे च यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य
त्वोपवीतेनोपनह्यामीति यज्ञोपवीतं कृत्वेतीतिकरणविनियुक्तमन्त्राम्ना-
नात्तेनैव मन्त्रेणोपवीतं धारयेद्वेदैक्यादित्युक्तम् । अथ यज्ञोपवीतत्यागे
निमित्तान्तराणि—

रक्तश्लेष्मसुरामांसविण्मूत्राक्तं प्रमादतः ।
उपवीतं तदुत्सृज्य दध्यादन्यद्द्विजः सदा ॥
भलमूत्रं त्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक् ।
उपवीतं तदुत्सृज्य दध्यादन्यन्नवं तदा ॥ इति ।

उपवीतधृगिति यज्ञोपवीती सन्नित्यर्थः । पारिजात आश्वलायना-
चार्यः—

चितिकाष्टं चितेर्धूमं चण्डालं च रजस्वलाम् ।
शवं च सूतिकां स्पृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥
त्यजेद्वस्त्रं च सूत्रं च पीत्वा गव्यं घृतं च वा ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा स्पृष्ट्वैताञ्शुद्धिमाप्नुयात् ॥
सूत्रं यज्ञसूत्रमिति तत्रैव । चण्डाललक्षणमाहाङ्गिराः—
यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्यां यश्च शूद्रजः ॥
तावुभौ विद्धि चाण्डालौ सगोत्राद्यश्च जायते ।

अस्य वृत्तिः कमलाकरे—

चण्डालश्चपचानां तु निर्ग्रामः स्यात्प्रतिश्रयः ॥
वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डे च भोजनम् ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥
वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ।
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाऽऽभरणानि च ॥ इति ।

चण्डालोत्पन्ना जातिविवेके—

चण्डालः पुलकसीसङ्गाच्छुपाकं जनयेत्सुतम् ।
स्थानान्तरं स नगरात्कर्तुमर्हत्यशेषतः ॥
गोर्गर्भशुनां कुर्याद्ब्राम्हिर्हरणं बहिः ।
सा जीविकाऽस्य विहिता सर्वलोकेऽतिविश्रुता ॥

पुलकसी कोलिणी । चाण्डालः प्रसिद्धः । तदुभयजः श्वपाकः । स
च मृतानां गवादीनां बहिर्निर्हरणं कुर्यात् । सा जीविका । इति श्वपाकः ।
लोके साहार ।

निषादवनिता सूते चाण्डालाहुोम्बसंज्ञितम् ।
 असावन्त्यावसायीति श्मशाननिलये वसेत् ॥
 तत्र रक्षां प्रकुर्वीत प्रेतानां वस्त्रजीवनः ।
 सतीनां सेवडं गृह्णन्काष्ठविक्रयकृच्च सः ॥
 तस्येयं जीविका प्रोक्ता लोकेऽन्त्यावासिनः सदा ॥ इति ।

अन्ता(न्त्या ?)वसायी लोके डोम्ब ।

आन्ध्रस्य वनितासङ्गाच्चाण्डालो जनयेत्सुतम् ।
 प्लवसंज्ञं स हाडीति लोके सर्वत्र विश्रुतः ॥
 अश्वोष्ट्रगर्दभानां च मृतानां कालयोगतः ।
 कुर्वन्निर्हरणं सोऽपि मांसभक्षणजीवनः ॥

आन्ध्रस्य वनिता पापधि(धि ?)कस्त्री । चाण्डालः प्रसिद्धः । तदु-
 भयजः प्लवः । लोके हाडी ।

मेदजायुवतीसङ्गाच्चाण्डालो जनयेत्सुतम् ।
 स माङ्गः श्वपचो लोकेऽस्पृश्यः साहसकारकः ॥
 यस्यान्नमेव तस्यैव श्वपचस्तेन चोच्यते ।
 जीविका तस्य निर्दिष्टा सार्द्धगोचर्मरज्जुभिः ॥

मनुः—मनुष्यमारणं चौर्यं परदारभिमर्शनम् ।
 अग्निदाहादिकरणं साहसं स्याच्चतुर्विधम् ॥
 यत्राऽऽचौरपरिश्रंशाज्जायते वर्णसकरः ।
 राष्ट्रीयैः सह तद्वाष्ट्रं क्षिप्रमेव प्रणश्यति ॥

मेदयुवतिः कोलिणी । चाण्डालः प्रसिद्धः । तदुभयजः श्वपचः ।
 मांग इति ।

चाण्डालश्चपचस्त्रीणां काचलोहविभूषणम् ।
 नागदङ्गककांस्यानां दुर्लभस्यापि धातुनः ॥
 वसनं चोर्णपट्टानां तेषां रात्रौ प्रचारणम् ।
 माञ्जिष्ठवस्त्रं सूक्ष्मं च क्षौमं यत्साधुवस्त्रतः ॥
 न तेषां वसनं योग्यं कम्बलस्यैव तद्भवेत् ।
 दिवा यदा ते गच्छन्ति नगरे कार्यगौरवात् ॥
 शिवालेति तदोच्चार्य संकुचद्वात्रशङ्किताः ।
 कर्णे कर्पीदकां बद्ध्वाऽश्वगर्दभश्वार्थिनः ॥

लोहदण्डं स्वहस्ते तु श्वपचारव्यातिहेतवे ।

प्रेतोपकरणैस्तेषामाजीवः संप्रकीर्तितः ॥

प्रायश्चित्तमयूखे चाण्डालान्नभक्षणप्रायश्चित्तमुपक्रम्योक्तम्—

अङ्गिराः—

अन्त्यावसायिनामन्नमश्रीयाद्यस्तु कामतः ।

स तु चान्द्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ इति ।

अन्त्यावसायिनस्तु मिताक्षरायाम्—

चण्डालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहकस्तथा ।

मागधायोगवौ चेति सप्तैतेऽन्त्यावसायिनः ॥

चण्डालश्वपचयोर्लक्षणं पूर्वमुक्तम् । क्षत्रादीनां लक्षणं वृत्तिश्च जातिविवेके—

क्षत्रिणी शूद्रसंयोगात्क्षत्तारं जनयेत्सुतम् ।

निषाद इति विख्यातः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

शूद्राचारविहीनस्तु पापधिनिरतः सदा ।

वागुरापाशपाणिश्च मृगबन्धनकोविदः ॥

आरण्यपशुजातीनामन्तकश्च वनेचरः ।

क्रोधान्वितो मांसवृत्त्या तया जीवेत्सदैव हि ॥

घण्टापापधिकां कुर्याद्वात्रौ विस्मयकारिणीम् ।

त्रिधा पापधिरस्योक्ता व्योमभूजलचारिणाम् ॥

विक्रयं मधुनः कृत्वा धनमिच्छेत्स वृत्तये ॥ इति ।

क्षत्ता निषादः । लोके पारथिः ।

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतः प्रातिलोभ्येन जायते ।

क्षत्रियाणामसौ धर्मान्कर्तुमर्हत्यशेषतः ॥

किञ्चिच्च क्षत्रजातिभ्यो न्यूनता तस्य जायते ।

गजबन्धनमश्वानां रोहणं कर्म सारथेः ॥

वैश्यधर्मेषु सूतस्य नाधिकारः क्वचिद्भवेत् । इति ।

सूतः सारथिः । लोके गाडीवान् ।

ब्राह्मण्यां जायते वैश्याद्योऽसौ वैदेहिकाभिधः ।

शुद्धान्तरक्षणं राज्ञां कुर्यादनुपमं हि सः ॥

सामान्यवनिता पोष्या तासां भाटीति जीविका ।

तस्योक्ता शूद्रधर्माणां नाधिकारोऽस्ति कर्हिचित् ॥

पण्याङ्गनानां राज्ञा तु कुर्यात्सङ्गं तदिच्छया ।
 रूपाजीवासु तास्वेव निशि यः संगतो विटः ॥
 स एव तासां प्राणेशो नान्यः कान्तोऽपि तत्पतिः ।
 चतुःपष्टिकलाः कामशास्त्रं तदुपजीवनम् ॥

तेन वेश्यानां राज्ञा सह सङ्गः कारयितव्यस्तासामिच्छयेति । वैदे-
 हकः सावासी ।

क्षत्रिणी मागधं वैश्याज्जनयामास यं सुतम् ।
 स बन्दीजन इत्युक्तो व्रतबन्धादिवर्जितः ॥
 शूद्रेभ्योऽभ्यधिकः किञ्चित्तस्य जीवनमुच्यते ।
 कथालंकारगद्यादिपद्भाषाकुशलः क्षमः ॥
 गद्यपद्यानि चित्राणि बिरुदानि महीभुजाम् ।

अस्य जीविका राज्ञां बिरुदानि गद्यपद्यानि चरित्राण्यलंकारगद्यादि-
 पद्भाषा ज्ञेयाः । शूद्राकिञ्चिदाधिक्यमिति मागधो लोके बन्दीजनः ।

वैश्यस्त्रीशूद्रसंयोगादायोगवकसंज्ञकः ।
 स शूद्राद्धीयते धर्मे पापाणेष्वकर्मकृत् ॥
 स कुर्यात्कुट्टिमां भूमिं चूर्णेनास्येह जीविका ।

इत्यायोगवः । लोके पाथर्वट । इत्यन्त्यावसायिनः ।

सौनिकं कर्मचाण्डालात्सूते दाशवधूः सुतम् ।
 स कुर्यादजपेपाणां वधं तन्मांसविक्रयम् ॥
 तद्धनं जीवनं तस्य स हीनस्त्वन्यजातितः ।

दाशवधूर्ध्वविरस्त्री । कर्मचाण्डालः वडार इति । सै(सौ)निकः लोके
 खाटीक ।

धिग्वण्यायोगवाभ्यां यो जातो दुर्भरसंज्ञकः ।
 स कुर्याच्छागलाः सम्यक्सुहृदाः करपत्रिकाः ॥
 अन्यानि चर्मपात्राणि जीवनाय प्ररोहकान् ।
 अन्त्यजातिषु मुख्योऽसौ कीर्तितो जातिसंग्रहे ॥

धिग्वणी मोचिणी अयोगवः पाथर्वट इति । दुर्भरः लोके ढोर । विस्त-
 रस्तु गोपीनाथकृतजातिविवेके ज्ञेयः । इति चाण्डाललक्षणम् ।

यज्ञोपवीतनाशे तु स्मृतिरत्नावल्याम् ।

उपवीतविनाशे तु गायत्र्या जुहुयात्तिलान् ।

अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ इति ।

हारीतस्तु—मनोव्रातपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनः प्रतीयादि-
त्याह । यद्वा

उपवीतं यदा तष्टं गायत्र्याऽष्टशतं हुनेत् ।

प्राजापत्यं चरेद्वाऽपि यद्वा गोदानमिष्यते ॥

अथ क्रमेण प्रयोगाः—कर्ता त्रिवृत्सूत्रं यज्ञोपवीतार्थं धृत्वाऽहतवस्त्र-
परिधानादि कृत्वा प्राङ्मुख उपविश्याऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ
संकीर्त्य यज्ञोपवीतनाशजन्यदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्राय-
श्चित्तं करिष्ये इति संकल्प्य स्थण्डिलाद्यग्निप्रतिष्ठापनान्तं कृत्वाऽन्वा-
धाने सवितारमष्टोत्तरसहस्रसंख्याभिरष्टोत्तरशतसंख्याभिर्वा घृताक्तति-
लाहुतिभिः शेषेणेत्याद्याज्यभागान्ते गायत्र्याऽन्वाधानोद्दिष्टसंख्यया
हुत्वा सवित्र इदं न ममेति त्यक्त्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य
नूतनं यज्ञोपवीतं धृत्वा क्रमप्राप्तमाह्निकं कुर्यात् ।

अथापरः प्रयोगः—मनो ज्योतिरिति । अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि
तच्छ्रेयं तन्मे राध्यताम् । वायो व्रतपत इत्यादिमन्त्रचतुष्टयेन चतस्र
आज्याहुतीर्हुनेदिति प्रधानहोमे विशेषः । अन्यत्पूर्ववदिति ।

अन्यस्तृतीयः पक्षः—अष्टोत्तरशतसंख्याकाभिस्तिलैराज्येन वा गायत्र्या
हुनेदिति प्रधानहोमे विशेषः । अन्यत्पूर्ववत् ।

अपरश्चतुर्थः पक्षः । तदानीमेव प्राजापत्यप्रत्याम्नायत्वेन द्रव्यं दत्त्वा
गोदानं वा कृत्वा यज्ञोपवीतं धारयेदिति । यज्ञोपवीते द्रुष्टिते कटेरध-
स्ताद्गते मूत्रपुरीषोत्सर्गकाले कर्णं यज्ञोपवीताधारणे रक्तश्लेष्मसुरामास-
विण्मूत्रादिभिरुपहतस्य त्यागं कृत्वा प्रायश्चित्तहोमं कृत्वा नूतनं यज्ञो-
पवीतं धारयेदिति संस्काररत्नमालायाम् । अन्यमते तु सर्वथा विनाश
एव होमादिप्रायश्चित्तं नान्यत्र ।

इति श्रीमाटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्रयम्बकविरचित आचारेन्दौ

यज्ञोपवीतधारणं तन्निष्पत्त्यादिदिनचतुर्थभाग-

प्रकरणं समाप्तम् ।

अथ पञ्चमभागकृत्यमाह दक्षः—

पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथाऽर्हतः ।

देवपितृमनुष्याणां कीटानां चोपदिश्यते ॥

कीटानां भूतानाम् । संविभागोऽन्नस्य । अत एव विष्णुः—

मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते बलिं कृत्वाऽऽत्मनो गृहे ।

देवपितृमनुष्याणां शिष्टं भुञ्जीत वाग्यतः ॥ इति ।

आश्वलायनः—अथातः पञ्च यज्ञा देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञो ब्रह्म-
यज्ञो मनुष्ययज्ञ इति तदग्नौ जुहोति स देवयज्ञो यद्वलिं करोति स भूत-
यज्ञो यत्पितृभ्यो ददाति स पितृयज्ञो यत्स्वाध्यायमधीते स ब्रह्मयज्ञो
यन्मनुष्येभ्यो ददाति स मनुष्ययज्ञ इति तानेतान्यज्ञानहरहः कुर्वीतेति ।
अहरहरतिवचनं परान्नभोजन उपवासदिनेऽपि पञ्चयज्ञार्थं पक्तव्य-
मेवेत्येवमर्थमिति वृत्तिः । सर्वथा पाकासंभवे पुष्पैः फलैरन्निर्वा वैश्वदेवं
कुर्यादित्येवमर्थमपि चेति तत्रैव । आचारप्रकाशे यमः—

पञ्च सूना गृहस्थस्य वर्तन्तेऽहरहः सदा ।

कण्डनी पेपणी चुली जलकुम्भ उपस्करः ॥

एतानि वाहयन्विप्रो बध्यते वै मुहुर्मुहुः ।

एतेषां पावनार्थाय पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥

सूना हिंसास्थानानि । कण्डनी भुसलोलूखलादिः । पेपणी दृपदुप-
लादिः । चुली पाकस्थानम् । जलकुम्भ उदकस्थानम् । उपस्करः
शूर्पादिः । अवस्कर इतिपाठे मार्जन्यादिर्द्रष्टव्यः । एताः सूनाः स्वस्व-
कार्ये प्रायन्यायेन युज्यन्त इत्यर्थः । तत्र तावदेवयज्ञ उक्तः कौर्मे—

लौकिके वैदिके वाऽपि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ।

वैश्वदेवस्तु कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥ इति ।

देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञाख्यकर्मत्रयं वैश्वदेवपदवाच्यमित्याचारमयू-
खोक्तौ प्रमाणं तु वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातरुदाहृतमिति मार्कण्डे-
यपुराणम् । एतद्धि बलिदानान्तं कर्माभिधायोक्तम् । स च

वैश्वदेवं पुरा कृत्वा नित्ये चाभ्युदये तथा ।

स्वाभीष्टदेवतादिभ्यो नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु नैवेद्यं यो निवेदयेत् ।

तदन्नं च न गृह्णन्ति देवा विष्ण्वादयो ध्रुवम् ॥

इत्याश्वलायनस्मृतेः स एष देवयज्ञोऽहरहर्गोदानसंमितः सर्वाभीष्ट-
प्रदः स्वर्ग्योऽपवर्ग्यश्च । तस्मादेनमहरहः कुर्वीत । तमेतं वैश्वदेवहुतशे-
षेण पृथगन्नेन वा कुर्यान्नास्य शेषेण वैश्वदेवं कुर्यादिति गृह्यपरिशि-
ष्टाच्च देवनैवेद्यदर्शनात्पूर्वं कार्यः । यत्तु

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम् ।

पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते ॥

इति ब्रह्माण्डवचनं तद्वैष्णवपरम् । एतच्च वैश्वदेवाख्यं कर्म पुरुषार्थ-
मन्नसंस्कारार्थं च । यथा श्विष्टकृद्यागो देवतोद्देशांशोनाहृष्टार्थो द्रव्यप्रक्षे-
पांशेन हृष्टार्थश्च । वृत्त्यभिप्रायोऽप्येवम् । संस्काररत्नमालायां तु वैश्वदे-
वस्याऽऽत्मसंस्कारार्थत्वमेव । अन्नसंस्कारपञ्चमूनादोषपरिहारावानुष-
ङ्गिकौ । यथा फलेच्छया रोपितादास्रवृक्षाच्छायागन्धावित्युक्तम् ।
वैश्वदेवः सायं प्रातश्च कर्तव्यः । अथ सायंप्रातःसिद्धस्य हविष्यस्य
जुहुयादित्याश्वलायनस्मरणात् । अस्य च प्रातरारम्भणमिति वृत्तिः ।
सायंप्रातःकरणाशक्तौ प्रातरेव द्विरावृत्त्या सह वा कार्यः । तदुक्तमा-
चार्येण—

वैश्वदेवो दिवा नक्तं न भवेच्चेत्पृथक्पृथक् ।

प्रातरेव द्विरावृत्त्या कुर्याद्वा सह तौ द्विजः ॥

अत्र होमद्रव्यमाह व्यासः—

जुहुयात्सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ।

दध्यक्तं पयसाऽक्तं वा तदभावेऽम्बुनाऽपि वा ॥

स्मृत्यन्तरे—कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम् ।

क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥

शौनकः—वर्जयित्वा विशेषान्नं शुद्धान्नेन च तद्भवेत् ।

विशेषान्नं व्यञ्जनान्नम् । आश्वलायनानामिदमेव मुख्यमिति पारिजाते ।

अन्नाभावे चतुर्विंशतिमते—

अलाभे येन केनापि फलमूलोदकादिभिः ।

पयोदधिघृतैर्वाऽपि वैश्वदेवं सुवेण तु ॥

हस्तेनान्नादिना कुर्यादद्भिरञ्जलिना जले । इति ।

येन केनापि करणेनेत्यर्थः । अत्रापि यदशनीयं तेनैव होमः । तथा
च परिशिष्टे—

शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् ।
संकल्पयेद्यदाहारं तेनैव जुहुयाद्धविः ॥

आश्वलायनपरिशिष्टे—अन्नाभावे तण्डुलादिभिः कुर्यादिति । मुख्य-
द्रव्यं तु शृतं हविष्यमेव । सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयादित्याश्वलायनोक्तेः ।
तत्र हविष्याणि स्मृतौ—

गोधूमा ब्रीहयश्चैव तिला मुद्गा यवास्तथा ।
हविष्या इति विज्ञेया वैश्वदेवादिकर्मसु ॥

तथा व्रतार्के स्मृत्यन्तरे—

हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः ।
कलायकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥
पट्टिकाः कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् ।
कन्दः सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥
पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्नौ हरीतकी ।
पिप्पली जीरकं चैव नागरं चैव तिन्तिडी ॥
कदलीलवलीधान्त्रीफलान्यगुडमैक्ष्वम् ।
अतैलपक्कं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥ इति ।

हैमन्तिकं धान्यं कलमास्तदपि सितमस्विन्नं च हविष्यमिति व्रतार्के ।
अहविष्यमपि सितास्विन्नं सद्धविष्यं भवतीति भोजनकुतूहले । धान्यं
ब्रीहयः । कलाया मटार इति प्रसिद्धाः । कुलित्था इति केचित् । कङ्गु-
काङ्ग इति श्रियङ्गुर्वा । नीवारौ देवधान्यम् । वास्तुकं चाकवत इति ।
हिलमोचिका गौडेपु हिलासा इति पत्रशाकः । पट्टिकाः पट्टिदिनैर्यदुप-
त्यज्यते धान्यं तत् । कालशाकः पर्वतदेशे प्रसिद्धः शाकः । केमुकं
गौडेपु केंबु इति प्रसिद्धं मूलकम् । कन्दः सूरणः । नागरं शुण्ठी ।
तिन्तिडी चिंचा । लवली हर्पररेवडी । अतैलपक्कमिति सर्वेषां विशेष-
णम् । हविष्याभावे निषिद्धं वर्जयित्वा यावनालादयो ग्राह्याः ।
यदन्नः पुरुषो लोके तदन्नास्तस्य देवता इत्याचारप्रदीपोदाहृतवचनात् ।

अत्राग्निमाह शौनकः—

औपासने तु होतव्यं शालाग्नौ वा विजानता ।
विकल्पस्विच्छया कार्यो नास्त्येवात्र व्यवस्थितिः ॥

वृत्तावप्येवम् । अत्र शालाग्निलौकिकः । सोऽपि पचन एव । यास्मि-
न्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयत इत्यङ्गिरःस्मरणात् । औपासनाग्नि-
पचनं वेति परिशिष्टाच्च । अग्न्यायतनं स्मृतिसंग्रहे—

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ।

अरत्निमात्रं तत्कार्यं विंशत्यङ्गुलमेव वा ॥

प्रादेशमात्रमथवा चतुरस्रं समन्ततः । इति ।

स्मृतिसारे—वैश्वदेवे प्रकुर्वीत कुण्डमष्टादशाङ्गुलम् ।

मेखलात्रयसंयुक्तं द्विमेखलमथापि वा ॥

स्यादेकमेखलं वाऽपि चतुरस्रं समन्ततः ।

अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र मनीषिभिः ॥ इति ।

मेखलामानं प्रयोगदीपिकायाम्—

चतुर्भिश्च त्रिभिर्द्वाभ्यामूर्ध्वा मध्या त्वधोगता ।

तिस्रः प्रोक्ताः क्रमादेव विस्तारादुच्छ्रयादपि ॥

द्विमेखलपक्षे तच्चान्तरे—पष्ठांशेनाष्टमांशेन मेखलाद्वितयं मतमिति ।
उपरिमेखला चतुरङ्गुलाऽधोमेखला च त्र्यङ्गुलेत्यर्थः । उत्सेधविस्ता-
रयोरिदमेव मानम् । एकमेखलापक्षे पिङ्गलः—एका षडङ्गुलोत्सेधवि-
स्तारा मेखला मता । यद्वा प्रयोगदीपिकायाम्—चतुरङ्गुलविस्तारा
मेखला तद्वदुच्छ्रितेति । अत्राङ्गुलं करणीचतुर्विंशांशरूपमिति(?) औपास-
नप्रकरणे पूर्वमुक्तमेव । आश्वलायनानां न स्थण्डिलस्य कुण्डस्य वाऽऽव-
श्यकता । आचार्येणानुक्तत्वात् । प्रायश्चित्तहेमाद्रौ—न चुह्यां नाऽऽयसे
पात्रे न भूमौ न च खर्परे । वैश्वदेवं प्रकुर्वीतेति । अत्र चुह्यायसपात्र-
खर्परनिषेधात्कुण्डस्थण्डिलासंभवेऽपक्रमन्मयपात्रकुण्डाकृतिरहितताम्रा-
दिपात्रपक्रमन्मयपात्राणामप्यनुज्ञा गम्यत इति संस्काररत्नमालायाम् ।
चुल्लीनिषेधो भाण्डोपेतचुल्लीपरः । तथा चोक्तम्—

पचनाग्नौ स्थिते माण्डे वैश्वदेवं करोति यः ।

ब्राह्मणी जायते चान्धा द्विजो गच्छेदधोगतिम् ॥

संस्काररत्नमालायां तु—यत्तु वैश्वदेवं प्रकृत्योपरिष्ठात्स्थिते पात्रे
क्रिया चुह्यामपि स्मृतेति केचित्संग्रहनाम्ना वचनं पठन्ति तन्निर्मूलमा-
पत्परं वा बोध्यमित्युक्तम् ।

अथ देशः स्मृतिमञ्जर्याम्—गृहस्य मध्यदिग्भागे वैश्वदेवं समाच-
रेदिति ।

अथाधिकारिनिर्णयः । तत्र व्यासः—

होमाग्रदानरहितं न भोक्तव्यं कदाचन ।

अविभक्तेन संसृष्टेष्वेकेनापि कृतं कृतम् ॥

एकेन मुखेन ज्येष्ठेनेति यावत् । स्मृत्यन्तरेऽपि—

सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ॥

द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ।

आश्वलायनः—वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः ॥

एकस्तु चतुरो यज्ञान्कुर्याद्वाग्यज्ञपूर्वकान् ।

वाग्यज्ञो ब्रह्मयज्ञः । एतत्सर्वमेकगृहावासविषयम् । गृहान्तरे तु स एव विशेषमाह—

अविभक्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः ।

कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान्भोजनात्प्राग्दिने दिने ॥ इति ।

न चैतदप्येकगृहविषयमस्त्विति वाच्यम् । यद्येकस्मिन्काले पुनः पुनरन्नं पच्यते सकृदेकं बलिं कुर्वति यद्येकस्मिन्काले बहुधाऽन्नं पच्यते गृहपतिमहानसादेवैकं बलिं कुर्वति गोभिलवचनेन विरोधापत्तेः । अविभक्तानां पाकभेदे पृथग्वैश्वदेवस्य कृताकृतत्वं बोध्यमिति भट्टो-
जयि । आश्वलायनः—

एकपाकाशिनः पुत्राः संसृष्टा भ्रातरोऽपि च ।

वैश्वदेवं न ते कुर्युरेकः कुर्यात्पितैव हि ॥

स्मृतिसमुच्चये—वैश्वदेवः क्षयाहश्च महालयविधिस्तथा ।

देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्चाद्धं तथैव च ॥ इति ।

एतज्ज्येष्ठकनिष्ठभ्रातृसाधारणम् । पुत्रेणापि ग्रामे ग्रामान्तरे वा पृथक्पाके सति पृथक्कार्य एव ।

यदि स्याद्भिन्नपाकाशी ग्रामे ग्रामान्तरेऽपि च ।

वैश्वदेवं पृथक्कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥

इति शाकलोक्तेः । यस्य तु ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवेऽन्नं सिध्येत्तेन तूष्णी-
मग्नौ किंचित्क्षिप्त्वा भोक्तव्यम् । तथा च पृथ्वीचन्द्रोदये गोभिलः—यस्य
त्वेषामग्रतोऽन्नं सिध्येत्स नियुक्तमग्रे वह्नौ किंचिद्धृत्वाऽश्रीयादिति । इदं
च कदाचित्कनिष्ठभ्रातुः पाकभेदे ज्ञेयमिति पृथ्वीचन्द्रः । नियुक्तं भोज्य-
मन्नं किंचिद्भासमात्रम् । तथा च स्मृत्यन्तरे—

वैश्वदेवाद्यभावे तु कुक्कुटाण्डप्रमाणकम् ।

ग्रासमग्नौ संप्रहृत्य कित्विषात्तु विमुच्यते ॥ इति ।

एतदपि प्रथममग्निसिद्धौ । ज्येष्ठेन कृते वैश्वदेवे पश्चात्कनिष्ठस्य पाकभेदे तेनाहुत्वैव भोक्तव्यम् । अयं चान्नप्रक्षेपस्तूष्णीमेवेति निबन्धकाराः । स्त्रीणामप्येवम् । स्त्रियो ग्रासमात्रमन्नं घृतप्लुतमग्नौ प्रास्य भुञ्जीयुरिति स्मृत्यन्तरोक्तेः । इदं च विधवापरमित्याचाररत्ने । यस्या गृहे न कोऽप्यस्ति तादृशविधवापरमित्याचारदर्पणे । नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञः, न स्त्री जुहुयादितिनिषेधौ समन्त्रकवैश्वदेवपरौ द्रष्टव्यौ । स्त्रीबालांश्चापि कारयेदिति प्रयोज्यकर्तृत्वं यदुक्तं तदपि समन्त्रकवैश्वदेवपरं द्रष्टव्यम् । मुख्यस्य करणाशक्तावाहात्रिः—

पुत्रो भ्राताऽथ वा ऋत्विक् शिष्यः श्वशुरमातुलौ ।

पत्नीश्रोत्रिययाज्याश्च दृष्टास्तु बलिकर्मणि ॥

दृष्टा इत्यत्र प्रतिनिधित्वेनेति शेषः । अत्र बलिपदं वैश्वदेवोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रः । एते प्रतिनिधयः प्रवासादिविषय इति चन्द्रिका । वस्तुतस्तु गृहेऽपि स्वयं कर्तृत्वविकल्पः । स्वयं त्वेवैतान्यावद्बलिं हरेदपि वाऽन्यो ब्राह्मण इति गोभिलोक्तेः । पुत्रादयोऽपि मुख्यानुज्ञयैव कुर्युः । तथा च कश्यपः—

पुत्रो भ्राता तथा ऋत्विक्कुर्याज्जेष्टाभ्यनुज्ञया ।

श्वशुरो मातुलो वाऽपि वैश्वदेवाहुतिं सदा ॥ इति ।

प्रवासाविषये बोधायनः—

प्रवासं गच्छतो यस्य गृहे कर्ता न विद्यते ।

पश्चानां महतामेपां सह यज्ञैः स गच्छति ॥ इति ।

सकृत्कृतेन वैश्वदेवेन पक्कः पक्ष्यमाणश्च सर्वोऽपि पाकः संस्कृतो भवतीत्याह गोभिलः—यद्येकस्मिन्काले बहुधाऽन्नं पच्येत गृहपतिर्महानसादे. वैतद्बलिसकृदेव कुर्वीतेति । अथ होममन्त्रानाहाऽऽचार्यः—सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयादग्निहोत्रदेवताभ्यः सोमाय वनस्पतयेऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तरय इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे स्वाहेति । अग्निहोत्रदेवताः सायमग्निः प्रजापतिश्च प्रातः सूर्यः प्रजापतिश्च सोमाय वनस्पतय इत्यादयोऽष्टौ मन्त्राः । इत्थं दशाऽऽहुतयः । परिशि-

ष्टम्—अथ वैश्वदेवो दिवाऽस्य प्रारम्भो नात्र पाकयज्ञतन्त्रमग्निमौपासनं पचनं वा परिसमुह्य पर्युक्ष्याऽऽयतनमलंकृत्य सिद्धं हविष्यमधिश्रित्याद्भिः प्रोक्ष्योदगुद्रास्याग्नेः प्रत्यग्दर्भेषु निधाय सर्पिषाऽभ्यज्य सव्यं पाणितलं हृदये न्यस्य सकृदवदानेन पाणिना जुहुयात्सोमाय वनस्पतय इत्येकाहु-तिर्विश्वेभ्यो देवेभ्य इति च दिवाचारिभ्य इति सर्वभूतानां विशेषणं प्रजापतेरुक्तिरिष्यते । प्रधानबलेरुदङ्गपुरुषबलिः । तदिदमन्नाभावे तण्डु-लादिभिः कुर्यादन्ते च परिसमुह्य पर्युक्षेदेकेनात्र तन्त्रमिति पर्यहनोक्षणे अपि न कुर्वन्ति केवलं हुत्वा प्रतिष्ठन्ते विश्वे देवास्तद्देवत्यमितीदं वैश्वदेवमिति ।

शौनकः—आदौ च कर्मणोऽन्ते च बह्वेः परिसमूहनम् ।

पर्युक्षणं च कर्तव्यं तत्राधिश्रित्य पावके ॥

हविरग्निश्च संप्रोक्ष्य समुद्रास्य च तत्पुनः ।

त्रिधा विभज्य सिद्धान्नं त्रिः प्रोक्ष्य पुरतः स्थितम् ॥

पर्यग्निकरणं कुर्यात्सिद्धान्नस्याप्ययं विधिः ।

कृत्वा चाऽऽदिमभागेन देवयज्ञमतः परम् ॥

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैरादायाऽऽदाय पाणिना ।

अपसव्येन जुहुयात्सव्यं हृदि निधाय च ॥

अपसव्येन दक्षिणहस्तेनेत्यर्थः । कारिकायाम्—

औपासनाग्निमन्यं वा समिध्याथ हविर्भुजम् ।

पर्युह्य परिपिच्याग्निमलंकृत्य च पूर्ववत् ॥ इति ।

अत्र परिशिष्टे च पर्युक्षणानन्तरमेवाग्न्यलंकरणमुक्तम् । शौनकेन तु हविरासादनेोत्तरमुक्तम् । तत्र कारिकाशौनकपरिशिष्टविरोधे परिशिष्टोक्तं प्रबलमित्युक्तं प्राक् । शौनकः—

मध्यभागस्थितान्नेन भूतयज्ञं समाचरेत् ।

पात्रस्योत्तरदेशस्य भागं चैव तृतीयकम् ॥

अङ्गुष्ठपर्वमात्रान्नं परिगृह्य प्रयत्नतः ।

आग्नेय्यभिमुखो भूत्वा प्राचीनावीत्यतः परम् ॥

चक्रस्याऽऽग्नेयभागे तु पितृभ्योऽथ बलिं हरेत् ।

प्रत्यग्दक्षिणदेशे तु श्यामाय च बलिं हरेत् ॥

चक्रस्य वायुभागे तु शबलाय बलिं हरेत् ।

भट्टोजीय आश्वलायनस्मृतिः—

सूर्यादिभ्यो हुनेत्पूर्वमग्न्यादिभ्यस्ततः परम् ।

हुत्वा व्याहृतिभिः पश्चाद्भूतयज्ञी तथैव च ॥ इति ।

अत्रान्नेन व्याहृतिहोमो वैकल्पिक इत्याह्निकचन्द्रिकायाम् । तथाशब्दस्तु देवयज्ञमहत्त्ववद्भूतयज्ञपितृयज्ञक्रियासंहत्वार्थः । एवकारस्तु देवयज्ञादीनां परस्परं सहत्वनिश्चयार्थः । चकारस्तु पितृयज्ञद्योतनार्थ इति ।

अत्रावदानबल्योः प्रमाणं स्मृत्यर्थसारे—

अङ्गुष्ठपर्वमात्रं स्यादवदानं ततोऽपि च ।

ज्यायः स्विष्टकृदाज्यं तु चतुरङ्गुलसंमितम् ॥

कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु बलिरित्यभिधीयते ।

छन्दोगपरिशिष्टटीकायाम्—प्राणाहुतिं बलिं चैव आद्रामिलकमानतः । पारिजाते व्यासः—

कुशपुञ्जे समासीनः कुशपाणिः समाहितः ।

वैश्वदेवं तु कुर्वीत देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥

अत्र प्राङ्मुखत्वमुपस्थानं च सूत्रपरिभाषासिद्धमविस्मर्तव्यम् । आद्यन्तयोराचमनं परिशिष्टोक्तं सकृदेवाऽऽदौ द्विर्वा । संध्याप्रकरणलिखितदेवीपुराणवचनात् । अत्र रुक्मकनामाऽग्निः । वैश्वदेवे तु रुक्मक इति वचनात् । अग्नेर्ध्यानमपि कर्तव्यम् । वचनं तु औपासनप्रकरणे प्रागुक्तम् । अथ भूतयज्ञः । तमाहाऽऽश्वलायनः—स्वाहेत्यथ बलिहरणमेताभ्यश्चैव देवताभ्योऽज्य ओषधिवनस्पतिभ्यो गृहाय गृहदेवताभ्यो वास्तुदेवताभ्य इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो यमाय यमपुरुषेभ्यो वरुणाय वरुणपुरुषेभ्यः सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति प्रतिदिशं ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्य इति मध्ये विश्वेभ्यो देवेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्य इति दिवा नक्तचारिभ्य इति नक्तं रक्षोभ्य इत्युत्तरत इति । एताभ्यः पूर्वोक्ताभ्यो दशभ्य इत्यर्थः । इदं बलिहरणं सूत्रवृत्तौ नराकारेणोक्तम् । तत्र कारिका—

भूतयज्ञं ततः कुर्यादग्नेरुत्तरदेशतः ।

एतैर्भुवि बलीन्दत्वा प्राक्संस्थांश्च निरन्तरान् ॥

मुक्त्वाऽन्तरालं प्राक्संस्थानञ्च इत्यादिभिर्हरेत् ।

इहापि भवति स्वाहाकारो न पितृयज्ञके ॥

अज्यो हृताद्बलेः प्रत्यग्निन्द्रायेति बलिं हरेत् ।
 उदगैन्द्राद्बलेरिन्द्रपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ॥
 यमायेत्यन्तरालस्य हरेद्वक्षिणतो बलिम् ।
 याम्याद्बलेरुदग्याम्यपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ॥
 प्रागब्रह्मणो बलेर्हृत्वा वरुणायेतिमन्त्रतः ।
 तस्मादुदक्तु वरुणपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ॥
 सोमायेत्यन्तरालस्य हरेदुत्तरतो बलिम् ।
 सौम्याद्बलेरुदक्सोमपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ॥
 जयन्तस्त्वाह वास्त्वन्तैर्बलीन्हृत्वा निरन्तरान् ।
 मुक्त्वाऽन्तरालमिन्द्रादिदिग्देवानां बलिं हरेत् ॥
 ऐन्द्रादिबलितः प्राच्यां यद्वा स्यात्पौरुषो बलिः ।
 अन्तराले बलीन्हृत्वा शिष्टैर्मन्त्रैरतः परम् ॥
 रक्षोभ्य इति सर्वासां बलिमुत्तरतो हरेत् ।

अन्तरालस्य मध्येऽपि पङ्क्तिरूपाश्चतस्र एवेति परिशिष्टजयन्तौ ।
 ब्रह्मादिभिश्चतुर्भिश्च अन्तराले बलीन्हरेदिति जयन्तवचनात् । अस्मि-
 न्पक्षे दिवाचारिभ्य इति सर्वभूतविशेषणम् । स्मृतिरूपेणापि नराकार-
 माहाऽऽचार्यः—

एताभ्यो देवताभ्योऽग्रेरुदग्दद्याद्बलिं भुवि ।
 प्राक्संस्थानन्तरालं स्याद्दक्ष्य इत्यादितः क्रमात् ॥
 एता एव तथैव स्युः सूत्रोक्ता देवता इह ।
 प्रागादिष्वाहुती द्वे द्वे इन्द्रायेत्यादितः क्रमात् ॥
 प्राक्संस्थे वाऽप्युदक्संस्थे चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।
 अग्रे भागेऽन्तरालस्य दक्षिणे मूल उत्तरे ॥
 दिग्देवताहुतीनां च समयायतनं स्मृतम् ।
 ब्रह्मादयोऽन्तरालस्य मध्ये शिष्टाश्च देवताः ॥
 प्राक्संस्थाश्चापि वैताः स्यू रक्षोभ्य इति चोत्तरे ।

अयं नराकार आश्वलायनानां मुख्यः । स्वाचार्योक्तेः प्राबल्यात् ।
 कृष्णभट्टीयेऽप्येवम् । शौनकस्तु प्रकारान्तराण्याह—

प्राक्संस्थं परिषिच्यापः परिशुद्धे महीतले ।
 आयुष्कामो दिवारात्रिं सुवाकारं बलिं हरेत् ॥

आयुरारोग्यकामस्तु ध्वजाकारं बलिं हरेत् ।
 मृत्युरोगविनाशार्थं नराकारं बलिं हरेत् ॥
 जनवश्यं कर्तुकामो बल्मीकारव्यबलिं हरेत् ।
 आयुरारोग्यसौभाग्यपुत्रान्पौत्रान्पशून्बहून् ॥
 कामयन्धर्ममोक्षार्थं चक्राकारं बलिं हरेत् ।
 पञ्चस्वेतेषु विप्राणां मुख्या चक्राकृतिर्भवेत् ॥
 चक्राकारमथाष्टारं कुर्यादग्निसमीपतः ।
 प्रागादीशानपर्यन्तमङ्गुल्यग्रैर्महीतले ॥
 बदरीफलमात्रान्नमङ्गुल्यग्रात्तु विक्षिपेत् ।
 सूर्यादिवास्तुपर्यन्तं नैरन्तर्येणतो हरेत् ॥
 इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यः प्राच्यां प्राक्संस्थितं बलिम् ।
 यमाय यमपुरुषेभ्यो हरेदक्षिणतो बलिम् ॥
 उदक्संस्थं प्रकुर्वीत दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ।
 प्रतीच्यां वरुणायेति बलिं प्राक्संस्थितं हरेत् ॥
 ततो वरुणपुरुषेभ्यस्तस्माप्राक्तु बलिं हरेत् ।
 सोमाय सोमपुरुषेभ्यो बलिमुत्तरतो हरेत् ॥
 चक्रान्तरे मध्यदेशे ततो ब्रह्मबलिं हरेत् ।
 प्राच्यां ब्रह्मबलेर्ब्रह्मपुरुषेभ्यो बलिं हरेत् ॥
 विश्वेभ्यो वैश्वदेवत्याद्ब्रह्मदक्षिणदेशके ।
 ब्रह्मणः पश्चिमे देशे सर्वभूतेभ्य एव च ॥
 ब्रह्मणोत्तरदेशे तु दिवाचारिभ्यं एव च ।
 सूर्यायेति पदस्थाने रात्रावग्निपदं वदेत् ॥
 दिवाचारिपदस्थाने नक्तं चारिपदं वदेत् ।
 रक्षोभ्यः स्वाहेति बहिश्चर्कस्यैशानतो हरेत् ॥
 चक्रस्याऽऽग्नेयभागे तु पितृभ्योऽथ बलिं हरेत् ।
 प्रत्यग्दक्षिणदेशे तु श्यामाय च बलिं हरेत् ॥
 चक्रस्य वायुभागे तु शबलाय बलिं हरेत् ।
 चक्राकारेण यो विप्रः सदा भूतबलिं हरेत् ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ इति ।

१ ग. 'कारव' । २ ख. 'कामं व' । ३ क. ग. 'मधीव' । ४ ख. 'कारव' । ५ क. ग. 'क्षिणेत' । ६ क. ग. 'द्वाणे व' । ७ ख. 'भ्य आहरेत्' । सू. । ८ क. ग. 'कस्येश' ।

धर्माणवे स एव—

चक्राकारविधिं कुर्याद्बृहस्थस्तु विशेषतः ।

नराकारं बलिं कुर्यान्मोक्षकामीति केचन ॥

अत्राग्निहोमबलिहरणयोरुद्देशत्यागौ कुर्यात् । अग्न्यनग्निब्रह्मणि
हुतानां पाकयज्ञसंज्ञाविधानादिति प्रयोगपारिजाते । आचारसाराचार-
रत्नाचारदीपेष्वप्येवम् । आचारोद्योते तु—

पाणौ भूम्याहुतावर्धे पिण्डे प्राणाहुतौ तथा ।

तर्पणे कन्यकादाने न त्यागः सप्तसु स्मृतः ॥

इत्युक्तम् । रक्षोबलेः परिपेक उक्तो जयन्तेन—

परिपेकं ततः कृत्वा पितृयज्ञो भवेदथ ॥ इति ।

अथ पितृयज्ञः । तत्र गृह्यम् । स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं
दक्षिणा नियेत् । अत्र वृत्तिकारेण पितृयज्ञार्थमन्वहं ब्राह्मणभोजनं न
कर्तव्यमिति सिद्धमिति यदुक्तं तत्पञ्चमहायज्ञान्तःपातिपितृयज्ञविषयं
न तु नित्यश्राद्धविषयम् । तस्य स्मृतितो विधानात् । पित्र्यबलिर्दिव्य-
पितृविषयः । नित्यश्राद्धं मनुष्यपितृविषयम् । तस्मादजीवत्पितृकेण
देवमनुष्यैर्पितृतृण्यर्थं कर्मद्वयं कर्तव्यम् । जीवत्पितृकेण केवलः पित्र्यब-
लिरेव कार्य इति प्रयोगपारिजाते । आचारार्के चैवम् । अपि वाऽशक्तौ
पित्र्यबलिनैव नित्यश्राद्धसिद्धिः । श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलि-
रथापि वेति कात्यायनवचनात् । अत्र सव्योत्तर्युपस्थासनं विधेयं पैतृक-
त्वात् । स्मृत्यन्तरे देवयज्ञान्नं प्रकृत्य

तैरेवान्नैर्बलिं दद्याच्छेषमाप्ताव्य वारिणा ।

कृतापसव्यः स्वधया कव्यं दक्षिणतो हरेत् ॥ इति ।

पित्र्यबलेः परिपेक उक्तो जयन्तेन—

परिपेकं ततः कुर्याद्वैश्वदेवं समापयेत् । स्मृत्यन्तरे—

द्विजो गृहबलीन्दत्त्वा नैव पश्येत्कदाचन ।

स्वयं नैवोद्धरेन्मोहादुद्धारे श्रीर्विनश्यति ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये—अनुद्धृत्य बलीनश्नन्प्राणायामान्यडाचरेत् ।

स्वयं तूद्धरणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥

वैश्वदेवबलिदर्शने तु प्रायश्चित्तविशेषानुक्तेः

गायत्र्यष्टशतं च व प्राणायामत्रयं तथा ।

प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नियमातिक्रमे सति ॥

इति सामान्यप्रायश्चित्तमेव । विष्णुस्मरणमेव स्यात्सर्वदोषनिर्बहण-
मिति वचनाद्विष्णुस्मरणमात्रं वेति । बलिप्रतिपत्तिमाह कात्यायनः ।
पिण्डवच्च बलिप्रतिपत्तिरिति । यथा पिण्डप्रतिपत्तिर्गोजविप्राग्न्यम्बुषु
तथा श्वादिबलिभिन्नबलीनामित्यर्थः । चन्द्रिकायाम्—

वैश्वदेवं च पित्र्यं च बलिमग्नौ विनिक्षिपेत् ।

शेषं भूतबलेर्विप्रस्त्यक्त्वा काकबलेः समम् ॥

अग्निस्मृतौ—वैश्वदेवबलेः शेषं नाश्रीयाद्वाह्यणो गृही ।

काकादिभ्यस्तु तद्देयं विप्रेभ्यो वा विशेषतः ॥ इति ।

सायंप्रातः पृथग्वैश्वदेवानुष्ठानासंभवे प्रातरेव द्विरावृत्त्या सह वा
कार्यं इति पूर्वमुक्तम् । तत्र प्रातरेव द्विरावृत्तिपक्षे प्रातर्वैश्वदेवं संकल्प-
प्रभृतिपितृयज्ञान्तं कृत्वा पश्चात्संकल्पप्रभृतिपितृयज्ञान्तं सायं वैश्वदेवं
कुर्यात् । ततो मनुष्ययज्ञादि । सहत्वपक्षेऽपि प्रातः सायं वैश्वदेवौ
समानतन्त्रेण करिष्य इतिसंकल्प्य सह पशूनालभत इतिवत्पूर्वं होमौ
ततो बली ततः पितृयज्ञाविति । रामकृष्णमठ्ठास्तु—

प्रातरेव द्विरावृत्त्या कुर्याद्वा सहै तद्विजः ।

सायं वा यदि भुञ्जीयात्तत्कृत्वा जात्वपि स्वयम् ॥

इत्याश्वलायनवाक्ये यदि भुञ्जीयादित्युक्तेः सायं वैश्वदेवौ द्वितीय-
भोजने सत्येव प्रातर्द्विरावृत्तिरपि प्रातःपाकेनैव सायं पुनर्भोजने यदि
भुञ्जीयादित्यस्य तत्रापि संधानादित्याहुः । इदं वैश्वदेवस्य पुरुषार्थत्वे-
नैकादश्याद्युपवासादावपि कर्तव्यतोक्तेर्नातीव रमणीयम् । प्रातर्वैश्व-
देवकर्मणो देवाद्विस्मृतौ यज्ञपार्श्वे—

अकृते वैश्वदेवे चेदस्तमेति गमस्तिमान् ।

वैश्वदेवं ततः कृत्वा सायं होमं समाचरेत् ॥ इति ।

होमोत्तरं स्मरणे तु स्मृतिभास्करे—

अकृतो वैश्वदेवश्चेद्दिवा रात्रौ तमाचरेत् ।

पृथगेव प्रकुर्वीत न तु तन्त्रमिहेष्यते ॥ इति ।

दिवा वैश्वदेवो न कृतश्चेत्तदा तमन्तरितं रात्रौ पृथगेव कुर्यादित्यर्थो द्रष्टव्यः । सायं वैश्वदेवस्याप्यग्निमवैश्वदेवात्प्राक्स्मरणं चेत्तदा पृथगेव कर्तव्यता । अकृतो वैश्वदेवश्चेदित्युदाहृतवाक्यात् । रात्रौ वैश्वदेवो न कृतश्चेत्तदा तमन्तरितं पृथगेव कुर्यादित्येवं योजनाऽस्मिन्विषये द्रष्टव्या । यदि त्वग्निमवैश्वदेवोत्तरं स्मरणं तदा तदग्निमदिने प्रायश्चित्तमात्रं कार्यम् ।

अथ श्राद्धदिने वैश्वदेवस्य कालः । तत्र बह्वृचैराहिताग्निभिरनाहिताग्निभिरनग्निकैश्च सर्वैः सर्वश्राद्धेषु श्राद्धान्ते श्राद्धशेषेण वैश्वदेवः कार्य इति वृत्तिकारप्रभृतयो बह्वः । केचिद्बह्वृचैराहिताग्निभिः सर्वेषु श्राद्धेषु श्राद्धादौ पृथक्पाकेन वैश्वदेवः कार्य इत्याहुः । अस्मिन्पक्षे दर्शं क्रममाह लौगाक्षिः—

पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः ।

पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥ इति ।

पक्षान्तं कर्मान्वाधानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् । अत्र वैश्वदेवस्यान्वाधानपिण्डपितृयज्ञयोर्मध्ये विधानादेव साग्निककर्तृत्वे सिद्धे साग्निकपदोपादानं श्रौताग्निमत एव ग्रहणार्थमिति हेमाद्रिमदनपारिजातादयः । नवीनास्तूक्तीत्यैवाविशेषेण श्रौतस्मार्ताग्निमतोरुभयोरपि वैश्वदेवकर्तृत्वावगतेः साग्निकपदस्यानुवादकत्वमेव न तु स्मार्ताग्निमन्निवर्तकत्वं श्रौताग्निमत एव निवर्तकत्वमिति वैपरीत्यस्यापि सुवचंत्वात् । अतोऽनुवादकत्वमेव युक्तमित्याहुः ।

अथ वैश्वदेवशेषान्नेन वायसादिवलिः । तत्र परिशिष्टम्—अथ निष्क्रम्य भूमावप आसिच्य श्वचाण्डालपतितभूतवायसेभ्योऽन्नं भूमौ विकिरेद्ये भूताः प्रचरन्ति दिवा बलिमिच्छन्तो विदुरस्य प्रेष्ठास्तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो ददामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददात्विति रात्रौ चेन्नक्तं बलिमिति ब्रूयात् । अथ प्रक्षालितपाणिपाद आचम्य शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षमिति जपित्वाऽन्यानि च स्वस्त्ययनानि, ततो मनुष्ययज्ञपूर्वकं भुञ्जीतेति । अत्र विशेषमाह भगवान्शौनकः—

देवयज्ञान्नशेषं तु गृहाद्वारादिषु क्षिपेत् ।

चण्डालपतितादिभ्यो भूतयज्ञान्नशेषतः ॥

पितृयज्ञान्नशेषेण वायसेभ्यो बलिं हरेत् । इति ।

गृह्यसूत्रपरिशिष्टखण्डे तु ऐन्द्रवारुणेति काकबलिः । वैवस्वतेति मन्त्रेण श्वबलिः । ये भूता इति मन्त्रेण भूतबलिरिति बलित्रयं गृहाङ्गणे देयमित्युक्तम् । आचाररत्न आचारसारे चैवम् । तत्र ये भूता इति मन्त्रे प्रातर्नक्त(क्तं)शब्दस्य रात्रौ दिवाशब्दस्योद्धारः । सहत्वपक्षे यथाश्रुतमन्त्रेणैक एव बलिः । अयं वायसबलिर्नित्यश्राद्धोत्तरं कार्यः । अदत्त्वा वायस-बलिं नित्यश्राद्धं समाचरेदिति काशीखण्डात् । वायसादिबलिदानोत्तरं कृत्यं गृह्यसूत्रपरिशिष्टे—गोदोहनमात्रं तत्र स्थित्वाऽतिथिमाकाङ्क्षेदिति । मार्कण्डेयपुराणेऽपि—

आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वारावलोकनम् ।

मुहूर्तस्याष्टमं भागमुद्गीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत् ॥ इति ।

अतिथिलक्षणं त्वग्ने वक्ष्यते ।

अथ प्रातःसायं वैश्वदेवयोः सहत्वपक्षमाश्रित्य प्रयोग उच्यते—
गृहमध्ये कुण्डस्य स्थण्डिलस्य वा पश्चात्कुशासन उपस्थासनेन प्राङ्मुख उपविश्य पवित्रपाणिराचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसायंवैश्वदेवौ समान-तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्प्य जुष्टो दमूना एह्यग्र इति मन्त्राभ्यामक्षतैः पचनाग्निमावाह्य, ॐ भूर्भुवः स्वः रुक्मकनामानमग्निं प्रतिष्ठापयामीति कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य वेणुधमन्या प्रबोध्य चत्वारिशृङ्गेति-मन्त्रैर्ध्यात्वा परिसमुह्य पर्युक्ष्य विश्वानि इत्यलंकृत्य सिद्धं हविष्यान्नं पृथक्पात्र उद्धृत्य तत्पात्रमग्नावधिश्रित्याद्भिः प्रोक्ष्योदगुद्वास्याग्नेः पश्चि-मतो दर्भेषु निधाय सर्पिषाऽभ्यज्य सव्यं पाणितलं हृदये न्यस्य सकृदव-दानेनाऽऽर्द्रामलकमितमन्नमादायाहुष्ठाग्रेण पीडितं संहताहुलिनोत्तान-पाणिना प्रणवादिर्वर्जितैर्वक्ष्यमाणमन्त्रैर्जुहुयात् । तत्र मन्त्राः । सूर्याय स्वाहा । सूर्यायेदं न मम १ एवमग्रेऽपि । प्रजापतये० २ सोमाय वन-स्पतये० ३ अग्नीषोमाभ्यां० ४ इन्द्राग्निभ्यां० ५ द्यावापृथिवीभ्यां० ६ धन्वन्तरये० ७ इन्द्राय० ८ विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ९ ब्रह्मणे० १० इति दशाऽऽहुतीर्हुत्वा सायंवैश्वदेवाहुतीर्जुहुयात् । तत्र मन्त्राः । अग्नये स्वाहा । अग्नये इदं न मम । ततः प्रजापतये स्वाहेत्यादिब्रह्मणे स्वाहे-त्यन्ताः पूर्ववन्नऽऽवाहुतीर्हुत्वा पुनः परिसमूहनपर्युक्षणे कृत्वो च म इत्यु-पस्थाय विभूतिं धारयेत् । इति देवयज्ञः ।

अथ भूतयज्ञः । अग्रेरुत्तरतो भूमिं प्रोक्ष्य बंदरीफलमितमन्नमादाय सूर्याय स्वाहा सूर्यायेदं न ममेत्यादिब्रह्मणे स्वाहेत्यन्तेर्दशभिर्मन्त्रैर्नैरन्तर्येण प्राक्संस्थां पङ्क्तिं कृत्वा तदग्रे सप्ताहुतिप्रक्षेपयोग्यमन्तरालं मुक्त्वा तदग्रेऽपि प्राक्संस्थामेव पङ्क्तिं कुर्यात् । अद्भ्यः स्वा० ओषधिवनस्पतिभ्यः० गृहाय० गृहदेवताभ्यः० वास्तुदेवताभ्यः० अद्भ्यो हुताद्वलेः प्रत्यग्निन्द्राय० ऐन्द्रादुत्तर इन्द्रपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्य दक्षिणे यमाय० यमोत्तरे यमपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्य पश्चिमे वरुणाय० तदुत्तरे वरुणपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्योत्तरे सोमाय० तदुत्तरे सोमपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्य मध्ये वारुणबलेः प्राक् प्राक्संस्थं ब्रह्मणे० ब्रह्मपुरुषेभ्यः० विश्वेभ्यो देवेभ्यः० सर्वेभ्यो भूतेभ्यः० दिवाचारिभ्यः० सोमपुरुषबलेरुत्तरे रक्षोभ्यः० अप उपस्पृश्य रक्षोर्बलिं परिषिच्य तदुत्तरतो भूमिं प्रोक्ष्य सायंकालीनं भूतयज्ञं कुर्यात् । तत्र सूर्यपदस्थानेऽग्निपदं दिवापदस्थाने नक्तमिति विशेषः । अन्यत्पूर्ववत् । इति भूतयज्ञः ।

अथ पितृयज्ञः । प्राचीनावीत्याग्नेर्यभिमुखः सव्योत्तर्युपस्थोऽङ्गुष्ठपर्वमात्रान्नं सजलमादाय स्वधापितृभ्य इतिमन्त्रेण पितृतीर्थेन यमबलेः किञ्चिदाग्नेयां निनयेत् । पितृभ्य इदं न ममेति त्यक्त्वा परिषिच्य यज्ञोपवीत्यप उपस्पृश्य द्वितीयबलिहरणयमबलेः किञ्चिदाग्नेयभागे तथैव दद्यात् । अथ शौनकोक्ताष्टारचक्राकारबलिहरणप्रयोगः । [*तत्र सिद्धमन्त्रमुदक्संस्थं त्रेधा विभज्य दक्षिणभागेन देवयज्ञं कृत्वाऽग्रेरुत्तरतो भूमिं संप्रोक्ष्य मध्यभागाद्बंदरीफलमितान्नमादाय प्राचीमारभ्यैशानीपर्यन्तं चक्राकारं नैरन्तर्येण सूर्याय स्वाहेत्यादिवास्त्वन्तान्वलीन्दत्त्वा चक्राद्बहिः प्राच्यां प्राक्संस्थमिन्द्राय स्वा० इन्द्रपुरुषेभ्यः० दक्षिणत उदक्संस्थं यमाय० यमपुरुषेभ्यः० पश्चिमतः प्राक्संस्थं वरुणाय० वरुणपुरुषेभ्यः० उत्तरस्यामुदक्संस्थं सोमाय० सोमपुरुषेभ्यः० चक्रमध्ये ब्रह्मणे० तत्प्राच्यां ब्रह्मपुरुषेभ्यः० ब्रह्मदक्षिणे विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ब्रह्मपश्चिमे सर्वेभ्यो भूतेभ्यः० ब्रह्मोत्तरे दिवाचारिभ्यः० चक्रस्यैशान्यां बह्वी रक्षोभ्यः० एवमस्योत्तरतः सूर्यपदस्थानेऽग्निपदं दिवापदस्थाने नक्त- (क्तं) पदमुच्चार्य पूर्ववद्वितीयं भूतयज्ञं विधायाऽऽग्नेय्यभिमुखः प्राची-

नावीती तृतीयभागादङ्गुष्ठपर्वमात्रान्नेन पराचीनपाणिना स्वधा पितृभ्य
इति चक्राग्रेयभागे दत्त्वा तथैव द्वितीयचक्राग्रेये दत्त्वोपवीती पितृयज्ञा-
न्नशेषेणैव चक्राद्धिर्नैर्ऋतकोणे श्यामाय स्वा० चक्राद्वायव्यकोणे शव-
लाय स्वा० तथैव द्वितीयचक्रनैर्ऋतवायव्यकोणयोर्दद्यात् । इति शौन-
कोक्ताष्टारचक्राकारबलिहरणप्रयोगः ।] अथ वायसादिबलिः । वैश्वदे-
वशेषमन्नं पिण्डप्रमाणं जलपात्रं चाऽऽदाय गृहाङ्गणे गत्वोपविश्य भूमौ
जलमासिच्य श्वचाण्डालपतितभूतवायसेभ्योऽन्नं भूमौ विकिरेत् । तत्र
मन्त्रः—ये भूताः प्रचरन्ति दिवानक्तं बलिमिच्छन्तो विदुरस्य प्रेष्ठा-
स्तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो ददामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददातु स्वाहेति ।
गोदोहनकालं तत्रैव स्थित्वाऽतिथिमाकाङ्क्षेत् । हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याऽऽ-
चम्य गृहं प्रविश्य, शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं द्यौर्नो देव्यभयं नो
अस्तु । शिवा दिशः प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युतः परिषान्तु सर्वतः ।
शान्तिः शान्तिः शान्तिः । इति जपेत् । इति वायसादिबलिः ।
यजमाने बहिर्द्वारि गते पत्न्याऽन्येन वा भूतयज्ञाद्युद्धृत्याप्सु गोद्विजा-
ग्न्यतिथिभ्यो वा प्रतिपादयेदिति कृष्णभट्टीकारः । अथ

सूर्यः प्रजापतिश्चैव अग्निश्चैव प्रजापतिः ।

चतस्र आहुतीर्हुत्वा शेषं तन्त्रं समापयेत् ॥

इति स्मृतिरत्नाकरवचनाद्भोजनकुतूहलोक्तन्यायविन्मताश्च प्रकारा-
न्तरेण सहत्वपक्षमाश्रित्योच्यते—पूर्ववत्संकल्पादिहविरासादनान्तं कृत्वा
सूर्याय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति प्रातस्तनाहुती हुत्वाऽग्नये स्वाहा प्रजा-
पतये स्वाहेति रात्र्याहुती च हुत्वा सोमाय वनस्पतये स्वाहेत्यादीः शेषा
अष्टाऽऽहुतीः सकृज्जुहुयात् । एवं बलिहरणेऽपि । तत्र दिवाचारिभ्यो
नक्तंचारिभ्य इत्येते आहुती क्रमेण पृथक् । इति प्रकारान्तरसहत्व-
पक्षप्रयोगः ।

अथ वैश्वदेवानुकल्पो विश्वप्रकाशे—

अन्नेन तण्डुलैर्वाऽपि फलेनाद्भिरथापि वा ।

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत जपेन्मन्त्रानथापि वा ॥

संग्रहे—अन्नेन तण्डुलैर्वाऽग्नौ जलेनाप्स्वपि वा चरेत् ।

वैश्वदेवं फलैर्वाऽपि मन्त्रा जप्या असंभवे ॥

इति वैश्वदेवानुकल्पः । अथ विधुरस्य वैश्वदेवे विशेष उक्तो वृद्ध-
वासिष्ठेन—

अनग्निकस्तु यो विप्रः सोऽन्न व्याहृतिभिः स्वयम् ।

हुत्वा शाकलमन्त्रैश्च शिष्टादन्नाद्दलिं हरेत् ॥

अथ प्रयोगः—पूर्ववदग्निस्थापनादि कृत्वाऽन्नमादाय ॐ भूः स्वाहा ।
अग्नय इदं० ॐ भुवः स्वाहा । वायव इदं० ॐ स्वः स्वाहा । सूर्यायेदं०
ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । प्रजापतय इदं० अथ शाकलमन्त्रास्तैत्तिरीया-
रण्यके—ॐ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । अग्नय इदं० । ॐ मनुष्य-
कृतस्यैनसोऽव० । ॐ पितृकृतस्यैनसोऽव० । ॐ आत्मकृतस्यैनसोऽव० ।
ॐ अन्यकृतस्यैनसोऽव० । ॐ अस्मत्कृतस्यैनसोऽव० । ॐ यत्स्वपन्तश्च
जाग्रतश्चैनश्चक्रम तस्याव० । ॐ यत्सुषुप्ताश्च जाग्रतश्चैनश्चक्रम तस्याव० ।
ॐ यद्विवा च नक्तं चैनश्चक्रम तस्याव० । ॐ यद्विद्वाऽसश्चाविद्वाऽस-
श्चैनश्चक्रम तस्याव० । ॐ एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहेत्येकादशाऽऽ-
हुतीर्हुत्वा सर्वत्राप्यग्नय इदं न ममेत्युद्देशत्यागौ पूर्ववत्कुर्यादिति । बह्वृ-
चानग्नेस्तु स्वसूत्रोक्त एवेति वृत्तिः । आचाररत्न आचारसारेऽप्येवम् ।
पकान्नप्रतिग्रहेऽपि तेनैव वैश्वदेवः । तस्य पाकाप्रयोजकत्वात् । वृत्ति-
कृत्पाकप्रयोजकतामाह ।

अथ केवलसूत्रोक्तवैश्वदेवप्रयोगः—पचनाग्नेः पश्चिमत उपविश्य प्रातः-
सायं वैश्वदेवौ समानतन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्य सिद्धं हविष्यान्न-
मादाय सूर्याय स्वाहेत्यादिब्रह्मण इत्यन्ताः प्रातराहुतीर्हुत्वाऽग्नये स्वाहे-
त्यादिसायमाहुतीर्हुत्वाऽग्नेरुत्तरतः पूर्ववद्भूतयज्ञद्वयं पितृयज्ञद्वयं च
कृत्वाऽऽभ्यां वैश्वदेवाभ्यां श्रीपरमेश्वरः प्रीयतामितीश्वराय कर्म समर्प-
येत् । इति केवलसूत्रोक्तवैश्वदेवः ।

इति माटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्रयम्बकविरचित आचारेन्द्री
वैश्वदेवप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ मनुष्ययज्ञः ।

मनुः—अतिथिभ्योऽन्नदानं तु नृयज्ञः स तु पञ्चमः ।

श्रुतिरपि—मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।

नार्यमणं पुण्यति नो सखायं केवलावो भवति केवलादी ॥

अत्रार्यमसखिशद्वाभ्यामुपलक्षितदेवमनुष्ययज्ञाभ्यां संदंशेन पञ्चाना-
मप्यकरणे निन्दया नित्यकर्तव्यता कल्प्यते । अतिथिलक्षणमुक्तं मार्क-
ण्डेयपुराणे—

अज्ञातकुलनामानं तत्काले समुपस्थितम् ।

बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिंचनम् ॥

ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं पूज्यं स्वशक्तितो बुधैः ।

अत्र ब्राह्मणग्रहणात्क्षत्रियादेर्नातिथित्वम् । नैकग्रामीणमतिथिं कुर्या-
न्नाब्राह्मणं तथेति विष्णुधर्मोत्तरोक्तेश्च । किं त्वभ्यागतमात्र[त्व]म् । स
चातिथिर्द्वेधा ब्रह्मचारियतिभेदात् । यदुक्तं वायुपुराणे—

वालखिल्यो यतिश्चैव विज्ञेयो ह्यतिथिः सदा ।

अभ्यागतः पचानः स्यादतिथिः स्यादयाचकः ॥ इति ।

वालखिल्यो ब्रह्मचारी । पचानः पचमानो गृहस्थो धानप्रस्थश्चेत्यर्थः ।
आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न मुम् । यमोऽप्याह—

तिथिष्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना ।

सोऽतिथिः सर्वभूतानां शेषानभ्यागतान्विदुः ॥

व्रती यतिश्चैकरात्रं निवसन्नृच्यतेऽतिथिः ।

यस्मादनित्यं वसति तस्मात्तमतिथिं विदुः ॥ इति ।

पुनरतिथिर्द्विविधः । मध्याह्नागतः सायंकालागतश्चेति यदाह योग-
याज्ञवल्क्यः—

दिनेऽतिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं भवेत् ।

तदेवाष्टगुणं प्रोक्तं सूर्योदये विमुखे गते ॥ इति ।

सूर्येऽस्तंगते प्राप्तोऽतिथिः सूर्योदः । मनुः—

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योदो गृहमेधिना ।

काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥

नारसिंहे—न परीक्षेत चरितं न विद्यां न कुलं तथा ।

न शीलं न च देशादीनतिथेरागतस्य हि ॥

कुरूपं वा सुरूपं वा कुचैलं च सुवाससम् ।

विद्यावन्तमविद्यं वा सगुणं वाऽथ निर्गुणम् ॥

मन्येत विष्णुमेवैतं साक्षान्नारायणं हरिम् ।

अतिथिं समनुप्राप्तं विचिकित्सेन्न कर्हिचित् ॥

व्यासः—पथि ध्रान्तमविज्ञातमतिथिं श्रुत्विपासितम् ।

यो न पूजयते भक्त्या तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

अयं च ब्रह्महत्यातुल्यः प्रत्यवायः सत्यां शक्तावत्यन्तपात्रीभूतस्या-
तिथेरतिक्रमण इति हेमाद्रिः । आदित्यपुराणे—

येन येन च तुष्येत नित्यमेव यथाऽतिथिः ।

अतिथिः संप्रसीदेत तत्तत्कुर्याद्विचक्षणः ॥

अत्र मनुष्ययज्ञार्थमभ्यागतार्चनमनुजानाति आश्वलायनाचार्यः—

मध्यंदिने समायान्तं देशकालाद्यवेदितम् ।

अतिथिं तं विजानीयात्तं प्रयत्नेन पूजयेत् ॥

ज्ञात्वा समागतो यस्तु सोऽभ्यागत इति स्मृतः ।

तं चापि पूजयेत्स्मृत्या गृही तावत्समागतम् ॥

अतिथ्यभ्यागतार्चा तु नृयज्ञः स्याद्दृहे सताम् ।

तेनातीव भवेद्वृद्धिः कीर्तिर्धर्मश्च पुष्कलः ॥

सामान्यतो ब्राह्मणसंप्रदानकान्नदानस्यैव मनुष्ययज्ञत्वमाह श्रुतिः—
यद्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं ददाति तन्मनुष्ययज्ञः संतिष्ठत इति । हीनोत्तमातिथि-
समवाये विशेषमाह मनुः—

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनम् ।

उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्हीने हीनं समे समम् ॥ इति ।

भोजने तु न वैषम्यम् । यदाह वासिष्ठः—

यद्येकपङ्क्तौ विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वाऽपि हेतोः ।

वेदेषु दृष्टं मुनिभिश्च गीतां तां ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥ इति ।

विषममेकस्योत्तममन्यस्य हीनमित्यर्थ इति पारिजाते । तस्य क्वचि-
दपवादमाह वैद्यः—

निम्नोन्नतेऽन्तरे द्वारे मार्गे स्तम्भे च चाम्बुना ।

अग्निना भस्मना वाऽपि पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥

अत्रापवादाभावे तु प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—

प्रधान्वस्य जपेत्पूक्तं त्रिशतं नैव कल्मषम् ।

भूसुरेभ्यो भुक्तिकाले पङ्क्तिभेदं करोति चेत् ॥ इति ।

हीनवर्णविषये तु मनुः—

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ।

भुक्तवत्सु तु विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ ।

भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रकल्पयन् ॥

तथा—इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ।

प्रकल्प्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ इति ।

किं बहुना पतितादयोऽपि वैश्वदेवकाल आगता भोजनार्हाः । यदाह पराशरः—

पापी वा यदि चाण्डालो विप्रघ्नः पितृघातकः ।

वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥

बह्वतिथिभ्यो दातुमशक्तौ शङ्खः—यदि बहूनां न शक्नुयादेकस्मै शीलवते दद्यात्प्रथममुपागतः स्याच्छ्रोत्रियस्तस्मा इति । अत्र ब्राह्मण-भोजनशक्त्यभावेऽनुकल्पमाहाऽऽश्वलायनः—

यस्तु भोजयितुं विप्रं नैकमप्यशकन्गृह्णी ।

स चान्नादन्नमुद्धृत्य ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत् ॥

भगवानपि—पितृयज्ञ इति प्रोक्तो नरयज्ञस्तथोच्यते ।

पुष्कलारव्यप्रमाणान्नमन्यपात्रे समुद्धरेत् ॥

अक्षतोदकहस्तेन चोपवीती निवेदयेत् ।

योगिभ्यः सनकादिभ्य इदमन्नं न ममेति च ॥

दद्यात्तदन्नं विप्राय कुर्याद्बृहबलिं तथा ।

अन्नशुद्धिर्भवेदाशु ह्यन्नदोषैर्न लिप्यते ॥ इति ।

अत्र मनुष्ययज्ञानन्तरं गृहबलिरुक्तः । गृह्यपरिशिष्टे तु गृहबल्यनन्तरं मनुष्ययज्ञ उक्तः । उभयोर्विरोध आचार्योक्तेः प्रावल्यादाश्वलायनैर्गृहबल्यनन्तरं मनुष्ययज्ञः कर्तव्यः । प्रयोगपरिजातेऽप्येवम् । बौधायनः—अह-रहर्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं दद्यान्मूलफलशाकानि वेत्यथैनं मनुष्ययज्ञं समाप्नोतीति । काष्णार्जिनिरपि—

भिक्षां वा पुष्कलां वाऽपि हन्तकारमथापि वा ।

असंभवे नरो दद्यादुदपात्रमथापि वा ॥ इति ।

एषां स्वरूपं पराशरेणोक्तम्—

ग्रासमात्रा भवेद्धिक्षा पुष्कलं तु चतुर्गुणम् ।

पुष्कलानि तु चत्वारि हन्तकारं विदुर्बुधाः ॥ इति ।

ग्रासपरिमाणं स्मृत्यर्थसारे—

अङ्गुष्ठपर्वमात्रा तु आहुतिः परिकीर्तिता ।

आहुतिद्वितयं ग्रासो मयूराण्डाकृतिस्तथा ॥ इति ।

पारिजात आचार्यः—तस्माच्छक्त्याऽन्नपानाभ्यामासनेनोदकेन वा ।

वाचा सूनृतया वाऽपि पूजयेदतिथिं गृही ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।

अशक्तानां सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ इति ।

स्मृतिदर्पणे—अतिथिभ्यो देयमन्नं गोभ्यो वा तदलामतः ।

मनुष्ययज्ञविधिमाह नारायणः—

नियुज्यैकमनेकं वा श्रोत्रियं प्राङ्मुखं सदा ।

निवीती तद्रतमना ऋषीन्ध्यात्वा समाहितः ॥

ऋषीन्सनकादींस्तेषां मनुष्यत्वात् । आश्वलायनः—

अतो मनुष्ययज्ञार्थं दद्याद्विप्राय वाऽनले ।

सनकादिभ्य इत्युक्त्वा हन्तकारेण वै हविः ॥

कात्यायनः—स्वधाकारः पितृणां तु हन्तकारो नृणां तथा । इति ।

शौनकेन—योगिभ्यः सनकादिभ्य इदमन्नं न ममेति मन्त्र उक्तः । आश्व-

लायनेन तु—सनकादिभ्यो हन्तेति मन्त्र उक्तः । उभयोर्विरोधे स्वाचा-

र्याक्तेः प्राबल्याद्वचनान्तरैकवाक्यत्वाच्चाऽऽश्वलायनैः स्वस्मृत्युक्त एव

मन्त्रो ग्राह्यः । अतिथिपूजामन्त्रमाह पराशरः—

अतिथे भर देहं स्वमुद्धारार्थमिहागतः ।

संसारपङ्कमग्रं मामुद्धरस्वाघनाशन ॥

अत्रोक्तनारायणादिस्थितिषु मनुष्ययज्ञे निवीतित्वमुक्तं तदाश्वलायनै-

र्नाऽऽदत्तव्यम् । यत्र निवीतप्राचीनावीते विधीयते तत्रैव ते भवतः । न तु

मानुषं पैतृकं कर्म दृष्ट्वेति सूत्रवृत्तावुक्तेः । शौनकेनोपवीतित्वविधानाच्च ।

अतिथ्यभावे कर्तव्यमुक्तमाचार्येण—

अतिथीनामभावे तु वैश्वदेवान्तिके द्विजः ।

गोदोहमात्रमाकाक्षंस्तिष्ठेदेव गृहाङ्गणे ॥

ततोऽग्रमन्नादुद्धृत्य पात्रे निक्षिप्य भागशः ।
यत्यादीनां च वृत्त्यर्थं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥

अतिथिपूजाफलं विष्णुधर्मोत्तरे—

सततमिह नरो यः पूजनं चातिथीनां
तृणजलमृदुवाक्यैः सर्वशक्त्या विदध्यात् ।
सुरसदसि स पूज्यो देवतानां सदा स्या-
द्भवति च नरलोके जायमानः समृद्धः ॥
राजन्या विप्रदेवत्या भार्याश्च पतिदेवताः ।
गृहस्थोऽतिथिदेवत्यस्तस्मात्तं पूजयेत्सदा ॥

नारदीयपुराणेऽपि—पुनन्ति गृहिणां गेहं यदीयाः पादपांसवः ।
क्षालयत्याखिलं पापं यत्पादक्षालनोदकम् ॥
सत्कृतिः प्रणतिर्येषां यज्ञादपि विशिष्यते ।
येषामन्नोदकं दत्तं तारयत्यखिलं कुलम् ॥
अतिथिभ्यः परं तेभ्यः किमस्ति भुवनत्रये ।

अपूजने प्रत्यवायमाह पराशरः—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
पितरस्तस्य नाश्रन्ति दशवर्षाणि पञ्च च ॥
काष्ठभारसहस्रेण घृतकुम्भशतेन च ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥

मार्कण्डेये—अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्य पुण्यमादाय गच्छति ॥

अयं च मनुष्ययज्ञो नित्यश्रान्द्धात्पूर्वमेवेति दिवोदासः । नित्यश्रान्द्धो-
त्तरमित्याचारादर्शः । सायं स्यात्पितृयज्ञान्तं ब्रह्मयज्ञविवर्जितमिति
शाकलवचने पितृयज्ञान्तमित्युक्त्या रात्रौ मनुष्ययज्ञस्यापि निवृत्तिः
प्रतीयत इत्याचारार्के दिवाकरेणोक्तं तन्न समञ्जसम् ।

कृत्वा मनुष्ययज्ञान्तमुपस्थायौ च मे स्वरः ॥
हविर्भुजं नमस्कृत्य गोत्रनामपुरःसरम् ।
जप्त्वा चैव तु गायत्रीं धारयेद्धोमभस्म च ॥

स्मृत्वा यज्ञपतिं देवं हुतं तस्मै निवेदयेत् ।

एवं चापि दिवा कृत्वा सायं चापि तथैव च ॥

इत्याश्वलायनस्मृतिविरोधात् ।

दिनेऽतिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं भवेत् ॥

तदेवाष्टगुणं प्रोक्तं सूर्योदये विमुखे गते ।

इति योगयाज्ञवल्क्यस्मृतौ सायमतिथ्यपूजने बहुदोषश्रवणाच्चेति ।

अथ मनुष्ययज्ञप्रयोगः—गृहागतमतिथिमभ्यागतं वा प्राङ्मुखं पीठा-
दाबुपवेश्य स्वयमुदगानन उपस्थासनेनोपविश्याऽऽचम्य प्राणानायम्य
देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मनुष्ययज्ञं
करिष्ये इति संकल्प्य । अतिथे भर देहं स्वमिति पूर्वोक्तमन्त्रेण ॐ
अतिथये नम इति नाममन्त्रेण वा गन्धादिना संपूज्य द्विजभोजनपर्या-
प्तमन्नं पात्रस्थं द्विजाग्रे निधाय ॐ सनकादिभ्यो हन्त इतिमन्त्रेण
साक्षतोदकमुत्सृज्य सनकादिभ्य इदं न ममेति त्यक्त्वा तेनान्नेन भोज-
येत् । अत्रातिथ्यभ्यागताभावे तद्भोजनाशक्तौ वा पात्रान्तरे षोडशच-
तुरेकान्यतमग्रासपरिमितमन्नं निधाय पूर्वोक्तमन्त्रेणैव त्यक्त्वा द्विजा-
दिभ्यः प्रतिपादयेत् । द्विजाभावे गोभ्यस्तासां प्रत्यभावेऽग्नौ होतव्यम् ।
यद्वाह्यणेभ्योऽन्नं ददाति तन्मनुष्ययज्ञः संतिष्ठत इति श्रुतौ बहुवचनाद्वा-
ह्यणत्रयभोजनं मुख्यम् । अशक्तावेकब्राह्मणभोजनम् । अस्मिन्पक्षे
सत्यपि सनकादिभ्य इति बहुवचनं बहूनां सनकादीनामुद्देश्यत्वाद्युक्त-
मेवेति ।

इति माटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्रयम्बकविरचित आचारेन्दौ
मनुष्ययज्ञः ।

अथ ब्रह्मयज्ञस्य दक्षिणारूपभिक्षादानविधिः । तत्र मनुः—भिक्षां च
भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे । भिक्षमाणं ब्राह्मणं ब्रह्मचारिणम् ।
सोऽपि विधिर्गौतमेन दर्शितः—स्वस्ति वाच्य भिक्षादानमपूर्वमिति ।
स्वस्तीति वाचयित्वा हस्ते जलं प्रदाय भिक्षामादाय भिक्षादानं
कार्यमित्यर्थः । तत्र चाऽऽद्यन्तयोरुदकदानं कार्यम् । तथा च व्यासः—

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्पुनर्जलम् ।

भैक्षं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम् ॥

अकरणे प्रत्यवाय उक्तः कूर्मपुराणे—

अपूजयन्हि काकुत्स्थ तपस्विनमुपागतम् ।

दुःखार्तश्च परे लोके श्वर्मांसानि च खादति ॥

व्यासोऽपि—यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।

तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

अत्र पराशरः—दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।

इच्छया च ततो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥ इति ।

एतदपि व्रताध्ययनादियोगविषयम् । सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या
सत्रताय चेति याज्ञवल्क्यस्मरणात् ।

अवता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ।

तं ग्रामं दण्डयेद्वाजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

इति वसिष्ठस्मरणाच्च । यदा तु वैश्वदेवात्प्राग्भिक्षुरागच्छति तदा
व्यासेनोक्तम्—

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षुके गृहमागते ।

उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ इति ।

गौतमः—वैश्वदेवा(वेऽ)कृते दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।

न हि भिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥

वैश्वदेवस्य पश्चात्करणेन प्रसक्तो यो दोषः स भिक्षादानेन निव-
र्त्यते । भिक्षापरिहारेण तु यो दोषो नासौ पूर्वकृतवैश्वदेवेन निवर्त्यते ।
ते च भिक्षवो व्यासेन दर्शिताः—

यतिश्च ब्रह्मचारी च विद्यार्थी गुरुपोषकः ।

अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः + ॥

पुराणेऽपि—व्याधितस्यार्थहीनस्य कुटुम्बात्प्रच्युतस्य च ।

अध्वानं वा प्रपन्नस्य भिक्षाचर्या विधीयते ॥ इति ।

पाराशरः—सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।

गुर्वर्थपितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापितम् ॥

सांतानिकः संतानाय विनियुक्तो द्रव्यार्थी । सर्ववेदसः(दाः) सर्वस्वद-
क्षिणं यागं कृत्वा निःस्वत्वमापन्नः सन्द्रव्यार्थी । मातृपितृशुश्रूषार्थं
द्रव्यार्थी । स्वाध्यायप्रवचननिर्वाहाय द्रव्यार्थी । उपतापी रोगी ।

स्वाध्यायार्थिसहित उपतापी स्वाध्यायाध्युपतापीति मध्यमपदलोपी समासः । एतान्विचार्य भिक्षां दद्यादिति शेषः । भिक्षाप्रमाणं पूर्वमुक्तम् । एवं कुर्वतः फलमाह यमः—

सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षां यः प्रयच्छति मानवः ।

, गोप्रदानसमं पुण्यं तस्याऽऽह भगवान्यमः ॥

ब्रह्मपुराणेऽपि—यः पात्रपूरणीं भिक्षां यतिभ्यः संप्रयच्छति ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ इति ।

अत्र भिक्षान्नाशिनां फलमाहात्रिः—

शाकभक्षाः पयोभक्षा ये चान्ये पवनाशिनः ।

सर्वे ते भैक्षभक्षस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

तत्र विशेषमाह स एव—

माधूकरीं समादाय ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।

स याति नरकं घोरं भोक्ता भुङ्क्ते तु कित्विपम् ॥

पक्वान्नभिक्षाशिना तेनैव वैश्वदेवः कर्तव्य इति पूर्वमुक्तम् । भिक्षुकालाभे विष्णुः—भिक्षुकाद्यभावेऽन्नं गोभ्यो दद्याद्गौ वा प्रक्षिपेदिति । इत्याचारेन्दौ भिक्षादानविधिः ।

अथ पञ्चमहायज्ञप्रशंसा । तत्र हारीतः—

देवान्पितृन्मनुष्यांश्च भूतानि ब्राह्मणास्तथा ।

तर्पयन्विधिना विप्रो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

शंभुरपि—यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः ।

सम्यक्पञ्चमहायज्ञैर्द्विजस्तदवाप्नुयात् ॥

अकरणे प्रायश्चित्तसृग्विधाने—

येत्रिंशति जपेत्सूक्तं त्रिवारं तु यदा द्विजः ।

वैश्वदेवं विना भुङ्क्ते तदा पापात्प्रमुच्यते ॥

बौधायनस्तु—बौधायन इदं प्राह लोपे पञ्चमखेषु तु ।

एतेभ्यः पञ्चयज्ञेभ्यो यद्येकोऽपि तु हीयते ॥

मनस्वत्याऽऽहुतिस्तत्र प्रायश्चित्तं विधीयते ।

द्यहं वाऽपि त्र्यहं वाऽपि प्रमादादकृतेषु च ॥

तिसस्तन्तुमतीर्हुत्वा चतस्रो वारुणीर्जपेत् ।

दशाहं द्वादशाहं वा निवृत्तेषु च सर्वशः ॥

चतस्रो वारुणीर्हुत्वा कार्यस्तान्तुमतश्चरुः ॥ इति ।

अव ते हेळ उदुत्तममिमं मे वरुण तत्त्वायामीति चतस्रो वारुण्यः ।
स्मृत्यन्तरे तु—

अकृत्वाऽन्यतमं यज्ञं पञ्चानामधिकारतः ।

उपवासेन शुद्धिः स्यात्पाकसंस्थासु चैव हि ॥ इति ।

अकृत्वाऽन्यतमं यज्ञमित्येकत्वस्य गृहं संमार्ष्टीतिवदविवक्षितत्वा-
द्विज्यादियज्ञलोपेऽप्येतत्प्रायश्चित्तं भवत्येव । एतदनापद्विषयम् ।
तदाहाभिः—

महायज्ञस्याकरणे विप्रमापदि भोजयेत् ।

अनापन्नस्तूपवसेद्विप्रं भक्त्या तु भोजयेत् ॥

अन्यच्च—पञ्चयज्ञस्याकरणात्स्वस्थस्तूपवसेद्विजः ।

अस्वस्थो विप्रवाक्येन पूयते गोश्च तर्पणात् ॥ इति ।

कूर्मपुराणे तु—पञ्चयज्ञानकृत्वा तु यो भुङ्क्ते प्रत्यहं गृही ।

अनातुरः सति धने कृच्छ्रार्धेन विशुध्यति ॥ इति ।

इति पञ्चमहायज्ञाकरणे प्रायश्चित्तम् ।

अथ नित्यश्राद्धम् । तदाह हेमाद्रौ व्यासः—

अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । इति ।

मार्कण्डेयपुराणे—

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।

पितृनुद्दिश्य विप्रांस्तु भोजयेद्विप्रमेव वा ॥

इदं पद्विदेवत्यं दैवादिहीनं च । तदुक्तं पुराणे—

नित्यश्राद्धं तु यन्नाम दैवहीनं तदुच्यते ।

तत्तु पादूपौरुषं ज्ञेयं दक्षिणापिण्डवर्जितम् ॥

प्रचेता अपि—नामन्त्रणं न होमं च नाऽऽह्वानं न विसर्जनम् ।

न पिण्डदानं न सुरान्नित्ये कुर्याद्विजोत्तम ॥

उपवेश्याऽऽसनं दद्यात्संपूज्य कुसुमादिभिः ।

निर्दिश्य भोजयित्वा तु किञ्चिद्वत्त्वा विसर्जयेत् ॥

अत्र दक्षिणाया विहितप्रतिपिद्धत्वाद्विकल्पः शक्ताशक्तत्वेन व्यवस्थितो बोध्यः । अत्र दातृभोक्त्रोर्नियमा न सन्ति । भोक्तारं प्रति-दातारं धृतं तत्र न विद्यत इति देवलोक्तेः । अत्रानुकल्पमाह कात्यायनः—

एकमप्याशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ।

अदैवं नास्ति चेदन्नं भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥

अभ्युद्धृत्य यथाशक्ति किञ्चिदन्नं यथाविधि ।

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदाहरेत् ॥ इति ।

तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः—तदन्नं भिक्षवे दद्यात्तदलाभे गोभ्यो दद्याद्गौ वा क्षिपेदिति । अत्राप्यसामर्थ्यं मनुनोक्तम्—

दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।

पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमाचरन् ॥

बौधायनेन तर्पणेनापि नित्यश्राद्धसिद्धिरुक्ता—अपि वाऽपस्तपि-तृयज्ञः संतिष्ठत इति । वैश्वदेवान्तःपातिस्वधापितृभ्य इति पित्र्य-बलिनैव वा नित्यश्राद्धसिद्धिरिति पूर्वमुक्तम् । इदं दिवाऽसंभवे रात्रा-वपि प्रहरपर्यन्तं कार्यमिति चन्द्रिकायाम् । दिवाऽसंभवे लोप एवेति पृथ्वीचन्द्रः । अस्मिन्पक्षे पित्र्यबलेनित्यश्राद्धप्रतिनिधित्वेऽपि न रात्रौ-निषेधः । प्रतिनिधौ निषेधाप्रवृत्तेः । समुच्चयपक्षे स्थानापत्यभावाच्च । तथा स्वल्पद्वादश्यामपररात्रेऽपि नित्यश्राद्धम् । अपकर्षविधेर्बलीय-स्त्वात् । आचारसार आचाररत्ने चैवम् । नित्यश्राद्धेऽन्नदेशकालनि-यमो नास्तीति स्मृत्यर्थसारे । उत्तमान्नसंभवे तु जघन्यं न दद्यादिति चन्द्रिकायाम् । एतद्वर्षपर्यन्तमावश्यकम् । ऊर्ध्वं तु कृताकृतम् । नित्य-श्राद्धं प्रक्रम्यैवं संवत्सरमित्युक्तम् । कृताकृतमत ऊर्ध्वमित्यापस्तम्बोक्ते-रिति गूढाचारशिरोमणिः । हेमाद्रौ चन्द्रिकायां च देवलः—

अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत् ।

द्विश्चतुर्था यथा श्राद्धं मासे मासे दिनेऽपि वा ॥

प्रत्यहमनुष्ठानाशक्तौ मासे मासे तत्राप्यशक्तौ वर्षमध्ये द्विश्चतुर्था सकृद्वा कार्यमिति हेमाद्रिश्चन्द्रिका च । नित्यश्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमु-क्तमृग्विधाने—

आर्चन्नत्र जपेन्मन्त्रं दशवारं जले बुधः ।

नित्यश्राद्धं यदा न्यूनं कुरुते नात्र संशयः ॥

इदं दर्शादिषड्वैवतादिश्राद्धे प्राप्ते प्रसङ्गसिद्धेर्न पृथक्कार्यम् । तदुक्तं चमत्कारखण्डे—

नित्यश्राद्धं न कुर्वीत प्रसङ्गाद्यत्र सिध्यति ।

श्राद्धान्तरे कृतेऽन्यत्र नित्यत्वात्तत्र हापयेत् ॥

प्रसङ्गसिद्ध्यभावे हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—

ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च ततोऽतिथीन् ।

ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥

ततः श्राद्धशेषात् । नित्यक्रियां नित्यश्राद्धम् । तत्र पृथक्पाकेन नैत्यकमिति तेनैवोक्तेः पाकैक्यविकल्पः । इदं च मनुष्ययज्ञोत्तरं कर्तव्यम् । तत्र वसिष्ठः—श्रोत्रियायाग्रं दद्याद्ब्रह्मचारिणे वाऽनन्तरं पितृभ्यो दद्यादिति । एतद्वल्युत्तरं श्रोत्रियादेरुपस्थितौ ज्ञेयम् । अनुपस्थितौ तु मनुष्ययज्ञात्प्रागेव नित्यश्राद्धमित्याचारादर्शः । बह्वृचानां सूत्रक्रमानुरोधादिदमेव युक्तम् । कमलाकराह्निके तु मनुष्ययज्ञार्थं नित्यश्राद्धार्थं चेति ब्राह्मणद्वयमुपवेश्योभयोस्तन्त्रेण पाद्यादिपूजां विधाय तन्त्रेणान्नदानम् । तत्रादौ श्राद्धीयस्य पश्चान्मनुष्ययज्ञार्थस्येत्युक्तम् ।

अथ नित्यश्राद्धप्रयोगः—उदङ्मुखं ब्राह्मणमुपवेश्य स्वयमाग्नेय्यभिमुखः सव्योत्तर्युपस्थ आचम्य प्राणानायम्य तिथ्यादि संकीर्त्य प्राचीनावीती, अस्मपितृपितामहप्रपितामहानाममुकगोत्राणाममुकशर्मणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानां मातामहमातुःपितामहमातुःप्रपितामहानाममुकगोत्राणाममुकशर्मणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानां सव्यमेतेषां श्रेयोर्थं मोक्षार्थं तृप्त्यर्थं पितुर्नित्यश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य पितृणामिदमासनं नित्यश्राद्धे क्षणः क्रियताम् । पूर्वोच्चरिताः पितरः, अयं वो गन्ध इत्येवं पुष्पादिभिर्विप्रमभ्यर्च्य वर्तुले चतुरश्रे वा मण्डले पात्रेऽन्नं परिविष्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादि ब्रह्मार्पणान्तं दर्शयत् । भोजनान्ते दक्षिणां दत्त्वा न वा दत्त्वा नमस्कारेण विसर्जयेत् । एतदशक्तौ स्वपङ्क्तौ पित्रुद्देशेन ब्राह्मणमात्रं भोजयेदित्याह्निकरत्नमालायाम् । विप्रस्यान्नादेर्वाऽभावे यथाशक्त्यन्नमुद्धृत्येतदन्नं पितृभ्यः स्वधा नम इत्युक्त्वा ब्राह्मणाय दद्यात् । तदलाभे गोभ्योऽग्नौ वा जलादौ वा त्यजेत् । अन्नत्यागस्यापि लोपे

आर्चन्नत्र मरुत इत्यृचो दशवारं जपः । नित्यश्राद्धे तर्पणं ब्रह्मचर्यावि-
नियमश्च नास्तीति ।

इति शाण्डिल्यकुलसंभवनारायणात्मजत्रयम्बकविरचित आचा-
रेन्दौ नित्यश्राद्धम् ।

अथ गोघ्रासः । अयं च शिष्टाचारात्पञ्चयज्ञोत्तरमिति मदनरत्ने ।
प्रभासखण्डे—

तृणान्नाद्यपरा गावः कर्तव्या मक्तितोऽन्वहम् ।
अकृत्वा स्वयमाहारं कुर्वन्प्राप्नोति दुर्गतिम् ॥
आत्माहारप्रमाणेन प्रत्यहं गोषु दीयते ।

आत्माहारप्रमाणान्नाशक्तौ ब्रह्माण्डे—

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे घ्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥
दद्यादनेन मन्त्रेण गवां घ्रासं सदैव हि ।

सदैवेत्युक्त्याऽकरणे प्रत्यवायश्रवणाच्चायं नित्य इत्याचारादर्शः । प्रमा-
सखण्डे मन्त्रान्तरम्—

सौरभेयी जगत्पूज्या देवि(वी) विष्णुपदे स्थिता ।
सर्वदेवमयी घ्रासं मया दत्तं प्रतीच्छतु ॥

काम्यं च—तृणोदकेन संपुक्तं यः प्रदद्याद्ब्राह्मिकम् (?) ।

कपिलाशतदानस्य फलं विद्यान्न संशयः ॥

इति चन्द्रोदये भविष्यात् । इत्याचारेन्दौ गोघ्रासः ।

अथ प्रसङ्गादन्नदानस्य फलमाह व्यासः—

घ्रासमप्येकमन्नस्य यो ददाति दिने दिने ।
स्वर्गं लोकमवाप्नोति नरकं न च गच्छति ॥
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यस्योपरि तिष्ठतः ।
अन्नप्रदाता दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेमवस्त्रदः ॥

अश्वमेधविधानेन यत्पुण्यफलमाप्यते ।

तेन तुल्यं विशिष्टं वा ब्राह्मणे तर्पिते फलम् ॥

विष्णुरपि—कृत्वा हि पापकं कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने ।

ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन युज्यते ॥

ब्रह्मवैधर्तेऽपि—अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुः शिवः स्वयम् ।

तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

बृहन्नारदीये—भूणहाऽप्यन्नदानेन शुद्धो भवति भूपते ।

अन्नतोयसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

[*अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः ॥

सर्वदानफलं यस्मादन्नदस्य नृपोत्तम ।

अन्नदो ब्रह्मसदनं याति वंश(शा?)युतान्वितः ॥

न तस्य पुनरावृत्तिरिति शास्त्रस्य निश्चयः ।

अन्नदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥]

सद्यस्तुष्टिकरं ज्ञेयं जलदानं ततोऽधिकम् ।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥

शृणुष्व चित्रं भूपाल शुध्यत्यन्नजलप्रदः ।

शरीरमन्नजं प्राहुः प्राणमन्नं प्रचक्षते ॥

तस्मादन्नप्रदो ज्ञेयः प्राणदः पृथिवीपते ।

सद्यस्तुष्टिकरं दानं सर्वकामफलप्रदम् ॥

तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ।

अन्नदस्य कुले जाता आसहस्रकुलान्नप ॥

नरकं ते न पश्यन्ति तस्मादन्नप्रदो भवेत् ।

पात्रापात्रं विचार्यान्नं दद्यादिति व्यतिरेकेणोक्तं मनुना—

परान्नेनोदरस्थेन यः करोति शुभाशुभम् ।

अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भागेन लिप्यते ॥

तस्मात्पापप्राप्तिहेतुभूतं दुष्टं परित्यज्य शिष्टाय दद्यादित्यर्थः । तदुक्तं
कूर्मपुराणे—

सुभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकं भोजयेद्विजम् ।

न तु मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम् ॥ इति ।

विद्याधिकविषये विशेष उक्तस्तेनैव—

विद्यावत्सु समिद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु

संतारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ इति ।

* नायं ग्रन्थः ख. पुस्तके ।

शातातपोऽपि—वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते ।

क्रीडन्त्यौषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ।

दीयमानं रुदत्यन्नं किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥ इति ।

इदं वैधह्वयकव्यविषयम् । अत एव शातातपेनोक्तवचनानन्तरं

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।

तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्ताञ्जलानयोमयान् ॥

इति उक्तम् । दयामुद्दिश्य तु यस्य कस्यापि अन्नाच्छादनादि सर्वं देयम् । तथा च महाभारते—

अन्नदः प्राप्नुते राजन्दिवि चेह महत्सुखम् ।

नावमन्येताभिगतं न प्रणुद्यात्कदाचन ॥

अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति ।

तथा—ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महाफलम् ।

अन्नदानं हि शूद्रे च ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥

संवर्तः—दानान्येतानि देयानि तथाऽन्धानि च सर्वशः ।

दीनान्धकृपणार्थिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ॥

व्यासः—दयामुद्दिश्य यद्दानमपात्रेभ्योऽपि दीयते ।

दीनान्धकृपणेभ्यश्च तदानन्त्याय कल्पते ॥

नन्दिपुराणे—अपि कीटपतङ्गानां शुनां चण्डालयोनिनाम् ।

दत्त्वाऽन्नं लोकमाप्नोति प्राजापत्यं शतं समाः ॥

महाभारते—पङ्कन्धवधिरा मूका व्याधिनोपहताश्च ये ।

भर्तव्यास्ते महाराज न तु देयं(यः) प्रतिग्रहः ॥

भर्तव्या अन्नवस्त्रेण तदुपयोगिद्रव्येण वा । वैधप्रतिग्रहस्तु न कारणीय इति फलितोऽर्थ इति । समीपस्थब्राह्मणातिक्रमो न कार्यस्तदुक्तं भविष्ये—

यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितावृते ।

दूरस्थं भोजयेन्मूढो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत् ॥

तस्मान्नातिक्रमेत्प्राज्ञो ब्राह्मणान्प्रातिवेश्यकान् ।

संबन्धिनस्तथा सर्वान्दौहित्रं विद्रुषति तथा ॥

भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून्गृहाधिपः ।
नातिक्रामेन्नरस्वेतान्सुमूर्खानपि गोपते ॥
अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

इदं भोजनविषयम् ।

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरस्थश्च बहुश्रुतः ।
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ।
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥

इति मूर्खव्यतिक्रमदोषाभावप्रतिपादकबौधायनवचनानर्थक्यापत्तेः ।
हेमाद्रावप्येवम् । श्रीमद्भागवते सनकादीन्प्रति भगवता श्रीकृष्णेनो-
क्तम्—

नाहं तथाऽग्नियजमानहर्विर्वितानै-
श्रोतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं
तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥ इति ।

इत्याचारेन्दावन्नदानमहिमा ।

अथ भोजनविधिरभिधीयते । तस्य कालमाह मनुः—

सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥

अत्र प्रातःशब्दोऽष्टधाविभक्तदिनपञ्चमभागपरः । सायंशब्दो घटि-
कात्रयोर्ध्वरात्रिपरः । दिवसस्य पञ्चमे तु भागे भोजनमाचरेदिति
कार्त्तयायनोक्तेः ।

चत्वार्येतानि कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत् ।

आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम् ॥

इति शातातपोक्तेश्च । सायंभोजनस्योत्तरावधिमाह शौनकः—

निशायाः प्रथमे यामे जपयज्ञार्चनादिकम् ।

स्वाध्यायो भोजनं प्रोक्तं वर्जयित्वा महानिशाम् ॥

महानिशाशब्देन मध्ययामद्वयमुच्यते । सार्धप्रहरयामान्त इति च्छन्दो-
गपरिशिष्टात्सार्धप्रहरानुज्ञाऽऽपद्विषयेत्याचारसारः । अत्र मनुवाक्ये सायं-
प्रातर्भुञ्जीतैवेति नियमविधिः । तेन सति भोज्ये सत्यां च भोजनशक्तौ

द्वेपादिना भोजनमकुर्वन्प्रत्यवैतीति मिताक्षरसंहितायां विज्ञानेश्वरः । अस्मिन्पक्षे शक्तस्य द्विर्भोजनमावश्यकम् । अशक्तौ तु यत्किञ्चिदल्पं भक्ष्यम् । औपवस्तमेव कालान्तरेऽभोजनमित्यापस्तम्बोक्तेः । औपवस्त-मुपवासस्तत्तुल्यमिति हरदत्तः । तदशक्तावद्भिर्वा सायमिति बौधायनोक्तं ज्ञेयम् । नान्तरेति फलमूलान्यपरम् । दिवा च नान्तरा भुञ्जीतान्यत्र मूलकलेभ्य इत्यापस्तम्बोक्तेः । इदमप्यार्द्रस्य भर्जितस्य च धान्य-स्योपलक्षणम् । आर्द्रधान्यं फलवद्वाह्यमिति भर्जितं फलवद्भवेदिति वचनादिति भोजनकुतूहले । हरदत्तस्तु सायंप्रातरेवेति परिसंख्या । सा च यद्यपि दोषत्रयवती तथाऽप्येकवाक्यतालाभात्सोढव्या । एवं हि नान्त-रेत्यादिरनुवाद एवेति लाघवम् । अन्यथा तु वाक्यभेदो भवेत् । गृहस्थ एकवारं तु भुञ्जीतात्युत्तमं हि तत् । अशक्तस्तु द्विरश्नीयादिति सूतसं-हितास्थवचनविरोधश्च स्यादिति । साम्प्रिकब्रह्मचारिणोस्तु न नियम-विधिर्नापि परिसंख्या ।

आहिताग्निरनङ्गांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः ।

अश्रन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्रताम् ॥

इति वचनादित्याचारसारे । आश्वलायनः—

अष्टम्योश्च चतुर्दश्यो रात्रावश्नाति नित्यशः ।

एकादश्यामुपवसेच्छुक्लपक्षे विशेषतः ॥

वर्तयेदेकभक्तेन पञ्चदश्योर्विचक्षणः ।

अनन्तराशनान्नित्यं निषिद्धान्नस्य वर्जनात् ॥

गृही सदोपवासी स्यात्स्वकर्मकरणादपि ॥ इति ।

अर्कद्विपर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमीदिवा ।

एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

अत्रार्कशब्देन तिथिसाहचर्याद्वाद्दश्या ग्रहणमिति केचित् । तन्न । श्राद्धाहे पर्वकाले च रविवारे च पर्वसु । रात्रिभुक्तिर्न कर्तव्येति स्मृत्यन्त-रानुरोधेन रविवासरग्रहणस्यैवोचितत्वादिति । अत्र कृष्णाष्टमीकृष्णच-तुर्दश्योः पर्वत्वादष्टमीचतुर्दशीपदं कृष्णाष्टमीकृष्णचतुर्दशीपरम् । तेन तयोरेव दिवा भोजनं नेत्युक्तं निर्णयामृतं । गृह्यपरिशिष्टे तु—अष्टमीं चतुर्दशीं भानुवारं श्राद्धदिनं तत्पूर्वदिनं च वर्जयित्वाऽवशिष्टरात्रिषु

नियमेनामात्यैः परिवृतो लघुभोजनं कृत्वेत्याद्युक्तम् । अत्राऽऽश्वलायन-
स्मृतौ चतुर्दश्यष्टम्योर्दिवाभोजननिषेध उक्तः । परिशिष्टे तु रात्रिभोज-
ननिषेध उक्तः । एवं च विकल्प एव श्रेयान् । अत एव स्मृत्यर्थसारे—
अष्टमीचतुर्दश्योर्नक्तं कार्यमेकभक्तं वेत्युक्तमिति केचित् । अन्ये त्वाश्व-
लायनानां स्मृत्यपेक्षया परिशिष्टस्य प्रबलत्वात्तैः परिशिष्टमेवाङ्गीकर्त-
व्यम् । तदितरेस्तु स्मृतिरङ्गीकर्तव्येति व्यवस्थामाहुः । बहुशिष्टाचारा-
रोधादिदमेव युक्तम् । अत्राष्टम्यादौ दिवा रात्रौ वा भोजननिषेध-
मात्रपरिपालनं न तु किञ्चिद्व्रतम् । तत्र निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमा-
त्रमपेक्षत इति देवलवचनान्द्रोजनकालव्यापिनीमष्टम्यादितिथिं त्यक्त्वा
भोक्तव्यमिति । धर्माब्धिसारेऽप्येवम् । एकादशीविषये तूपवासयोग्य-
दिने भोजन एव पूर्वोक्तं चान्द्रायणं प्रायश्चित्तमिति पुरुषार्थचिन्तामणौ
सविस्तरं प्रपञ्चितम् । एवं जन्माष्टमीशिवरात्र्यादावष्टमीचतुर्दशीप्रयु-
क्तभोजननिषेधपरिपालनं निर्णीतव्रतदिन एवेति तुल्यन्यायेनेति माति ।
एकादश्यां भोजननिषेधोऽष्टवर्षादूर्ध्वमशीतेः प्राग्ज्ञेयः । तदुक्तं नारदीय-
पुराणे—

अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतेन्यूनवत्सरः ।

यो भुङ्क्ते मामके रात्रे विष्णोरहनि पापभाक् ॥

स मे वध्यश्च दण्ड्यश्च निर्वास्यो देशतः स मे ।

एकादश्यादिव्रतोपवासे तु पूर्वोत्तरदिनयोरिकभक्तम् ।

सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायं प्रातश्च मध्यमे ।

उपवासफलं प्रे(लप्रे)प्सुर्जह्याद्भक्तचतुष्टयम् ॥

अत्र फलप्रेप्सुरित्युक्तेरिदं काम्यैकादश्यादिव्रतविषयमिति हेमाद्र्यादयः ।

चन्द्रिकायां तु नित्येऽपि फलसत्त्वात् ।

इति विज्ञाय कुर्वातावश्यमेकादशीव्रतम् ।

विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिर्वाजितः ॥

इति ब्रह्मवैवर्ताच्च नित्यपरत्वमपीत्युक्तम् । एकादश्यां न भुञ्जीते-
त्यादौ भोजननिषेध उक्तस्तत्र भोजनशब्देनौदनकर्मकलोकप्रसिद्धभोज-
नमेव निषिद्धमिति पुरुषार्थचिन्तामणौ विस्तरेण प्रपञ्चितम् । एका-
दश्याद्युपवासाशक्तौ वायवीये—

नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा
 फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाऽऽज्यम् ।
 यत्पञ्चगव्यं यदि वाऽपि वायुः
 प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥

हेमाद्रौ भविष्यत्पुराणे—सताम्बूलमताम्बूलं सभोजनमभोजनम् ।
 साहारं च निराहारं चतुर्विधमुपोषणम् ।
 यावत्कृताह्निको न स्याद्यावन्नार्चयते हरिम् ।
 गृही ताम्बूलहीनः स्यात्तत्सताम्बूलमुच्यते ॥
 पूजयित्वाऽच्युतं पूर्वं पूर्णाभुक्त्यां भुनक्ति यः ।
 भद्राभुक्त्यां पुनर्भुङ्क्ते तत्सभोजनमुच्यते ॥

पूर्वादिने दशमीमध्य एव भुक्त्वा द्वितीयदिन एकादशीमतिक्रम्य
 द्वादश्यां प्राप्तायां पुनर्भुङ्क्त इत्यर्थः ।

तृणधान्याशनं मूलपयसाऽऽज्येन वा फलैः ।
 हरेरद्वन्युपवासं च तत्साहारमुदाहृतम् ॥
 यदेतै रहितं शुद्धमुपायैः समुपोषणम् ।
 अताम्बूलमनाहारमभोजनमतो हितम् ॥ इति ।

तृणधान्यं तृणधान्यानि नीवारा इत्यमरः । अत्र बहुवचनाच्छ्रामा-
 कादीनां ग्रहणं तद्दीकायाम् । वाराहपुराणे—

यावन्तस्त्रिषु लोकेषु विद्यन्ते पापराशयः ।
 अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे ॥
 अतस्तस्मिन्दिने गन्धलेशमप्यत्र वर्जयेत् ।
 तण्डुलोऽग्न्यम्बुसंयोगात्पिष्टं लवणयोगतः ॥
 फलं त्रितयसंयोगादन्नं भवति तत्क्षणात् ।
 इक्षोर्विकारास्तत्र स्युर्यावन्तः केवलस्य च ॥
 खर्जूरं नारिकेलं च प्रियालं पनसादिकम् ।
 आम्रं च कदली द्राक्षा क्षीरं दधि घृतं तथा ॥
 अनिषिद्धानि मूलानि तथा कन्दादिकं च यत् ।
 विनोदकेन यत्पक्वं धान्यं यच्च घृतादिना ॥
 एतानि फलसंज्ञानि यो ह्यशक्तो दिने मम ।
 पादशोऽश्नाति यस्तृप्तेः संपूर्णफलमाप्नुयात् ॥ इति ।

हेमाद्रौ मार्कण्डेयः—एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।

उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥ इति ।

तिथितत्त्वे ब्रह्मवैवर्ते—उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् ।

तावद्धनानि वा दद्याद्यद्धक्ताद्विगुणं भवेत् ॥

सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् ।

कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथाशक्तिं व्रते नरः ॥

स्वाशक्तौ प्रतिनिधिना व्रतं कारयेत्तदाह हेमाद्रौ वाराहः—

असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते तु समुपस्थिते ।

कारयेद्धर्मपत्नीं वा पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥

भगिनीं भ्रातरं वाऽपि व्रतमस्य न लुप्यते ।

माधवीये पैठीनसिः—भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ॥

असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ।

हेमाद्रौ वायुपुराणे—उपवासे त्वशक्तस्तु आहिताग्निरथापि वा ॥

पुत्राद्वा कायेरदाप्ताद्वाह्मणाद्वाऽपि कारयेत् ।

अथवा विप्रमुख्येभ्यो दानं दद्यात्स्वशक्तितः ॥

उपवासफलं तस्य समग्रं समवाप्यते ।

तत्र भोजनदोषोऽपि तत्क्षणादेव नश्यति ।

हेमाद्रौ कात्यायनः—पितृभ्रातृमातुरर्थं आचार्यार्थं विशेषतः ॥

उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं भवेत्^१ ।

यमुद्दिश्य कृतः सोऽपि संपूर्णं लभते फलम् ॥

द्रव्यसंप्रतिपत्तौ वा एकादश्यामुपोषितः ।

द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

कर्ता नक्तमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । इति ।

एकादश्यादौ श्राद्धपाते देवलः—

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाग्राय पितृसेवितम् ॥

धर्माब्धिसारे—उपवासदिने श्राद्धप्राप्तौ श्राद्धशेषसर्वान्नेनैकं पात्रं परिविण्य तत्सर्वान्नावघ्राणं कृत्वा पात्रं गवादिभ्यो दद्यात् । कन्दमूलफला-
हाराद्यनुकल्पेनोपवासकर्त्रा तु स्वभक्ष्यस्यैव फलादेः पितृब्राह्मणपात्रेषु

परिवेषणपूर्वकं तच्छेषभक्षणं कार्यमिति । चतुर्थ्यादिरात्रिव्रतेषु दिवा शेषाघ्राणं कृत्वा रात्रौ पूजां विधाय फलमूलादिकं भक्षयेत् । रात्रौ भोजनस्य तस्मिन्दिन उपवासस्य च निषेधात् । उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेदितिवचनेन फलमूलादिभक्षणस्य विहितत्वाच्च । केचिद्वात्रावपि शेषाघ्राणमाहुरिति संस्काररत्नमालायाम् । दशमीनियमानाह कूर्मः—

कांस्यं मांसं मसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने ।

द्यूतमत्यम्बुपानं च दशम्यां सप्त संत्यजेत् ॥

द्वादशीनियमानाह बृहस्पतिः—

दिवा निद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।

क्षौद्रं कांस्याभिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥

एते च नियमाः काम्यव्रत एवाऽऽवश्यका इत्युक्तं सिन्धौ । पारणं तु नित्यव्रतेऽप्यावश्यकमिति पुरुषार्थचिन्तामणौ । तच्च द्वादश्यल्पा चेद्वात्रिशेष एवाऽऽमध्याह्नान्ताः क्रियाः सर्वा अपकृष्यानुष्ठाय द्वादशी-मध्य एव कार्यं तदाह हेमाद्रौ पद्मपुराणे—

यदा भवति स्वल्पाऽपि द्वादशी पारणादिने ।

उपःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं तदा ॥

नारदीयेऽपि—अल्पायामथ विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ।

स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः ॥ इति ।

अग्निहोत्रहोमस्य नापकर्ष इति केचित् । एवं श्राद्धस्य नापकर्षो रात्रौ श्राद्धनिषेधात् । नित्यश्राद्धं तु भवत्येवेति पूर्वमुक्तम् । द्वादश्यां पारणे विशेषो नारदीये—

पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् ।

द्वादश्यां पयसा स्नाप्य हरिसारूप्यमश्नुते ॥

ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या द्वादश प्रयतेन्द्रियः ।

शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्ब्रह्मण्याभरणानि च ॥ इति ।

माधवीये स्कान्दे—एकादश्यामुपोष्याथ योऽश्नाति द्वादशीदिने ।

नैवद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ॥

संकटे श्राद्धप्रदोषादिघ्नते च तीर्थजलेन पारणं कार्यम् । तदुक्तं माधवीये देवलेन—

संकटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम् ।

अद्भिश्च पारणं कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत् ॥

श्रुतिरपि—आपो वाऽशितमनशितं चेति । यत्र चतुर्दश्यष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो व्रतान्तरपारणा च प्राप्ता तत्र भोजनमेव कार्यम् । पारणाया विधिप्राप्तत्वात् । निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनपरः । रविषारादौ संकटचतुर्थ्यादिघ्नते रात्रिभोजनमेव कार्यम् । यत्राष्टम्यादौ दिवा भोजननिषेधो रात्रौ तु रविवारादिप्रयुक्तभोजननिषेधस्तत्रार्थप्राप्त उपवासः । यत्र तु पुत्रवद्बृहस्थस्य संक्रान्त्यादादुपवासोऽपि निषिद्धो भोजनस्याप्यष्टम्यादिप्रयुक्तनिषेधस्तत्र किञ्चिद्भक्ष्यं प्रकल्प्योपवास एव कार्य इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या । प्रकृतमनुसरामः । चन्द्रिकायां व्यासः—

नार्जीर्णं भोजनं कुर्यात्कुर्यान्नातिबुभुक्षितः ।

वैद्यके तु—आहारकाले संप्राप्ते यो न भुङ्क्ते बुभुक्षितः ।

तस्य सीदति सद्योऽग्निर्निरिन्धन इवानलः ॥

आदित्यपुराणे—न संध्ययोर्न मध्याह्ने नार्धरात्रौ कदाचन ।

विज्ञानेश्वरीये—बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ॥

संभोज्यातिथिभृत्यांश्च दंपत्योः शेषभोजनम् ।

परिणीता पितृगृहे स्थिता स्ववासिनी ।

शेषाः प्रसिद्धाः । सायणीये धर्मसारे तु—

एकः संपन्नमश्नाति वस्तु वासश्च शोभनम् ।

योऽसंविभज्य भृत्यानां को नृशंसतरस्ततः ॥

व्यासोऽपि—विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः ।

विघसं भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथाऽमृतम् ॥

इति भोजन कालः । एवं कालं विचार्य चित्तशुद्ध्यर्थं शुद्धद्रव्यकृतान्नं भुञ्जीत । तथा च व्यासः—

अभक्ष्यस्य निवृत्तौ तु विशुद्धं हृदयं भवेत् ।

आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः ॥

अभक्ष्यभक्षणाञ्चित्तमशुद्धं भवति स्वतः ।
अशुद्धाद्भ्रान्तिविज्ञानं जायते सुदृढं नृणाम् ॥
तस्मादभक्ष्यं यत्नेन दूरतः परिवर्जयेत् । इति ।

तत्पद्धविधमुक्तमपराकै—

जातिदुष्टं क्रियादुष्टं कालाश्रयविदूषितम् ।
संसर्गाश्रयदुष्टं च सहलेखं स्वभावतः ॥

कालाश्रयदूषितं चिरकालमाश्रित्य दुष्टं पर्युषितमित्यर्थः । तेषां लक्षणं संग्रहेणोक्तं तत्रैव—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
वृन्ताकं नालिकालाबु उपेयाज्जातिदूषितम् ॥
न भक्षयेत्क्रियादुष्टं यद्दुष्टं पतितैः पृथक् ।
कालदुष्टं तु विज्ञेयमशृतं चिरसंस्थितम् ॥
दधिभक्ष्यविकारांश्च मधुवर्जं तदिष्यते ।
सुरालशुनसंसृष्टं पीयूषादिसमन्वितम् ॥
संसर्गाद्दुष्यते तद्धि शूद्रोच्छिष्टवदाचरेत् ।
अभोज्यान्नं विजानीयादन्नमाश्रयगर्हितम् ॥

अभोज्याः कर्द्व्यब्दचौरादयः ।

विचिकित्सा तु हृदये अन्ने यस्मिन्प्रजायते ।
सहलेखं तु विज्ञेयं पीयूषं तु स्वभावतः ॥

पीयूषोऽभिनवं पयः । पीयूषोऽभिनवं पय इत्यमरसिंहेनाभिधानात् ।
अभिनवं पय इति प्रसवानन्तरं दशदिवसपर्यन्तं यत्पयस्तस्य नाम ।
रसदुष्टं विकाराद्धि रसस्येति निर्दिशितमिति उदाहृतमित्यर्थः ।

अथ जातिदुष्टविशेषा उच्यन्ते माधवीये पराशरे—

अलाबुं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
वृन्ताकं नालिकाशाकं जानीयाज्जातिदूषितम् ॥ इति ।

अलाबु वर्तुलम् । अलाबुं वर्तुलं त्यजेदिति विष्णूक्तेः । वराहपुराणे
तु अभक्ष्यं प्रक्रम्य दीर्घालाबुं श्वेतमूलं भूमिजं लवणं तथेति । गृञ्जनं
लशुनाकारः कन्दविशेष इति विज्ञानेश्वरः । यदीयं चूर्णं गायकाः
कण्ठशुद्ध्यै विटाश्च मदार्थमश्नन्ति स पत्रविशेष इति माधवः ।
माधवीये श्राद्धप्रकरणे तु श्वेतकन्दः पलाण्डुविशेषो गृञ्जनम् । गृञ्जनो

यवनेष्टश्च पलाण्डोर्दश जातय इति सुश्रुतेनोक्तत्वादित्युक्तम् । वाग्भट्टटी-
कायामपि—

गन्धवर्णरसैस्तुर्यो गृञ्जनस्तु पलाण्डुना ।

सूक्ष्मनालाग्रपत्रत्वाद्भिद्यतेऽसौ पलाण्डुतः ॥ इति ।

विषदिग्धेन शल्येन यो मृगः परिहन्यते ।

अभक्ष्यं तस्य तन्मांसं तद्धि गृञ्जनमिष्यते ॥

इत्यपरार्कः । मूलविशेषो गाजरपरपर्यायो गृञ्जनमिति केचित् ।
तन्न । गृञ्जनं चुक्रिकां चुक्रं गाजरं पोतिकां तथा । इति ब्राह्मे पृथङ्निर्दे-
शानुपपत्तेः । चुक्रिका *अंबटवेल । चुक्रमत्यैम्लं दधि । पोतिका
पोयीति । गृञ्जनं न गाजरपर्याय इति आचाररत्ने । आचारसारेऽपि
विस्तरेण प्रपञ्चितम् । पलाण्डुं प्रसिद्धम् । केचित्तु पलाण्डुं श्वेतपला-
ण्डुम् । तथा च जयसिंहकल्पद्रुमे पराशरः—

पलाण्डुं श्वेतवृन्ताकं कुसुम्भं वनकण्टकम् ।

नालिकां बालपुष्पं च भुक्त्वा दिनमभोजनम् ॥

अत्र पलाण्डुमिति श्वेतपलाण्डावेवोपसंह्रियत इति माधवः । देहली-
दीपन्यायेन तथैव युक्तमिति तदाशय इत्याह । तन्न । एवं व्याख्यानस्य माध-
वीयेऽदर्शनात् । समस्तपदे देहलीदीपन्यायादर्शनाच्च । कवकं छत्राकम् ।
वृन्ताकं श्वेतम् । वर्जयेच्छ्वेतवृन्ताकमिति विष्णूक्तेः । कण्डरं श्वेतवृन्ताकं
कुम्भाण्डं च विवर्जयेदिति देवलोकेश्वर । कल्पतरौ मदनरत्ने माधवीये
शूलपाणौ चैवम् । अपरः श्वेतवृन्ताकः कुक्कुटाण्डफलोपम इति मदन-
विनोदोक्तेर्जात्यन्तरमेव श्वेतवृन्ताकमित्याचाररत्ने । स्मृत्यर्थसारेऽपि
क्षुद्रश्वेतकण्टकिवृन्ताकानि वर्जयेदिति । तत्रैव-यतिव्रतिभ्यां सदाऽलाबु-
शिगुवृन्ताकानि जातिमात्रेण वर्ज्यानीति । नालिकाशाकं शाकविशे-
षम् । पैठीनसिः—वृन्ताकनालिकापोतकुसुम्भाश्मन्तकानि च । वर्जये-
दिति शेषः । पोत उपोदकी वेलबोण्डीति लोके । अश्मन्तकः, अपटेति
प्रसिद्धः । कुसुम्भः कर्डीति लोके । प्रयोगपारिजाते शातातपः—

लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनम् ।

उपनायं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं तथैव च ॥

लशुनः प्रसिद्धः । स च श्वेत एव निषिद्धः । तथा च पराशरः—
पीयूषं श्वेतलशुनं वृन्ताकफलगृञ्जने । इति । श्वेतपदं लशुनवृन्ताका-
भ्यामपि संबध्यते । तेन रक्तलशुनकृष्णवृन्ताकभक्षणे न प्रायश्चित्तमिति
माधवः । शुनं लोके देंदू । याज्ञवल्क्यः—

देवतार्थं हविः शिगुं लोहितान्वश्चनांस्तथा ।

अनुपाकृतमांसानि विड्जानि कवकानि च ॥

देवतार्थं बल्युपहारनिमित्तं साधितम् । हविर्हवनार्थं सिद्धं प्राग्घो-
मात् । शिगू रक्तशिगुः । उपोदकीलतां चैव वर्जयेद्रक्तशिगुकमिति
पारिजातधृतसंग्रहवचनात् । माधवोऽपि—लोहितपदमुभयत्रान्वितं
तेन रक्तशिगुर्निषिद्ध इति । स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम्—लोहितान्वृक्षनिर्या-
सालौक्षादीन्वश्चनप्रभवान्वृक्षच्छेदजातानलोहितानपि । लोहितग्रहणा-
द्धिङ्गुर्पूर्वादीनां न निषेध इति विज्ञानेश्वरः पारिजातश्च । अनुपाकृ-
तमांसानि यज्ञेऽहुतस्य पशोर्मांसानि । विड्जानि मनुष्यादिजग्धबीज-
पुरीषोत्पन्नानि । पुरीषस्थान उत्पन्नानि च तण्डुलीयकप्रभृतीनि ।
वर्जयेदिति प्रत्येकं संगच्छते । विष्णुः—

वार्ताककतकालिङ्गविल्वौदुम्बरिभिस्सटाः ।

एतांस्तु सेवते यस्तु तस्य दूरतराः श्रियः ॥

वार्ताकं वृन्ताकविशेषम् । कतं भोकर । कालिङ्गं कलिगडम् ।
विल्वं विल्वफलम् । उदुम्बरं प्रसिद्धम् । भिस्सटा दग्धान्नम् । विष्णुः—
लशुनं गृञ्जनं चैव उद्धिजं चाऽऽसुरं तथा । उद्धिजं छत्राकम् । आसुरं
मोहरीपल्लव । आहोशना—

न बीजान्युपयुञ्जीत रोगापत्तिमृते द्विजः ।

फलान्येषामनन्तानि बीजानां हि विनाशयेत् ॥ इति ।

एषां बीजानामनन्तानि फलानि यस्मादुपयुञ्जानो विनाशयेत् ।
तस्मादनापदि बीजानि नोपयुञ्जीतेत्यर्थः । धर्मसारसुधानिधौ—

उत्पलं वटकं चैव शणशाकं तथैव च ।

उदुम्बरं न खादेच्च भद्रार्थी पुरुषः क्वचित् ॥

वटकं वटाङ्कुरास्तत्फलं वा । शणशाकं शणस्तागः । बौधायनः—

अमेध्यभूस्था ये वृक्षा उप्ताः पुष्पफलैर्युताः ।

तेषां नैव प्रदुष्यन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥

अनेन चार्थाद्वृक्षव्यतिरिक्तानि अमेध्यप्ररूढानि वर्जयेदिति पारि-
जाते । धर्मसारसुधानिधौ—

अलाबुं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् ।

गान्धारकं करम्भाणि लवणान्यूपराणि च ॥

आरक्तांश्चैव निर्यासान्प्रत्यक्षलवणानि च ।

पिण्डमूलकं गोडमुळा । गान्धारकं तण्डुलीयमिति चन्द्रिका ।
करम्भाणि नेत्तीफलानि । ऊखराणि लवणानि । ऊखरमृत्तिकाभवानि
लवणानि । प्रत्यक्षलवणानि सैन्धवसामुद्रमानसभिन्नानि द्रव्यान्तरेणा-
मिश्रितानि ।

सैन्धवं लवणं चैव यच्च मानससंभवम् ।

पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः ॥

इति मयूखधृतब्राह्मवचनेन ग्राह्ये सैन्धवसामुद्रे प्रत्यक्षे अपि नित्यशः
इति वचनान्तरेण च त्रयाणां प्रतिप्रसङ्गात् । चतुर्विंशतिमते—

मूलकं मातृमूलं च श्वेतरक्तौ च सूरणौ ।

चत्वार्यभोज्यमूलानि पञ्चमी चाऽऽर्द्रमूलिका ॥

मूलकं प्रसिद्धम् । तच्च रक्तमेव निषिद्धम् । तदुक्तं वाराहे—

रक्तमूलमलाबुं च वर्तुलं गृञ्जनं तथा ।

जम्बीरं च कलिङ्गं च मसुराः शुक्तिचूर्णकम् ॥

राजमाणं रक्तलशुनं शुनकं च बलीमपि ।

मतिपूर्वं द्विजोऽशित्वा दिनमेकमुपोषणम् ॥

चातुर्मास्ये दशगुणमेतेषां भक्षणे स्मृतम् । इति ।

मातृमूलं मायिणमूलमिति प्रसिद्धम् । आर्द्रमूलिका, आर्द्रकमूलम् ।
हारीतः—न वटपृक्षाश्वत्थदधित्थमातुलुङ्गानि भक्षयेदिति । दधित्थं
कपित्थम् । मिताक्षरायां बृहद्यमः—

खट्वावार्ताककुम्भीकव्रश्चनप्रभवाणि च ।

भूतृणं शिशुकं चैव खुरखण्डं कवकानि च ॥

एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद्विजः ।

खट्वा खट्वाख्यः पक्षी । कुसुम्भमित्यन्ये । कुम्भिकः कुम्भा । भूस्तृणं काश्मीरदेशे प्रसिद्धम् । कपकं कृष्णसर्पपाख्यं शाकम् । खुसण्डं तद्विशेषो गोवलीवर्दन्यायेन निर्दिष्ट इति विज्ञानेश्वरः । भक्ष्याभक्ष्यत्वेन संदिग्धानि कन्दमूलादीनि न भक्षयेदिति स एव । तिथिविशेषेण वर्ज्यान्याह सुमन्तुः—

कूष्माण्डं बृहतीं चैव तरुणीं मूलकं तथा ।
श्रीफलं च कलिङ्गं च धात्रीं प्रतिपदादिषु ॥
शिरः कपालमन्त्राणि नखचर्म कतं फलम् ।
उदुम्बरफलं चैव तिलानपि तथैव च ॥
यदीच्छेत्स्वर्गगमनमष्टम्यादिषु वर्जयेत् । इति ।

कूष्माण्डं कोहळा । बृहती डोरली । तरुणीम् । मूलकं प्रसिद्धम् । श्रीफलं बिल्वफलम् । कलिङ्गं कलिङ्गदे । धात्रीशामलकीम् । शिरो नारिकेलफलम् । कपालं भोपळा । आ(अ)न्त्राणि पटोलानि । नखं वाला चर्म मसूरिका । कतं भोकर । उदुम्बरं प्रसिद्धम् । तिलाः प्रसिद्धा वार्ताकानि वा । एतानि पञ्चदश शाकानि प्रतिपदादितिथिषु क्रमेण वर्जयेत् । अपरार्के—

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिशमीषु च ।

धात्रीफलेषु सप्तम्यामलक्ष्मीर्वसते सदा ॥

धर्मसारे—धात्रीफलं भानुवारे श्रीफलं शुक्रवासरे ।

शमीफलं मन्दवारे श्रीकामी परिवर्जयेत् ॥

याज्ञवल्क्यः—संधिन्यानिर्दशावत्सगोपयः परिवर्जयेत् ।

औट्रैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाऽऽविकम् ॥ इति ।

या वृषेण संधीयते सा संधिनी । या चैकां वेलामतिक्रम्य दुह्यते या च वत्सान्तरेण संधीयते सा च संधिनी । प्रसवानन्तरमनिष्क्रान्तदशाहाऽनिर्दशा । मृतवत्साऽवत्सा । एतासां पयः परिवर्जयेत् । संधिनीग्रहणं स्यन्दिनीयमसुवोरुपलक्षणार्थम् । स्रवत्पयःस्तनी स्यन्दिनी । यमसूः, यमलप्रसविनी । एवमजामहिष्योरनिर्दशयोः पयो वर्जयेत् । गोमहिष्यजानामनिर्दशानां पयो न पेयमिति वसिष्ठस्मरणात् । पयोग्रहणात्तद्विकाराणामपि दध्यादीनां निषेधः ।

क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशनै बुधः ।

सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः ॥

इत्यपराकं शङ्खस्मरणात् । पयोनिषेधाच्छृङ्खलामूत्रादेरनिषेधः । उष्ट्रा-
ज्जातयौष्ट्रं पयोमूत्रादि । एकशफा वडवादयः । तेभ्यो भवमैकशफम् ।
स्त्रीभवं स्त्रैणम् । स्त्रीग्रहणमजाव्यतिरिक्तसकलद्विस्तनीनामुपलक्षणार्थम् ।
सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरमभोज्यमजावर्जमिति शङ्खस्मरणात् । अरण्ये
भवा आरण्यकास्तदीयमारण्यकं क्षीरं माहिषव्यतिरिक्तम् । आरण्यानां
च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विनेति वचनात् । अवेर्जातमाविकम् । वर्जये-
दिति प्रत्येकं संबध्यते । आचारचन्द्रोदये बृहत्पराशरस्तु गर्भिण्यवत्सा-
सूतिव्यागवादेर्वर्जयेत्पयः । इदमेव वचनं मनसि निधाय स्यन्दिनीयम-
सूसंधिनीनां विवत्सायाश्चेति गौतमस्मृतिं व्याचक्षाणेन विवत्सागवादि-
रित्यादिपदं हरदत्तेन दत्तम् । एवं च विवत्साया गोरेव न तु माहिष्यादे-
रित्याचारमयूखोक्तं चिन्त्यम् । अत्रिः—

न्यूनाधिकस्तनी या तु या चान्या भक्ष्यहारिणी ।

तयोर्दुग्धं न पातव्यं न होतव्यं कदाचन ॥

पराशरः—दुर्बला व्याधिसंयुक्ता पुष्पिता या द्विवत्ससूः ।

सा साधुभिर्न दोग्धव्या वणिग्भिः सुखमीप्सुभिः ॥

नन्दिपुराणे—कपिला यस्य गौश्च स्यादनग्नेर्ब्राह्मणस्य तु ।

स याति नरकं घोरं दुस्तरं तु तमोमयम् ॥

आपस्तम्बः—क्षत्रियश्चैव वृत्तस्थो वैश्यः शूद्रोऽथवा पुनः ।

यः पिबेत्कापिलक्षीरं ततो नान्योऽस्त्यपुण्यकृत् ॥

मविष्यत्पुराणे—घृतं च कापिलं क्षीरं नवनीतं तथा दधि ।

उपजीवन्ति ये शूद्रास्ते यान्ति नरकेऽशुचौ ॥

चन्द्रिकायाम्—कापिलं यः पिबेच्छूद्रो नरके स विपच्यते ।

हुतशेषं पिबेद्विप्रो विप्रः स्यादन्यथा पशुः ॥

अन्यथा हुतशेषापान इति मयूखः । कपिलालक्षणमुक्तं प्राक् । इति
जातिदुष्टानि ।

अथ क्रियादुष्टान्याह व्यासः—

ओदनं तु पुनः पक्वं नारिकेलरसं तथा ।

पक्वं तोयमभूयिष्ठं ब्राह्मणो नैव भक्षयेत् ॥

याज्ञवल्क्यः—घृतात्फेनं घृतान्मण्डं पीयूषं दधि चाऽऽर्द्रगोः ।

समुद्रमरिचाक्तं तु तथा पर्युषितं दधि ॥

घृतादुद्धृतं फेनमात्रं मण्डमात्रं वा न भक्ष्यम् । आर्द्रगोः प्रसवानन्तरमनिर्द्देशगोः ।

दीर्णतक्रमपेयं च नष्टस्वादु च फेनवत् ।

वृथा कृसरसंयावपायसापूपशङ्कुलीः ॥

दीर्णं स्फुटितम् । वृथा देवब्राह्मणाद्युद्देशमन्तरेण साधिताः । कृसरं सतिलमुद्गपक्क ओदनः । संयावः क्षीरघृतगुडादिसाधित उत्कारिकाख्यो गोधूमचूर्णविकारः सांजा इति प्रसिद्धो वा । पायसं पयसा शृत ओदनः । अपूपं स्नेहपक्को गोधूमविकारः । मण्डका इति केचित् । न पचेदन्नमात्मन इति कृसरादीनां निषेधे सिद्धेऽपि पुनरभिधानं प्रायश्चित्तगौरवार्थम् । गौतमः—उद्धृतस्नेहविलयनपिण्याकमथितप्रभृतीनि नाश्रीयादिति । विलयनं घृतकिङ्कं मथितं जलं विनाऽऽलोडितं दधीति मदनरत्ने । इति क्रियादुष्टानि ।

अथ कालदुष्टानि । आह बृहस्पतिः—

अत्यम्लं शुक्तमाख्यातं निन्दितं ब्रह्मवादिभिः ।

अनम्लमीषदम्लं वा यद्वस्तु तत्कालान्तरेण द्रव्यान्तरसंसर्गेण वाऽत्यम्लं भवति तच्छुक्तम् । न तु स्वभावतोऽत्यम्लम् । शुक्तप्रतिषेधो दध्यादिव्यतिरिक्तविषयः । तथा च शङ्खः—

दधिभक्ष्यविकारेषु सर्वं च दधिसंभवम् ।

ऋचीपपकं भक्ष्यं स्यात्सर्पिर्युक्तमिति स्थितिः ॥

अनग्निक ऊष्मा ऋचीपं तेन पक्वं कदलीकलादि शुक्तं पर्युषितमपि भक्ष्यं स्यात् । काञ्जिकाविषये विशेषमाह स्मृतिसंग्रहकारः—

त्रिफलीमिश्रितान्दर्भान्काञ्जिकायां विनिक्षिपेत् ।

तस्माद्वै काञ्जिका ग्राह्या नेतरा स्यात्कदाचन ॥ इति ।

देवलः—अभोज्यं प्राहुराहारं शुक्तं पर्युषितं च यत् ।

यदग्निपक्वं सद्रात्र्यन्तरितं तत्पर्युषितमिति माधवो विज्ञानेश्वरश्च । शुक्तं पर्युषितं वा यदि प्रक्षालितं भोज्यं तदाह यमः—

शुक्तानि हि द्विजोऽन्नानि न भुञ्जीत कदाचन ।

प्रक्षालितानि निर्दोषाण्यापद्धर्मा यथा भवेत् ॥

मसूरमापसंयुक्तं तथा पर्युषितं च यत् ।

तत्तु प्रक्षालितं कृत्वा भुञ्जीत ह्यभिघारितम् ॥

पर्युषितनिषेधो वटकादिव्यतिरिक्तविषयः । तथा च यमः—

अपूपाश्च करम्भश्च धानावटकसक्तवः ।

शाकं मांसापूपकं च सूपं कृसरमेव च ॥

यवागूः पायसं चैव यच्चान्यत्स्नेहसंयुतम् ।

सर्वं पर्युषितं भोज्यं शुक्तं चेत्परिवर्जयेत् ॥

करम्भो दधिमिश्रधानापिष्टम् । करम्भो दधिसक्तव इति कोशात् । धानालक्षणं वैद्यके—यवादयश्च भृष्टास्ते धानाश्च परिकीर्तिताः । इति । वटका माषादिपिष्टमयाः प्रसिद्धाः । सक्तवो धानापिष्टम् । धानापिष्टं सक्तवः स्युरिति कोशात् । पुनरपूपग्रहणं ब्रीह्यादिपिष्टविकारोपादानार्थम् । अन्यदोदनादिकं स्नेहसंयुतं घृतेन दध्ना वा विधारितम् । एतत्सर्वं पर्युषितमशुक्तं भोज्यम् । मनुः—

यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् ।

तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च वर्जयेत् ॥

गौतमः—पर्युषितमशाकभक्ष्यस्नेहमांसमधूनि । दिवा पक्वं रात्रौ रात्रिपक्वं दिवा पर्युषितम् । भक्ष्याः पृथुकापूपकादय इति हरदत्तः । विज्ञानेश्वरीये—

अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् ।

अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥

अन्नमदनीयं पर्युषितमपि घृतादिस्नेहसंयुक्तं चिरकालसंस्थितमपि भोज्यम् । गोधूमयवगोरसविक्रिया मण्डकसत्तुकीलाटकूर्चिकाद्या अस्नेहा अपि चिरकालसंस्थिता अपि भोज्याः । यदि विकारान्तरमनापन्नाः । कीलाटलक्षणमाह वैद्यः—

बहुतक्रोऽल्पदुग्धो यः पाकेन घनतां गतः ।

कीलाटः स तु विज्ञेयः पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥

कूर्चिकालक्षणमाह स एव—

दध्ना तत्रेण वा पाकात्क्षीरं भिन्नघनद्रवम् ।

कूर्चिका सा द्विधा प्रोक्ता दधितक्रोपसर्जनात् ॥

आह शङ्खः—न पापीयसोऽन्नमश्रीयान्न द्विः पक्वं न शुक्तं न पर्युषितमन्यत्र रागपाडवतक्रगुडगोधूमयवविकारेभ्य इति । द्विःस्विन्नं यत्सकृत्पाकेन भक्ष्यमपि हिङ्गुजीरकादि संस्कारार्थं पुनः पच्यते तद्-

ज्यम् । यत्तु तिक्तशकान्नविकारादि द्विःपाकेनैव भक्षणाहं तन्न निपि-
द्धमिति सिन्धौ कमलाकरः । रागपाण्डवलक्षणं विज्ञानेश्वरीये—

पिप्पलीशुण्ठियुक्तस्तु मुद्गयूपस्तु पाण्डवः ।

रागपाण्डवतां याति शर्करासहितं च यत् ॥

अकालप्ररूढानि वर्ज्यानीत्याह याज्ञवल्क्यः—

तथाऽकालप्ररूढानि पुष्पाणि च फलानि च ।

विकारवच्च यत्किञ्चित्प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ इति ।

इति कालदुष्टानि । अथ संसर्गदुष्टद्रव्याण्याह देवलः—

विशुद्धमपि चाऽऽहारं मक्षिकाकृमिजन्तुभिः ।

केशरोमनखैर्वाऽपि दूषितं परिवर्जयेत् ॥

अत्र मक्षिकाकृमिजन्तवो मृता विवक्षिता इति माधवः । एतैः केशा-
दिभिश्च दूषितं सति संभवे वर्जयेत् । असंभवे तु केशादिकमुद्धृत्य संप्रोक्ष्य
हिरण्यस्पर्शं कृत्वा भुञ्जीत । तथा च सुमन्तुः—केशकीटक्षुतवचोवहतं
श्वभिराघ्रातं पदोद्धृतं चादधि पर्युषितं पुनः सिद्धं चण्डालाद्यवेक्षितम-
भोज्यमन्यत्र हिरण्योदकैः स्पृष्ट्वेति । क्षुतवाचा जनितो ध्वनिः ।
प्रचेतास्तु—

अन्ने भोजनकाले तु मक्षिकाकेशदूषिते ।

अनन्तरं स्पृशेदापस्तञ्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥

याज्ञवल्क्यः—गोघ्रातान्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते ।

सलिलं भस्म मृदाऽपि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्ध्ये ॥

इदं पाकोत्तरं केशादिपाते । केशादिना सहैव पाके त्याज्यमेव ।
तदुक्तं गौतमेन—नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नमिति । आपद्यपि श्वादि-
भिरवलीढं न भुञ्जीत । तथा च देवलः—

अवलीढं श्वमार्जारध्वाङ्गक्षुकुकुटमूपकैः ।

भोजने नोपभुञ्जीत तदमेध्यं हि सर्वतः ॥

भविष्यत्पुराणेऽपि—सुरालशुनसंस्पृष्टं पीयूषादिसमन्वितम् ।

संसर्गाद्दुष्यते तद्धि शूद्रोच्छिष्टवदाचरेत् ॥

अत्राऽऽविशब्देन च्छत्राकादि दुष्टद्रव्यं परिगृह्यते । शङ्खः—अमेध्य-
पतितचण्डालपुल्कसरजस्वलाकुनसिकुष्ठिसंस्पृष्टान्नं च वर्जयेदिति ।
विज्ञानेश्वरीये—

अनर्चितं वृथा मांसं केशकीटसमन्वितम् ।
 शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥
 उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्यार्यान्नं विवर्जयेत् ।
 गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टं च कामतः ॥

अनर्चितमर्चाहाय यद्वज्रया दीयते । वृथा मांसमात्मार्थमेव यत्सा-
 धितम् । भुक्तोद्भिमतमुच्छिष्टम् । को भुङ्क्ते इति यदाघुष्य दीयते
 तत्संघुष्टम् । अन्यसंबन्धन्यस्यापदेशेन यद्दीयते तत्पर्यायान्नम् । यथा—

ब्राह्मणान्नं ददेच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् ।
 उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

बुद्धिपूर्वं पादेन स्पृष्टं वर्जयेदिति । उच्छिष्टापवाद आदित्यपुराणे—
 मातापित्रोरथोच्छिष्टं कलौ भुञ्जन्भवेत्तुली । आपस्तम्बोऽपि—पितुर्मा-
 तुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यमिति । वसिष्ठः—उच्छिष्टमगुरोरभोज्य-
 मिति । श्वादिस्पृष्टापवादमाह यमः—

देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्राकृतेषु च ।
 काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विवर्जयेत् ॥
 अन्नं तन्मात्रमुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ।
 घृतानां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्द्रवाणामतितापनात् ॥
 संस्पर्शाच्च भवेच्छुद्धिरपामग्नेर्धृतस्य च ।
 छागेन मुखसंस्पृष्टं शुचि चैव हि तद्भवेत् ॥ इति ।

पारिजाते स्मृतिः—क्षीरे तु लवणं दत्त्वा उच्छिष्टेऽपि च यद्धृतम् ।
 स्नानं रजकतीर्थेषु तान्ने गव्यं सुरासमम् ॥

लवणविषये व्यवस्था चोच्यते तत्रैव—

अजामहिपगोक्षीरमाविकं च क्रमास्यजेत् ।
 सामुद्रं सैन्धवारव्यं च रुचकं लवणं द्विजः ॥ इति ।

स्मृतिसागरे—नालिकेरोदकं कांस्ये ताम्रपात्रस्थितं मधु ।
 गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥

कृष्णभट्टीये स्कान्दे—आज्यपात्रे स्थितं तक्रं मधुमिश्रं तु यद्धृतम् ।
 ताम्रपात्रस्थितं क्षीरं त्रपुसर्पिः सुरासमम् ॥

आर्द्रकं सगुडं मद्यमैक्षवं बदरं तथा ।
नारिकेलरसं कास्ये दध्ना संमिश्रितो गुडः ॥

मद्यवदित्यर्थः । त्रपु कथिल(?) । पट्टत्रिंशन्मते—
स्नानतर्पणदानेषु ताम्रे गव्यं न दुष्यति ।
होमकार्ये तथा दोहे पाके च परिवेषणे ॥

शिष्टविगीतमात्रे तमाखुभङ्गादिद्रव्यविशेषे त्वपरार्के भारद्वाजः—
शिष्टा नाश्रन्ति यत्किंचिदन्नमूलफलादिकम् ।
न तद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वा चोपवसेदहः ॥ इति ।

इति संसर्गदुष्टद्रव्याणि । अत्र वक्तव्याश्रयदुष्टान्युत्तरत्र परान्नभोजन-
विधौ वक्ष्यन्ते । सहलेखं तु

विचिकित्सा तु हृदये अन्ने यस्मिन्प्रजायते ।

सहलेखं तु विज्ञेयमिति पूर्वमेवोक्तम् । काचित्सप्तमं वाग्दुष्टमुक्तं
ब्रह्मपुराणे—

भक्ष्यं त्वभक्ष्यवाक्येन(ण) यद्दद्याद्रोधमर्तः ।

गुरोरपि न भोक्तव्यं वाग्दुष्टं तन्महापदि ॥

तथा—शुधार्तश्च न को भुङ्क्ते मामकं त्वन्नमेव हि ।

इति भोज्याभोज्यद्रव्यनिर्णयः । एतत्सर्वेषां समानम् । तथा चोक्तं
सायणीये—

उक्तमेतत्तु सर्वेषां भक्ष्याभक्ष्यं विशेषतः ।

वर्णानां सानुलोमानां तत्स्त्रीणां चाविशेषतः ॥ इति ।

इति निषिद्धद्रव्यनिर्णयः । एवमुक्तनिषिद्धद्रव्यं वर्जयित्वाऽवशिष्टेषु
वैद्योक्तगुणतारतम्यं विचार्य शरीरस्य हितकरद्रव्यकृतान्नं भुञ्जीयात् ।
अन्यथा शरीरोपघातप्रसङ्गात् ।

भोक्तव्यं सघृतं सोष्णं हितं पथ्यं मितं तथेति । व्यासस्मरणाच्च ।

काले सात्तम्यं लघुस्निग्धमुष्णक्षिप्रं रसोत्तरम् ।

बुभुक्षितोऽन्नमश्रीयान्मात्रा तावद्धितागमः ॥

इति वचनान्तराच्च । तस्माद्भान्यादिजलान्तानां भोज्यद्रव्याणां
गुणाः क्रमेणोच्यन्ते । तत्र व्रीहीणां गुणमाह वैद्यः—

ब्रीहिर्गौरो मधुररसकः पित्तहारी कषायः
 स्निग्धो वृष्यः कृमिकफहरस्तापरक्तापहश्च ।
 पुष्टिं धत्ते श्रमशमनकृद्दीर्यवृद्धिं विधत्ते
 रुच्योऽत्यन्तं नयति जठरे वातकृद्रोचकोऽन्यः ॥

अथ यावनालगुणाः—

धवलो यावनालस्तु स्निग्धो बल्यस्त्रिदोषजित् ।
 वृष्यो बलप्रदोऽर्शोघ्नः पथ्यो गुल्मव्रणापहः ।
 शारदो यावनालश्च श्लेष्मलः पिच्छलो गुरुः ॥
 शैशिरो मधुरो वृष्यो दोषघ्नो बलपुष्टिदः । जौधळा ।

अथ श्यामाकगुणाः—

श्यामाको मधुरः स्निग्धः कषायो लघुशीतलः ।
 वातकृत्कफपित्तघ्नः संग्राही वर्धदोषनुत् ॥ सावे ।

अथ प्रियङ्गुगुणाः—

भग्नसंधानकृत्तत्र प्रियङ्गुर्बृंहणो गुरुः ।
 कषायो मधुरो रुक्षो वातपित्तप्रकोपनः ॥ राळे ।

अथ गोधूमगुणाः—

गोधूमः स्निग्धमधुरो वातघ्नः पित्तरोगहृत् ।
 गुरुः श्लेष्महरो बल्यो रुचिकृद्दीर्यवर्धनः ॥ गह्वं ।

अथ यवगुणाः—यवः कषायो मधुरः सुशीतलः

प्रमेहजित्पित्तकफापहारकः ।

अशूकमुण्डस्तु यवो बलप्रदो

वृष्यश्च नृणां बहुवीर्यपुष्टिदः ॥ सातू ।

अथ मुद्गगुणाः—मुद्गास्तत्र वराः स्वादुकषायाः कटुपाकिनः ।

ग्राहिणोऽल्पचला रुक्षा रोचना लघवो हिमाः ॥

मेहास्रपित्तश्लेष्मघ्ना बल्या वृष्टिप्रसादनाः । मूग ।

मकुष्ठकगुणाः—मकुष्ठकः कषायः स्यान्मधुरो रक्तपित्तजित् ।

ज्वरदाहहरः पथ्यो रुचिकृत्सर्वदोषहृत् ॥ मट्के ।

अथ माषगुणाः—माषः स्निग्धो बहुमलकरः शोषणः श्लेष्मकारी

वीर्येणोष्णो ह्लादिति कुरुते रक्तपित्तप्रकोपम् ।

स्वतोवातो गुरुबलकरो रोचको भक्ष्यमाणः

स्वादुर्नित्यं श्रमसुखदतां सेवनीयो नराणाम् ॥ उडीद ।

अथ चणकगुणाः—चणको मधुरो रूक्षो वातकृच्छ्रलेष्मपित्तजित् ।

दीप्तिवर्णकरो बल्यो रुच्यश्चाऽऽध्मानकारकः ॥ हरभरे ।

आऽऽढकीगुणाः—आढकी कफपित्तघ्नी ग्राहिणी रूक्षशीतला ।

कषाया-मधुरा गुर्या ज्वरातीसारनाशिनी ॥

प्रमेहघ्नी घृते सिद्धा त्रिदोषशमनी लघुः । तुरी ।

अथ कुलित्थगुणाः—कषायाः स्वादुरूक्षोष्णा कुलित्था रक्तपित्तहाः ।

ग्राहिणो लघवस्तीक्ष्णा विपाकेऽम्ला विदाहिनः ॥ हुलगे ।

अथ निष्पावगुणाः—रूच्यो नैष्पावकस्तिक्तः कटुकास्रप्रदो गुरुः ॥ पावटे ।

अथ राजमाषगुणाः—राजमाषो गुरुर्भूरिशकृद्रूक्षोऽतिवातलः ।

कषायानुसरः स्वादुरवृष्यः श्लेष्मपित्तजित् । चवळ्या । क्वचिदळसुन्दे ।

अथ कृष्णतिलगुणाः—कृष्णस्तिलः प्रमेहार्शःशोकघ्नो दन्तदाढ्यकृत् ।

लाळे तीळ । अथ शुक्लतिलगुणाः—शुक्लस्तिलः श्लेष्मपित्तबलवर्णकरो

गुरुः । पांढरे तीळ । अथोमागुणाः—स्निग्धामा स्वादुतिक्तोष्णा कफपि-

करी गुरुः । जवस । अथ कुसुम्भबीजगुणाः—वृक्षशुक्ला हृत्कटुः पाके

तद्वद्बीजं कुसुम्भजम् । कर्डी । अथ ब्रीहिलाजगुणाः—ये केचिद्ब्रीहयो

भृष्टास्ते लाजा इति संज्ञिताः । लाह्या । अथ धानागुणाः—यवादयस्तु

भृष्टास्ते(ये) धानास्ते परिकीर्तिताः । धानाः ।

लाजाश्च यवधानाश्च तर्पणाः पित्तनाशनाः ।

अथ यावनालगोधूमलाजगुणाः—

गोधूमयावनालोत्थाः किञ्चिदुष्णाश्च दीपनाः ।

रसैरपक्वगोधूमा अकुलाः परिकीर्तिताः ॥

जोंधळ्याच्यालाह्या । गह्वांच्या लाह्या । अथ पृथुकगुणाः—

ब्रीहयस्त्वर्धपक्वाश्च तप्तास्ते पृथुकाः स्मृताः ।

अकुला गुरवो वृष्या मधुरा बलकारिणः ॥ पोहे ।

इति धान्यगुणाः । अथ भक्ष्यगुणाः—

पूरिका बृंहणाः स्निग्धा वृष्याः पित्तानिलापहाः ।
 मधुरास्तैलपाकिन्यो गुर्व्यः श्लेष्मानिलापहाः ॥ पुन्या ।
 मण्डकास्तु परं हृष्या मधुरा गुरवः सराः ।
 पित्तमारुतक्रोपघ्नाः प्रीणना बलवर्धनाः ॥ मांडे ।
 गुरवो बृंहणा बल्या मोदकाश्च सुदुर्जराः ।
 मधुराः श्लेष्मलाः किञ्चित्समीरणकराः स्मृताः ॥ मोदक ।

अङ्गारपोलिकाः शस्ता निर्धूमाङ्गारपाचिताः ।

लघ्व्यो बलकरा वृष्या दोषघ्ना वह्निदीपनाः । अङ्गारपोलिका रोट्या ।
 अत्युच्छ्रितास्तु गोधूमगोलकाः परिपाचिताः ।

घातघ्नमधुराः स्निग्धा वृष्या बलवतां हिताः ॥ गोधूमचूर्णरोट ।

मुद्गादिवेसवारैस्तु पूर्णा विष्टम्भिनो मताः ।

मृदुपाकाश्च ये भक्ष्या स्थूलाश्च कठिनाश्च ये ॥ पुरणाचे कानवले ।

रुच्या वातहरा बल्या मापापूपास्तु बृंहणाः ।

शुक्रवृद्धिकराः स्निग्धाः शस्ता व्यायामशीलिनाम् ॥ वडे ।

मापमुद्गादिचूर्णैश्च शालिपिष्टैश्च संभृताः ॥

जलौष्ण्योपरिसंपक्वा अपूपाः स्युरवन्तिकाः । फले अथवा पातकानवले(!)

दोषकाः श्लेष्मला बल्या गुरुरुच्याश्च बृंहणाः ।

स्थूलाः सवर्तुलाः कुब्जाः सच्छिद्राः स्नेहपाचिताः ॥

पिष्टपूपा रुचिकरा गुरवः कफपुष्टिदाः । घार्गे ।

गोधूमचूर्णं सुश्लक्ष्णं क्षीरे पक्त्वा पचेद्घृते ।

एष भक्ष्यः परं वृष्यो मधुरो बृंहणो गुरुः ॥ क्षीरापूपाः ।

भक्ष्यः सुधापरो नाम्ना वृष्यः पित्तानिलापहः ।

रोचनो बृंहणः स्वादुर्वर्ण्यो दृष्टिप्रसादनः ॥

कनकाभाश्च जायन्ते त एते कटकार्णकाः ।

बृंहणा मधुराः स्निग्धाः सोष्णाः कटुधिपाकिनः ॥

तप्तं तैलघृते पात्रे गोलकान्विस्तृतान्क्षिपेत् ।

उत्तानपाकसंसिद्धा मृदाः संहारिकाः स्मृताः ॥

एता बल्या विदाहिन्यः श्लेष्मघ्न्यः पित्तलाः परम् ।

हृद्याः पथ्यतमास्तेषां लघवः फेनकादयः ॥ फेण्या ।
चन्द्रमण्डलसंकाशा वर्तुला भ्राष्ट्रपाचिताः ।
पैटका गुरवो बल्या रोचनाः कफकारिणः ॥

खर्परपृष्ठे पाचिताः पोलिकाः ।

सूपान्नविकृता भक्ष्या वातला रूक्षशीतलाः ॥

सकटुस्नेहलवणान्भक्षयेदल्पशस्तु तान् । वरणांतील मुट्कीं ।
श्लेष्मलं गुर्वभिष्यन्दि प्रायशस्तिलसंस्कृतम् । तिलमिश्रापूपाः ॥

हृद्याः सुगन्धिनो भक्ष्या लघवो घृतपाचिताः ।

वातपित्तहरा बल्या वृष्या वृष्टिप्रसादनाः । घृतपाचित्तभक्ष्याः ॥
विदाहिनस्तैलकृता गुरवः कटुपाकिनः ।

उष्णा मारुतपुष्टिघ्नाः पित्तलास्त्वक्प्रद्रूपणाः । तैलपाचिता भक्ष्याः ।
भक्ष्याः क्षीरकृता बल्या वृष्या हृद्याः सुगन्धिनः ।

विदाहिनः पुष्टिकरा दीपनाः पित्तनाशनाः ॥ क्षीरपाचित्तभक्ष्याः ।
रोचनो दीपनः स्वर्यः पित्तघ्नः पवनापहः ।

गुरुमृष्टतमश्चैव लङ्गुलः प्राणवर्धनः ॥ लाडू ।

शङ्कुली मधुरा स्निग्धा रुच्या श्लेष्मामवर्धिनी ।

वातघ्नी बृंहणी गुर्वी वीर्येणोष्णा विदाहिनी ॥

गोधूमशङ्कुली हृद्या समस्तेन्द्रियपोषिणी ।

मधुरा बृंहणी वृष्या दीपनी कान्तिवर्धिनी ॥

बृंहणा वातपित्तघ्नी भक्ष्या बल्यास्तु(तु) साभिधा । करंजी ।

गुरवः पैटिका भक्ष्या वीर्योष्णाः कफपित्तलाः ।

सर्वपिष्टमयो मोदक । इति भक्ष्यगुणाः । अथ सूपादिगुणा उच्यन्ते—

विशेषान्मुद्रकुलमापो गुरु रुच्यो विबन्धकृत ।

वातलः श्लेष्मपित्तघ्नः प्रमेहगलरोगिणः । मुगाचें वरण ॥

विशेषादाढकीसूपः स्वादुविष्टम्भकृद्गुरुः । तुरीचें वरण ।

अथ गुडगुणाः—स्निग्धो गुरुरभिष्यन्दी वृष्यः श्लेष्माग्निमान्द्यकृत ।

वातपित्तहरः स्निग्धः पिच्छलश्च नवो गुडः ॥

अथ शर्करागुणाः—शुद्धस्फटिकसंकाशा निर्मला सितशर्करा ।

शर्करा ज्वरपित्तासृङ्मूर्च्छाछिदिविषापहा ॥

अथ घृतगुणाः—वातपित्तविषोन्मादशोपालक्ष्मीज्वरापहम् ।

स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसां स्थापनं घृतम् ॥

अथ तैलगुणाः—तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णव्यवायि च ।

त्वग्दोषकृदचक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफकृन्न च ॥

अथ फलशाकादिगुणाः—बालडङ्गरिकं स्वादु शीतं वृद्धाहपित्तजित् ।

रुच्यं संतर्पणं बल्यं वृष्णौजस्यं श्रमापहम् । कोवळी काकडी ॥

तट्टीतपुष्पं स्वादूष्णं पित्तदाहास्रकृद्गुरु । जून काकडी ।

शीर्णवृन्तं तु सक्षारं पित्तलं कफवातजित् । पिकली काकडी ।

कण्टकोर्वारुकफलं हृद्यं श्लेष्मास्रकृद्धितम् । कांटे काकडी ।

स्वादु हृद्यं स्वरं श्लिग्धं लघु कोशातकीफलम् । कोडका ।

स्थौल्यवृष्यं कृमिहरं महन्महतिकाफलम् । रिंगणी ।

कोमलं नीलवृन्ताकं मधुरं बृंहणं गुरु । काळीं वागीं ।

बौलं पथ्यं त्रिदोषघ्नं मध्यमं पित्तवर्धनम् ।

पक्वं श्लेष्मकरं विद्यात्समस्तं बृहतीफलम् । डोलीं ।

शूलघ्नं कदलीशाकं तत्पुष्पं कटु पाकतः ।

कपायतिक्तग्राह्यग्निकृत्कृमिश्लेष्मपित्तजित् । केळीं व केळपूल ।

तद्वद्रम्भागर्भकाण्डं श्लेष्मलं वह्निसादनम् । केळीचें काल ।

कारवेलं सकटुकं दीपनं कफपित्तजित् । कार्ले ।

वातपित्तहरं गुल्मशूलघ्नं दन्तदाढ्यकृत् ।

विरूपकफलं रुच्यं लघु दीपनपाव(च?)नम्(?) ॥

स्वादु बिम्बीदलं शीतं वातपित्तास्रपित्तजित् ।

तत्पत्रवत्फलं मेध्यं रुच्यं भक्ष्यं हिमं गुरु ॥ तोडलीं ।

पत्रं सूरणजं तीक्ष्णं रुक्षमुष्णं विकर्षि च ।

तत्कन्दं विशदं रुच्यं हृद्यं बल्यं सरं लघु ॥ सूरण ।

मध्वालुकं स्वादु शीतं रुच्यं श्लेष्मकृमिप्रदम् । तांबडीं रताळीं ।

पनसस्य फलं बालं कपायं मधुरं गुरु ।

बीजं पनसजं स्निग्धं वातश्लेष्मकरं गुरु ॥ फणस व आठोळ्या ।

तुष्णाविपहरं पुष्पं दुण्डुकस्य हिमं लघु ।

दुण्डुकस्य फलं बालं कपायं मधुरं लघु ॥ क्षुद्र फणस ।

बल्यं हिमं स्वाद्वगस्थं भूतकासत्रिदोषजित् । हृद्वा ।

तत्पुष्पं तरुणं रुच्यं लालापित्तकफं कृमीन् ।

हन्ति चक्षुर्मणं शस्तं मध्यमं कुसुमं लघु ॥ अगस्तिपुष्पम् ।

शिग्रुशाकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु ।

शिग्रुपुष्पं गुरु हिमं पित्तश्लेष्मकृमिप्रणुत् ।

शीतं शिग्रुफलं वृष्यं पिच्छलं श्लेष्मलं गुरु ।

शिग्रुपलवपुष्पफलानि ।

अलाबुशाकं मधुरं पित्तघ्नं मूत्रशोधनम् । भोपळा ।

कुष्माण्डशाकं वातघ्नमामघ्नं दीपनं परम् । कोहळा ।

वातपित्तहरं स्वादु पटोलं पिच्छलं गुरु । पट्टळ ।

काकोडलफलं स्वादु रुच्यं विष्टम्भि मापवत् । ?

क्षुद्रदन्तीफलं स्वादु कपायं रसपाकयोः । भूयदाती ।

कुरुटः कटुतिक्तोष्णः क्षारच्छर्द्यग्निकृलघु । कुरडू ।

चञ्चुस्तिक्तकटुर्भेदी स्निग्धोऽङ्गस्वेदनो गुरुः । एरण्डफलम् ।

कटूष्णः किंशुको रुच्यो दीपनः पाचनो लघुः ।

कासारोचकमेहघ्नं महत्पुष्पं च पलवम् ॥ पालाशपुष्पम् ।

रुच्यं तर्जितकूष्माण्डं दीपनं वातपित्तजित् । ?

त्रिदोषघ्नोऽग्निकृद्ग्राही चक्षुष्यो मधुरो लघुः ।

हृद्यो राजक्षवः पथ्यो ग्रहण्यर्शोविदारणः ॥ मोहरीपाला ।

सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तुको रोचनः सरः ॥ चाकवत ।

बाष्पं हृग्बलपित्तघ्नं शीतवातकफापहम् । राजगिरा ।

चिल्ली वास्तुकवज्जेया लघुपत्रा विशेषतः । माठ पोळामूळ ।

गोली सराम्लमधुरा पिच्छला श्लेष्मला गुरुः । पाथरी ।

पानीयालुस्त्रिदोषघ्नः कृष्णालुः पित्तदाहजित् । कासाळु ।

उग्रकण्डूति[कृन्तून?]वातश्लेष्मारुचिप्रणुत् । अळू ।

गाङ्गेरुकदलं शीतं कापायं मधुरं गुरु । मेथी ।
 उपोदकी सरा स्निग्धा बल्या श्लेष्मकरी हि सा । वेलवोंडी ।
 विदाहि सर्वनिष्पावफलं स्वादु कपायकम् ।
 कटुपाकं सरं रुक्षं गुरु श्लेष्मसमीरकृत् ॥ घेवड्याच्या शेंगा ।
 जीवन्ती बृंहणी कण्ठ्या गुर्वी वृष्या रसायनी ।
 चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी स्तन्यकृत्सृष्टमूत्रविद् ॥
 शाकाश्यामाहुरन्ये तु वातला ग्राहिणी लघुः । हरणदोडी ।
 अदृश्यं रोचनं रुक्षं बृंहणं कफवातजित् ।
 पित्ताग्निक्वच्छातपुष्पं स्वादूष्णं गुल्मशूलजित् ॥ बाळंतशेप ।
 बद्धसूत्री सरा फस्त्री गुर्वी विष्टभ्य जीर्यति । फांज ।
 क्लान्ता कफघ्नी चक्षुष्या पथ्या स्वादुकपायका । डोली ।
 मत्स्याक्षी स्वादुपाके तु तिक्ता रुक्षा हिमा लघुः । होनगुन्दा ।
 पत्तुरो दीपनस्तिक्तः प्लीहार्षः कफवातजित् । पतङ्ग ।
 कपायकटुतीक्ष्णोष्णक्षारो रुक्षोऽग्निकृत्सरः ।
 रुच्यः पुनर्नवो नेत्रयो वातश्लेष्माशिरोर्तिजित् । वसुधेदुळी ॥
 स्वाद्वी कपाया सूच्याह्वा रुच्या मेध्या हिमा गुरुः । कुर्दु ।
 कुणजो मधुरो रुच्यो दीपनः पाचनो लघुः । कुञ्जरः ।
 वैकुण्ठं तिक्तमधुरं कटुतिक्तोष्णमग्निजित् ॥...
 अथ संभारगुणाः—
 रसे पाके कटुस्तिक्तः क्षारोष्णः सर्पपः परः । मोहन्या ।
 स्वादुपाकार्द्रमरिचं गन्ध्यग्निकफकृद्गुरुः ॥
 नातिपित्तोष्णकृद्गुच्यं तच्छुष्कं कटुतिक्तकम् ।
 ओली मित्र्यं अथवा ओल्या मित्र्या । तदुक्तं वाग्भट्टटीकायाम्—
 मरीचं द्विविधं प्रोक्तं बलिजं क्षुपजं तथा । इति ।
 एला तिक्तोष्णकटुका लघ्वी वातकफापहा । वेलदोडे ।
 यवानी कटुतिक्तोष्णा वातश्लेष्मद्विजामयान् ।
 हन्ति गुल्मारुचिं कासं दीपयत्याशु चानलम् ॥ ओंवा ।
 जीरकं कटुकं रुच्यं दीपनं पाचकं लघु ॥ जिरें ।
 हिङ्गु वातकफानाहशूलघ्नं पित्तकोपहम् । हिं ग ।
 सामुद्रं मधुरं पाके शूलघ्नं श्लेष्मलं गुरु । मीठ ।

इति संभारगुणाः । अथ वालुकगुणाः—

कफवातारुचिहरं जाड्यघ्नं चिभिष्टं सरम् ॥ चिबूड ।
 त्रपुसंतिक्तकटुक छर्दनं वस्तिशोधनम् । वाळूक ।
 अहिंन्नाफ मत्युष्णं कफमारुतनाशनम् ॥ वाघण्टी ।
 अर्कपुष्पं तथा भेदोदुर्मासाखुविपापहम् । रुद्रचै फूल ।

अथ हरितगुणाः—

रुच्यं चूतफलोद्भूतहरितं वातजिह्वरु । आम्रफलकल्क ।
 हरितं मूलकोद्भूतं लघूष्णं स्वादु पाकतः ॥ मूलककल्क ।
 नारिकेलफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मानिलापहम् । नारळ ।
 रुच्यं सगन्धकैडर्यपत्रं गरकफानिलान् ॥ कढीनिव
 रमणो रामणः कालशाकः कैडर्य एव चेत्यभिधानात् ।

आर्द्रं कुस्तुम्बुरीपत्रं रुच्यं बल्यं त्रिदोषजित् । ओली कोथिबीर ।

काटूष्णमार्द्रकं रुच्यं वृष्यं पाके हिमं लघु ॥ आलें ।
 शृङ्गबेरं सलवणं स्तब्धशाफानिलापहम् ॥
 जिह्वाजाड्यहरं वृष्य रोचनं दीपनं लघु । सलवण आलें ।
 सगुडा^१ बल्यमक्षयं वातश्लेष्मघ्नमग्निजित् ॥ गुडार्द्रकम् ।
 गजकर्णीभवं कन्दं तीक्ष्णोष्णं शीतिकापहम् । कासाळूं ।

वृक्षाम्लपल्लवं रुक्षं कपायाम्लं कफानिलौ ॥

रक्तदोषव्यथां हन्ति वृष्यं मेध्यं प्रदीपनम् । चिंचेचा कोवळा पाला ।

श्रीवल्ली कटुका सोष्णा वातशोफकफापहा ॥
 तत्फलं तैललेपघ्नं रुच्यमत्यम्लमग्निकृत् । शिकेकायी ।
 पललं मधुरं रुच्यं पित्तास्रबलपुष्टिदम् ॥ तिळकूट ।

इति^३ हरितगुणाः । अथ क्षीरादिगुणाः—

प्रायः पयोऽत्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ।
 क्षतक्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यकरं सरम् । गाईचें दूध ।
 अहाभिष्यन्दि मधुरं माहिषं वह्निनाशनम् ॥
 निद्राकरं शीतलं च गव्यात्स्निग्धतरं गुरु । माहिषीचें दूध ।
 प्रसूतिदोषाद्यत्क्षीरं पाके तु ग्रथितं भवेत् ॥
 तत्पीयूषमिति ख्यातं सर्वदोषकरं गुरु ।

विड्भेदि मूत्रलं वृष्यं मधुरं वह्निमान्द्यकृत् ॥ खर्वस ।
 अव्यक्ताम्लं घनीभृतं दधित्वं प्राप्यते च यः (यत?) ।
 यजातं मधुरं बल्यं वातघ्नं गुरु शुक्लम् । दही ।
 तक्रं शुदश्विन्मथितं पादाम्बुधाम्बु निर्जलम् ॥

तत्र मथितगुणाः—हिमकुन्दशशिप्रभशङ्खनिभं
 परिपक्वकपित्थसुगन्धिरसम् ।
 तदिदं भुवि सर्वरुजापहरं
 युवतीकरनिर्मथितं मथितम् ॥

करमथितगुणाः—करमथितं गुरु हृद्यं बल्यं वृष्यं श्रमानिलघ्नं च ।
 पथ्यं दीपनमग्नेः पाण्डुश्वासप्रमेहकृच्छ्रहरम् ॥

अथ लवणशाकगुणाः—लवणाम्रफलं रुच्यं दीपनं वातनाशनम् ।
 श्रमक्लमहरं हृद्यं मदमूर्छाप्रलापजित् ॥ आंब्याचें लोणचें ।
 अम्लं कटूष्णं निम्बूकं गुल्मश्लेष्मामवातजित् ॥ लिम्बाचें लोणचें ।
 त्वक्पित्तकटुका स्निग्धा मातुलुङ्गस्य वातजित् । महाङ्गुलाचें लोणचें ।
 अथ जलगुणाः—नादेयं वातलं रुक्षं दीपनं लघु लेपनम् ।

स्वाद्रीपदुष्णं तृष्णाघ्नं स्वच्छं पथ्यं च पाचनम् । नदीजल ।
 स्नानात्पानाद्दर्शनाच्च मेध्यं वृष्यं रसायनम् ।
 श्रमक्लमभ्रमहरं स्वर्ग्यं भागीरथीजलम् । भागीरथीजलम् ।
 नर्मदावारि मधुरं रुच्यं पथ्यं हिमं लघु ।
 समस्तरोगजिच्छलेष्मपित्तकोपविलोपकृत् । नर्मदोदकम् ।
 भागीरथीजलसमं गुणैर्गोदावरीजलम् । गोदावरीजलम् ।

काष्णं स्वाद्विशिपित्तास्रजाड्यहृद्वाक्त्रपावनम् । कृष्णवेणीजलम् ।
 कौपं स्वादु त्रिदोषघ्नं लघु पथ्यं च सर्वदा । कूपजलम् ।
 तृष्णाक्लमहरं बल्यं कपायमधुरं लघु ।

सारसं जलमाख्यातमिति । सरोवराचें जल । अथ ताटाकमुच्यते—
 प्रशस्तभूमिभागस्थं प्रतिवर्षं नवाम्बुभिः ।

पूरितं तटसंरुद्धं ताटाकं पित्तजिद्गुरु । तळ्याचें उदक ।

शैलतनूद्भवं शीतं स्पृष्टं वर्षहिमातपैः ।

जलं प्रस्रवणं स्वादु लघु पथ्यं त्रिदोषजित् ॥ झन्दाचें उदक ।

नारिकेलाम्बु भक्तात्प्राग्गुल्माग्निस्रवनादिकृतम् ।
 अतोऽपराह्णे पेयं स्यात्सेन्दु तच्छीतलं हितम् ॥
 क्षयोपवासाध्वगमातिभाष्यव्यवायवातातपपीडितानाम् ।
 व्यायामिनां चाल्पकफोत्तराणां यन्नारिकेलादुदकं प्रशस्तम् ॥
 नारिकेलोदकम् । अथ दुष्टजलशुद्धिः—

अदुष्टसलिलाभावे व्यापन्नस्यास्य युक्तिः ।
 क्षुद्रजन्तवभिदुष्टस्य घनवस्त्रेण शोधनम् ॥
 लवङ्गोशीरकर्पूरकोष्ठैः कर्चूरचन्दनैः ।
 चूर्णितैर्वासितं वारि सुगन्धि सर्वदोषजित् ॥
 पुष्पैरनिष्टगन्धं वा पाटलाद्यैश्च वासितम् ।

अथ जलपाने कालः—भुक्तस्याऽऽदौ जलं पीतमग्निमान्द्यं कृशाङ्गताम् ।
 अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वमामाशयात्कफम् ॥
 मध्ये मध्यगतं सात्त्व्यं धातूनां चरणं सुखम् ।
 पिबेद्घटसहस्राणि यावदस्तमयं रवेः ॥
 अस्तंगते पुनः सूर्ये बिन्दुरेको घटायते ।
 निश्यभोजनवेलायां स्वल्पमप्युदकं विषम् ॥
 गण्डूपमाचरेद्वात्रौ तृष्णावाञ्छीतलैर्जलैः ।
 क्षुधार्तो न पिबेत्तोयं तदा गुल्मं भवेदध्रुवम् ॥

अन्यच्च—अत्यम्बुपानान्नविषच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः ।
 तस्मान्नरो बह्विविधवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद्भूरि ॥

इति जलविधिः । इति वैद्योक्तभोजनद्रव्यगुणविधिः । एवं द्रव्यगु-
 णागुणौ विचार्य गुणोत्तरद्रव्यं संपाद्य पाकं कारयित्वा शुद्धस्थाने
 विहितासन उपविश्य विहितभोजनपात्रे विधिवन्मुञ्जीत । अन्यथा वैध-
 हानिप्रसङ्गात् । भोजने निषिद्धस्थानान्याह व्यासः—

नान्धकारे न चाऽऽकाशे न च देवालयादिषु ।

शून्यालये देवगृहे विहाय च जलाशये ॥

देवलः—उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ।

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत शुचिः पीठमवस्थितः ॥

पीठमासनं तत्प्रागुक्तम् । मण्डलमाह बौधायनः—

उपलिप्ते समे स्थाने शुचौ श्लक्ष्णसमन्विते ।
चतुरस्रं त्रिकोणं वा वर्तुलं वाऽर्धचन्द्रकम् ॥
कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥ इति ।

स एव—भस्मना वारिणा वाऽपि मण्डलं कारयेत्ततः ।

मण्डले परिमाणविशेषानुक्तत्वात्पात्रसमं कार्यम् । अर्थात्परिमाण-
मिति कात्यायनोक्तेः । अथ भोजनपात्राण्युक्तानि माधवीये पराशरे—

सौवर्णे राजते ताद्रे पद्मपत्रपलाशयोः ।
भाजने भोजने चैव त्रिरात्रफलमश्नुते ॥

सौवर्णादिपात्रमानं कमलाकराह्निके—

पञ्चाशत्पलमात्रं तु महाभाजनमिष्यते ।
नातिदीर्घं नातिह्रस्वं रत्निमात्रप्रमाणकम् ॥

अशक्तं प्रत्याह—पलविंशतिमारभ्य अत ऊर्ध्वं स्वशक्तिः ।
पलषोडशकाद्रयूनं न तद्भाजनमिष्यते ॥
घृतार्थं लघुपात्रं च दधिदुग्धार्थमेव च ।

लघुपात्रं वाटिका पत्रपुटादि च । पैठीनसिः—

ब्रह्मपत्रेषु यो भुङ्क्ते मासमेकं निरन्तरम् ।
त्रिभिश्चान्द्रायणैस्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥
य इच्छत्यूर्ध्वगामित्वं परं स्थानं च शाश्वतम् ।
पद्मपत्रेषु भोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ॥

चन्द्रिकायां पुराणम्—पालाशेषु च पत्रेषु मध्यमेषु विशेषतः ।
यः करोत्यशनं तस्य प्राजापत्यं दिने दिने ॥

यत्तु—पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्त्वेन्दवं चरेत् ।
ब्रह्मचारियतीनां च चान्द्रायणफलं भवेत् ॥ इति ।

तद्वह्नीपलाशस्थलपौष्करविषयम् । तथा चोक्तं तत्रैव—

वह्नीपलाशपत्रे च स्थलजे पौष्करे तथा ।
गृहस्थश्चेत्तु नाश्नीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

पारिजाते—कदलीगर्भपत्रे च पद्मपत्रे जलास्पृशि ।

वह्नीपलाशपत्रे च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

पलाशमध्यपत्रविधिः गृद्धेतरपरः । गृद्धं प्रक्रम्य मध्यपत्रे न भुञ्जीत
ब्रह्मवृक्षस्य भामिनीति स्थान्दोक्तेः । सौवर्णादिपात्रेषु विशेषमाह
व्यासः—

सौवर्णं राजतं ताम्रं पात्रं शुक्तिजशङ्खजे ।

अश्मजं स्फाटिकं चैव न भेदाद्दोषमर्हति ॥ इति ।

कांस्यपात्रे भोजनविधिरुक्तः पराशरे—

एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कांस्यभाजने ।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते ह्यायुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥

चन्द्रोदये—पञ्चाशत्पलकं कांस्यं द्यधिकं भोजनाय वै ।

गृहस्थैश्च सदा कार्यमभावे हेमरूप्ययोः ॥

तत्रैव प्रचेताः—पलाद्रिंशतिकान्नार्वागत ऊर्ध्वं यदृच्छया ।

एतच्च गृहस्थैकविषयम् । तथा च प्रचेताः—

ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।

यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥

ताम्रविधिर्गृहस्थेतरपरः ।

ताम्रपात्रे न भुञ्जीत भिन्नकांस्ये मलादिले ।

पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्त्वैन्द्रवं चरेत् ॥

इति वृद्धमनूक्तेरिति पृथ्वीचन्द्रः । ताम्रविधिः श्राद्धपर इत्यन्ये । यत्त्वं
परार्के सप्तम्यां नैव कुर्वीत ताम्रपात्रे च भोजनमिति तत्पूर्वोक्तनिषेधो-
पसंहारार्थं दोषाधिक्यार्थं वा । ताम्रवत्पैतलेऽपि निर्णय इत्याचारसारे ।
यत् नाऽऽयसान्यपि कार्याणि पैतलानि न तु क्वचिदिति श्राद्धहेमाद्रौ
वाराहं तत्प्रकरणाच्छ्राद्धपरम् । निषिद्धपत्राण्याह व्यासः—

वट, कर्पाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतिन् कपत्रयोः ।

कोविदारकरञ्जे च भुक्त्वा चाग्नायणं चरेत् ॥ इति ।

कुम्भी कुम्भा । तिन्दुकः टेढू । कोविदारः काञ्चनारः, अपटेति
प्रसिद्धः । करञ्जः प्रसिद्धः । प्रचेताः—

मृन्मये पर्णपृष्ठे वा कार्पासे तान्तवे तथा ।

नाश्नीयान्न पिबेच्च न करे न तथा मणौ ॥

वाराहे—वटार्काश्वत्थपत्रेषु नाश्रीयात्सर्वथा द्विजः ।

अनापद्येषु भुञ्जीत गायत्रीशतकं जपेत् ॥

जपेदापदि गायत्रीदशकं भोजनात्सकृत् ।

व्यासोक्तं चान्द्रायणं तु अभ्यासविषयम् । आग्नेये—

वटार्काश्वत्थधवज(ल?)सर्जभलातकीस्त्यजेत् ।

वटादयः प्रसिद्धाः । सर्जो रालः । भलातको बिम्बी । साग्रकदली-
पत्रं निपिद्धमिति रत्नमालायाम् । भोज्यपत्राणि वाराहे—

पलाशस्तिन्दुकः कुब्जः प्रियालः पनसस्तथा ।

पञ्चिनीपृक्षजम्बवाञ्जकदलीचम्पकादयः ॥

भोज्यपत्रा स्मृता वृक्षा न दोषो भोजनाद्भवेत् ।

तिन्दुकस्य विहितप्रतिपिद्धत्वाद्विकल्पः । कुब्जः, आघाडा । प्रियालः
चार इति । पृक्षः पिंपणी पायीरो वा । कुटजमधूकोदुम्बरपत्राणि प्रश-
स्तानीति धर्माधिसारः । पत्रावलीविधिः संग्रहे—

अच्छिन्नवृत्तं छिन्नाग्रं कृमिविष्ठादिदूषितम् ।

आस्फोटकमिदं पत्रं पत्रावल्ल्यां विवर्जयेत् ॥

अधःपत्रविहीने तु भोजने पत्रभाजने ।

गोमांससदृशं चान्नं तद्रसं सुरया समम् ॥

एकपर्णे द्विपर्णे वा मध्यपर्णे तथैव च ।

कदलीपद्मपत्रे च अधः पत्रं विवर्जयेत् ॥

न मूलं मूलतो योज्यं नाग्रमग्रेण योजयेत् ।

नान्तरा दर्शयेदग्रं न पृष्ठं मेलयेत्कचित् ॥

पर्णस्य मूलं पर्णाग्रे योज्यं न तु विपर्ययः ।

विपरीतेन पत्रेण भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

निमन्त्रितब्राह्मणैः पत्रावलीर्न कारयेत् । तदुक्तं नारदीये—

निमन्त्रितैर्द्विजवरैः पत्रावलीः कारयन्तु यः ।

अन्नदानकृतं तस्य तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

अथ परिवेषणम् । तत्र पात्रोपस्तरणं दानधर्मे—

आज्याहुतिं विना चैव यत्किञ्चित्परिविष्यते ।

उपचारैस्तु यज्जुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥

इदं शिष्टाचारानुरोधाच्छ्राद्धैकविषयमिति केचित् । अविशेषाद्भो-
जनमात्रविषयमित्यन्ये । परिवेषणक्रमः पारिजाते—

भक्ष्यादि शिशुमारभ्य भोज्यं देयं प्रयत्नतः ।

परिवेषणसाधनमुक्तं स्मृतिरत्नावल्याम्—

अपक्वं स्नेहपक्वं च हस्तेनैव प्रदापयेत् ।

यत्किञ्चिदितरद्भक्ष्यं दर्वीं मुक्त्वाऽन्यपात्रतः ॥

मात्स्ये—उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ।

आपस्तम्बः—घृतं तैलं च लवणं पानीयं पायसं तथा ।

भिक्षा च हस्तदत्ता हि न ग्राह्या यत्र कुत्रचित् ॥

तस्मादन्तर्हितं चान्नं पर्णेन च तृणेन वा ।

प्रदद्याज्जातु हस्तेन नाऽऽयसेन कदाचन ॥

दर्व्या देयं शृताङ्गं च समस्तव्यञ्जनानि च ।

उदकं यच्च पक्वान्नं यो दर्व्या दातुमिच्छति ॥

स ध्रूणहा सुरापश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः ।

शातातपः—हस्तदत्तानि चान्नानि प्रत्यक्षलवणं तथा ।

मृत्तिकाभक्षणं चैव गोमांसाशनवत्स्मृतम् ॥

प्रत्यक्षमपि लवणं हस्तदत्तमेव निषिद्धम् । तथा च पैठीनसिः—

लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं तथैव च ।

लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥

सैन्धवसामुद्रमानसानि तु प्रत्यक्षाण्यपि ग्राह्याणीति पूर्वमुक्तम् ।

वृद्धवसिष्ठः—

घृतं वा यदि वा तैलं विप्रो नाद्यान्नखच्युतम् ।

यमस्तदशुचि प्राह तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥

पराशरः—माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं लवणं घृतम् ।

हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिनमेकमभोजनम् ॥

माक्षिकं मधु । फाणितं काकवी । फाणितादेर्हस्तेन दातुः प्रायश्चित्तं
काशीखण्डे—

फाणितं गोरसं चैव लवणं मधुकानि च ।

हस्तेन ब्राह्मणो दद्यात्कुच्छं चान्द्रायणं चरेत् ॥

एकपङ्क्तौ विषमान्नदाने दोषस्तदपवादश्चातिथिभोजनप्रकरणे पूर्व-
मुक्तः । परिवेषणस्थानविशेषः स्मृत्यन्तरे—

शाकादीन्पुरतः स्थाप्य भक्ष्यं भोज्यं च वामतः ।

अन्नं मध्ये प्रतिष्ठाप्य दक्षिणे घृतपायसे ॥

जातूकर्ण्यः—ओदनस्यापरार्धे तु दद्यादुपरि सूपकम् ।

सूपकं सूपम् । स्वार्थे कः । पारिजाते वैद्यः—

भक्ष्यं च दक्षिणे पार्श्वे पेयं लेह्यं च वामतः ।

संग्रहे तु—पायसं दक्षिणे त्वाज्यं वामे भक्ष्यादि चाऽऽवपेत् ।

मुख्यभोजनपात्रस्य समन्ताल्लघुपात्राणि संस्थाप्य तेषु आज्यपयआदि
परिवेषयेत् । तदुक्तं मदनपारिजाते—

लघीयांस्यपि पात्राणि भृमा स्थाप्यानि भारत ।

पयःशाकादिभुक्त्यर्थं न महाभाजनोपरि ॥

आचारार्के स्मृत्यन्तरे—

ओदने परमान्ने च आज्यपात्रं यदि स्थितम् ।

तदाज्यं च भवेद्रक्तं तदन्नं मांसमुच्यते ॥

अत्रावान्तरपरिवेषणकाल उच्छिष्टस्पर्शने कर्तव्यमाह हारीतः—

द्रव्यहस्तस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ।

भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमपः स्पृष्ट्वा ततः शुचिः ॥

अद्भिरभ्युक्ष्य तद्द्रव्यं पुनरादाय दापयेत् ।

भोक्तव्यमिति मन्यन्ते मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥

स्मृत्यर्थसारे तु—अन्नपानादि हस्त उच्छिष्टश्चेत्तन्निधायाऽऽचम्य प्रोक्षेत् ।
परिवेषणं कुर्वन्नुच्छिष्टस्पृष्टोऽन्नं निधायाऽऽचम्य परिविष्यात् । परिवे-
षणं कुर्वन्मूत्राद्युच्छिष्टश्चेदन्नादिकं निधाय शौचाचमनं कृत्वाऽन्नादिकं
प्रोक्ष्याग्निमर्कं वा संस्पृश्य परिविष्यात् । परिवेषणे रजोदृष्टौ तत्संस्पृष्टा-
न्नस्य त्यागः । अन्नाधारे चण्डालसूतिकोदक्यापतितोच्छिष्टस्पृष्टे त्याग
एवेति । इति परिवेषणविधिः ।

अथ भोजनविधिरुच्यते । तत्र गृह्यपरिशिष्टम्—अथ भोजनविधि-
रार्द्रपादपाणिराचान्तः पवित्रपाणिः शुचौ देशे प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखो
वोपविश्य चतुरश्रमण्डले पात्रस्थमन्नं प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्याऽ-

भ्युक्ष्य स्वादो पितो मधो पितो इत्यभिमन्त्र्य सत्यं त्वर्तेन परिपिश्रामीति दिवा परिपिश्रेष्टतं त्वा सत्येन परिपिश्रामीति रात्रावथ दक्षिणतो भुवि भूपतये भुवनपतये भूतानां पतये नम इति नमोऽन्तेन मन्त्रेण प्राक्संस्थं प्रत्यक्संस्थं वा बलीन्विकीर्य समाहितोऽभृतोपस्तरणमसीत्यापोशनं प्राश्य सव्येन पाणिना पात्रमालभ्य तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणाय मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानायानामिकाकनिष्ठिकाङ्गुष्ठैर्व्यानाय कनिष्ठिकातर्जन्यङ्गुष्ठैरुदानाय सर्वाभिरङ्गुलीभिः समानाय च मुखे जुहुयात्सर्वाभिरेव वा सर्वेभ्यो जुहुयादेवं वाग्यतो भुक्त्वाऽमृतापिधानमसीत्यपिधानं प्राश्य शोधितमुखपादपाणिर्द्विराचामेदेवं भुञ्जानोऽग्निहोत्रफलमश्रुते बलवृद्धिमान्भवति सर्वमायुरेतीति ।

पारिजाते व्यासः—पञ्चाद्र्द्रा भोजनं कुर्यात्प्राङ्मुखो मौनमास्थितः ।

हस्तौ पादौ तथैवाऽऽस्यभेषु पञ्चाद्र्द्रता मता ॥

शातातपः—आचम्यैव तु भुञ्जीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्विजः ।

अनाचान्तः पिबेद्यस्तु प्रायश्चित्ती भवेत्ततः ॥

अत्र पानं भक्षणस्याप्युपलक्षणार्थम् । तथा च स एव—

अनाचान्तः पिबेद्यस्तु भक्षयेद्यापि किञ्चन ।

गायत्र्यास्त्रिशतं प्रोक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

इदं चाऽऽदौ द्विः । भोक्ष्यमाणः प्रयतो द्विराचामेदित्यापस्तम्बस्मरणात् । अन्तेऽपि द्विः । स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुते भुक्त्वा स्थोपसर्पणे । आचान्तः पुनराचामेदिति याज्ञवल्क्योक्तेः । पान आदौ सकृदाचमनमिति विज्ञानेश्वरः । यद्वा परिशिष्टमताद्भोजनस्याऽऽद्यन्तयोः सकृदेवाऽऽचमनम् । अत्र मन्त्रविशेष उक्तः पारिजाते—

तदोङ्कारेणाऽऽचमनं यद्वा व्याहृतिभिर्भवेत् ।

सावित्र्या वाऽपि कर्तव्यं यद्वा कार्यममन्त्रकम् ॥

सर्वत्राऽऽचमनं पादशौचादिनियमपूर्वं कर्तव्यम् । तथा च शातातपः—

अकृत्वा पादयोः शौचं तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा ।

विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥

भोजनाङ्गमाचमनं भोजनशालाया बहिः कर्तव्यम् । उक्तं चन्द्रिकायाम्—

यस्तु भोजनशालायां भोक्तुकाम उपस्पृशेत् ।

आसनस्थोऽपि वाऽन्यत्र स विप्रः पङ्क्तिदूषकः ॥ इति ।

पवित्रधारणमाहाऽऽपस्तम्बः—यत्नेन धारयेद्विप्रः पवित्रं दक्षिणे करे ।

भुञ्जानस्तु विशेषेण स्वान्नदोषैर्नलिप्यते ॥

अस्मिन्वर्तुलग्रन्थिः पूर्वमुक्तः । अत्र दिङ्निमित्तो ब्राह्मे—प्राङ्मुखो-
*दङ्मुखो वाऽपीति । यत्तु न कदाचिदुदङ्मुख इत्यत्रिवचनं तत्पुत्रव-
तामेव । उक्तं च स्मृतिसंग्रहे

पुत्रवान्स्वगृहे नित्यं नाश्नीयादुत्तरामुखः ।

मनुः—आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ॥

श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्तुः कृतं भुङ्क्तु उदङ्मुखः ।

आयुषे हितमायुष्यम् । श्रियस्युतं चेच्छन्निति शेषः । सकृदनुष्ठानेनापि
फलमिति केचित् । यावज्जीवं नियमः फलाय विधीयत इत्यन्ये ।
जीवत्पितृकस्य दक्षिणामुखनिषेधः स्मृतिमञ्जर्याम्—

पितरौ जीवमानौ चेन्नाश्नीयाद्दक्षिणामुखः ।

तयोस्तु जीववानेकस्तथैव नियमः स्मृतः ॥

विज्ञानेश्वरश्च—अनिशं मातृहीनानां यशस्यं दक्षिणामुखम् ।

भोजन उदङ्मुखत्वादिनिषेधो निष्कामपर इत्याचारादर्शः । उपवे-
शने विशेषः पारिजाते—दक्षिणेन पदा भूमिं स्पृशेद्वाभ्यामथवाऽपि वेति ।
अस्य विशेषस्य परिशिष्टेऽनुक्तत्वाद्बहुलं वेति न्यायेनाऽऽश्वलायनानां
यथाकथंचिदुपवेशनमात्रं वेति । ब्रह्मपुराणे—

अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्याऽऽदौ प्राञ्जलिः कथयेत्ततः ।

अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भक्त्याऽथ वन्दयेत् ।

पात्राद्भासं समुद्धृत्य शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत् ॥

जलमादाय मन्त्रेण गोघ्रासं विनिवेदयेत् ।

अयं च गोघ्रासः पूर्वं पृथगकरणे ज्ञेयः । पारिजाते वैद्यः—

निधाय मध्ये भोज्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः ।

निवेद्याभीष्टदेवभ्यो निःशब्दोऽपोशयेत्ततः ॥

इष्टमिष्टैः सहाश्नीयाच्छुचि भक्तं जनाहृतम् ।

गीतायामपि—यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।

ततः सजलदक्षिणहस्तेन प्रदक्षिणं पात्रपरिषेक ऐशान्या(नी)मारभ्य कार्यः । सर्वदिक्संबद्धं कर्मेशानीमारभ्य कार्यमिति गृह्यवृत्तावुक्तेः ।

अथ बलयः । ते च भोजनपात्रस्य दक्षिणतो दशाङ्गुलपरिमितं पञ्चाङ्गुलपरिमितं वा स्थलं त्यक्त्वा कार्या इति रत्नमालायाम् । बौधायनः—दक्षिण उदकधारायां बलिं दद्याद्भूपतये नमो भुवनपतये नमो भूतानां पतये नम इति पुनरुपर्युदकधारां दत्त्वा भोक्तारमीश्वरं ह्यात्मानं चिन्तयेदिति । भविष्यपुराणे—

भाजनात्किंचिदन्नाद्यं धर्मराजाय वै बलिम् ।

दत्त्वाऽथ चित्रगुप्ताय प्रेतेभ्यश्चेदमुच्चरन् ॥

यत्र कचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।

प्रेतानां तृप्तयेऽक्षय्यमिदमस्तु यथासुखम् ॥

स्कान्दे—प्रदद्याद्भूपतये च भुवनपतये तथा ।

भूतानां पतये स्वाहेत्युक्त्वा भूमौ बलित्रयम् ॥

ब्राह्मे—ब्रह्मणे नम इत्येकं ब्रह्मादिभ्यो बलिं दद्यादिति । स्मृत्यर्थसारे-यमाय नमश्चित्रगुप्ताय नमः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नम इति बलित्रयं दद्यादिति । धर्माधिसारे—चित्राय चित्रगुप्ताय यमाय यमधर्माय सर्वेभ्यो भूतेभ्यश्चेति पञ्च । व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वा चत्वार इति । स्वाहाकारान्तैर्मन्त्रैरिति श्रौतपरिभाषया स्वाहान्तमेव बलिदानमाश्वलायनानामित्याचारसारः । तन्न । बलिदानस्य सूत्रोक्तत्वाभावात् । परिशिष्टे बौधायनसूत्रे च नमोऽन्तत्वाक्त्याऽऽकाङ्क्षाभावाच्चेति । एतानि बलिदानानि यथाशाखं व्यवस्थितानीत्याचारसार आचाररत्ने च । बलिमानं वैश्वदेवप्रकरणे प्रागुक्तम् । कृष्णभट्टीये—

भोजनादौ बलिमुक्तस्तमुद्धृत्य तु भोजनम् ।

अनुद्धृत्य तु यो भुङ्क्ते प्राणायामाष्टकं चरेत् ॥

अत्रोद्धृत्य भोजनमिति समानकर्तृकत्वात्निर्देशात्स्वकर्तृकमेवोद्धरणमिति बहवः । रत्नमालायां तु—

भोजनादौ बलिं मुक्तं समुद्धार्यैव भोजनम् ।

अनुद्धार्य तु यो भुङ्क्ते प्राणायामाष्टकं चरेत् ॥

इति पाठान्तरं स्वीकृत्य समुद्धार्येति णिच्प्रयोगादन्यकर्तृकमुद्धरणं न
स्वकर्तृकमिति । उद्धरणं च बलिनिर्वपणस्थानात्स्थानान्तरे निष्काशनं न
तु भोजनशालाया बहिरेवेति नियमः । तदाह चन्द्रिकायां शातातपः—

भोजनादौ बलेरन्नं यावद्भूमौ च तिष्ठति ।

अभोज्यं तद्भवेदन्नं तत्स्थानात्संत्यजेद्बुधः ॥

बलिदानाकरणप्रायश्चित्तमाह जातूकर्ण्यः ।

अकृत्वा यश्चित्रबलिं भुङ्क्ते विप्रस्त्वनापदि ।

प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

स्मृत्यर्थसारे—पायसेन तथाऽऽज्येन मापाग्नेन तथैव च ।

न कुर्याद्बलिदानं तु ओदनेन प्रकल्पयेत् ॥

ओदनविधानेनैव पायसादिनिवृत्तिसिद्धौ पायसादिनिषेधनं काचि-
दोदनालाभे भक्ष्यादीनां प्रापणार्थमिति । अत्राऽऽज्यनिषेधः केषला-
ज्यस्य । तथा च भविष्ये—

अन्नेनैव घृताक्तेन नमस्कारेण वै भुवि ।

तिस्र एवाऽऽहुतीर्दद्यान्द्भोजनादौ तु दक्षिणे ॥ इति ।

ततो हस्तप्रक्षालनमाह व्यासः—

दत्त्वाऽथ चित्रगुप्ताय हस्तं प्रक्षालयेद्विजः ।

अक्षालितकरो भुङ्क्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥

अथापोशानम् । याज्ञवल्क्यः—

अपोशानेनोपरिष्ठादधस्तादश्रुता तथा ।

अनग्नममृ(मावृ?)तं चैव कार्यमन्नं द्विजन्मना ॥

वृद्धशातातपोऽपि—परिधानमपोशानं पूर्वमाच्छादनं परम् ।

भवत्यन्नमनग्नं हि सोत्तरीयं तथाऽऽवृतम् ॥

अत्र यद्यपि “ अद्यतेऽस्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ” इति
श्रुतौ सर्वमविशेषेणान्नत्वेन प्रतीयते तथाऽपि जलादावपि तदापत्ते-
भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमिति कोशादन्नमादेनः । अत एवान्नाश्रि-
तानि पापानि यत्राप्योदनवर्जनम् । तेन भक्त एवापोशानं नान्यत्रेति
कश्चित् । अन्ये तु

सस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्यमुच्यते ।

आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्नमुदाहृतम् ॥

घृताभावे तु संस्कार्यं दध्नाऽथ पयसाऽपि वा ।
प्राणाहुतिमहुत्वा तु यश्चान्नं परिमर्दयेत् ॥
तदन्नभोजने तस्य प्राजापत्यं विशुद्धये ।

आहुतिमानं प्रागुक्तम् । संस्काररत्नमालायां तु प्राणाहुत्यनन्तरं
बल्युद्धरणमुक्तं तत्

चित्राहुतीरनुद्धृत्य या भुङ्क्ते ग्रासपञ्चकम् ।
अथं स केवलं भुङ्क्ते ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥

इति चन्द्रिकाधृतस्मृत्यन्तरविरोधाद्विचारणीयम् । अत्र मौननियम-
माह व्यासः—

स्नास्यतो वरुणः शक्तिं जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत् ।
भुञ्जतो मृत्युरायुष्यं तस्मान्मौनं त्रिषु स्मृतम् ॥

अत्रिः—मौनव्रतं महाकष्टं हुंकारेण विनश्यति ।

एतत्पञ्चग्रासपरम् ।

पञ्चग्रासान्महामौनं प्राणाद्याप्यायनं हि तत् ।

इति विष्णुपुराणादिति माधवः । महामौनं काष्ठमौनम् । तथा च
स्मृतिमञ्जर्याम्—

काष्ठमौनेन भुञ्जीत प्राणादिग्रासपञ्चकम् ।

प्राणाहुत्युत्तरं न मौननियमः ।

मौनी वाऽप्यथवाऽमौनी प्रहृष्टः संयतेन्द्रियः ।

भुञ्जीत विधिवद्विप्रो न चोच्छिष्टानि चाऽऽवपेत् ॥

इति व्यासोक्तेः । वाग्यमने कचिदपवादः स्मृतिरत्नावल्याम्—

यवीयान्सपिता यश्च मुक्त्वा श्राद्धिकभोजनम् ।

प्राणाग्निहोत्रादन्यत्र नासौ मौनं समाचरेत् ॥

यवीयान्कनिष्ठः । अतो भ्रातृमतो मौननिषेधः पूर्वमुक्तो जीवज्ज्येष्ठ-
भ्रातृकपरः । ततः सव्यपाणिं प्रक्षालयेदिति चन्द्रिका । स्वदक्षिणतो
जलपात्रं स्थापयेदिति रामार्चनचन्द्रिकायामुक्तम् । एतदकरणे प्राणाया-
मत्रयमष्टशतं गायत्रीजपश्च । ततो विमुक्तशिसो भुञ्जीयात् । वचनं तु
प्रागुक्तम् । अत्र भूमौ पात्रस्थापनं प्राणाहुतिपर्यन्तं तदुक्तं पारिजाते—

न्यस्तपात्रस्तु भुञ्जीत पञ्चग्रासान्महामुने ।

शेषमुद्धृत्य भोक्तव्यं श्रूयतामत्र कारणम् ॥

विप्रुपां दोषसंस्पर्शः पादचेलरजरतथा ।

मुखेन भुङ्क्ते विप्रोऽपि पित्रर्थं तु न लुप्यते ॥ इति ।

पितृक(पित्र्य)भोजने भूमौ पात्रस्थापनं न लोपनीयमित्यर्थः । स्मृत्य-
र्थसारेऽपि—प्राणाहुत्यूर्ध्वमुत्क्षिप्य पात्रं यन्त्रे विनिक्षिपेत् । इदं क्षत्रि-
यादिपरम् । नाऽऽसन्दी भोजने शस्ता विप्राणां तु कदाचनेत्यग्निस्मृता-
वुक्तेः । अथ भोजनक्रमः । उक्तः स्मृतिरत्नावल्याम्—

अश्रीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् ।

लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकांस्ततः ॥

प्राग्द्वयं पुरुषोऽश्रीयान्मध्ये च कठिनं तथा ।

अन्ते पुनर्द्रवाशी च बलारोग्ये न मुञ्चति ॥

वैद्यके त्वादौ भक्ष्यं पश्चात्पायसमन्त्र ओदन इति ।

विष्णुपुराणे—जठरं पूरयेद्धर्ममन्त्रैर्भागं जलस्य च ।

वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ इति ।

पारिजाते धर्मोद्योते—काले सात्क्यं लघु स्निग्धमुष्णं क्षिप्रं रसोत्तरम् ।

बुभुक्षितोऽन्नमश्रीयान्मात्रा तावद्विज्ञेतागमम् ॥

तस्य कारणमुक्तं तत्रैव—काले प्रीणयते भुक्तं सात्क्यमन्नं न बाधते ।

लघु प्रजीर्यते क्षिप्रं स्निग्धोष्णं बलवृद्धिदम् ॥

क्षिप्रं भुक्तं तथा चान्नं धातुसात्क्यं करोति तत् ।

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्राह्यग्रेः प्रदीपिका ॥ इति ।

अत्यशनभक्षणे दोषमाह मनुः—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।

अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

व्यासस्तु—सदा चात्यशनं नाद्यान्नातिहीनं च कर्हिचित् ।

यथाऽन्नेन व्यथा न स्यात्तथा भुञ्जीत नित्यशः ॥

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः ।

द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य ह्यमानं ब्रह्मचारिणः ॥

वक्त्रप्रमाणपिण्डांश्च ग्रसेदेकैकशः पुनः ।

वक्त्राधिकस्तु यः पिण्ड आत्मोच्छिद्यः स उच्यते ॥

पिण्डावाशिष्टमन्नं च वक्त्रनिःसृतमेव च ।

अभोज्यं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

वसिष्ठः—न मुखशब्दं कुर्यात्सर्वाभिरङ्गुलीभिरश्रीयात्पाणिं च नायधुनु-
यादिति । अन्यथा दोष उक्तो मार्कण्डेये—

यस्तु पाणितले भुङ्क्ते यः सवायु समश्नुते ।
अङ्गुलीं चोद्धरेद्यस्तु गोमांसाशनवत्स्मृतम् ॥

सवायु समश्नुते सशब्दमश्नातीत्यर्थः । अत्रिरपि—

आसने पादमारोप्य यो भुङ्क्ते ब्राह्मणः क्वचित् ।
मुखेन चान्नमश्नाति तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥ इति ।

मुखेन पशुवत्केवलमुखसाधनेन । स्मृतिसंग्रहे—

नादत्त्वाऽमृतमश्रीयाद्वाहिर्जानुकरस्तथा ।
नाश्रीयुर्बहवश्चैव न तत्रैकस्य पश्यतः ॥

अश्नाति यो भूरिजनस्य मध्ये मृष्टान्नमेको रसलुब्धबुद्धिः ।
दीनैः कटाक्षैरपि वीक्ष्यमाणो व्यक्तं विषं हालहलं भुनक्ति ॥

यमः—भुञ्जीतोद्धृतसाराणि न कदाचिदपि द्विजः ।

न शेषं पुरुषोऽश्रीयादन्यत्र जगतीपतेः ॥
न कुर्यात्स्कन्दनं शब्दं क्रोधमन्यत्र चिन्तनम् ।

शिशूनां दर्शने चापि श्वचाण्डालादिदर्शने ॥

अशुचीनां तथा मध्ये प्रेक्षतामप्यनश्नताम् ।

अकाले विषयुक्तं तु नाश्रीयादद्भुतं तथा ॥ इति ।

जगतीपतिः परमेश्वरः ॥ ब्रह्मपुराणेऽपि—

ग्रासशेषं न चाश्रीयात्पीतशेषं पिबेन्न तु ।

शाकमूलफलेक्षूणि दन्तच्छेदैर्न भक्षयेत् ॥

अत्र भोजनमध्ये जलपानविशेषमाह मनुः—

न पिबेन्न च भुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिना ।

नैकहस्तेन च जलं शूद्रेणाऽऽवर्जितं पिबेत् ॥

नैकहस्तेनेति आवर्जितमित्यनुषज्जते । आक्षारितमिति च तदर्थः ।
तथा च हस्तद्वयेनाऽऽदद्यादिति फलितमिति हरदत्तः । शूद्रेणेत्यत्र नेत्य-
नुषज्जत इति भट्टोजीये । आह शातातपः—

उद्धृत्य वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः ।

सुरापानेन तत्तुल्यं मुनिराह प्रजापतिः ॥ इति ।

केवलपाण्यादिना जलपाननिषेधमाहात्रिः—

तोयं पाणिनखाग्रैस्तु ब्राह्मणो न पिबेत्कचित् ।
सुरापानेन तत्तुल्यमित्येवं मनुब्रवीत् ॥

पाणिना च नखाग्रैश्च पाणिनखाग्रैः । तत्र विशेषमाह मनुः—

पिबतो यत्पतेत्तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ।
अभोज्यं तद्भवेदन्नं भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥
पीतावशेषितं तोयं ब्राह्मणो न पुनः पिबेत् ।
पिबेद्यदि हि तत्तोयं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥

आश्वमेधिके—पानीयानि पिबेद्येन तत्पात्रं द्विजसत्तम ।
अनुच्छिष्टं भवेत्तावद्यावद्भूमौ न निक्षिपेत् ॥

यत्तु पराशरप्रायश्चित्तकाण्डे यमवचनम्—

अदुष्टाः सन्तता धारा वातोद्भूताश्च रेणवः ।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥

कमण्डल्वादिभ्यो निर्गत्य मुखपर्यन्तमविच्छिन्ना अप्युदकधारा नोच्छिष्टाः । नानाविधादशुचिप्रदेशादुद्भूता अपि रेणवः स्पर्शार्हाः । पुरुषवत्यः स्त्रियो वृद्धा बालास्ते स्नानाद्यभावे शुद्धाः । एतद्भोजनव्यतिरिक्तकाले दक्षिणहस्तेन कमण्डल्वादिनोदकपानविषयम् । भोजनकाले तु दक्षिणपाणेरनुच्छिष्टस्याप्रसक्तः । तत्रापि वामपाणिना जलपानं करोति चेन्न पिबेन्न च भुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिनेति मनुवचनविरोधात्तन्नाऽऽदरणीयम् । एतदुक्तं भवति । एतद्वचननिकरपर्यालोचनया भोजनमध्यजलपाने यावदपेक्षितं तन्मात्रजलमुपपात्रेऽन्येन ब्राह्मणेनोभाभ्यां हस्ताभ्यामासेच्य दक्षिणेन हस्तेनैव निःशेषं जलपानं कुर्यात् । भोजनव्यतिरिक्तकाले कमण्डल्वारव्यभृङ्गारनालेन दक्षिणहस्तेन जलपानं कुर्यादिति । तत्राप्यैहिकदोषमाह वैद्यः—नालेन न पिबेद्बुध्वं श्रोत्रनेत्रार्तिकृत्पयः । प्रयोगपारिजातेऽप्येवम् । भोजनकाले जलपानं प्रकारान्तरं विधानपारिजाते स्मृतिसंग्रहे—

जलपात्रं तु निक्षिप्य मणिबन्धे च दक्षिणे ।
विप्रो भोजनकाले तु पिबेद्ग्रामेन पाणिना ॥
धारया नोदकं पेयं पीत्वा दोषमवाप्नुयात् । इति ।

यावद्भोजनं वामेन भोजनपात्रान्वारम्भपक्षे पूर्वप्रकार एवाऽऽदरणीय
इति जलपाननिर्णयः । इति भोजनविधिः ।

एतद्भोजनस्य नियमपूर्वकं कर्तव्यत्वात्तन्नियमा व्यतिरेकेणोच्यन्ते ।
तत्र सायणीये पराशरः—

यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।

वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥

दक्षिणामुखनिपेधो नित्यभोजनविषयः । काम्ये तद्विधानात् । वाम-
पादे करो यस्येति बहुव्रीहिः ।

बहूनां भुञ्जतां मध्ये न चाश्नीयात्स्वरान्वितः ।

वृथा न विकिरेदन्नं नोच्छिष्टः कुत्रचिद्व्रजेत् ॥

बृहस्पतिः—न स्पृशेद्दामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन ।

न पादौ न शिरो बस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥

नोच्छिष्टो ग्राहयेदाज्यं जग्धशिष्टं न संत्यजेत् ।

शूद्रभुक्तावशिष्टं तु नाद्याद्भाण्डस्थितं त्वपि ॥

न भिन्नकांस्ये संध्यायां पतितानां च संनिधौ ।

पर्णपृष्ठे न भुञ्जीयाद्वात्रौ दीपं विना तथा ॥ इति ।

कात्यायनः—नृणां भोजनकाले तु यदि दीपो विनश्यति ।

पाणिभ्यां पात्रमादाय भास्करं मनसा स्मरेत् ॥

पुनश्च दीपिकां कृत्वा तच्छेषं भोजयेन्नरः ।

पुनरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा पापैर्दिलिप्यते ॥

शेषं गृहीतशेषम् । पुनरन्नं पुनर्गृहीतम् । दिवाऽपि दीपसांनिध्ये
फलविशेषः स्मृत्यन्तरे—

वामे तु दीपकं स्थाप्य दक्षिणे जलभाजनम् ।

दीपस्य संनिधौ भुङ्क्ते तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥

पराशरः—केशकीटावपन्नं च मुखमारुतवीजितम् ।

अन्नं तद्वाक्सं विन्द्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

पारिजाते संग्रहे—यो भुङ्क्तेऽनुपनीतेन यो भुङ्क्ते च स्त्रिया सह ।

यो भुङ्क्ते कन्यया सार्धं द्विजः सांतपनं चरेत् ॥

अत्र भार्यया सह भोजने क्वचित्प्रतिप्रसवमाह व्यासः—

ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं क्वचिद्भुञ्जीत चाध्वनि ।

क्वचिदिति देशकालाद्यसंभवविषयं विवाहविषयं चेति विज्ञानेश्वरः ।

प्रायश्चित्तहेमाद्रौ गालवोऽपि—

एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम् ।

विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् ॥

याज्ञवल्क्यः—न भार्यादर्शनेऽश्रीयान्नैकावासा न संस्थितः । अत्र श्रुतौ कारणमुक्तम् । तथा सत्यवीर्यवदपत्यं भवतीति । तस्मात्परिवेषणोत्तर-
कालं तथा पुरतो न स्थातव्यम् । असावपि भुञ्जानो नेक्षेतेत्यर्थ इति पारिजाते । इदमसर्वणभार्याविषयमित्याचाररत्ने । मदनरत्ने बृहस्पतिः—

अप्येकपङ्क्त्यां नाश्रीयाद्ब्राह्मणः स्वजनैरपि ।

को हि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥

एकपङ्क्त्युपविष्टानां पातकं यद्दुरात्मनाम् ।

सर्वेषां तत्समं तावद्यावत्पङ्क्तिर्न भिद्यते ॥

अग्निना भस्मना वाऽपि स्तम्भेन सलिलेन वा ।

द्वारेण चोपमार्गेण पङ्क्तिभेदो बुधैः स्मृतः ॥

आह शातातपः—अध्यासनोपविष्टश्च यो भुङ्के प्रथमं द्विजः ।

बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पङ्क्त्या हरति कित्विषम् ॥

एतच्चानियुक्तविषयम् । तथा च शङ्खः—नानियुक्तोऽध्यासनस्थः प्रथ-
ममश्रीयान्नाधिकं दद्यान्न प्रतिगृह्णीयादिति । गोभिलः—

एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने ।

यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं नाश्रीयुरितरेऽप्यनु ॥

मोहात्तु भुङ्के यस्तत्र तप्तसान्तपनं चरेत् ।

एतच्च परोद्देशात्मसंत्याग उच्छिष्टस्यापि वर्जनमिति कलिनिपिन्द्रेषु
गणितत्वाद्युगान्तरविषयमिति बोध्यमिति भट्टोजीये । एकपङ्क्त्युपविष्टा-
नामेकस्मिन्नप्याचान्ते उत्थिते वाऽभोज्यं तदाह गौतमः—आचमनोत्था-
नव्यपेतानीति । अपेतभिन्नानि व्यपेतानि सहितानीत्यर्थ इति हरदत्तः ।
एतदपि गुरुभिन्न-आचान्त उत्थिते वा बोध्यम् । तदाहोशना-अगुरु-
भिराचमनोत्थानं चेति । आह व्यासः—

उदक्यामपि चण्डालं श्वानं कुक्कुटमेव च ।

भुञ्जानो यदि पश्येत तदन्नं तु परित्यजेत् ॥

कात्यायनः—चण्डालपतितोदक्यावाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमः ।

भुञ्जीत ग्रासमात्रं तु दिनमेकमभोजनम् ॥

गौतमः—काहलानां महाघ्राण्यां चक्रस्योलूखलस्य च ।

एतेषां निनदो यावत्तावत्कालमभोजनम् ॥

अत्र भोजननिषेधः कर्मान्तरस्याप्युपलक्षणार्थः । तथा च कात्यायनः—

तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रादेः शब्दो यावत्प्रवर्तते ।

तावत्कर्म न कर्तव्यं शूद्रान्त्यपतितस्य च ॥

वृद्धमनुः—पीत्वाऽपोशनमश्रीयात्पात्रदत्तमर्हितम् ।

भार्याभृतकदासेभ्य उच्छिष्टं शेषयेत्ततः ॥

उच्छिष्टशेषणं च घृतादिव्यतिरिक्तविषयम् । तदाह पुलस्त्यः—

भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्पात्रः कथंचन ।

अन्यत्र दधिसक्त्वाज्यपललक्षीरमध्वपः ॥ इति ।

पललं तिलमिश्रौदनः । तथा—

भुक्त्वा पीत्वा च यत्किञ्चिच्छून्यं पात्रं समुत्सृजेत् ।

स नरः क्षुत्पिपासार्तो भवेज्जन्मानि जन्मानि ॥

कमलाकराह्निके—अनिधाय पृथक्चात्रं पूर्वं यच्चाभिमन्त्रितम् ।

अन्यदन्नं न गृहीयाद्यदि गृह्णन्स दोषभाक् ॥

तस्मात्पूर्वं गायत्र्याऽभिमन्त्रितसंस्कृतान्नस्य किञ्चिद्भागं स्वपुरतः

स्थापिते सति पुनर्ग्रहणे न दोष इतिभावः । इदं च भोजनं रहसि

कार्यम् । आहारं तु रहः कुर्याद्विहारं चैव सर्वदेति । आदित्यपुराणेऽपि—

एकवस्त्रो न भुञ्जीत कपाटमपिधाय वेति । इति भोजननियमाः ।

अथ भोजनान्ते कर्तव्यमाह देवलः—

भुक्तोच्छिष्टं समादाय सर्वस्मात्किञ्चिदावपन् ।

उच्छिष्टभागधेयेभ्यः सोदकं निर्वपेद्भुवि ॥ इति ।

तत्र मन्त्रो माधवीये—रौरवे पूयनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ।

प्राणिनां सर्वभूतानामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥

आचारार्के तु मन्त्रान्तरमुक्तं तत्प्रयोगे वक्ष्यते । ततः किं कर्तव्यमि-

त्यत आह यमः—अमृतापिधानमसीत्यपश्चान्ते पिबेद्विजः । तत्र विशे-

पमाह देवलः—

अर्धं पीत्वा तु गण्डूषमर्धं त्याज्यं महीतले ।

रसातलगता नागास्तेन प्रीणन्ति नित्यशः ॥

गण्डूषमुत्तरापोशनम् । इदं चाप्रक्षालितहस्तेन कार्यम् । तदुक्तं तेनैव—

हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेत्पापमोहितः ।

स देवं चैव पित्र्यं च आत्मानं चैव घातयेत् ॥

काशीखण्डेऽपि—अमृतापिधानमसीत्येवं प्राश्योदकं सकृत् ।

पीतशेषं क्षिपेद्भूमौ तोयं मन्त्रमिमं पठन् ॥

अप्रक्षालितहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ।

रौरवे पूयनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥

अर्धिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ।

प्राणामिहोत्रे—पवित्रं ग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत् ।

पात्रे विनिक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पङ्क्तिर्वृषकः ॥

उत्तरापोशनाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं महाभारते—

यद्युत्तिष्ठत्यनाचान्तो भुक्तघानासनात्ततः ।

सद्यः स्नानं प्रकुर्वीत सोऽन्यथाऽप्रयतो भवेत् ॥

शातातपः—आचम्य पात्रमुत्सार्य किञ्चिदार्द्रेण पाणिना ।

भोजनपात्रे यदि लवणं शिष्टं भवेत्तदा तत्पात्रमस्पृशन्वामहस्तेन जलेन प्लावयेद्यदि न प्लावयेत्प्राणायामत्रयमष्टोत्तरशतगायत्रीजपश्चोत्तरापोशनानन्तरं भोजनपात्रस्पर्शं स्नानं प्राणायामश्चेति संस्काररत्नमालायाम् । पारिजात आचार्यः—

न भुक्तभाजने कुर्यात्करप्रक्षालनं नरः ।

नोत्थाय क्षालयेद्द्वस्तं पीत्वा भुक्त्वा कदाचन ॥ इति ।

गद्यध्यासः—ततस्तृप्तः सन्नमृतापिधानमसीत्यपः प्राश्य तस्माद्देशान्मनागपसृत्य विधिवदाचामेदिति । स चाऽऽचमनप्रकारो देवलेन दर्शितः—

भुक्त्वाऽऽत्तमेद्यथोक्तेन विधानेन समाहितः ।

शोधयन्मुखहस्तौ च मृदद्भिर्धर्षणैरपि ॥

तच्च धर्षणं तर्जन्या न कार्यम् । तदाह गौतमः—

गण्डूषस्याथ समये तर्जन्या वक्त्रचालनम् ।

कुर्वीत यदि मूढात्मा रौरवे नरके पतेत् ॥

देवलः—आचम्य च ततः कार्यं दन्तकाष्ठस्य भक्षणम् ।

भोजने दन्तलग्नांश्च निर्हृत्याऽऽचमनं चरेत् ॥

दन्तलग्नमसंहार्यं लेपं मन्येत दन्तवत् ।

न तत्र बहुशः कुर्याद्यत्नमुद्धरणं प्रति ॥

भवेदाशौचमत्यर्थं तृणवेधाद्वृणे कृते ।

दन्तलग्ने कालान्तरप्रच्युते तु बीधायनः—

तस्यैवैव शुचिर्न पुनस्त्यागानन्तरमाचामेदिति । याज्ञवल्क्येन तु—
निगिरन्नेव तच्छुचिरिति चोक्तम् । अतः परित्यागनिगिरणयोर्विकल्पः ।

हस्तप्रक्षालनोत्तरं हस्तादौ स्नेहशेषेऽपि न दोषः । तथा च वृद्धपराशरः—

द्वावेवौष्ठौ श्मश्रुकरो स्नेहौ भोजनादनु ।

अदुष्टाञ्शक्तिजः प्राह बालवृद्धस्त्रियो मुखम् ॥

गण्डूपप्रक्षेपश्च कांस्यभाजने न कार्यः । तथाचाङ्गिराः—

गण्डूपं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने ।

भूमौ निक्षिप्य षण्मासान्पुनराहारमादिशेत् ॥

पुनराहारं पुनःकरणं गण्डूपसंख्या गण्डूपदेशश्च प्रागुक्तः । एत-
द्भोजनस्थाने हस्तप्रक्षालनं ब्रह्मचारिव्यतिरिक्तविषयम् । तथा चोक्तं
सायणीये—

अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा तत्र विशोधनम् ।

पादुकारोहणं चैव तिलैश्च पितृतर्पणम् ॥

अनूढोऽविवाहितो ब्रह्मचारीत्यर्थ इति पारिजाते । वस्तुतस्तु सर्वेषामवि-
शेषेण भोजनशालाया बहिः प्राङ्गणादौ हस्तादिक्षालनं तथैव शिटस-
माचारात् । अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न । तु इति वचनाच्चेति ।

हेमाद्रौ—न बहिर्जानुराचामेन्नाऽऽसनस्थो न चोत्थितः ।

भुक्त्वाऽऽसनस्थोऽप्याचामेन्नान्यकाले कदाचन ॥

इदं च द्विराचमनमिति प्रागुक्तम् । ततः किंकर्तव्यमित्यत आहात्रिः—

आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद्यावत्पात्रमनुद्धृतम् ।

उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावन्नो मृज्यते मही ॥

भूमावपि हि लितायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ।

आसनादुत्थितस्तस्माद्यावन्न स्पृश्यते मही ॥ इति ।

स्मृतिरत्नावल्याम् । हस्तौ निघृष्याद्भुष्टाभ्यामक्षणोरम्बु विनिक्षिपेत् ।

तत्र मन्त्रः—शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ ।

भोजनान्ते स्मरन्नक्षणोरद्भुष्टाग्राम्बु निक्षिपेत् ॥

आचारसार आश्वलायनः—

ततः शतपदं गत्वा दृष्ट्वाऽऽदित्यं शनैः शनैः ।

पाणिनोदरमालभ्य मन्त्रमेनं समुच्चरेत् ॥

शातातपः—स्वस्थः प्रशान्तचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः ।

अभीष्टदेवतानां च कुर्वीत स्मरणं ततः ॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं मयैतज्जरयत्वशेषम् ।

सुखं ममैतत्परिणामसंभवं फलत्वरीगं मम चास्तु देहे ॥

विष्णुः समस्तेन्द्रियदेवदेहिप्रधानभूतो भगवान्यथैकः ।

सत्येन तेनात्तमशेषमन्नमारोग्यमेतत्परिणाममेतु ॥

इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्यात्तथोदरम् ।

अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥

आश्वलायनाचार्यः—भुक्त्वा न धावेन्न हसेच्च नोच्चैः संभाषणं चरेदिति ।

वैद्ये तु—भुक्त्वाऽऽचम्य विधानेन कृतासनपरिग्रहः ।

अलोलः सुखमासीनो यावदन्नं प्रतिष्ठितम् ॥ इति ।

पुराणान्तरे—अगस्तिं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम् ।

आहारपरिपाकार्थं स्मरामि च वृकोदरम् ॥

आ(वा)तापी भक्षितो येन वा(आ)तापी च महाब(पि च तथेत्व)लः ।

अगस्त्यस्य प्रसादेन भोजनं मम जीर्यताम् ॥

ऋग्विधाने—यस्य भुक्तं न जीर्येत न तिष्ठेद्वा कदाचन ।

ध्यात्वा सोऽत्तारमन्नस्य अग्निरस्मीत्यृचं जपेत् ॥

अन्नस्यात्तारमग्निम् । एवं कुर्वतः फलमाहाऽऽचार्यः—

सर्वेषामेव यागानामात्मयागः परः स्मृतः ।

योऽनेन विधिना कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥

इति भोजनोत्तरकृत्यम् । अथ प्रयोगः—पाणिपादौ प्रक्षाल्य भोजन-
शालाया बहिरेव परिशिष्टोक्तप्रकारेण व्याहृतिभिर्वा द्विराचम्य शुचौ देशे

श्रीपर्ण्यादिश्लक्ष्णचतुष्पात्पीठे प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुखो वोपविश्य वर्तुलग्रन्थियुतं पवित्रं धृत्वा सति संभवे रत्नहिरण्यपाणिर्गन्धाक्षतमाल्यवान्पात्रपरिमितचतुरश्रमण्डलं जलेन विधाय तत्र सौवर्णरौप्यपलाशपत्राद्यन्यतमं प्रक्षालितं पात्रं संस्थाप्य परितो घृताद्यर्थं लघुपात्राणि च संस्थाप्य घृताभिघारिते पात्रे परिवेषणं कारयित्वा तस्मादन्नाद्दोग्रासार्थमन्नं पात्रान्तरे कृत्वा

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।

प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥

इतिमन्त्रेण गवे ग्रासं दत्त्वा जलं स्पृष्ट्वा इष्टदेवताभ्योऽन्नं निवेद्य प्राञ्जलिरन्नं प्रणम्यास्माकं नित्यमस्त्वेतदिति प्रार्थ्य ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवि०प्रचोदयात् । इत्यन्नमभ्युक्ष्य ॐ स्वादो पितो० भव । इत्यभिमन्त्र्य ॐ सत्यं त्वर्तेन परिपिश्रामीति दिवा । ॐ क्रतं त्वा सत्येन परिपिश्रामीति रात्रावैशानीमारभ्य प्रदक्षिणमन्नं परिपिच्य भोजनपात्रस्य दक्षिणतः पश्चाद्गुलं स्थलं त्यक्त्वा तत्रोदकधारां प्राक्संस्थां प्रत्यक्संस्थां वा कृत्वा तत्राऽऽर्द्रामलकमितघृतप्लुतान्नेन ॐ भूपतये नमः । ॐ भुवनपतये नमः । ॐ भूतानां पतये नमः ॐ धर्माय नमः । ॐ चित्रगुप्ताय नमः ।

ॐ यत्र कच संस्थानां क्षुत्तृणोपहतात्मनाम् ।

प्रेतानां तृप्तयेऽक्षयमिदमस्तु यथामुखम् ॥

इति प्रेतबलिं च, एवं बलिपट्टकं परिशिष्टमतादाद्यांस्त्रीनेव वा प्राक्संस्थं प्रत्यक्संस्थं वा दत्त्वा तथैवोपर्युदकधारां दत्त्वा तत्स्थानाद्गुलीनुद्धृत्य हस्तं प्रक्षाल्य स्वदक्षिणे गोकर्णाकृतिहस्ते वामेन मापपरिमितं जलमादाय वागहस्तमध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्भोजनपात्रमालभ्य

ॐ अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः ।

एवं ध्यात्वा तु यो भुङ्क्ते अन्नदोषैर्न लिप्यते ॥

इति ध्यात्वा समाहितमना मौनी ॐ अमृतोपस्तरणमसीति निःशब्दं पीत्वा घृतारक्तमन्नं बदरीफलमितं पूर्वोक्ततत्तद्गुलीभिः सर्वाभिर्वाऽऽदाय पट्टं प्राणाहुतीर्जुहुयात् । तत्र मन्त्राः । ॐ प्राणाय स्वाहा । प्राणायेदं न मम ॐ अपानाय स्वाहा । अपानायेदं० । ॐ व्यानाय

स्वाहा । व्यानायेदं० । ॐ उदानाय स्वाहा । उदानायेदं० । ॐ समा-
नाय स्वाहा । समानायेदं० । ॐ ब्रह्मणे स्वाहा । ब्रह्मण इदं० । न वा
त्यागाः । ततः सव्यहस्तं प्रक्षाल्य शिखां विमुच्य हस्तं प्रक्षाल्य यथेष्टं
लौकिकवाक्यान्यनुच्चारयन्कवले कवल इष्टदेवतां स्मरन्भोजनं कुर्यात् ।
प्राणाहुत्यूर्ध्वं मौनपात्रधारणयोरानित्यता । जीवत्पितृकस्य जीवज्ज्येष्ठ-
भ्रातृकस्य च प्राणाहुतिपर्यन्तमेव मौनपात्रधारणे । नोर्ध्वम् । भोजनान्ते
शिखां बद्ध्वा भुक्तशेषात्सर्वस्मादन्नात्किञ्चिदादायाऽऽघ्राय

अस्मत्कुले मृता ये च पितृलोकविवर्जिताः ।

भुञ्जन्तु मम चोच्छिष्टं पात्राच्चैवं भुवि क्षिपेत् ॥

इति पात्रदक्षिणे भूमौ विसृज्याप्रक्षालित एव पाणावुत्तरापोशनार्थं
जलं पूर्ववदादाय ॐ अमृतापिधानमसीत्यर्धं पीत्वाऽर्धं

रौरवे पूयनिलये पद्मानुदनिवासिनाम् ।

अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

इति मन्त्रेण पितृतीर्थेन भूमौ निषिच्य पवित्रग्रन्थि विस्रस्य भूमौ
त्यक्त्वाऽङ्गणादावागत्य मुदद्भिः पाणिमुखं संशोध्य वामभागे षोडश
गण्डूपाङ्कत्वा हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य भोजनपात्रनिष्काशनं तद्देश-
मार्जनं च कारयित्वा पूर्ववद्विराचम्य मार्जितभूमिं संस्पृश्य जलेन
हस्तौ निघृष्य तज्जलमङ्गुष्ठाभ्यामक्षणोर्निषिञ्चेत् । तत्र मन्त्रः—

शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ ।

भोजनान्ते स्मरन्नक्षणोरङ्गुष्ठाग्राम्बु निक्षिपेत् ॥

ततः शतपदानि गत्वा स्वासन उपविश्य । अगस्तिं कुम्भकर्णं०
आ(वा)तापी० इति श्लोकद्वयं पठन्नुदरं परिमृज्य, अग्निरस्मीति मन्त्रस्य
गाथिनो विश्वामित्रो मरुतस्त्रिष्टुप्, भुक्तान्नपाचनार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ।

इति उदरमालभञ्जयेत् ।

इति माटे इत्युपनामकश्रीनारायणभट्टात्मजत्र्यम्बकविरचित आचा-
रेन्दौ भोजनविधिः ।

अथ भोजनविषये किञ्चिदुच्यते । तत्र भोजने परस्परं स्पर्शं स्मृति-
सारे—

यदि भोजनकाले तु ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।

त्यक्त्वा तदन्नमुत्थाय प्राणायामत्रयं चरेत् ॥

प्रयोगदर्पणे तु—यदि भोजनकाले तु ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।

तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

इत्युक्तम् । उच्छिष्टान्नेन स्पर्शं तु पाराशरीये शङ्कः—

उच्छिष्टलेपसंस्पर्शं प्रक्षाल्यान्येन वारिणा ।

भोजनान्ते नरः स्नात्वा गायत्री त्रिशतं जपेत् ॥

अत्रापि भोजनं तावतोऽन्नस्यैवेति चन्द्रिकाकारः । भोजनपात्रस्यो-
च्छिष्टसंस्पर्शं त्वाह व्यासः—

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं स्पृष्टपात्रं विहृत्य च ।

सर्वान्नं पूर्ववत्क्षिप्त्वा भोजयेत्तु द्विजोत्तमम् ॥ इति ।

अयमेव न्यायः प्रायश्चित्तान्तरप्रसक्तावप्यनुसरणीयः । यथा भोज-
नसमय उच्छिष्टपात्रममेधोपहतं चेत्तत्पात्रमुच्छृत्य भूमिं गोमयेनोपलि-
प्यान्यपात्रं पूर्ववदासाद्य तस्मिन्सर्वान्नं पूर्ववत्क्षिप्त्वा विप्रं भोजयेदिति ।
पारिजाते पराशरः—

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।

उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥

रजनीमुपोष्येति रात्रिभोजनं परित्यजेदित्यर्थः । बृहस्पतिः—

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च मक्षिकामशकादयः ।

मार्जारश्चैव दुर्वा च मारुतश्च सदा शुचिः ॥

उच्छिष्टसमयेऽनुष्ठानसमये च मार्जारस्पर्शं स्नानमिति मिताक्षरायाम् ।
इदं वनमार्जारविषयमिति केचित् । भोजनसमये मार्जारपुच्छस्पर्शं
स्नानमन्याङ्गस्पर्श आचमनमिति प्रायश्चित्तमञ्जर्याम् । भुञ्जानस्य क्षुञ्ज-
भणयोस्त्वाह विष्णुः—

विप्रभोजनकाले तु क्षुते वा जृम्भणे तथा ।

अन्यो जलं गृहीत्वा तु तस्य मूर्धनि विन्यसेत् ॥

पृच्छेत्तं जन्मसदनं दिवा वा यदि वाऽदिवा ।

संग्रहेऽपि—क्षुतं भोजनमध्ये च जायते यस्य कस्यचित् ।

आदित्यं जन्मभूमिं च स्मरेत्प्रोक्षितमस्तकः ॥

शिङ्कापतनजृम्भासु जीवोत्तिष्ठाङ्गुलिध्वनिः ।

शत्रोरपि च कर्तव्यमन्यथा ब्रह्महा भवेत् ॥

ज्योतिर्निबन्धे—श्रुतस्खलनजृम्भासु नृणामायुः प्रहीयते ।

तदेतरेण कर्तव्यो जीवथूर(थश्चा?)ङ्गुलिध्वनिः ॥

मदनरत्ने विष्णुपुराणे च—जीवेति क्षुवतो ब्रूयाज्जीवेत्युक्तः सहेति च ।

आश्वलायनगृह्ये तु—क्षुत्वा जृम्भित्वा मनोज्ञं दृष्ट्वा पापकं गन्धमाघ्रा-
याक्षिस्पन्दने कर्णध्वनने च सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन
सुश्रुत्कर्णाभ्यां मयि दक्षक्रतू इति जपेदिति ।

अत्र वमननिर्णयः पारिजाते—

अश्रन्भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिर्वा वान्तो न स्नानमाचरेत् ।

अन्यदा वमने स्नायात्तथा शोकाश्रुपातने ॥

अन्यदा परेद्युः । अथ परान्नभोजननिषेध उच्यते । तत्र सायणीये
मनुः—

उपासते ये गृहस्थाः परपाकं ह्यबुद्धयः ।

तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नाद्यदायिनाम् ॥

पाद्मे—परान्नं परपाकं च नित्यं धर्मरतस्त्यजेत् ।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्नोन्नमनं न सप्ताचरेत् ॥

नरकं दारुणं श्रुत्वा परान्ने च मतिं त्यजेत् ।

यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ॥

इदं च निन्दितामन्त्रणादिविषयमनिन्दितेनाऽऽमन्त्रितो नापक्रामे-
दिति आचारप्रकाशे लिखितश्रुतेः । प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां
ब्राह्मणो भुञ्जीतेति गौतमोक्तेः । परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणादृत
इति याज्ञवल्कीयवचनाच्च । अत्र निन्द्या उक्ता विज्ञानेश्वरीये—

कदर्यबन्धचौराणां क्लीबेरङ्गावतारिणाम् ।

वैणाभिश्चस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् ॥

चिकित्सकातुरकुन्द्रपुंश्चलीमतविद्विषाम् ।

क्रूराग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम् ॥

अदीरास्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ।

शस्त्रविक्रयिकर्मारतन्तुवायश्ववृत्तिनाम् ॥

कन्दुपक्वादि च कलौ निषिद्धम् । [*शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्ध-
सारिणाम्(?) । भोज्यान्नता गृहस्थस्येत्याद्युक्त्वा]

एतानि लोकगुण्यर्थं कलेरादौ महात्माभिः ।

निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः ॥

इति शातातपोक्तेः । शङ्खः—नाऽऽपणीयान्नमद्यादिति । अस्यापवाद
आचारसारे—अपूपाः सक्तवो धानाः सूक्तं दधि घृतं मधु ।

एतत्पण्यगतं भोज्यं भाण्डलेपो न चेद्भवेत् ।

इति निन्द्यानिन्द्यविवेकः । एवं विचार्यानिन्द्यगृहेषु भोक्तव्यम् । तत्रो-
पवेशनविषये विशेषमाह पैठीनसिः—नानियुक्तोऽग्न्यासनं गच्छेदिति ।

भोक्तुमिति शेषः । शङ्खः—नाग्न्यासनस्थः पूर्वमश्रीयादिति ।

गोभिलः—एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।

यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं नाश्रीयुरितरेऽप्यनु ॥

मोहात्तु भुक्तवांस्तत्र कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ।

एतज्जलादिना पङ्क्तिभेदाकरणविषयम् । तदाहाभिः स्मृतिरूपेण—

यदि कश्चित्तु विसृजेत्तस्य पैङ्क्तिं गणाद्विजः ।

प्राक्प्रवेश्य जलं स्मृत्वा गङ्गां वा यमुनां च वा ॥

आसनादुत्थाने विशेषमाह स एव—

एकपङ्क्त्युपविष्टानां भुञ्जतामासनाद्विजः ।

यद्येकः कश्चिदुत्तिष्ठेच्छिष्टा नाश्रीयुरेव ते ॥

यद्यप्यज्ञस्तदोत्तिष्ठत्यापन्नस्तु यदा भवेत् ।

तस्य चोभयतः स्मृत्वा नदीं संस्त्रावयेज्जलम् ॥

अनिन्द्यभोजनेऽपि निषिद्धकालमाह शातातपः—

वनस्पतिगते सोमे परान्नं ये तु भुञ्जते ।

तेषां मासगतं पापं दातारमनुगच्छति ॥

इति परान्नभोजनविधिः । अथ परान्नापवादः । पारिजाते संग्रहे—

मातापित्रोर्गुरोरन्नं यदन्नं मातुलस्य च ।

श्वश्रुश्वशुरयोरन्नं न परान्नं प्रकीर्तितम् ॥

धर्मप्रदीपे—पितुः पुत्रस्य यच्चान्नं भ्रातृगुर्वोस्तथैव च ।

श्वशुरान्नं मातुलान्नं न परान्नं प्रकीर्तितम् ॥

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः । ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

१ ख. पङ्क्तिगणाद्विजः । २ ग. गणाद्विजः ।

गुरवश्चोक्ताः शूलपाणिना—

आचार्यस्तु पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ ॥
वर्णश्रेष्ठः पितृव्यश्च पुंस्येते गुरवो मताः ।
उपनेताऽन्नदाता च भयव्राता धनप्रदः ॥
धर्मशास्त्रोपदेष्टा च गीताशास्त्रोपदेशकः ।
बुद्धिप्रद उपाध्यायश्चैतेऽपि गुरवो मताः ॥

बाराहे चातुर्मास्यमाहात्म्ये—

अनापदि तु योऽश्नाति परान्नं द्रव्यलोभतः ।
अवश्यं तु भवेत्तस्मै धर्महानिर्न संशयः ॥
बान्धवानां तु सौहार्दाद्योनिर्बन्धतोऽपि वा ।
भुञ्जीतास्य परान्नानि नैवं धर्मो विहीयते ॥
पितुर्भ्रातुः पितृव्यादेः सपिण्डस्य गुरोरपि ।
दौहित्रश्चशुरादीनां स्वस्त्रीसंबन्धिनां तथा ॥
मातामहस्य तत्सूनोर्मातृष्वस्रादिकस्य च ।
यद्यत्प्रीत्याऽन्नमश्नाति परान्नं दोषकृन्न हि ॥ इति ।

अथ निन्द्यान्नभोजनप्रायश्चित्तमाह ऋग्विधाने शौनकः—

पर्जन्यवातावर्गं च शतवारं जपेज्जले ।
सूतकस्य गृहे भुङ्क्ते तदा पापात्प्रमुच्यते ॥
इदं नमो जपेन्मन्त्रं सहस्रं चेन्न कल्मषम् ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो दृष्ट्वा भुक्तिकाले रजस्त्रियाम् ॥
अग्निं नमो जपेन्मन्त्रं दशवारं विशेषतः ।
अन्त्यजानां ध्वनिं श्रुत्वा पश्चाद्भुङ्क्ते न कल्मषम् ॥
अज्येष्टासो जपेन्मन्त्रं दशवारं न कल्मषम् ।
श्वानादिदर्शनं कृत्वा पश्चाद्भुङ्क्ते यदा तदा ॥
आ ये तस्थुर्जपेन्मन्त्रं दश वै विष्णुमन्दिरे ।
हस्तदत्तं यदा भुङ्क्ते तदा पापात्प्रमुच्यते ॥
ते अज्येष्टा जपेन्मन्त्रं शतं विष्णुबालये सदा ।
दिवा द्विर्भोजनं कृत्वा तस्मान्मुच्येत कल्मषात् ॥

हयो न प्रजपेन्मन्त्रं दशवारं जले तथा ।
 रात्रौ द्विर्भोजनं कृत्वा कल्मषाच्च प्रमुच्यते ॥
 त्वं सुमेपं जपेन्मन्त्रं दशवारं शिवालये ।
 अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां दिवा भुङ्क्ते न कल्मषम् ॥
 सपर्वतो जपेन्मन्त्रं संक्रान्तौ दश चेज्जले ।
 पर्वद्वये भानुवारे रात्रौ भुङ्क्ते न दुष्कृतम् ॥
 स हि द्वरो जपेन्मन्त्रं शतं वै विष्णुसंनिधौ ।
 एकादश्यामहोरात्रं भुङ्क्ते यदि न पातकम् ॥
 आपः पृणीत मन्त्रं च शतवारं न किल्बिषम् ।
 रात्रौ भुङ्क्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु ॥

वत्सरे प्रतिसंवत्सरे ।

अस्तेव सुजपेन्मन्त्रं सहस्रं वै न किल्बिषम् ।
 प्रमादाज्ज्ञानतो भुङ्क्ते गणान्नं तु यदा तदा ॥
 यज्ञा यज्ञा जपेत्सूक्तमेकरात्रं जलेऽपि वा ।
 गणकान्नं यदा भुङ्क्ते तदा पापात्प्रमुच्यते ॥

गणको नक्षत्रसूची ।

अच्छा न इन्द्रसूक्तं तु एकवारं जले जपेत् ।
 विधुरान्नं यदा भुङ्क्ते तदा पापात्प्रमुच्यते ॥
 विधुरोऽत्रापुत्रवान् । सपुत्रविधुरो गृहिवदिति सिन्धाबुक्तेः ।
 ईळे अग्निं जपेन्मन्त्रं दशवारं यदा तदा ।
 पञ्चयज्ञविहीनस्य गृहे भुङ्क्ते न पातकम् ॥

चन्द्रिकायां बृहस्पतिः—नवश्चाद्धस्य यच्छिष्टं ग्रहपर्युपितं च यत् ।
 दंपत्योर्भुक्तशेषं तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

पारिजाते—परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ।

अपचस्य च भुक्त्वाऽन्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥

एतेषां लक्षणमुक्तं तत्रैव—

गृहीत्वाऽग्नीन्समारोप्य पञ्चयज्ञान्नं निर्वपेत् ।
 परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ॥
 पञ्च यज्ञान्स्वयं कृत्वा परान्नमुपजीवति ।
 सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः ॥

गृहस्थधर्मवृत्तो यो ददातिपरिवर्जितः ।

ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥

ददातिपरिवर्जितो दानवर्जितः । पराशरः—

दुराचारस्य विप्रस्य निपिन्द्राचरणस्य च ।

अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥

एतदशक्तौ स एव—सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवेदिनः ।

भुक्त्वाऽन्नं मुच्यते पापादहोरात्रान्तरान्नरः ॥

एकस्मिन्दिने सकृदसकृद्वा दुर्ब्राह्मणगृहे भोजनेन यत्कृतं पापं तस्य वेदान्तिगृहे भोजनेन शुद्धिः । यद्वैकस्मिन्दिने संप्राप्तं यत्पिपीलि-
कावधादिक्षुद्रपापजातं तत्सर्वं शिष्टान्नभोजनेन शुध्यतीति माधवः ।

बीधायनस्तु साधारणं प्रायश्चित्तमाह—

अभोज्यानां च सर्वेषामभोज्यान्नस्य भोजने ।

ऋग्भिस्तरत्समन्दीभिर्मार्जनं पापशोधनम् ॥

आश्वलायनगृह्योक्तं साधारणं प्रायश्चित्तं तु अग्रे शयनप्रकरणे वक्ष्यते ।

ऋग्विधाने—सप्तजन्मार्जितं पापं कृत्वा चाभक्ष्यभक्षणम् ।

तद्विष्णोरित्यपां मध्ये सकृज्जप्त्वा विशुध्यति ॥

इत्याचारेन्दौ निन्द्यान्नभोजनप्रायश्चित्तम् ।

इति माटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्र्यम्बकविरचित आचारेन्दाव-
ष्टधाविभक्तदिनस्य पञ्चमभागकृत्यं समाप्तम् ।

अथ षष्ठसप्तमभागकृत्यमाह दक्षः—

भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ।

इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥

अत्र यद्यपि षष्ठसप्तमभागयोरन्नपरिणामोपयोगीतिहासादिश्रवणक-
र्मणी अविशेषेणोक्ते तथाऽपि क्रमश्च देशसामान्यादितिन्यायबलेन
षष्ठेऽन्नपरिणामोपयोगि कर्म कर्तव्यं सप्तमे त्वितिहासश्रवणम् । महेशा-
दयोऽप्येवम् । अत एव मार्कण्डेयपुराणे—

भूयोऽप्याचम्य कर्तव्यं ताम्बूलस्य च भक्षणम् ।

श्रवणं चेतिहासस्य ततः कुर्यात्समाहितः ॥

तत्र तावत्ताम्बूलदानविधिर्मुहूर्तचिन्तामणिटीकायां स्मृतौ—

ताम्बूलं सुष्ठु यो दद्याद्वाह्मणेभ्योऽतिभक्तितः ।

मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥

फलेन तृप्यते ब्रह्मा पत्रेण भगवान्हारिः ।

चूर्णमीश्वरतृप्त्यै स्यात्ताम्बूलाशनदानतः ॥

वसिष्ठः—सुपूगं च सुपत्रं च चूर्णेन च समन्वितम् ।

अदत्त्वा द्विजदेवेभ्यस्ताम्बूलं वर्जयेद्बुधः ॥

तत्र दातव्यपूगफलसंख्यामाह स एव—

एकपूगं सुखारोग्यं द्विपूगं निष्फलं भवेत् ।

अतिश्रेष्ठं त्रिपूगं तु अधिकं नैव दुप्यति ॥

अन्यच्च—एकद्वित्रिचतुष्पञ्च पञ्चभिः पूगफलैः क्रमात् ।

लाभोऽलाभः सुखं दुःखमायुर्मरणमेव च ॥

ताम्बूलभक्षणे फलपत्रप्रमाणमुक्तं स्मृतिमञ्जर्याम्—

पूगद्वयेन ताम्बूलं न दद्यान्न च खादयेत् ।

दानं तु निष्फलं प्रोक्तं खादनं पुण्यनाशनम् ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विपूगं वर्जयेत्सुधीः ।

एकपूगं त्रिपूगं वा दानं खादनमुत्तमम् ॥

वत्सरार्धात्परं पूगं कठिनं च सुपाचितम् ।

लाक्षावदन्तरे यस्मिंस्तत्पूगं खादयेत्सुधीः ॥

वल्लीमध्ये च संभूतं पक्षात्प्राग्लूनपत्रकम् ।

चूर्णं पाषाणसंभूतं ताम्बूलं खादयेत्सुधीः ॥

प्रातः पूगस्य पर्णानि त्रीणि त्रीणि च खादयेत् ।

मध्यंदिने तु चत्वारि पू(प)र्णानि क्रमुकस्य च ॥

रात्रौ पूगस्य पर्णानि पञ्च पञ्च यथाक्रमात् ।

ज्योतिर्निबन्धे—द्वात्रिंशत्पर्णकं चैव दद्यात्सर्वमहीभुजे ।

चतुर्विंशतिपर्णं च सामन्तानामनुस्मृतम् ॥

दशाष्टपर्णकं देयं जामातृणां विशेषतः ।

द्वादशपर्णं विदुषे बन्धूनां दशपर्णकम् ॥

अष्टपर्णं च सर्वेषां सामान्येन प्रकीर्तितम् ।
त्रिपर्णं तु न दातव्यमेकपर्णं तथैव च ॥
षट्पर्णं चैव दातव्यं रिपूणां च विशेषतः ।

ग्रन्थान्तरे—पञ्च सप्ताष्ट पर्णानि दश द्वादश एव वा ।
दद्यात्स्वयं च गृह्णीयादिति कैश्चिदुदीरितम् ॥

ज्योतिर्विबन्धे—प्रातःकाले फलाधिक्यं चूर्णाधिक्यं तु मध्यतः ।
निशि पर्णाधिकं भक्षेत्तस्य लक्ष्मीर्विवर्धते ॥

स्मृतिमञ्जर्याम्—

पूगं च शकलीकृत्य द्रवं संमृज्य पर्णकम् ।
पिच्छिलं चूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं खादयेत्सुधीः ॥

अन्यच्च पारिजाते—

क्रमुकं पञ्चनिष्कं स्यात्ताम्बूल्याश्च पलद्वयम् ।
गुञ्जाद्वयं चूर्णमानं ताम्बूलक्रममुत्तमम् ॥
जातीलवङ्गकङ्कोलकर्पूरकटुकैः सह ।
रुचिर्वैशद्यसौगन्ध्यमिच्छन्वक्त्रेण धारयेत् ॥

वसिष्ठः—पर्णमूले भवेद्याधिः पर्णाग्रे पापसंभवः ।
चूर्णपर्णं हरेदायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥
तस्मादग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः ।
चूर्णपत्रं वर्जयित्वा ताम्बूलं भक्षयेत्सुधीः ॥

व्यासः—तर्जन्या चूर्णमादाय ताम्बूलं न तु खादयेत् ।
यदि वा खादयेन्मूढो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
कनिष्ठाऽनामिकामध्यातर्जन्यङ्गुष्ठयोगतः ।
शोको हानिस्तथा मृत्युरनैश्वर्यायुषी तथा ॥

स्मृत्यन्तरे—अङ्गुष्ठचूर्णसंयुक्तं पर्णपृष्ठे तु लेपनम् ।

तत्पत्रं खादयेत्तेन सोमपानं दिने दिने ॥

ग्रन्थान्तरे तु—मध्यमाङ्गुलिनाऽऽदाय चूर्णं पर्णस्य लेपयेत् ।

अत्र कनिष्ठिकानामिकातर्जन्यो निषिद्धाः । मध्यमाया विधिनिषेधो-
भयरूपत्वान्मध्यमत्वम् । अङ्गुष्ठः प्रशस्तः । आचारप्रकाशे व्यासः—

पर्णाग्रं पर्णपृष्ठं वा चूर्णपर्णं द्विपर्णकम् ।

रात्रौ खादिरताम्बूलं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥

पारिजाते वसिष्ठः—अकृत्वा तु मुखे पर्णं पूगं खादति यो नरः ।

सप्तजन्मदरिद्री स्यादन्ते विष्णुं न संस्मरेत् ।

अत्र यदा ताम्बूलभक्षणं क्रियते तदा पूर्वमेव मुखे पूगं क्षिप्त्वा पश्चात्पर्णादिपदार्थक्षेपणं न कार्यं किं तु पर्णस्य मुखे निधानोत्तरं पूगादि भक्षयेत् सह वा सर्वपदार्थक्षेपणं कार्यमित्यर्थ इति । ताम्बूलाभावेऽपि केवलपूगं न भक्षणीयं किं तु लवङ्गादिना पूगखण्डं संमिश्र्य भक्षयेत् ।

क्षीरमध्ये यल्लवणमुच्छिष्टो घृतभोजनम् ।

केवलं लवणं पूगं तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥

इत्याचारप्रकाशधृतवचने केवलपूगभक्षणे दोषदर्शनात् । शिष्टाचारोऽप्येवम् । अत्र क्रमुकचूर्णयोः पाकदोषो नास्तीत्युक्तं कमलाकराद्विके—

हरिद्रा गोरसं चूर्णं पूगं कौशेयभैक्षवम् ।

नैतेषां पाकदापोऽस्ति वीरं लवणमौषधम् ॥

चूर्णस्थं पर्णगतं च जलं न दुष्टम् । तदुक्तं संग्रहे—

यच्च पर्णगतं तोयं यत्तैले यच्च वा गुडे ।

चूर्णे पयसि यच्चैव तज्जलं नैव दोषकृत् ॥

ताम्बूलसेवनगुणमाह वैद्यः—

ताम्बूलं कटु तिक्तमुष्णविशदं क्षारं कपायान्वितं

वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं कामाग्निसंदीपनम् ।

स्त्रीणां भाषणभूषणं रतिकरं शोकस्य विच्छेदनं

ताम्बूले विहितास्त्रयोदश गुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ॥

पारिजात आश्वलायनः—विद्याकामोऽनिशं रात्रौ ताम्बूलं न तु भक्षयेत् ।

तत्रैव वसिष्ठः—यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च रजस्वला ।

प्रत्येकं मांसतुल्यं स्यान्मेलनं सुरया समम् ॥

क्रमुकादेः प्रत्येकं भक्षणं मांससमम् । समुदितं तु सुरया सममित्यर्थः ।

जाबालिः—दन्तधावनताम्बूलं क्षौराभ्यङ्गमभोजनम् ।

रत्यौषधिपरान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥

अत्रापवादः कृष्णभट्टीये—

नित्यश्राद्धे त्वमाश्राद्धे श्राद्धे चापरपक्षिके ।

ताम्बूलचर्वणे दोषो नेति शातातपोऽब्रवीत् ॥

इदं वचनं निर्मूलमिति केचित् । तन्न । जाबालिना श्राद्धसामान्यतो निपिन्द्रस्य ताम्बूलस्य वचनान्तरेण केषु चिच्छ्राद्धेषु प्रतिप्रसवेन विरोधाभावात् । अन्यत्रापि—

मृताशौचे तथा श्राद्धे मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।

उपवासे च ताम्बूलं दिवा रात्रौ च वर्जयेत् ॥

पक्षश्राद्धे तथा दर्शे युगमन्वन्तरादिषु ।

श्राद्धं निर्वर्त्य भुक्त्वा तु ताम्बूलं स्वादयेद्बुधः ॥ इति ।

इत्याचारेन्दौ ताम्बूलभक्षणविधिः । ताम्बूलभक्षणोत्तरं कर्तव्यमाह वैद्यः—

समास्वादितताम्बूलो भुक्तमात्रेरितं कफम् ।

धूमेनापास्य खाद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः ॥

ततः शतपदं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत् ।

वामे तु मात्रा द्वात्रिंशद्वक्षिणे पञ्चविंशतिः ॥

मध्ये द्वादश चेत्येष कालः संवेशने स्मृतः ॥ इति ।

मात्रालक्षणं प्राणायामप्रकरण उक्तम् । आयुर्वेदे—

भुक्तवोपविशतस्तुन्दं बलमुत्तानशायिनः ।

आरोग्यं वामकुक्षौ स्यान्मृत्युर्धावति धावतः ॥

वैद्यः—आसनं शयनं वाऽपि नेच्छेद्भुक्त्वा द्रवोत्तरम् ।

पीत्वा भुक्त्वाऽऽतपं वह्निं यानप्लवनवाहनम् ॥

अतिहास्यासनं स्वप्रधावनं च विवर्जयेत् ।

शब्दं रूपं च गन्धं च स्पर्शं यन्मनसः प्रियम् ॥

भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ।

न भुक्तमात्र आयस्येन्न निपिन्द्रं लभेत्सुखम् ॥

धर्मोत्तराभीरथ्याभिः कथाभिस्त्रिगुणात्मभिः ।

मध्यं दिनस्य गमयेदिष्टशिष्टसहायवान् ॥

सुजनैः सङ्गतं कुर्याद्धर्माय च सुखाय च ।

अत्र सुजनानाह स एव—

बुद्धिर्विद्यायशःशीलधैर्यस्मृतिसमन्वितान् ।
 त्यागविज्ञानसत्त्वाढ्यान्महापक्षान्प्रियंवदान् ॥
 वृद्धोपसेविनः स्निधान्स्वभावज्ञानगतव्यथान् ।
 सुमुखान्सर्वभूतेषु प्रशान्ताञ्छंसितव्रतान् ॥
 धीरान्सन्मार्गनिरतान्पुण्यश्रवणदर्शान् ।
 सद्दंशजातानद्वेष्यान्सहायान्परिकल्पयेत् ॥ इति ।

अत्र दुष्टानाह स एव—

पापवृत्तवचःसत्त्वान्सूचकान्कलहप्रियान् ।
 धर्मोपहासिनो लुब्धांश्चपलात्रिपुसेविनः ॥
 परापवादनिरतान्परवृद्धौ द्विषः खलान् ।
 पाखाण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिनः शठान् ॥
 लोकभूपतिविद्विष्टान्निघृणान्धर्मदूषकान् ।
 हेतुकान्बकवृत्तींश्च दुर्जनान्दूरतस्त्यजेत् ॥ इति ।

अत्रिः—इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चाभ्यासेत् ।
 वृथाविवादवाक्यानि परिवादांश्च वर्जयेत् ॥
 दिवा स्वापं न कुर्वीत स्त्रियं चैव विवर्जयेत् ।
 आयुः क्षीणं दिवा निद्रा दिवा स्त्री पुण्यनाशिनी ॥ इति ।

व्यासोऽपि—इतिहासपुराणाभ्यां छन्दोऽर्थमुपबृंहयेत् ।
 ततः संध्यामुपासीत पूर्वाक्तविधिना द्विजः ॥

विज्ञानेश्वरीये—अहःशेषं समासीत शिटैरिटैश्च बन्धुभिः ।

इति माटे इत्युपनामकश्रीनारायणभट्टात्मजत्रयम्बकविरचित आचार-
 रेन्दौ पठसप्तमभागकृत्यम् ॥

अथाष्टमभागकृत्यमाह दक्षः—

अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः संध्या ततः पुनः ।

व्यासः—सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गस्याविरोधिना ।

दिनं नयेत्ततः संध्यामुपतिष्ठेत्समाहितः ॥

तत्र सायंसंध्याकालमाह पारिजाते स्मृतिसंग्रहकारः—

दृश्यमाने रवौ चैकमदृश्ये द्विमुहूर्तकम् ।
संध्याकालः स विज्ञेयस्तत्र सर्वं समाचरेत् ॥

दक्षस्तु—रवेरस्तमयात्पूर्वं घटिकैका यदा भवेत् ।
सायंसंध्यामुपासीत कुर्याद्धोमं च पूर्ववत् ॥

सायंस्नानं गृहस्थभिन्नस्यैव । तदुक्तं संध्यारत्ने—

प्रातर्नित्यं शुचिभिरुदकैः स्नानमुक्तं द्विजानां
मध्याह्नेऽपि स्मृतमिह बटोर्दृश्यते शक्तता चेत् ।
सायंकाले मुखकरपदक्षालनं स्यात्तदर्थं
स्नानं कैश्चिन्मुनिभिरुदितं गेहिवर्जं द्विजातेः ॥ इति ।

अग्निहोत्रिणस्तु त्रिकालं स्नानमावश्यकं तदुक्तमाश्वलायनेन—

स्नानं त्रिपवणं कुर्युर्यत्नादेवाग्निहोत्रिणः । इति ।

सायंसंध्यायां विशेषो लिख्यते । तत्राऽऽश्वलायनः—

घटिकैकाऽवशिष्टा स्याद्रवेरस्तमितस्य च ।
प्रक्षाल्य पाणिपादं च द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ।
प्राङ्नासीनः समाचम्य प्राणायामपुरःसरम् ॥
पूर्वोक्तविधिना चैव सायंसंध्यां समाचरेत् ।

प्राक् प्राङ्मुखः । सूर्यास्तोत्तरं गौणकाले सायंसंध्याकरण उद-
ङ्मुखतैव । रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्वेवकार्यं सदैव हि । इति गौतमो-
क्तेरिति केचित्तदसमञ्जसम् । आश्वलायनसूत्रगृह्यपरिशिष्टाश्वलाय-
नस्मृत्यादिविरोधात् । आचमनाद्युपसंग्रहणान्तं प्रातःसंध्याविधि-
मुक्त्वा तमेव विधिं सायंसंध्यायामतिदिशत्याचार्यो गृह्यपरिशिष्टे—
एवं सायम् । विशेषस्तु सूर्यश्चेतिमन्त्रे सूर्यस्थानेऽग्निपदमावपेदहश्च
रात्रिपदे सत्ये ज्योतिषीत्यन्ते ब्रूयात् । जपश्चाधार्स्तमिते मण्डल आनक्ष-
त्रदर्शनादासीनेनेति । अत्राऽऽश्वलायनानां तिष्ठतामेवाद्वर्धदानमिति पूर्वं
प्रातःसंध्याप्रकरणे प्रपञ्चितम् । अत्र जलसामीप्येऽपि भूमावेवाद्वर्धदा-
नम् । सायं तूपविशन्भुवीति यमवचनात् । अर्धदाने प्रत्यङ्मुखता,
आदित्यामिमुखः स्थित्वेति परिशिष्टोक्तेः ।

अञ्जल्या अप आदाय गायत्र्या ह्यभिमन्त्रितम् ।

रवेरभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं संध्ययोः क्षिपेत् ॥

इति शौनकोक्तेश्च । वायव्यापश्चिमसंध्यभिमुखोऽर्घ्यं दद्यादिति चन्द्रिकायाम् । जपे विशेषः कारिकायाम्—

अर्धास्तमित आदित्ये पश्चिमस्य य उत्तरः ।

भागस्तन्मुख आसीनः सावित्रीं वाग्यतो जपेत् ॥ इति ।

उत्तरः प्रतीच्या अष्टमो भाग इत्यर्थः । अत्र भगवान्—

धृत्वा पवित्रं संप्रोक्ष्य जपस्थानं कुशोदकैः ।

आधारादीन्मस्कृत्य कुशाग्रैरासनं ततः ॥

बद्ध्वा पद्मासनं वाऽपि स्वस्तिकं वा यथाविधि ।

दिशोऽष्टधा विभक्तायाः प्रतीच्या भागसप्तकम् ॥

हित्वा दक्षिणतोऽन्यस्तु योऽष्टमो भाग उत्तरः ।

अस्याभिमुखतो विप्रो भूत्वा प्रयतमानसः ॥

जपन्नासीत सावित्रीं संध्याकृत्यमतन्द्रितः ॥ इति ।

यत्तु—प्रातर्मध्याह्नयोस्तिष्ठन्गायत्रीं(त्री)जपमाचरेत् ।

ऊर्ध्वजानुस्तु सायाह्ने ध्यानालोकनतत्परः ॥

इति व्याघ्रनाम्ना पठ्यमानवचनमाहृत्य धर्माधिसारकारेण सायमूर्ध्व-
जानुरुपविश्य जपं कुर्यादित्युक्तं तच्छौनकस्मृतिस्वसूत्रपरिभाषाविरो-
धाद्व्याघ्रवचनस्य प्राचीनाधुनिकैः क्वाप्यलेखनाद्विचारणीयम् । जपार्ङ्गं
प्राणायामन्यासध्यानादि सर्वं जपदिङ्मुखमेव कर्तव्यमुक्तशौनकवचो-
नुरोधात् । पारिजातप्रयोगे तथैव लेखनाच्च । यद्वा यावद्वचनं वाच-
निकमितिन्यायेन जपमात्रे प्रत्यङ्मुखता प्राणायामादिजपाद्यङ्गे तु
पारिभाषिकी प्राङ्मुखतेति । आचारार्कं तु न्यासान्ते प्रत्यङ्मुखो
भूत्वा ध्यानादि कुर्यादित्युक्तं तदर्धजरतीयत्वापत्त्या विचारणीयम् ।
स्मृत्यन्तरे—हस्तौ नाभिसमौ धृत्वा प्रातःसंध्याजपं चरेत् ।

हस्तसमौ तु करौ मध्ये सायं मुखसमौ करौ ॥

उपस्थाने विशेषमाह शौनकः—

इमं मे वरुण तत्त्वेति सायंकाले विशेषतः ।

अत्र यद्यपि वारुणीभ्यां वरुणोपस्थानं लिङ्गचलात्प्राप्तं तथाऽपि
वारुणीभिरथाऽऽदित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणमिति श्रुतेः प्राचल्यादादित्यो-

पस्थाने वारुण्योर्विनियोगः । एतयोर्ऋचोर्जातवेदस इत्यादिपरिशिष्टो-
क्तोपस्थानानन्तरं निवेश इति । आगन्तुकानामन्ते संनिवेश इतिन्यायात् ।
पारिजातप्रयोगेऽप्येवम् । आचारार्के तु वारुण्यनन्तरं जातवेदस इत्या-
द्युक्तं तद्विचारणीयम् । अत्र दिग्भिवादाने प्रतीच्यादिक्रम इति चन्द्रिका ।
प्राच्यादिक्रम इति रत्नमाला । इदमेव युक्तं विशेषानुपलम्भात् । सायं-
संध्या बहिर्देशे कार्या । सायंसंध्या बहिर्जल इति वचनात् । न च
साग्निकेन बहिः कथं गन्तव्यमिति शङ्क्यम् । उद्धरणोत्तरं बहिर्गमन-
निषेधाभावात् । अत एव शुचिराचान्तोऽग्निं प्रज्वाल्य जलाशये गत्वा
गृहे वा देवद्विजगोटतुलस्यादिशुचिस्थले संध्योपासनं कुर्यादित्याह्निक-
चन्द्रिकायामुक्तम् । यदि विहरणमन्यकर्तृकं तदा बहिरेवेति कमलाकरे-
णाप्युक्तम् । उभे संध्ये तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन गृहेष्वपीत्यत्रिवचसा गृहे
वाऽपि कार्या । कुतूहले तु संध्यानुष्ठानस्य बहिर्देशप्राशस्त्येऽपि उभे
संध्ये तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन गृहेष्वपीति विधानमाहिताग्निपरम् । तस्याप्यु-
द्धरणोत्तरमाहोमसमाप्तेर्बहिर्निर्गमननिषेधात् । अत एव केशवोऽध्वर्यो-
रपि विहरणोत्तरं विहारमध्य एव संध्यानुष्ठानमाहेत्युक्तम् ।

अथ सायंसंध्याप्रयोगः—अस्तमयात्पूर्वघटिकाद्वयावशिष्टे काले हस्त-
पादमुखानि प्रक्षाल्य वारुणस्नानं मन्त्रस्नानं वा विधाय धौते वाससी
परिधाय द्विराचम्य भस्मत्रिपुण्ड्रं विधायान्निं प्रादुष्कृत्य बहिर्जलाशये
स्वगृहे विहारादिशुचिदेशे वा प्रागग्रदर्भेषु अङ्गधारणया प्राङ्मुख उप-
विश्य द्विराचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्तदु०थं सायं-
संध्यामुपासिष्य इति संकल्प्य प्रातर्वत्प्रथममार्जनं कृत्वा जलमादायाग्नि-
श्चेत्यस्य रुद्र ऋषिः । अग्निमन्युमन्युपतयो देवताः । प्रकृतिश्छन्दः, मन्त्रा-
चमने वि० । ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः ।
पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्वा पापमकार्षम् । मनसा वाचा हस्ताभ्यां
पञ्चामुदरेण शिक्षा । अहस्तदवलुम्पतु । यत्किञ्च दुरितं मयि । इदमहं
माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा । इति प्राश्याऽऽचम्य
द्वितीयमार्जनात्मपरिषेकाद्यमर्पणाचमनानि कृत्वा दक्षिणावृत्य पश्चिम्ना-
भिमुखस्तिष्ठन्प्रोक्षितभूमावेव प्रातर्वदध्ययं दद्यात् । तत ॐ
असावादित्यो ब्रह्मेति सजलहस्त आत्मानं प्रदक्षिणं परियन्परि-

पिच्योपविश्याप उपस्पृश्याऽऽचम्य दर्भोदकेन जपस्थानमभ्युक्ष्य तत्र दर्भासनं प्रसार्य तदुपरि व्याहृत्या वायव्यसंलग्नपश्चिमभागाभिमुखमङ्कु-
धारणयोपविश्य प्राणायामत्रयकरणादिदिग्वन्धनान्ते मन्त्रदेवतां ध्यायेत् ।
यथा—वृद्धां वृद्धादित्यमण्डलमध्यस्थां श्यामवर्णां श्यामाम्बरानु-
लेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रां द्विनेत्रां शङ्खचक्रगदापद्माङ्कुचतुर्भुजां गरु-
डासनारूढां विष्णुदेवत्यां सामवेदमुदाहरन्तीं स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं सर-
स्वतीं नाम देवतां ध्यायामीति ध्यात्वा ॐ आगच्छ वरद इत्या-
वाह्य वस्त्राच्छादितमुखसमावधोमुखौ करौ धारयन्मन्त्रार्थानुसंधान-
पूर्वकमर्धास्तमितमण्डलकालादारभ्य नक्षत्रदर्शनपर्यन्तमक्षमालया कर-
मालया वा जपं गणयन्गायत्रीं जप्त्वा पुनः षडङ्गं विधायोत्थाय
पश्चिमाभिमुख एव कृताञ्जलिर्जातवेदसे तच्छंयोर्नमो ब्रह्मण इति
त्रिभिः प्रातर्धृदादित्यमुपस्थाय, इमं मे वरुण तत्वायामीत्युचोराजी-
गर्तिः शुनः शेष ऋषिः । वरुणो देवता । आद्या गायत्री । द्वितीया
त्रिष्टुप् । आदित्योपस्थाने वि० । ॐ इमं मे वरुण० । ऋ० १ ॐ
तत्वा याभि० ऋ० १ इति चाऽऽदित्यमुपस्थाय, ॐ सेन्द्रायै प्राच्यै
दिशे नम इत्यादिसाधिपदिङ्मनस्कारादिविष्णुस्मरणान्ते सकृदाच-
म्यानेन कृतेन सायंसंध्योपासनेन श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् । ॐ तत्सद्ब्रह्मा-
र्पणमस्तु इति कर्मेश्वराय समर्पयेत् । इत्याचारेन्दौ सायंसंध्याविधिः ।

इति माटे इत्युपेनामकश्रीनारायणभट्टात्मजव्यम्बकविरचित आचा-
रेन्दावष्टथा विभक्तदिनस्याष्टमभागकृत्यं समाप्तम् ।

अथ सायमौपासनम् । तत्पूर्वमुक्तम् । ब्रह्मचारी तु अग्निकार्यं कुर्यात् ।
सायंप्रातः समिधमादध्यादित्याचार्योक्तेः । अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्य-
योरुभयोरपीति योगिवचनाच्च । सायमेव वाऽग्निकार्यम् । तदुक्तं
लौगाक्षिणा-सायमेव वाऽग्निमिन्धीतित्येक इति । इदं च मेधाजननपर्य-
न्तमुपनयनाग्नौ तदुत्तरं लौकिकाग्नौ । तदुक्तं मनुना—

आभेधाजननाद्रक्षेत्तमौपनयनानलम् ।

तत्रैव सायं प्रातश्च समिधं जुहुयादसौ ॥

सर्वदा लौकिकाग्नावेवाग्निकार्यमिति सूत्रवृत्त्यभिप्रायः ।

कारिकायाम्—अग्निकार्यं च भिक्षायाः प्रागूर्ध्वं वा तदिष्यते ।

पर्यूहणोक्षणे स्यातामादावन्ते च कर्मणः ॥

तथा—तूष्णीं समिधमाद्ध्यादग्नौ प्रादेशसंमिताम् ।

एतयर्चाऽथवा दध्यादग्नये समिधं त्विति ॥

स्पृष्ट्वाऽग्निं तेजसामेति त्रिः संमार्ष्टि ततो मुखम् ।

प्रक्षाल्य हस्तमनलमुपस्पृश्यावमार्ष्टि च ॥

ओष्ठाबलोमकौ कृत्वा संवृत्तौ तन्निमार्जनम् ।

एवं त्रिरवमृज्याग्निमुपस्थाय मयीत्यथ ॥ इति ।

तूष्णीं समिद्धोमपक्षेऽपि प्रजापतिं मनसा ध्यायात्तूष्णीं होमेषु सर्वत्रेति सूत्रपरिभाषया प्रजापतिध्यानं प्रतीयत इति कारिकाभाष्य उक्तम् । तद्यत्र तूष्णींशब्दविशिष्टो होमश्चोद्यते तत्र प्रजापतिपदं चतुर्थ्यन्तं ध्यात्वा स्वाहेत्युक्त्वा जुहुयादिति वृत्ताबुक्तेः समिदभ्याधानेऽस्याः परिभाषाया अप्राप्तत्वाद्विचारणीयम् ।

यमः—ततोऽभिवादयेद्वृद्धानग्निकार्यादनन्तरम् ।

बृहन्नारदीये—श्राद्धं व्रतं तथा दानं देवताभ्यर्चनं तथा ॥

यज्ञं च तर्पणं चैव कुर्वन्तं नाभिवादयेत् ।

तत्राभिवादनं प्रत्यभिवादनज्ञानामेव कार्यम् । तदनभिज्ञानां तु नमस्क्रियामात्रम् । यज्ञशालादौ सर्वान्युगपदेव नमस्कुर्यात् । तदुक्तं बृहन्नारदीये—

सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि ।

प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥

संध्योत्तरमकृतस्याग्निकार्यस्य यावद्भोजनं गौणकालमाह याज्ञ-
वल्क्यः—

कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । इति ।

ऋग्विधाने—मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये ।

अग्निकार्यं विना भुङ्क्ते न पापं ब्रह्मचारिणः ॥ इति ।

अथ प्रयोगः । आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य ममोपात्त-
दुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायंसमिदाधानं करिष्ये । प्रातस्तु
प्रातःसमिदाधानं करिष्ये इति संकल्प्य परिसमूहनपर्युक्षणे कृत्वा
विश्वानि न इत्यर्चयित्वा

ॐ अग्नये समिधमाहार्थं बृहते जातवेदसे ।

तया त्वमग्ने वर्धस्व समिधा ब्रह्मणा वयं स्वाहा ॥

इति मन्त्रेण समिधमग्नावाधायाग्नय इदं न ममेति त्यक्त्वा तत आर्द्र-
पाणितलमग्नौ प्रताप्य तेजसा मा समनज्मीति मन्त्रेण संवृतोष्ठद्वयं मुख-
मवाङ् निमृज्य पाणिप्रक्षाल्य पुनरेवं द्विः कृत्वोत्थायोपतिष्ठेत् । ॐ
मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां
मयीन्द्र दन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ।
यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी
भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् । इत्युपस्थायोपविश्य
परिसमूहनपर्युक्षणे कृत्वा मानस्तोक इति भस्म विभृत्य शाण्डिलासित-
दैवलेति त्रिप्रवरान्वितशाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नोऽहं गणेशशर्मा भो अग्ने
त्वामभिवादये । एवं सप्रवराद्युच्चार्याभिवादयेत् । वृद्धानामप्यभिवादनं
कार्यम् । ततोऽग्निगार्थनादि कृत्वाऽऽचम्यानेनाग्निकार्येण श्रीपरमेश्वरः
प्रीयतामितीश्वराय कर्म समर्पयेत् । इत्याचारेन्दावग्निकार्यम् ।

अथ दीपकालमाह मरीचिः—

खरस्तं समारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत् ।

यस्य तिष्ठेद्बृहे दीपस्तस्य नास्ति दरिद्रता ॥

आयुर्दः प्राङ्मुखो दीपो धनदः स्याद्दुःखमुखः ।

प्रत्यङ्मुखो दुःखदोऽसौ हानिदो दक्षिणामुखः ॥

ततो देवं संपूजयेत् । तत्र ब्रह्मपुराणम्—

देवार्चनं प्रकर्तव्यं त्रिकालेऽपि यथाक्रमम् ।

अशक्तौ विस्तरात्प्रातर्मध्याह्ने गन्धमादितः ॥

सायं नीराजनं कुर्यात्त्रिकालं तुलसीदलम् ।

यथा संध्या तथा पूजा त्रिकाले मोक्षदा स्मृता ॥ इति ।

ततो वैश्वदेवं कुर्यात् । तत्र विशेष उक्तो विष्णुपुराणे—

पुनः पाकमुपादाय सायमप्यवनीपते ।

वैश्वदेवनिमित्तं तु पत्न्या सार्धं बलिं हरेत् ॥

अतिथिं चाऽऽगतं तत्र स्वशक्त्या पूजयेद्बुधः ।

वैश्वदेवविधिस्तु प्रागुक्तः । ततो द्वितीयभोजनमाह याज्ञवल्क्यः—

उपास्य पश्चिमां संध्यां हुत्वाऽग्नीन्समुपास्य च ।

भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्तोऽथ संविशेत् ॥

पूर्वोक्तेन विधिना पश्चिमां संध्यामुपास्याग्निषु हुत्वा तानुपास्याथ स्वभृत्यैः स्ववासिन्यादिभिः पूर्वोक्तैः परिवृतो नातितृप्तो भुक्त्वा चकारादायव्ययादिगृहचिन्तां निर्वर्त्यानन्तरं संविशेदिति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ । भोजनं च संध्याकाले न कर्तव्यम् ।

चत्वारीमानि कार्याणि संध्यायां परिवर्जयेत् ।

आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम् ॥

इति यमोक्तेः । संध्या तु—

सायंसंध्या त्रिघटिका ह्यस्तादुपरि भास्वतः ।

एवं चास्तादघटित्रयोर्ध्वं भुञ्जीतेति सिद्धम् । उत्तरावधिमाह शौनकः—

निशायाः प्रथमे यामे जपयज्ञार्चनादिकम् ।

स्वाध्यायो भोजनं प्रोक्तं वर्जयित्वा महानिशाम् ॥

महानिशां तु व्यास आह—

महानिशा तु विज्ञेया मध्यं यामद्वयं निशि ।

सार्धप्रहरयामान्त इति छन्दोगपरिशिष्टात्सार्धप्रहरानुज्ञाऽऽपद्विषये-
त्याचारसारः ।

वैद्यस्तु—घटिकादशकादर्वाङ् निशि भुञ्जीत नित्यशः ।

स एव—अस्तंगतेऽर्के तेजस्तु तमसाऽऽच्छाद्यते भृशम् ।

कोष्ठाग्निर्वर्धते तस्माद्रात्रौ भुक्तं प्रजीर्यति ॥

विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि मानवः ।

तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं प्रशस्यते ॥

अन्यत्तु—रात्रौ क्षीरं न भुञ्जीत यदि भुञ्जीत न स्वपेत् ।

सुप्तस्य च्यवते वीर्यं दिवा क्षीरं हितं ततः ॥

इति केचन शंसन्ति देहप्रकृतिमात्मनाम् ।

प्रादोपिकं दिवा क्षीरं रात्रौ क्षीरं तदौषसम् ॥

इति व्याख्यां वदन्त्येके रात्रौ क्षीरोपदेशतः ।

रात्रिभोजने निषिद्धद्रव्याण्याह स एव—

शुण्ठी दधि क्षौद्रतिलं च तैलं

सर्वाणि शाकानि च तिक्तवन्ति ।

रात्रौ न भुञ्जीत विदाहि चान्न-

मायुःक्षयं क्षीणबलं करोति ॥

रात्रिभोजननिषेधकालमाह शौनकः—

आदित्ये पर्वसंक्रान्तौ व्यतीपाते पितुर्दिने ।

अभ्यङ्गं चोपवासं च न कुर्यान्निशि भोजनम् ॥

गृह्यपरिशिष्टे—अष्टमीं चतुर्दशीं भानुवारं श्राद्धदिनं तत्पूर्वदिनं च वर्जयित्वाऽवशिष्टरात्रिषु नियमेनामात्यैः परिवृतो लघुभोजनं कृत्वेति । कमलाकराह्निके—जीवत्पितृकस्यामायामेकभक्तशीतोदकस्नाननिषेधस्तथाऽपि पुण्यतीर्थस्नानं नैमित्तिकमेकभक्तं च कर्तव्यमेव । तथा चोक्तं प्रयोगपारिजाते—

पुण्यतीर्थे पुण्यकाले निमित्ते च तथा सति ।

एकभक्तं प्रकुर्वीत स्नानं शीतेन वारिणा ॥ इति ।

सर्वोऽपि भोजनविधिः प्रागुक्त एवानुसंधेयः । रात्रिभोजने पात्राधो मण्डलं न कार्यमिति विशेष आह्निकचन्द्रिकायाम् ।

इत्याचारेन्दौ द्वितीयभोजनविधिः । ततः कर्तव्यमाह दक्षः—

प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन वै नयेत् ।

यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

अत्र वेदग्रहणमङ्गोपाङ्गयोरुपलक्षणम् । तदुक्तं चतुर्विंशतिमते—

वेदवेदान्तवेदाङ्गमीमांसान्यायदर्शनम् ।

इतिहासपुराणं च धर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥

अत्र दर्शनान्तः पुराणान्तश्च समाहारद्वन्द्वः । वेदानामन्ता उपनिषद्भागाः । पृथक्तदुपादानं प्राधान्यद्योतनार्थम् । ब्राह्मणा आयाता वसिष्ठोऽप्यायात इतिवत् ।

अथ शयनविधिरभिधीयते । चन्द्रिकायाम्—

कृतपादादिशौचश्च भुक्त्वा सायं ततो गृही ।

गच्छेदस्फुटितां शय्यां ततो दारुमयीं नृप ॥ इति ।

गच्छेच्छय्यां शयनार्थमिति शेषः । विष्णुपुराणे—

गच्छेच्छय्यामस्फुटितामेकदारुमयीं नृप ।

नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां तथा ॥

न च दन्तमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्वृताम् ।

एकदारुमयीमेकवृक्षस्य दारुणा कृतमित्याचारसारे । तत्रविशेषमाह वराहमिहिरः—

एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम् ।
 त्रिभिरात्मजवृद्धिकरं चतुर्भिरथो यशश्चाध्यम् ॥
 पञ्चवनस्पतिरचितं पञ्चत्वं याति तत्र यः शंते ।
 पद्मसप्ताष्टरुणां काष्ठैर्दण्डितं कुलं हन्ति ॥ इति ।

शङ्खः—न शीर्णायां खट्वायां नान्यवर्णोपसेवितायामनभ्युक्ष्येति । दन्त-
 मयीं मृतहस्तिदन्तमयीमित्यर्थः । तथा च तत्रैव ।

मृतदन्तमये विशुद्धगधे दर्भपलाशजे ।
 न शयीत नरो धान्ये शयने पञ्चदारुजे ।

न च दन्तमयीमित्यत्र न तु जन्तुमयीमित्यपि क्वचित्पाठः । पञ्च
 दारुणि तु पारिजाते—

उदुम्बरवटाश्वत्थचूतजम्बूद्रुमांस्तथा ।
 अश्मपीठोत्थितांश्चैव घटसिक्ततरुंस्त्यजेत् ॥
 करिभग्नकृते चैव न शयीत क्वचिन्नरः ।

शय्याप्रमाणमुक्तं शिल्पशास्त्रे—

चतुराशीतिपर्वाणि दैर्घ्येण परिकल्पयेत् ।
 पट्यङ्गुलानि विस्तारं मञ्चकं हस्तसंमितम् ॥

उच्चमिति शेषः ।

एवं शय्या विधातव्या सर्वेषां शयनोचिता ।
 मानाधिक्ये दरिद्रः स्यान्मानहीने सुखक्षयः ॥

पर्यङ्कोऽप्युक्तस्तत्रैव—आयामः सप्ततालः स्याच्चतुस्तालं च विस्तृतम् ।

द्वितालमुन्नतं श्रेयमेतत्पर्यङ्गलक्षणम् ।

तालादिप्रमाणं चोक्तं स्मृत्यन्तरे—

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं भवेन्मानचतुष्टयम् ।
 प्रादेशतालगोकर्णवितस्तिस्तु यथाक्रमम् ॥ इति ।

परशय्यानिषेधमाह वीधायनः—

आत्मशय्यासनं वस्त्रं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ।
 शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीनि च ॥ इति ।

एतदननुज्ञातविषयम् । तथा च याज्ञवल्क्यः—

परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत् ।
 अदत्तान्यग्निहीनस्य नास्त्रमद्यादनापदि ॥

शय्या कशिपुः । आसनं पीठादि । उद्यानमाम्रवनादि । गृहं प्रसि-
द्धम् । यानं रथादि । परसंबन्धीन्येतान्यदत्तान्यननुज्ञातानि वर्जयेन्नाप-
भुञ्जीतेति विज्ञानेश्वरो व्याचख्यौ । निर्णयामृतस्तु स्वीयशय्यालाभे तु
परकीयां शुद्धेन कम्बलादिनाऽन्तर्धायोपभोक्तव्येति । अत्र विशेषमाह
पारिजाते व्यासः—

शुचिं देशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् ।

प्रागुदक्प्रवणं चैव संविशेत्तु तदा बुधः ॥

कल्पतरौ कात्यायनः—पौर्णमास्यामवास्यामधः शय्या विधीयते ।

अनाहिताग्नेरप्येव पश्चादग्नेरथाविधि ॥

स्कान्दे—उपानद्वैणवं दण्डमम्बुपात्रं तथैव च ॥

ताम्बूलादीनि सर्वाणि समीपे स्थापयेद्बृही ।

यानि कानि च पुष्पाणि यत्किञ्चिदनुलेपनम् ॥

अलक्ष्मीपरिहारार्थं नित्यं कुर्याद्विचक्षणः ।

आचारप्रकाशे गार्ग्यः—मङ्गल्यं पूर्णकुम्भं च शिरस्थाने निधापयेत् ।

अभीष्टदेवतां स्मृत्वा संविशेन्मङ्गलध्वनौ ॥

स्कान्दे—रात्रिसूक्तं जपेत्स्मृत्वा सर्वाश्च सुखशायिनः ।

नमस्कृत्वाऽव्ययं विष्णुं समाधिस्थः स्वपेन्निशि ॥

सुखशायिनो देवा गोमिलेन दर्शिताः—

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महामुनिः ॥

कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ।

पारिजाते वैद्यः—युक्तोपधानं स्वास्तीर्णं विस्तीर्णाविषमं सुखम् ।

जानुतुल्यं मृदु शुभं सेवेत शयनासनम् ॥

श्रमानिलहरं वृष्यं तुष्टिनिद्राधृतिप्रदम् ।

सुखशय्यासनं तच्च तत्तद्व्यगुणानुगम् ॥

सहितं व्यजनाद्यैश्च शयनं चाऽऽसनं तथा ।

वैदिकैर्गारुडैर्मन्त्रैरक्षां कृत्वा स्वपेन्निशि ॥

ते च मन्त्राः सर्पापसर्प भद्रं त इत्यादयः । हारीतस्तु सुत्रामाण-
मिति पठञ्शय्यामधिषायेति ।

अयं शयनविधौ गृह्यपरिशिष्टम्—अमात्यैः परिवृतो लघुभोजनं कृत्वा पत्न्या सह ताम्बूलादिसेवनं कृत्वा संध्यायां शून्यालये इमंशाने चैकवृक्षे चतुष्पथे शिवमातृकायक्षनागस्कन्दभैरवाद्यग्निगृहेषु धान्य-
गोदेवविप्राग्निगुरुणामुपरि चाशुचौ देशे शुचिरार्द्रवस्त्रपादौ नम्रः शयनं न कुर्यात् । रात्री व्यस्यदायतीति सूक्तं जपित्वा प्राक्शिरा दक्षिणतः शिरा वेष्टदेवतां नत्वा स्मरणं च कृत्वा वैणवं दण्डमुदपात्रं च शयनस-
मीपे निधाय प्रक्षालितपादः शयनं कुर्यादिति । पारिजात आचार्यः—

स्वपेक्षु दक्षिणशिराः प्राक्शिरा वा स्ववेदमनि ।

विष्णुपुराणे—स्वगृहे प्राक्शिरः कुर्याच्छ्वाशुर्ये दक्षिणे तथा ।

प्रत्यक्शिराः प्रवासे स्याद्वने कुर्यादुदक्शिरः ॥ इति ।

इदं प्रवासादौ पश्चिमशिरादिविधानमाश्वलायनेतरविषयम् । आश्व-
लायनैस्तु प्राक्शिरा दक्षिणशिरा देति परिशिष्टस्यैव सर्वत्राविशेषेण
ग्रहीतुमुचितम् । हारीतः—न तिर्यगुदक्प्रत्यक्शिरा इति । कोणशिराः
पश्चिमशिरा उदक्शिराश्च न शयीतेत्यर्थः ।

पारिजाते व्यासः—नोत्तराभिमुखः स्वप्यात्पश्चिमाभिमुखो न च ॥

तत्रैवाऽऽचार्यः । न दशां पादयोः कृत्वा प्रोर्णयाद्वाससा बुधः ।

नोर्धोर्निधाय हस्तं च स्वपेन्मध्ये त्वधोमुखः ॥

उत्तानवक्षा न शयेन्नाधोवक्षाश्च कर्हिचित् ।

एवं नीत्वा निशो द्यंशं शिष्टं कालमथ स्वपन् ॥

पूर्वोक्तकर्मणा सम्यक्स्वपेदेवं विचक्षणः ।

एवं स्वपित्वा(सुप्त्वा) मध्यरात्रान्ते स्त्रियमुपेयात् । तदुक्तमाश्वलाय-
नेन—

पत्नीमृतुमतीं स्निग्धां तृप्तां भोगविवर्जिताम् ।

उपेयान्मध्यरात्रान्ते जीर्णोऽन्ने तृप्तमानसः ॥

पारिजाते वैद्यस्तु—ततोऽर्धयाममात्रे तु विहारार्थं समुत्थितः ।

ताम्बूलपूरितमुखस्तन्वाच्छिद्रामलाम्बरः ॥

रतिं कुर्यादिति शेषः । ऋतुकालमाह याज्ञवल्क्यः—

षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत् ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥

ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ।

स्त्रीणां षोडश निशा ऋतुर्गर्भग्रहणयोग्यः कालः । तत्र सर्वास्वप्रति-
पिद्धासु युग्मासु गमनमावश्यकम् । युग्मास्त्विति बहुवचननिर्देशात् ।
यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यृतौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलन-
दोषः । पर्वाणीति बहुवचनादष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति विज्ञानेश्वरः ।
यस्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये—

दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती ।

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोर्थी न च पर्वसु ॥

इति श्राद्धदानभोजनदिवसे स्त्रीगमननिषेधः सोऽनृतुविषयः । दर्शादौ
तु न भवत्येव पर्वणां पर्युद्धस्तत्वात् । इदं च श्राद्धैकादश्यादावप्यृतुगम-
नविधानमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासंभवे ज्ञेयमिति हेमाद्रिनिर्णय-
सिन्धुकौस्तुभादयः । अत्र प्रमाणं चिन्त्यमिति मयूखः । माधवीये तु—

ऋतुकालनियुक्तोऽपि नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् ।

तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टफलमेव तु ॥

इति श्राद्धप्रकरणस्थबृद्धमनूक्तेः श्राद्धे ब्रह्मचर्यं नियतमित्युक्तम् ।
पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् । ऋतावगमने प्रायश्चित्तमाह बृहस्पतिः—

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।

ऋतौ न गच्छेद्भार्या यः सोऽपि कृच्छ्रार्धमाचरेत् ॥

एतच्च समानदेशविषयम् ।

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ।

योरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥

इति पराशरोक्तेः संनिधावित्युक्त्याऽसंनिहितस्य न दोष इत्युक्तं
भवति ।

देवलः—यः स्वदारानृतुस्नातान्स्वस्थः सन्नोपगच्छति ।

भ्रूणहत्यामवाप्नोति प्रजा प्राप्ता विनश्यति ॥

स्वस्थ इति वचनादस्वस्थस्य न दोष इत्युक्तं भवति । सूतकादावृ-
तावगच्छतो न दोषः । तथा च मनुः—

सूतके बन्धने विप्रो हव्यकव्यादिर्वाजितः ।

नैनसा लिप्यते तद्ब्रह्मावगमनादपि ॥ इति ।

एनसा पापेन । व्यासः—

व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु ।

ऋतुकाले तु नारीणां भ्रूणहत्या न युज्यते ॥

ऋतुकाल इत्यनन्तरमगमन इति शेषः । योऽयमृतौ भार्यागमननियमः सोऽजातपुत्रं प्रत्येव । जायमानो वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येणार्पिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति श्रुतिमूलकत्वेनास्योपपत्तेः श्रुत्यन्तरकल्पनाया अन्याप्यत्वात् । तथा च मनुः—

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।

पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥ इति ।

कूर्मपुराणमपि—ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ।

एवं चैकपुत्रोत्पादनं शास्त्रार्थस्य कृतत्वादानृण्ये च जाते न पुत्रोत्पादनमावश्यकमिति । एतदपरे न क्षमन्ते । यद्यपि पुत्रित्वमानृण्यं चैकेन पुत्रेण संपद्यते तथाऽपि न हि पुत्रजननमात्रेण पितुरानृण्यं किं तर्हि सम्यगनुशिष्टेन पुत्रेण शास्त्रीयेषु कर्मस्वनुष्ठितेषु पश्चादानृण्यं संपद्यते । अत एव वाजसनेयिब्राह्मणे पुत्रानुशासनविधिः सामानातः—तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुरिति । एवं सति बहूनां मध्ये यथा चानुशासनं प्रज्ञामान्यादिप्रतिबन्धबाहुल्यात्कस्यचिदेव संपद्यते । अनुशिष्टेष्वपि बहुषु यथावदनुष्ठानं कस्यचिदेव । अतो ज्येष्ठः कनिष्ठो वा यस्तादृशः स एवानृण्यहेतुः । अत एव पुराणेऽभिहितम्—

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।

यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥

दशास्यां पुत्रानाधेहीत्यादिमन्त्राश्चैवं सति बहुपुत्रत्वविधिमुपोद्बलयन्ति तस्माज्जाते पुत्रेऽपि ऋतावुपेयादेवेति । ऋतुकाले भार्याया अपि भर्तारं प्रति गमनं नियतम् । अन्यथा दोषः । तथा च संग्रहे—

ऋतुज्ञाता तु या नारी भर्तारं नानुमन्यते ।

सा मृता तु भवेन्नारी सूकरी च पुनः पुनः ॥ इति ।

यमोऽपि—ऋतुज्ञाता तु या नारी भर्तारं नोपगच्छति ।

तां ग्राममध्ये विख्याप्य भ्रूणघ्नीमिति वासयेत् ॥

भ्रूणघ्नीयमिति तां स्त्रियं ग्राममध्ये विख्याप्य प्रकटीकृत्य पृथग्वासयेदित्युत्तरार्धार्थः । अत्रापि संनिधाविति ज्ञेयम् । प्रायश्चित्तं तु पादकृच्छ्रम् । स्त्रीणामर्धं प्रदातव्यमिति वचनात् । व्याधितादीनां स्त्रीणामपि भर्तारं प्रत्यृतावगमने दोषाभावः । अनन्तरोदाहृतव्यासवाक्ये पुंलिङ्गस्याविवक्षितत्वात् । विरक्तस्य तु ऋतावगमने दोषाभावः । तदुक्तं श्रीमद्भागवते—

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितिस्तत्र विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ इति ।

अत्र गमने निषिद्धकालः । तत्र मनुः—

तासामाद्याश्वतस्रस्तु निन्द्या एकादशा च या ।

त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

एकादशीत्रयोदश्यावृत्तोर्न पक्षस्येति मदनपारिजाते । यत्तु हारीतो-
क्तम्—चतुर्थेऽहनि स्नातायां युग्मासु च गर्भाधानमिति तद्रजोनिवृत्तौ
ज्ञेयम् ।

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते ।

तस्या(गम्या?) निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन ॥

इत्यापस्तम्बोक्तेः । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्रीरजस्वलेति मनु-
क्तेश्च । कृत्यकल्पतरुस्तु—स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ।
इति भारतोक्तिर्गन्तुः प्रत्यावायाभावमात्रपरेत्याह । सप्तमीनवम्योरपि
निषेध उक्तो गयादासनिबन्धे—सप्तम्यामप्रजा योपिदृष्टम्यामीश्वरः सुतः ।
नवम्यां दुर्भगा कन्येति । आचारप्रकाशेऽपि—

तासामाद्याश्वतस्रश्च सप्तम्येकादशी च या ।

त्रयोदशी च नवमी शेषाः शस्तास्तु रात्रयः ॥

ब्रह्मपुराणे—चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा ।

पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥

तैलस्त्रीमांसभोगी च सर्वेष्वेतेषु वै पुमान् ।

विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं नृप ॥ इति ।

अत्र सामान्यतश्चतुर्दश्यष्टम्युपादानेऽपि कृष्णपक्षस्थिते एव निषिद्धे ।
कृष्णाष्टमीश्चतुर्दश्यौ पूर्णिमादशसंक्रमाः । इति स्कान्दात् । श्रीधरस्तु—

पञ्चदशीं पञ्चदशीं चतुर्थीं

चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा ।

शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके

वाराः शशाङ्कार्यसितेन्दुजानाम् ॥ इति ।

न च निषेकशब्दश्रवणादेतद्गर्भाधानमात्रविषयमिति वाच्यम् ।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पष्ठ्यां च द्वादशीतिथौ ।

अमावास्यां चतुर्थ्यां च मैथुनं यो न गच्छति ॥

तिर्यग्योनिं न गच्छेत्स मम लोकं स गच्छति ।

इति वाराहे सामान्यतो मैथुननिषेधात् । वामनपुराणे—

बुधे च योषां न समाचरेत्तथा पूर्णासु योषित्परिवर्जनीया ।

शिवरहस्ये—दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती ॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोर्थी न च पर्वसु ।

वर्ज्यनक्षत्राण्याह याज्ञवल्क्यः—

एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत् ।

सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्सुतम् ॥

मघां *पौष्णं च वर्जयेदिति क्वचित्पाठः । क्षामा च तस्मिन्काले रजस्वला व्रतेनैव भवति । अथ न भवति तदा कर्तव्या क्षामा पुत्रोत्पत्त्यर्थमल्पास्निग्धभोजनादिना ।

पुमान्पुंसोऽधिके शुके स्त्री भवत्याधिके स्त्रियाः ।

समे पुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥

इति मनुवचनात् । अपुमान्नपुंसकः पुंस्त्रियौ वा यदि बीजविभागः । तदाह यमः—

यदि संभोगकाले तु पुरुषो रागमोहितः ।

द्विधा समुत्सृजेच्छुक्रं यमलं तत्र जायते ॥

क्षीणे निःसारे । अल्पे च विपर्ययो गर्भाग्रहणम् । यदा युग्मायामपि रात्रौ शोणिताधिक्यं तदा रुयेव भवति परंतु पुरुषाकृतिः । अयुग्मायामपि शुक्राधिक्ये पुमानेव भवति परंतु रुयाकृतिः । कालरूपनिमित्तकारणापेक्षयोपादानकारणीभूतस्य रजसः शुक्रस्य वा प्राबल्यात् । मघा मूलं चेति चकारः शास्त्रान्तरोक्तवर्ज्यनक्षत्राणां समुच्चयार्थः । रत्नमालायाम्—

विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्ण-

मूलोत्तरावारुणभानि निषेककार्ये ।

पूज्यानि पुण्यवसुशीतकराश्विचित्रा-

दित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्याः ॥ इति ।

* पौष्णं रेवतीति ख. पुस्तके समासे ।

मूलरेवत्योर्विहितप्रतिपिद्धत्वाद्विकल्पः । पारिजाते बृहस्पतिः—

श्राद्धं पित्र्यं चिकित्सां च मैथुनाभ्यञ्जने तथा ।

चौलोपनयनादीनि वर्जयेत्तु त्रिजन्मसु ॥

त्रिजन्मानि जन्मनक्षत्रं दशमैकोनविंशे च । जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे
नक्षत्रे चेति केचित् । सुस्थे शुभस्थानस्थित इन्दौ सकृदेकस्यां रात्रौ न
द्विस्त्रिवेत्यर्थः । ततो लक्षणैर्युक्तं पुत्रं जनयति पुमानप्रतिहतपुंस्त्वः ।
श्राद्धकर्तृभोक्त्रोः श्राद्धपूर्वदिवसोऽपि वर्ज्य इत्युक्तं बृहस्पतिना—

द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैः सह ।

शङ्खोऽपि—निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः ।

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महर्तनसा ॥

निर्णयसिन्धावाश्वलायनः—

श्राद्धं करिष्यन्कृत्वा वा भुक्त्वा वाऽपि निमन्त्रितः ।

उपोष्य च तथा भुक्त्वा नोपेयाञ्च कृतावपि ॥

ज्योतिर्वसिष्ठः—उपप्लवे वैधृतिपातयोश्च विष्ट्यादिके पारिघपूर्वभागे ।

संध्यासु पर्वस्वपि मातृपित्रोर्भृतेऽह्नि पत्नीगमनं हि वर्ज्यम् ॥

ज्योतिर्निबन्धे—व्रती योगी मिताशी च रोगी व्यायामकृत्तथा ।

न सेवेत स्त्रियं तेषां बीजरोधो न बाधकः ॥

अत्र तिथिनक्षत्रादिकं तात्कालिकमेव वर्ज्यम् । तदुक्तं स्कान्दे—

अभ्यङ्गे जलाधिष्ठाने दन्तधावनमैथुने ।

जाते च निधने चैव तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥

तिथिशब्दो नक्षत्रयोगादीनामुपलक्षकः । तथा च देवलः—

निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते । इति ।

अनृतावपि गमनमाह याज्ञवल्क्यः—

यथाकामी भवेद्वाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् ।

स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्षया यतः स्मृताः ॥ इति ।

गौतमोऽपि—कृताबुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिपिद्धवर्जमिति ।

बृहस्पतिरपि—कृतुकालाभिगमनं पुंभिः कार्यं प्रयत्नतः ।

सदैव वा पर्ववर्ज्यं स्त्रीणामभिमतं हि तत् ॥

श्रुतिरपि—ता अनुबन्धरं वृणामहे ऋत्विगात्प्रजां विन्दामहे काम-
माविजनितोः संभवामेति तस्मादृत्विगात्स्त्रियः प्रजां विन्दन्ति काम-

माविजनितोः संभवन्ति वरं वृत्तं ह्यासामिति । ऋत्विगादृतुकालिका-
त्पुरुषसंबन्धात् । आविजनितोः प्रसूतिपर्यन्तं संभवन्ति मिथुनी भवन्ति ।

विष्णुपुराणेऽपि—

इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु नरो व्रजेत् ।

यथोक्तदोषहीनेषु सकामेष्वनृतावपि ॥ इति ।

यस्तु—ऋतौ नोपैति यो भार्यामनृतौ यश्च गच्छति ।

तुल्यमाहुस्तयोः पापमयो नौ यश्च सिञ्चति ॥

इति बौधायनेनानृतौ गमननिषेध उक्तः स स्त्रियाः कामाभावे ज्ञेयः ।
अत्र किञ्चिदुच्यते—ऋतौ भार्यामुपेयादिति किमयं विधिर्नियमः परि-
संख्या वा । उच्यते । न तावद्विधिः प्राप्तार्थत्वात् । नापि परिसंख्या
दोषत्रयसमासक्तेः । अतो नियमं प्रतिपेदिरे न्यायविदः । कः पुनरेषां
भेदः । अत्यन्ताप्राप्तप्रापणं विधिः । यदग्निहोत्रं जुहुयात् । अष्टकाः
कर्तव्या इत्यादिः । पक्षे प्राप्तस्याप्राप्तपक्षान्तरप्रापणं नियमः । यथा
वीहीनवहन्तीत्यादिः । कथमस्य पक्षेऽप्राप्तप्रापकत्वमिति चेदित्थम् । अनेन
ह्यवघातस्य वैतुष्यार्थत्वं न प्रतिपाद्यते, अन्वयव्यतिरेकसिद्धत्वात् । किं
तु नियमः । स चाप्राप्तांशपूरणः । वैतुष्यस्य हि नानोपायसाध्यत्वाद्य-
दाऽवघातं परित्यज्योपायान्तरं ग्रहीतुमारभ्यते तदाऽवघातस्याप्राप्तत्वेन
तद्विधाननामकमप्राप्तांशपूरणमेवानेन विधिना क्रियते । अतश्च नियम-
विधावप्राप्तांशपूरणात्मको नियम एव वाक्यार्थः । पक्षेऽप्राप्तावघातवि-
धानमिति यावत् । तथा प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीतेतीदमपि स्मार्तमुदाह-
रणं पूर्वेण व्याख्यातम् । एकस्यानेकत्र प्राप्तस्यान्यतो निवृत्त्यर्थमेकत्र
पुनर्ध्वचनं परिसंख्या । यथा पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या इति । इदं हि वाक्यं
न पञ्चनखभक्षणपरम् । तस्य रागतः प्राप्तत्वात् । नापि नियमपरम् ।
पञ्चनखापञ्चनखभक्षणस्य युगपत्प्राप्तेः पक्षे प्राप्तस्याभावात् । अत इदम-
पञ्चनखभक्षणनिवृत्तिपरमिति परिसंख्याविधिः । इयं च त्रिदोषवती—
श्रुतार्थस्य परित्यागादश्रुतार्थस्य कल्पनात् ।

प्राप्तस्य बाध इत्येवं परिसंख्या त्रिदूषणा ॥ इति ।

एवं च नियमे सति ऋतावृताविति वीप्सा लभ्यते । निमित्तावृत्तौ
नैमित्तिकमप्यावर्तत इति न्यायात् । यथाकामी भवेद्वा, इत्ययमपि
नियम एवानृतावपि स्त्रीकामनायां सत्यां स्त्रीमाभिरमयेदेवेति ऋतावुपेया-

त्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जमित्यापि गौतमीयं सूत्रद्वयं नियमपरमेव ।
 ऋतायुषेयादेवानृतवापि स्त्रीकामनायां प्रतिषिद्धवर्जमुषेयादेवेति ।
 विज्ञानेश्वरायेऽप्येवम् । श्रीमद्भागवतस्थलोके व्यवायेति पद्यव्याख्यायां
 श्रीधरस्तु ऋतायुषेयादित्यभ्यनुज्ञाद्वारा परिसंख्यैव । ननु यद्यभ्यनुज्ञामा-
 त्रमेतद्भवेत् तर्हि

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ।

घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥

इत्यादिदोषश्रवणं न स्यात् । नैष दोषः । मनसि कामे सत्यपि तस्या-
 मरुच्या द्वेषादिना वा तामनुपगच्छतो दोषश्रवणोपपत्तेरिति सर्वमनवद्य-
 मित्याह । ऋतायुषेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जमिति गौतमसूत्रव्याख्यायां
 हरदत्तोऽपि नियमः परिसंख्या वेति विकल्पमुक्तवानित्यलं प्रपञ्चेन ।

व्यासः—नास्नातां तु स्त्रियं गच्छेन्नाऽऽतुरां न रजस्थलाम् ।

नानिष्टां न प्रकुपितां नाप्रशस्तां न गर्भिणीम् ॥

वृद्धां बन्ध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम् ।

बहुपुत्रवतीं चैव गमने परिवर्जयेत् ॥

छन्नवस्वादिदोषरहिता प्रशस्ता तद्धिन्नाऽप्रशस्ता तां वर्जयेदित्यर्थः ।
 वृद्धां सरजस्कामपि अशक्तां गर्भधारणे । पुष्पिणी ऋतुमती तदन्याऽ-
 पुष्पिणी । अप्राप्तार्तवाऽगतार्तवा च गमने निषिध्यते । बहुपुत्रवती-
 मित्यत्र बहुपुत्रशब्देनैकादशप्रभृतिरेव संख्या ग्राह्या । दशास्यां पुत्राना-
 धेहीति मन्त्रालिङ्गात् । गर्भिणीनिषेधः षण्मासादूर्ध्वं तदुक्तमत्रिणा—

षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गर्भिणीं स्त्रियमेव हि ।

आदन्तजननादूर्ध्वमर्धं धर्मो न हीयते ॥

एवकारः षण्मासानित्यनन्तरमन्वेति न । चैवं काममाविजनितोः संभ-
 वन्तीत्यनया श्रुत्या प्रसवपर्यन्तं गमनस्याभ्यनुज्ञातत्वाद्गमनेन विरोध इति
 वाच्यम् । तत्र प्रसवापरपर्यायविजननशब्देनात ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादिति
 पारिभाषिकस्यैव विजननस्य ग्रहणान्न विरोधः । आदन्तजननादूर्ध्वं
 बालक्रे जाते तस्य दन्तजननादूर्ध्वं गच्छेन्न तु ततः पूर्वमित्यर्थः ।
 मातस्यकश्यपाभ्यां वर्षद्वादशकादूर्ध्वमृतोरप्राप्तावपि गमनमुक्तम्—

वर्षद्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं बहिर्नहि ।

अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत् ॥

अतस्तत्र प्रकुर्वीत स्त्रीसङ्गं बुद्धिमान्नरः । इति ।

वर्षद्वादशकादिति श्रवणात्पूर्वं गमनं निषिद्धमिति ज्ञेयम् । आश्व-
लायनः—

दीक्षितस्तु महायज्ञे पित्रोः प्राग्वत्सराद्विजः ।

नेयाद्भार्यां प्रयत्नेन ऋतावध्यर्थितो बुधः ॥ इति ।

नेयान्न गच्छेत् । अर्थितः प्रार्थितो भोगार्थं भार्ययेति शेषः । ऋतुवि-
शेषेण संभोगनियमः कामशास्त्रे—

पक्षान्निदाघे हेमन्ते नित्यमन्यर्तुषु ज्यहात् ।

स्त्रियं कामयमानस्य जायते न बलक्षयः ॥

यत्तु वाग्भट्टीये—ज्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षनिदाघयोः ।

सेवेत कामतः कामं हेमन्ते शिशिरे बली ॥

इत्युक्तम् । तत्र बलीत्यभिधानेन दृष्टार्थत्वाक्तेर्यथाबलं व्यवस्थेति ।
रत्यर्थं भिन्नाभेव शय्यां प्रकल्पयेत् । तदुक्तमाचारमयूखे—

पूर्वरात्रे व्यतीति तु संगच्छेद्वतिमन्दिरम् । इति ।

पैठीनसिरपि—संवृते देशे मैथुनायाऽऽह्वयीतेति । संवृते परिश्रिते ।
देशविशेषनिषेधो विष्णुपुराणे—

देवद्विजगुरूणां च व्यवायी नाऽऽश्रमे भवेत् ।

चैत्यचत्वरसीरेषु न चैव च चतुष्पथे ॥ इति ।

देवद्विजगुरूणामाश्रमे व्यवायी न भवेदित्यन्वयः । रतिसमीपे दीपसां-
निध्यमुक्तं रतिप्रकाशे दीपसमीपे रतिं कुर्यादिति । ज्योतिर्निबन्धेऽपि—

दीपे प्रलुप्ते यः सङ्गं करोति मनुजो यदि ।

यावज्जन्म दरिद्रत्वं लभते नात्र संशयः ॥

इदं च समर्थविषयम् । दीपे सत्यसति वा पत्नीं गच्छेदिति धर्माधि-
सारोक्तेः । अयं च दीपो भार्ययैव प्रज्वालनीयः । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—

भार्यैव दीपं प्रज्वालय पत्युश्चित्तानुवर्तिनी ।

नमस्कृत्य तु भर्तारं रमयेत्सह तेन तु ॥

तत्रैव—कुङ्कुमं चाञ्जनं चैव ताम्बूलं सिन्दुरं तथा ।

धौतवस्त्रं च कुसुमं संयोजे च शुभावहम् ॥

स्त्रीकृत्यमाह तत्रैव—

नमस्कृत्य भर्तृपादौ पश्चाच्छय्यां समाविशेत् ।

नारी सुखमवाप्नोति न चेद्दुःखस्य भागिनी ॥

दीपेनाऽऽत्मतनुच्छायां भर्तुः स्वोपरि चे(च)त्यजेत् ।
 तौ दंपती दरिद्रत्वं नाऽऽप्नुवीतां विनिश्चितम् ॥
 भर्तुच्छिष्टं सदा भोज्यमन्नं ताम्बूलमेव च ।
 कञ्चुकेन समं नारी भर्तुः सङ्गं समाचरेत् ॥
 त्रिभिर्वर्षैश्च मध्ये वा विधवा भवति ध्रुवम् ।
 ताडपत्रमिलत्कर्णा यदि मैथुनमाचरेत् ॥
 पञ्चमे सप्तमे वर्षे वैधव्यमिह जायते ।
 कामातुरेण पतिना संयोगे यदि याचिता ॥
 निवारयति तं नारी बालरण्डा भवेद्ध्रुवम् ।
 प्रदोपकाले या नारी पतिसङ्गं समाचरेत् ॥
 आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ।

अथ पुरुषकृत्यमाह ज्योतिर्निबन्धकारः—

ताम्बूलमादौ चर्वित्वा भार्यासङ्गं समाचरेत् ।
 ताम्बूले विशेषस्तत्रैव—वामहस्तेन खादेन्न स्त्रीहस्तेन तथैव च ।
 यदि वा खादयेन्मूढस्तस्य लक्ष्मीर्विनश्यति ॥

मनुः—ताम्बूलचर्वणं कुर्यात्सकामो भार्यया सह ॥
 ताम्बूलेन मुखं पूर्णं कुङ्कुमादिसमन्वितम् ।
 पीतमाल्यादिसंयुक्तं कृत्वा योगं समाचरेत् ॥
 विना ताम्बूलवदनां नग्नमाक्रन्दरोदनाम् ।
 दुर्मुखां क्षुधया युक्तां संयोगे परिवर्जयेत् ॥

ज्योतिर्निबन्धे—उच्छिष्टं न तु भुञ्जीत गृहस्थो ह्यधरं विना ।

अत्र निधीतमाहात्रिः—

ऋषितर्पणचाण्डालभाषणे शववाहने ।
 विण्मूत्रोत्सर्जने स्त्रीणां रतिसङ्गे निधीतयः ॥
 इदमनृतुविषयम् । ऋतौ तु यज्ञोपवीतमेव ।
 भार्यासंभोगसमये पुष्पकालं विनाऽन्यदा ।
 ब्रह्ममूत्रं द्विजः कुर्यान्निधीतं पृष्ठभागतः ॥

इति पारिजातधृतवचनात्सर्वदोषधीतमेवेत्याचारार्काशयः । सर्वदा
 निधीतमेवेत्याह्निकचन्द्रिका । संभोगकाले स्त्रियमकञ्चुकां कृत्वा संभोगं

कुर्यात् । सकञ्चुकरतिं कृत्वा सचैलं स्नानमाचरेदिति रतिप्रकाशे प्राय-
श्चित्तस्मरणात् । तर्जन्यां रौप्यं चेत्तन्निष्काशं शिखा च विसर्जनीया ।

तर्जनीं रौप्यसंयुक्तां ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ।

भोजने भैथुने मूत्रे कुर्वन्कृच्छ्रेण शुध्यति ॥

इति संग्रहे प्रायश्चित्तस्मरणात् । उपगमनप्रकारमाह मनुः—

स्वपेत्स्त्रीं प्राक्शिरां कृत्वा प्रत्यक्पादौ प्रसारयेत् ।

भुक्तवानुपविष्टस्तु शय्यायामभिसंमुखः ।

संस्मृत्य परमात्मानं पत्न्या जङ्गवे प्रसारयेत् ॥

योनिं स्पृष्ट्वा जपेत्सूक्तं विष्णुर्योनिं प्रजापतेः ।

रेतः सिञ्चेत्ततो योन्यां तस्माद्गर्भं विभर्ति सा ॥

पादलैर्गतनुश्चैव उच्छिष्टं ताडनं तथा ।

कोपो रोपश्च निर्भर्त्सः संयोगे च न दोषभाक् ॥

उपगमने मन्त्रविधिर्वह्वृचानां कृताकृतः । नैक उपगमने मन्त्रविधि-
मिच्छन्तीति परिशिष्टोक्तेः । बादरायणस्तु—यद्रजोदर्शनोत्तरं प्रथमं
चतुर्थ्यादिरात्रिषूपगमनं तदेव समन्त्रकं नान्यदिति मन्यते । आत्रेयस्तु
सर्वाण्युपगमनानि समन्त्राणि भवन्तीति मन्यते । प्रतिप्रधानं गुणावृत्ति-
रिति तदाशयः । अथ संभोगोत्तरकृत्यम् । तत्र पराशरः—

ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं भैथुनिनः स्मृतम् ।

अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥

एतच्च स्नानमशिरस्कम् । ऋतुगमननिमित्तकस्नानं प्रकृत्याशिरस्कमेव
मज्जनं कुर्यादिति बृहद्रसिष्टोक्तेः । इदं स्नानमुत्तरकर्माङ्गं न तु स्त्रीसङ्गेन
किञ्चिदप्रायत्यं जन्यते । तेन प्रातरेव स्नानमित्याचारादर्शः । अनृतौ तु
धर्मसूत्रे लेपान्प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रोक्षणमङ्गानामिति । स्त्रीणां तु
न स्नानपादप्रक्षालने । तासामशुचित्वाभावात् । तथा च वृद्धशातातपः—

उभावप्यशुची स्यातां दंपती शयनं गतौ ।

शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥

ततः पृथक्शयनौ भवतः । तदुक्तं विष्णुना—

निद्रासमयवेलायां ताम्बूलं वदनात्पजेत् ।

पर्यङ्कात्प्रमदां भालात्पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥

प्रज्ञां हरति ताम्बूलं प्रमदा बलहारिणी ।

सर्पाद्भयं तु पुष्पेभ्य आयुर्हरति पुण्ड्रकः ॥

बौधायनोऽपि—यावत्संनिपातं च सहशय्या ततो नानेति । संनिपातः संयोगः । नाना पृथक् । ननु पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यत इतिवचनस्य का गतिरिति चेत् । अत्र पृथक्शय्याशब्देनोपगमनाभाव उपलक्ष्यते । यथा—

प्रभूतदोषे यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिककर्म कार्यम् ।

विवर्जयेदेव तदेकशय्यां यावद्भजोर्दर्शनमुत्तमेऽङ्घ्रि ॥

आचारसारे तु—मैथुनानन्तरं सहशय्यानिषेधात् तदभाव एकशय्यायामपि न बाधकं किञ्चित् । संनिहितभर्तृकायाः पृथक्शयनस्य दण्डरूपत्वात् । वर्ज्यकालमैथुने प्रायश्चित्तं मयूखे—

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ।

कृत्वा सचैलं स्नात्वा तु वारुणीभिश्च माजयेत् ॥

गृह्यकारिकायाम्—गत्वा रजस्वलां भार्यां निषिद्धदिवसेऽथवा ।

अयाज्यं याजयित्वा तु विषादि प्रतिगृह्य च ॥

अप्रतिग्राह्यपुरुषद्रव्यं वा प्रतिग्राह्य च ।

स्पृष्ट्वाऽग्निचयनस्थं च यूपं वाऽभोज्यभोजने ॥

सप्तस्वेषु निमित्तेषु भवेदन्यतमं यदि ।

पर्युह्याग्निं परिस्तोर्य पर्युक्ष्य च ततः परम् ॥

पुनर्नामेति मन्त्राभ्यां जुहुयात्संस्कृतं घृतम् ।

एताभ्यामेव मन्त्राभ्यां समिधावाद्धात्यथ ॥

पर्युहणोक्षणे स्यातामन्यत्तन्त्रं तु नेष्यते ।

स्वाहाकारविनिर्मुक्तौ यद्वा मन्त्रौ जपेदिह ॥ इति ।

अत्राभोज्यपदेन लशुनादि गणिकान्नादि चेति वृत्तिः । वर्ज्यतिथिषु मैथुन उपवास इति प्रायश्चित्तमञ्जर्याम् । उपवासाशक्तावेकविप्रभोजनम् । उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेदिति वचनात् । मैथुनोत्तरं शौचकरणात्पूर्वमृतुकालमैथुने स्नानात्पूर्वं च मूत्रोत्सर्गे वा पुरीषोत्सर्गे त्रिरात्रमुपवास इति तत्रैव ।

अथ शयनविधिप्रयोगः—वेदाभ्यासादिना रात्रिप्रथमयाममतिवाह्यपादप्रक्षालनाचमनादिना शुचिर्भूत्वा शुचिदेशे शय्यां प्रकल्प्य तत्र

गत्वा पत्न्या सह ताम्बूलदिसेवनं कृत्वोपानहौ वैणवं दण्डं च शय्या-
समीपे निधाय जलपूर्णकुम्भं शिरोदेशे[सं]स्थाप्य सुत्रामाणं पृथिवीमिति
मन्त्रेण शय्यामधिष्ठाय रात्री व्यस्यदायतीति पठ्यं सूक्तं जपित्वा, अग-
स्तये नमो माधवाय नमो मुचुकुन्दाय० महामुनये कपिलाय०, आस्ती-
काय मुनये० इति सुखशायिनो देवान्समृत्वेष्टदेवांश्च नत्वा प्राक्शिरा
दक्षिणाननो दक्षिणशिराः प्रागाननो वा स्वपेत् । ततः सार्धयामान-
न्तरं मध्यरात्र्यनन्तरं वोत्थाय पर्वादिनिषिद्धातिरिक्ते काले रतिमन्दिरं
गत्वा चन्दनपुष्पादिभिः स्वशरीरमलंकृत्य सुगन्धानुलेपनपुष्पाद्यलं-
कृतया पत्न्या सह ताम्बूलसेवनं कृत्वा पत्न्या सह शय्यामारुह्य ऋतु-
काले यथास्थितोपवीतोऽनृतौ निवीतं यज्ञोपवीतं पृष्ठतः कृत्वा तर्जन्यां
रौप्यं चेन्निष्काश्य शिखां च विमुच्य वाग्यतो मन्मथगृहं स्पृष्ट्वा विष्णु-
र्योनिमिति सूक्तं जपित्वेश्वरं स्मृत्वा सकृदुपेत्य स्त्रियमनिरीक्षन्नुत्थाय
निवीती चेद्यज्ञोपवीती भूत्वा शिखां बद्ध्वा निष्काशितं रौप्यं पुनस्त-
र्जन्यां धृत्वाऽशिरस्कं स्नानं विधायाऽऽचमनप्राणायामौ कृत्वा विष्णुं
संस्मरेत् । ऋतुव्यतिरिक्ते काले गमने तु पादप्रक्षालनाङ्गप्रोक्षणे एव
न स्नानं लेपप्रक्षालनमुभयत्रापि मूत्रवत् । ततः पृथक्शयनौ भवत आप-
बोधकालात् । भार्यायास्तु ऋतावनृतौ वाऽशुचिता नैवास्ति । इत्या-
चारेन्दौ शयनविधिप्रयोगः ।

अथ प्रसङ्गात्स्त्रीसंभोगमन्तरा रेतःस्कन्दने प्रायश्चित्तानि । तत्र स्वप्ने
रेतोविसर्गे काश्यप आह—

सूर्यस्य त्रिर्नमस्कारं स्वप्ने सिक्त्वा गृही चरेत् ।

वानप्रस्थो यतिश्चैव त्रिः कुर्याद्वधमर्पणम् ॥

ब्रह्मचारिणं प्रति मनुराह—

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।

स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥

भयादौ प्रजापतिराह—भये रोगे तथा स्वप्ने सिक्त्वा शुक्रमकामतः ।

आदित्यमर्चयित्वा तु पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥

कामतस्त्वाह पराशरः—गृहस्थः कामतः कुर्याद्वेतसः स्खलनं भुवि ।

सह त्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैः सह त्रिभः ॥

अकामकृते याज्ञवल्क्य आह—

यन्मेऽद्य रेत इत्याभ्यां स्कन्नं रेतोऽभिमन्त्रयेत् ।

स्तनान्तरं भ्रुवोर्मध्यं तेनानामिकया स्पृशेत् ॥

यन्मेऽद्य रेतः पृथिवीं पुनर्मामैत्विन्द्रियमित्युपनिषन्मन्त्राभ्यामिति माधवः । कामतः सुरूपस्त्रीदर्शनस्पर्शनसंभाषणादिना रेतःस्कन्दने स्नात्वाऽर्कं संपूज्य त्रिवारं नमस्कृत्य पुनर्मामैत्विन्द्रियमिति जपित्वाऽष्टोत्तरसहस्रं गायत्रीं जपेत् । अकामतस्त्वष्टोत्तरशतं जप इति प्रायश्चित्त-मञ्जर्याम् ।

अथ प्रयोगः—स्वप्नादिनिमित्तकरेतोविसर्गोत्तरं स्नात्वाऽऽचम्य प्राणा-नायम्य देशकालौ स्मृत्वा मम स्वप्नावस्थायां जातरेतोविसर्गदोषपरि-हारार्थं सूर्यार्चनपुनर्मामित्युक्जपस्वरूपप्रायश्चित्तं करिष्ये । सूर्यं गन्धादिना संपूज्य त्रिवारं नमस्कृत्य ॐ पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः । पुन-र्द्रविणमैतु मां पुनर्ब्राह्मणमैतु माम् । इति मन्त्रं जपेत् । अनेन स्वप्ना-वस्थाजातरेतोविसर्गदोषप्रायश्चित्ताख्येन कर्मणा परमेश्वरः प्रीयता-मिति । एवमेव भयरोगादिनिमित्ते प्रयोग उह्यः । तदेतदुक्तमाह्निकम् । एतस्य करणे श्रेयोऽकरणे प्रत्यवायश्च । तदुक्तं कौर्मे—

इत्येतदखिलं प्रोक्तमहन्यहनि वै द्विजाः ।

ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥

नास्तिक्यादथवाऽऽलस्याद्वाह्मणो न करोति यः ।

स याति नरकान्घोराङ्काकयोनौ तु जायते ॥

नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाऽऽश्रमविधिं स्वकम् ।

तस्मात्कर्माणि कुर्वति तुष्टये परमेशिनः ॥

स्मृत्यर्थसारे—नास्तिक्यात्कर्महानौ तु मासेन पतितः स्मृतः ।

द्वादशाब्दव्रतेनैव तस्य शुद्धिस्तु नान्यथा ॥

तं निरीक्ष्यार्कमीक्षेत स्पर्शं स्नायात्सचैलकम् ।

तेन संभाषणं हास्यं कुर्वन्नब्देन तत्समः ॥

तदन्नभुक्तौ सद्यस्तु सहशय्यासनेषु च ।

गोभिलः—यो विप्रः कृतनित्यस्तु स सर्वान्कृतवान्मखान् ॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु तप्तं तेनाखिलं तपः ।

आह्निकचन्द्रिकायाम्—

अनेन विधिना विप्रः संध्याहोमादिकं चरन् ।

सर्वपापैः प्रमुच्येत जीवेच्च शरदां शतम् ॥

सर्वकर्मसु योग्योऽसौ भवतीत्याह शौनकः ।

आश्वलायनः—अनेन विधिना यस्तु नैत्यकं कुरुते द्विजः ।

स याति परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

एवमावश्यकं कर्तव्ये बहुविधविधिनिषेधाकुल आह्निके कर्मणि न्यूनाधिकदोषविधिनिषेधातिक्रमदोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्ताज्ञाने तत्तत्साङ्गन्तार्थं प्रायश्चित्तसाङ्गन्तार्थं च श्रीविष्णुनामोच्चारणादिकं कार्यम् । तथा स्मर्यते—

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मिकानि वै ।

यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।

न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

श्रीमद्भागवते—नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहने हरेः ।

तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

प्रभासखण्डे श्रीमद्भागवद्वाक्यम्—

नाम्नां मुख्यतमं नाम कृष्णाख्यं यत्परंतप ।

प्रायश्चित्तमशेषाणां पापानां मोचकं परम् ॥

लौकिकं वैदिकं च सर्वं कर्मेश्वरे समर्पणीयम् । तदुक्तं भगवताऽर्जुनं प्रति गीतायां—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ इति ।

अत्र कुरुष्वेत्यात्मनेपदेन परमेश्वरार्पितकर्मफलस्य कर्तृगामित्वोक्त्याऽर्पयितुरर्पणजन्यफलाधिगमोऽस्त्येवेति सूचितम् । तत्र युगपत्सर्वकर्मार्पणे मन्त्रः—

कामतोऽकामतो वाऽपि यत्करोमि शुभाशुभम् ।

तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम् ॥ इति ।

इति माटे इत्युपनामकनारायणात्मजत्र्यम्बकविरचित आचारेन्दौ सायमौपासनादिशयनान्तं रात्रिकृत्यं समाप्तम् ।

चित्तपावनकुलेऽतिनिर्मले शाण्डिलो हरिरभूद्विजवर्यः ।

माटकाह्व उपशिक्षितलोको रामपादकृतसर्वनिर्वहः ॥

तद्भ्राता नारायणजनुराचारेन्दुनामकं व्यतनोत् ।

राजन्वति शाहुपुरे त्र्यम्बकशर्मा मुदे रमेशस्य ॥

शके पटयत्यष्टौ १७६० तिथिमितदिने कार्तिकसिते
 सुपूर्णेऽयं चेन्दुर्बुधजनमनःकंजविकसः ।
 कलङ्काङ्कोऽपीष्टां रसिकमुदमाधातुमसकृ-
 च्चकास्ताद्राधेशेष्टशिवधृतपूर्णेन्दुरिव यः ॥
 इमं ग्रन्थं भूयो बुधजनवराः पश्यत सदा
 मदीयान्दोषान्धै चिनुत दययैक(वाऽऽर्द्र)मनसः ।
 यतो यूयं सर्वोपकृतिधृतदेहाः स्थ च ततो
 ममेयं विज्ञप्तिर्भवतु सफला सर्वसुखदा ॥
 अनेन ग्रन्थनेनैव श्रीमान्ब्रह्मपतिः स्वयम् ।
 प्रीणातु जानकीशानः कर्मपूर्तिविधायकः ॥

इति माटे इत्युपनामकनारायणात्मजव्यम्भकविरचित

आचारेन्दुः समाप्तः ।

ग्रन्थसंख्या सप्तसाहस्री ७००० ।

आचारेन्दोः परिशिष्टम् ।

—...—

१५८ पृष्ठे २० पङ्क्तौ—रात्रेरन्यत्र ज्ञेयः—इत्यनन्तरमयं ग्रन्थो ज्ञेयः—

[* तदुक्तं भविष्यत्पुराणे—

केतकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शंकरे ।

दिवा शेषाणि देयानि दिवा रात्रौ च महिला ॥ इति ।

तथा शिवधर्मेणु—कपित्थं लकुचं तण्डुली शिरीषं च विभीतकम् ।

धातकीं निम्बपत्रं च गृञ्जनं च विवर्जयेत् ॥

अत्र महेशादयः सर्वे पुष्पनिषेधा वसन्तेतरविषयाः ।

वसन्ते तु ऋतौ प्राप्ते सर्वैः पुष्पैर्मनोरमैः ।

पूजिते तु महादेवे अश्वमेधफलं लभेत् ॥

इति तत्र सर्वेषां विधानादित्याहुः । वस्तुतो निषेधा नित्यपूजा-
विषयाः कामनापुरस्कृतेन वचनेन कथं बाध्याः । भविष्यत्पुराणे—

धत्तुरः शिशपापुष्पं मन्दारश्चापराजिता ।

सूर्यविण्णवोर्न विहितं दमनं शिवसूर्ययोः ॥

सुरभीणि च सर्वाणीत्यादाविव निषिद्धेतरविषयम् ।

अथ गणपतौ विहितपुष्पाणि । पारिजाते—

विघ्नेशमर्चयेद्वैवस्त्रभूषणमाल्यकैः ।

पत्रपुष्पफलाक्षीनि शिवविण्णुसमर्चने ॥

देव्यर्चने च शस्तामि तानि विश्वेश्वरं प्रति ।

आदित्यपुराणे—द्विरदोद्धातकः शिशुजीवायनपराशिवा ।

सुधायोगात्तदुद्भूता दूर्वा गणपतिप्रिया ॥

दूर्वा सप्तपत्रयुता पञ्चपत्रयुता वाऽच्छिन्नाग्रा ग्राह्येति रत्नमालापाम् ।
सा च प्रादेशमात्रा पङ्कजुला वेति जयसिंहकल्पद्रुमे । अथ निषिद्धानि
आचारप्रकाशे—

करणी गणपे त्याज्या यतः करिमुखो हि सः ।

तृचभास्करे—न तुलस्या गणाधीशमेकविंशतिकं विना ।

एकविंशतिपत्रान्तर्गतत्वात्तुलस्यास्तावतामर्पणे न तुलसीनिषेधः
पार्थक्ये नार्पयेदित्यर्थः ।

अथ सूर्ये विहितपुष्पाणि । पुष्पमालायाम्—

जातीकुन्दशमीकुशेशयकुशाशोकं वकं किंशुकं
पुन्नागं करवीरचम्पकजपानेपालिकाकुब्जकम् ।
वासन्तीशतपत्रिकाविचकितं मन्दारमर्काङ्गुयं
पाताम्रातकनागकेसरमिदं पुष्पं रवेः शस्यते ॥
लोध्रं कैरवमुत्पलं च सकलं सिंहास्यकं पाटला
यूथीकुङ्कुमकर्णिकारतिलकं बाणं कदम्बं जपा ।
काशं केसरकेतकीमरुचकं द्रोणं त्रिसंध्याह्वयं
पुष्पं शस्तमिदं च पूजनविधौ सर्वं सहस्रार्चिषः ॥
तमालतुलसीविल्वशमीभृङ्गारजोद्भवम् ।
केतकीदूर्वयोर्धात्र्याः पत्रं दिनकरप्रियम् ॥

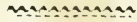
ज्ञानमालायां तु विल्वपत्रं दिवाकरं नार्चयेदिति निषेध उक्तोऽतो
विहितप्रतिपिन्द्रत्वाद्विकल्पः ।

पुष्पं शस्तं भृङ्गराजशालमलीकाञ्चनारजम् ।
निपिन्द्रविहितं सूर्ये तगरं कण्टकारिका ॥
अगस्त्यं किंशुकं तद्वत्पूजायां भास्करस्य तु ।
तुलसी कालतुलसी तथा रक्तं च चन्दनम् ॥
केतकीपुष्पपत्रं च सद्यस्तुष्टिकरं रवेः ।

कुशेशयं कमलम् । बकुलम् । किंशुकः पलाशः । पुन्नागः, उडीण,
नेपालिका नेवाळी । कुब्जकं, अयाडा । वासन्ती चमेली । शतपत्रिका
शेयती । विचकितो मुकुरः । आम्रातको नाम, आम्रसदृशो गौडदेशे
शूर्पालकक्षेत्रे च, अंवाडा इति भाषया प्रसिद्धः । कर्णिकारः लघुवा-
ह्वय(वा?) । तिलकः, तिलकवृक्षः । बाणः कृष्णपुराण्टकः । कदम्बः
कडंबः । काञ्चनारः, अपटा ॥]

इत्याचार्येन्द्रोः परिशिष्टम् ।

आचारेन्दोः शुद्धिपत्रम् ।



| पृष्ठे | पङ्क्तौ | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|--------|---------|-----------------|-----------------|
| ४ | ११ | तु कलौ प्र | तु प्र |
| ८ | १५ | खोऽप्युप | खो व्युप |
| ८ | २७ | हुतीर्विना | हुती विना |
| १० | १३ | तम् । | तम् । इति । |
| १२ | ८ | ते नच | तेन च |
| १५ | ८ | पि(पे)तृ | पैतृ |
| १८ | २ | पश्चाय | पश्चाय |
| २४ | २९ | जलं तु मले | जले तु मलं |
| २७ | २१ | उपवीता | उपवीती |
| ५० | २८ | मार्जने | मार्जनं |
| ५३ | २५ | देनिपिध्यते | देनिपिद्धता |
| ५७ | २ | मेकं जले | मेकं स्थले |
| ५९ | १८ | स्नातस्य | स्नानस्य |
| ५८ | १९ | केश | केश |
| ६३ | २४ | पुण्ड शि | पुण्ड्रं शि |
| ६४ | २५ | ध्ये वणु | ध्ये वेणु |
| ६९ | १३ | सर्वत्र धारयेत् | सर्वत्र धार्यते |
| ८४ | १५ | न्मूर्ध्नि | न्मूर्ध्नि |
| ७५ | ९ | वज्रहस्तं | वज्रहतं |
| ७८ | २ | य येन | य तोयेन |
| ८८ | १९ | प्रकाम | प्रक्रम |
| ७८ | १९ | धू(?)न्व | धून्व |
| ८९ | ७ | तद्रूपं | तद्रूपं |
| ८० | १० | नेषु दा | ने तु दा |
| ८० | २५ | जानूध्वोर | जानूर्वोर |
| ८६ | १९ | नियं | नित्यं |
| ८६ | २६ | इन्द्राय नमः | इन्द्राय च नमः |
| ८५ | १० | छिष्टम् | छिष्टम् |

| | |
|-----|----|
| 10 | १५ |
| | ८ |
| ७३ | २९ |
| १८२ | १ |
| १८२ | १२ |
| १९५ | २० |
| १९६ | १ |



BL
1215
R5T77
1909

Tryambaka Nārāyana Maṭe
Acarenduh



PLEASE DO NOT REMOVE
CARDS OR SLIPS FROM THIS POCKET

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARY

UTL AT DOWNSVIEW



D RANGE BAY SHLF POS ITEM C
39 12 22 05 01 012